परम पूज्य आचार्य उमास्वामी जी महाराज द्वारा विरचित
महान ग्रन्थराज श्री तत्त्वार्थ सूत्र जी

अध्याय 2

जीव विज्ञान

अनूठा स्वाध्याय with QR Codes,Graphics & Visualization

प्रवचन कर्ता:

अर्हं योग प्रणेता
मुनि श्री 108 प्रणम्यसागर जी महाराज

ज्ञान पब्लिशिंग हाउस

कृति	:	जीव विज्ञान
आशीर्वाद	:	परम पूज्य सन्त शिरोमणि आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज परम पूज्य आचार्य श्री 108 समयसागर जी महाराज
प्रवचन	:	अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्यसागर जी महाराज
संयोजन	:	टीम अर्हं
मूल्य	:	स्वाध्याय एवं भक्ति (पुनः प्रकाशन हेतु रुपए 500/- मात्र)
संस्करण	:	प्रथम, 2024
प्रकाशक	:	ज्ञान पब्लिशिंग हाउस 5, अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली - 110002 001-47034999, 9811692060 E-mail- books@gyanbooks.com
आईएसबीएन	:	978-93-6433-272-9
पुण्यार्जक	:	प्रणम्यवाणी देवदूत
प्राप्ति स्थान	:	1. आचार्य अकलंक देव जैन विद्या शोधालय समिति 109, शिवाजी पार्क, देवास रोड, उज्जैन मोबाइल: 9425092483 2. आर्हत विद्या प्रकाशन गोटेगाँव मोबाइल: 9425837476



परम पूज्य सन्त शिरोमणि आचार्य
श्री 108 विद्यासागर जी महाराज



अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री 108 प्रणम्यसागर जी महाराज

पूर्व नाम	: ब्र. सर्वेश जी
पिता-माता	:श्री वीरेन्द्रकुमार जी जैन, श्रीमती सरितादेवी जैन
जन्म	: 13.09.1975, भाद्रपद शुक्ल अष्टमी
जन्म स्थान	: भोगाँव, जिला-मैनपुरी (उ.प्र.)
शिक्षा	: बी. एस. सी. (अंग्रेजी माध्यम)
भाई	: सचिन जैन
बहिन	: सपना जैन
गृहत्याग	: 09.08.1994
क्षुल्लक दीक्षा	: 09.08.1997, नेमावर
ऐलक दीक्षा	: 05.01.1998, नेमावर
मुनि दीक्षा	: 11.02.1998, माघसुदी 15, बुधवार, मुक्तागिरिजी
दीक्षा गुरु	: संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री प्रणम्यसागर जी महाराज द्वारा साहित्य सृजन

संस्कृत भाषा में टीका ग्रन्थ

1. लिङ्गपाहुड़ (नन्दिनी टीका)
2. शील पाहुड़ (नन्दिनी टीका)
3. समाधि तन्त्र (आर्हतभाष्य)
4. चैतन्य चन्द्रोदय (चन्द्रिका टीका)
5. बारसाणुवेक्खा (कादम्बिनी टीका)
6. आत्मानुशासन (स्वस्ति टीका)
7. पुरुषार्थ सिद्धयुपाय (मंगला टीका)
8. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका ('नीति-पथ')
9. तत्त्वार्थ सूत्र (तत्त्व संदीपिनी टीका, संस्कृत-प्राकृत)
10. संस्कृत एवं प्राकृत भक्ति (आठ भक्तियों की टीका)

हिन्दी में अनुवादित ग्रन्थ

1. सत्सकर्म पंजिका
2. दश भक्ति टीका
3. प्रवचनसार (सरोज भास्कर टीका)
4. कथा कोश
5. सत्य शासन परीक्षा
6. युक्त्यनुशासन
7. नाममाला (भाष्य)
8. सत्संख्यादि अनुयोगद्वार
9. पात्रकेसरी स्तोत्र
10. अद्याष्टक स्तोत्र
11. संन्यास एषोस्तु किमात्मघातः
12. चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तुति (आ. माघनन्दि)
13. नियमसार
14. समयसार
15. परीक्षामुख
16. प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी

पद्यानुवाद

1. पुरुषार्थ सिद्धयुपाय
2. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका
3. तत्त्वार्थ सूत्र
4. पात्र केसरी स्तोत्र
5. कल्याणमन्दिर स्तोत्र
6. श्री वर्धमान स्तोत्र
7. मंगलाष्टक
8. माघनन्दी कृत अभिषेक पाठ
9. उपयोग शतक

प्रवचन ग्रंथ

1. बारसाणुवेक्खा
2. नई छहढाला प्रवचन
3. परमात्म योग (समाधि तन्त्र)
4. जीव विज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय - 2)
5. मनोविज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-6)
6. लोक विज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-3, 4)
7. व्रत विज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-7)
8. अध्यात्म योग (इष्टोपदेश)
9. प्रवचनसार का सार (गाथा 1-26)
10. प्रवचनसार का सार(गाथा 27-60)
11. प्रवचनसार का सार (गाथा 61-101)
12. प्रवचनसार का सार (गाथा 102-136)
13. प्रवचनसार का सार (गाथा 137-175)
14. कर्म बंध विज्ञान
15. धर्म का मर्म (अपने को समझें)
16. राम कथा
17. पञ्च लब्धि
18. स्त्री को मोक्ष क्यों नहीं
19. मेरी भावना को अपनी भावना बनाएँ
20. तत्त्व विज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-१)
21. जीव विज्ञान (तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-२)
22. सिद्ध भक्ति
23. नीतिवाक्यामृत Part 1 - आदर्श जीवन की नीतियां

अर्हं योग प्रणेता मुनि श्री प्रणम्यसागर जी महाराज द्वारा साहित्य सृजन

संस्कृत भाषा में मौलिक काव्य ग्रन्थ

1. स्तुति पथ
2. श्रायस पथ
3. सिद्धोदयाष्टकम्
4. श्री वर्धमान स्तोत्र
5. अनासक्त महायोगी (आचार्य श्री का जीवनवृत)
6. उपयोग शतकम्
7. अर्हं अष्टाङ्ग योग शतकम्
8. आ. श्री शान्तिसागर स्तुति शतकम्
9. श्री शान्तिनाथ स्तोत्र (शतकम्)
10. महामह नन्दीश्वर विधान
11. गोवैभवशतकम् (आयुर्वेद सम्बन्धी)
12. चतुर्विंशति-जिनस्त्रोत्रम् (पूजा एवं विधान)
13. मुनिसुव्रत भगवान आराधना

प्राकृत भाषा में मौलिक ग्रन्थ

1. तित्थयर भावणा (सोलहकारण भावनाओं पर प्राकृत गाथाएँ)
2. दार्शनिक प्रतिक्रमण
3. अष्टपाहुड़ (प्राकृत टीका 16)
4. धम्मपह
5. प्राकृत रचना भास्कर
6. प्राकृत शिक्षा भाग 1-2-3-4
7. गोम्मटेस पडिमा भत्ति

अन्य मौलिक कृतियाँ

1. युगद्रष्टा (भगवान ऋषभदेव पर उपन्यास)
2. जैन सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य
3. खोजो मत पाओ (लाइफ मैनेजमेंट)
4. आलेख पथ (20 सैद्धान्तिक आलेख)
5. समयसार का ज्ञानी आत्मा कौन?
6. अन्तर्गून्ज (भजन एवं हायकू)
7. लहर पर लहर (कविता संग्रह)
8. बेटा! (शिक्षाप्रद सूक्तियाँ)
9. नई छहढाला
10. लक्ष्य (जीवंधर चरित्र)
11. मुनिसुव्रतनाथ विधान
12. अर्हं दोहावली
13. अर्हं ध्यान योग
14. जिंदगी क्या है? (प्रवचन ग्रन्थ)

संकलन

1. संवाद (आचार्य श्री और बाबा रामदेव की चर्चा)
2. A Talk (संवाद का अंग्रेजी अनुवाद)
3. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय अनुशीलन

अंग्रेजी भाषा में

1. Fact of Fate (Article)
2. Twelve Contemplation
3. I Love You My Soul

प्रस्तावना

संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के ज्ञानध्यानतपोरत शिष्य अर्हं योग प्रणेता मुनिश्री प्रणम्य सागर जी महाराज संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी एवं आंग्ल भाषा के अद्वितीय, न्यायविद् दार्शनिक चिंतक विद्वान है। उनके द्वारा संस्कृत, प्राकृत, आंग्ल एवं हिंदी भाषा में मौलिक कृतियों का प्रणयन हुआ है, अनेक ग्रंथों पर टीकायें रची गयी हैं तथा अनेक रचनाओं का हिंदी पद्यानुवाद किया गया है। श्रमण संस्कृति के संरक्षक, ओजस्वी वाणी के धनी, सर्वस्नेहि, आदरणीय पूज्यपाद मुनि श्री प्रणम्य सागर जी महाराज एक दिव्य युग पुरुष हैं जिनके सौम्य-स्वभाव व सकारात्मक ऊर्जा से कोई भी व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

जैनाचार्यों में सर्वप्रथम आचार्य उमास्वामी ने संस्कृत भाषा में सूत्र-शैली में जैन सिद्धान्त ग्रन्थ 'तत्त्वार्थ सूत्र' की रचना की। यह जैन साहित्य में सूत्र शैली का प्रथम ग्रन्थ है ही, साथ ही संस्कृत भाषा में रचित प्रथम जैन ग्रन्थ भी है। इससे पूर्व का जैन साहित्य प्राकृत भाषा में निबद्ध है।

समाज में अनेक स्थानों पर दशलक्षण पर्व के अवसर पर **'तत्त्वार्थसूत्र'** के वाचन-स्वाध्याय की परम्परा है। यह संकलन मुनि श्री 108 प्रणम्य सागर जी महाराज के मुजफ्फरनगर 2020 के चातुर्मास प्रवास के दौरान तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय एक पर दिए गए प्रवचनों का है। प्रस्तुत कृति तत्त्वार्थसूत्र के द्वितीय अध्याय की है, जिसमें जीवों का actual विज्ञान बताया गया है। जो किन्हीं भी doctors and technology के पहुँच के बाहर है।

इस अध्याय में मुनिश्री ने अन्तरंग में कर्मों के उदय, क्षयोपशम आदि से होने वाले भाव, जीवों के प्रकार, जीवों के जन्म, जीवों की उत्पत्ति, स्थान, योनि आदि और जीवों को प्राप्त होने वाले शरीर आदि की विशेषताओं से अवगत कराया गया है।

इस अध्याय के प्रथम सूत्र के अनुसार संसार में रहने वाले अनन्त जीवों के अन्दर 5 भावों का अवस्थान अधिक से अधिक हो सकता है।

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ 2.1॥

सूत्र 1 का वर्णन मुनिश्री ने विस्तारपूर्वक किया है।

उपयोगो लक्षणम् ॥2.8॥

उपयोग



आँख का खुलना, वस्तु को देखना-जानना आँख का व्यापार



आत्मा के अन्दर निरन्तर जानने-देखने का व्यापार चलता रहता है

सूत्र 8 में जीव के लक्षण को बताते हुए मुनिश्री कहते हैं- उपयोग अर्थात् चेतना। आज की भाषा में conscious कह सकते हैं। जैन दर्शन की भाषा के अनुसार जानने-देखने की सामर्थ्य का नाम उपयोग है। लक्षण क्या काम करता है? 'अन्य वस्तु व्यतिकीर्ण व्यावृत्ति हेतु: लक्षणं' जो अन्य वस्तुओं से मिला हुआ अनेक-प्रकार का द्रव्य है, उसमें से अलग कर देना और उसे अलग करने के लिए जो हेतु बनेगा, कारण बनेगा, वही उसका लक्षण कहलाएगा।

सूत्र संसारिणो मुक्ताश्च ॥2.10॥ जीवों के दो प्रकार संसारी और मुक्त को समझने के लिए है। जीव के मुख्य रूप से दो ही भेद हैं...जो संसार में परिवर्तन करे, संसार में परिणमन करे, जिसका एक गति से दूसरी गति में 'संसरण' होता रहे, उसका नाम है- संसारी-जीव और जिनमें इस तरह का कोई 'संसरण' न हो, परिवर्तन न हो, उन्हें कहा जाता है- मुक्त-जीव।

मुक्त-जीव

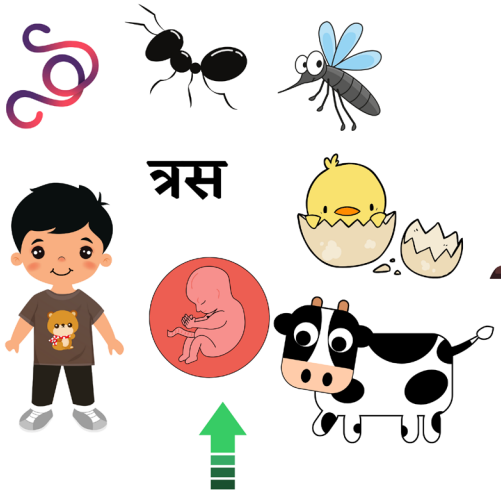


संसारी-जीव



सूत्र **संसारिणस्त्रस-स्थावराः ॥2.12॥** के अनुसार संसारी-जीव दो प्रकार के हैं-

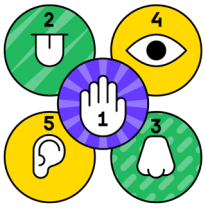
1. त्रस-जीव और
2. स्थावर-जीव। सूत्र 12 में संसारी जीवों के भेद बताये गए। सूत्र 13 में स्थावर जीवों के बारे में बताया गया।





सूत्र 14 से 19 तक त्रस जीवों का वर्णन है।

हिन्दुओं के यहाँ पर भी, अजैन शास्त्रों में भी, इन्द्रियों को माना गया है, इन्द्रियों का वर्णन किया गया है लेकिन वहाँ पर पाँच से अधिक इन्द्रियाँ ली गई हैं। वहाँ पर इसलिए पाँच से अधिक ली गई क्योंकि वे कर्म इन्द्रियों को भी जोड़ते हैं। परन्तु जैन धर्म के अनुसार ५ इन्द्रियाँ ही मुख्य होती है जिनके माध्यम से आत्मा को वस्तु का ज्ञान होता है इसलिए इन्हें **ज्ञान इन्द्रिय** बोलते हैं ।



विग्रहगतौ कर्म योगः ॥2.25॥ विग्रहगति में केवल कार्मण काययोग होता है। अर्थात् विग्रह गति में जीव कर्मों के शरीर को लेकर जाता है, उस समय पर भी उसके परिस्पन्दन चलता रहता है।

सम्मूर्च्छन-गर्भोपपादा जन्म ॥ 2.31॥

जन्म 3 प्रकार के होते हैं।
1.सम्मूर्च्छन जन्म
2.गर्भ जन्म और
3.उपपाद जन्म

1. सम्मूर्च्छन-जन्म वाले जीव



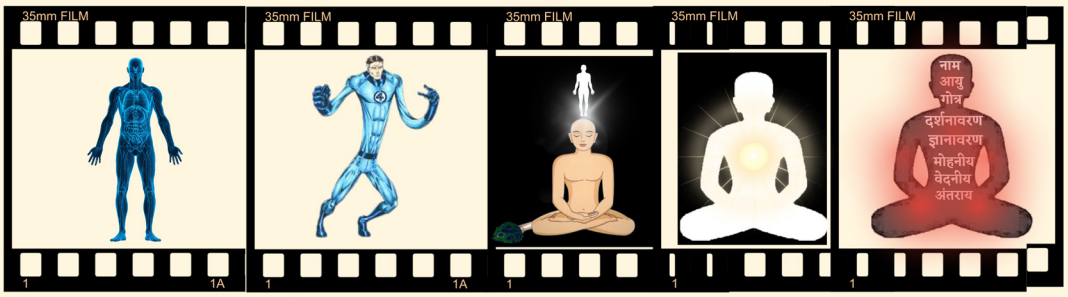


सम्मूर्च्छन जन्म का science में अभी तक कोई नाम नहीं है



मुनिश्री समझाते हैं की आज का विज्ञान, जो चीजें देखने में आती हैं, उन्हीं से परिचित रहता है, उन्हीं का नाम जानता है। science के पास इन कीट-पतंगों का, चीटें-चींटियों का, एकेन्द्रिय आदि जीवों का जन्म कैसे होता है? कौन-सा जन्म है? क्या नाम है? इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है। Jain Science में इनका सम्मूर्च्छन जन्म बताया गया और जन्म सभी जीवों के जन्म संबंधी सारी जानकारी भी विस्तार में मिलती है ।

औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणानिशरीराणि॥2.36॥



यह सूत्र हमें शरीरों की संख्या भी बता रहा है और शरीरों के नाम भी बता रहा है।

1. औदारिक शरीर,
2. वैक्रियिक शरीर,
3. आहारक शरीर
4. तैजस शरीर और
5. कार्मण शरीर

ये पाँच प्रकार के शरीर जिनागम में बताए गए हैं। शरीर का मतलब होता है कि जो **'शीर्यते इति शरीरः'** जो शीर्यते यानि शीर्ण होता रहता है, जीर्ण होता रहता है, उसको वस्तुतः शरीर कहा जाता है।

जीव विज्ञान श्री तत्त्वार्थ सूत्र का अनूठा स्वाध्याय with Graphics and Visualization की दूसरी कृति है जिसे पढ़कर सभी के मन में जीवों के जन्म मृत्यु, अकाल, मरण जीवों की पहचान आदि सम्बंधित सभी भ्राँतियां दूर होंगी और युवा वर्ग का Jain Biology को जानकर जिनवाणी के प्रति श्रद्धान बढ़ेगा। जो उनमे स्वाध्याय के प्रति रुझान बढ़ाकर सम्यग्ज्ञान की वृद्धि में सहायक होगा। टीम अर्हं की अपने अथक परिश्रम से यह कोशिश रही है कि इस पुस्तक में इन तत्त्वार्थ सूत्रों की वाचना को इस तरह से प्रस्तुत करें कि आज की पीढ़ी उन प्रश्नों के उत्तर भी जान सके जिन्हें देने में modern science भी असमर्थ है ।

मुनि श्री के प्रवचनों का संपादन करते समय उनकी कथन शैली का यथासंभव ध्यान रखा गया है। इस पुस्तक के प्रकाशन में जो त्रुटियाँ हमारी दृष्टि में आने से रह गयी हैं उनकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित करें। टीम अर्हं इस हेतु आपके सहयोग का स्वागत करती है।

पूज्य मुनिश्री प्रणम्य सागर जी के चरणों में सादर वन्दन, बारम्बार नमन्।

अर्हं टीम

तत्त्वार्थ सूत्र
अध्याय - २

औपशमिक-क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्व-मौदयिक-पारिणामिकौ च ॥1॥ द्वि-नवाष्टा-दशैक-विंशति-त्रि-भेदा यथा-क्रमम् ॥2॥ सम्यक्त्व-चारित्रे ॥3॥ ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोगोप-भोग-वीर्याणि च ॥4॥ ज्ञाना-ज्ञान-दर्शन-लबध्यश्चतुस्त्रि-त्रि-पञ्चभेदा:-सम्यक्त्व-चारित्र-संयमासंयमाश्च ॥5॥ गति-कषाय-लिंग-मिथ्यादर्शना-ज्ञाना-संयता-सिद्ध-लेश्याश्-चतुश्-चतुस्त्र्ये-कैकैकैक-षड्भेदा: ॥6॥ जीव-भव्या-भव्यत्वानि च ॥7॥ उपयोगो लक्षणम् ॥8॥ स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेद: ॥9॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥10॥ समनस्का-मनस्का: ॥11॥ संसारिणस्त्रस-स्थावरा: ॥12॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवन-स्पतय:स्थावरा: ॥13॥ द्वीन्द्रियादयस्-त्रसा: ॥14॥ पञ्चेन्द्रियाणि ॥15॥ द्विविधानि ॥16॥ निर्वृत्त्युप-करणे द्रव्येन्द्रियम् ॥17॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥18॥ स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु: श्रोत्राणि ॥19॥ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्तदर्था: ॥20॥ श्रुत-मनिन्द्रियस्य ॥21॥ वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥22॥ कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीना-मेकैक-वृद्धानि ॥23॥ संज्ञिन: समनस्का: ॥24॥ विग्रहगतौ कर्म योग: ॥25॥ अनुश्रेणि गति: ॥26॥ अविग्रहा जीवस्य ॥27॥ विग्रहवती च संसारिण:प्राक् चतुर्भ्य: ॥28॥ एक-समया-विग्रहा ॥29॥ एकं द्वौ त्रीन्वानाहारक: ॥30॥ सम्मूर्च्छन-गर्भोपपादा जन्म ॥31॥ सचित्त-शीतसंवृता:सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनय: ॥32॥ जरायु-जाण्डज-पोतानां गर्भ: ॥33॥ देव-नारकाणामुपपाद: ॥34॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥35॥ औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तेजस-कार्मणानिशरीराणि ॥36॥ परं परं सूक्ष्मम् ॥37॥ प्रदेशतोऽसंख्येय गुणं प्राक् तैजसात् ॥38॥ अनन्तगुणे परे ॥39॥ अप्रतीघाते ॥40॥ अनादि-सम्बन्धे च ॥41॥ सर्वस्य ॥42॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्या-चतुर्भ्य: ॥43॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥44॥ गर्भ-सम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥45॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥46॥ लब्धि-प्रत्ययं-च ॥47॥ तैजस-मपि ॥48॥ शुभं विशुद्ध-मव्याघाति चाहारकं प्रमत्त-संयतस्यैव ॥49॥ नारक-सम्मू-र्च्छिनो नपुंसकानि ॥50॥ न देवा: ॥51॥ शेषास्त्रिवेदा: ॥52॥ औपपादिक-चरमोत्तम-देहा-संख्येय-वर्षायुषोऽन-पवर्त्यायुष: ॥53॥

अनुक्रमणिका

प्रवचन 1.....1
सारांश.....24
अभ्यास प्रश्न पत्र.....28

प्रवचन 2.....31
सारांश.....61
अभ्यास प्रश्न पत्र.....65

प्रवचन 3.....68
सारांश.....92
अभ्यास प्रश्न पत्र.....95

प्रवचन 4.....98
सारांश.....116
अभ्यास प्रश्न पत्र.....119

प्रवचन 5.....122
सारांश.....141
अभ्यास प्रश्न पत्र.....145

प्रवचन 6.....148
सारांश.....170
अभ्यास प्रश्न पत्र.....174

प्रवचन 7.....177
सारांश.....195
अभ्यास प्रश्न पत्र.....199

प्रवचन 8.....202
सारांश.....221
अभ्यास प्रश्न पत्र.....225

प्रवचन 9.....228
सारांश.....249
अभ्यास प्रश्न पत्र.....253

प्रवचन 10.....256
सारांश.....275
अभ्यास प्रश्न पत्र.....279

प्रवचन 11.....282
सारांश.....304
अभ्यास प्रश्न पत्र.....308

प्रवचन 12.....311
सारांश.....331
अभ्यास प्रश्न पत्र.....337

प्रवचन 13.....340
सारांश.....357
अभ्यास प्रश्न पत्र.....362

प्रवचन 14.....365
सारांश.....382
अभ्यास प्रश्न पत्र.....386

प्रवचन 15.....389
सारांश.....406
अभ्यास प्रश्न पत्र.....410

प्रवचन 16.....413
सारांश.....429
अभ्यास प्रश्न पत्र.....433

प्रवचन 17.....435
सारांश.....453
अभ्यास प्रश्न पत्र.....457

प्रवचन 18.....460
सारांश.....480
अभ्यास प्रश्न पत्र.....484

प्रवचन 19.....487
सारांश.....506
अभ्यास प्रश्न पत्र.....510

प्रवचन 01

मोक्ष मार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये॥

तत्त्वार्थ-सूत्र के द्वितीय-अध्याय के विषय में चर्चा प्रारम्भ होगी। प्रथम अध्याय में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के बारे में सुना गया था। आत्मा के अन्दर कितने ज्ञान होते हैं? कितने ज्ञान एक साथ हो सकते हैं? प्रमाण किसको माना जाता है? ज्ञान कौन-कौन से सम्यक् होते हैं? मिथ्या होते हैं? इत्यादि जो सभी कथन हमने सुने हैं, उन सभी कथनों के बाद में द्वितीय-अध्याय में जो प्रमेय है, वह जीव-तत्त्व के विषय में ही चल रहा है।

जीव के भावों का वर्णन

जो हमने जीव के ज्ञान सुने हैं, जीव के सम्यक्त्व आदि गुणों के बारे में सुना है; उसी को आगे बढ़ाते हुए आचार्य देव ने जीव के भावों का सबसे पहले वर्णन करना उचित समझा है। जीव-तत्त्व जो हम कहते हैं तो उसमें तत्त्व जो शब्द है, वह जीव के भाव को बताने के लिए होता है यानि जीव के अन्दर कितने तरह के भाव होते हैं? यह वही व्यक्ति समझ सकता है, निर्णय कर सकता है, जिसने कर्मों का श्रद्धान किया हो और सर्वज्ञ वाणी के अनुसार जो कर्मों की विचित्रताएँ बताई जाती हैं, उन विचित्रताओं को ध्यान में रखते हुए, कर्म से उत्पन्न होने वाले जो विभिन्न प्रकार के भाव हैं, उन भावों का उसके ऊपर श्रद्धान होगा तो वे भाव उसे 5 प्रकार के देखने को मिलेंगे। जो हम अपने मन से नहीं समझ सकते, वह हमें भगवान जिनेन्द्र देव की



वाणी से समझ में आता है। आत्मा में उठने वाले वे 5 प्रकार के भाव, जो संसार में अनन्त जीव रहते हैं, उनके अन्दर भी पाए जाते हैं और सभी के अन्दर इन्हीं 5 भावों का अवस्थान अधिक से अधिक हो सकता है। कुछ जीवों में ये 5 भाव न भी हो, कम हो लेकिन होंगे तो यही 5 प्रकार के भावों में से कोई न कोई भाव। अतः हम इन भावों का सबसे पहले वर्णन यहाँ पर सुनेंगे, जो सूत्र के माध्यम से कहा जा रहा है-

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ 2.1॥

औपशमिक-क्षायिकौ भावौ मिश्रः+ च जीवस्य स्व-तत्त्वम्+ औदयिक+

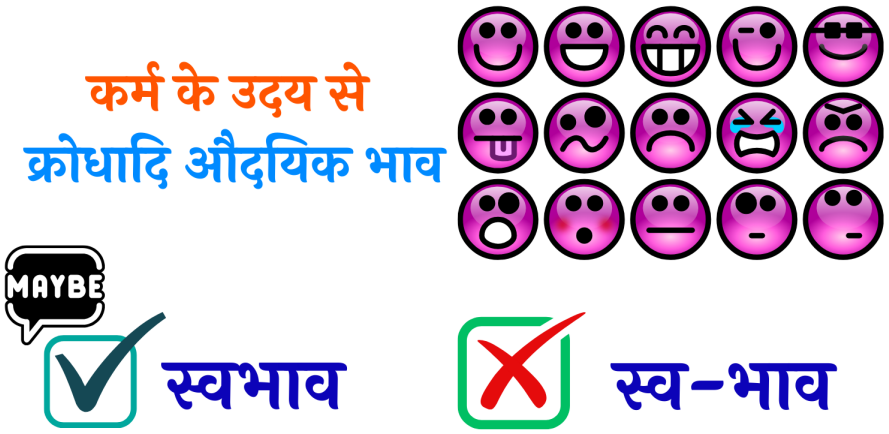
पारिणामिकौ च

औपशिमक छायिक तथा, मिश्र औदियक भाव।
पारिणामिकी जीव पे, पंच प्रकार प्रभाव॥2.1॥

स्व-भाव और स्वभाव में अन्तर



यह जीव के यहाँ पर स्व-तत्त्वम् कहा है, **स्व-तत्त्व का मतलब है- स्व मतलब अपने, तत्त्व उसके अपने भाव हैं।** अब हम यह समझे कि ये सभी जीव के स्व-भाव हैं। जीव जो भी भाव करता है, किसी भी तरह के कर्मों के कारण से करेगा, वह उसका अपना ही भाव कहलाएगा। जीव के यह स्व-तत्त्व, स्व-भाव और स्व-भाव को ही हम देखे तो इसी को हम बोलते हैं- स्वभाव। क्या बोलते हैं हम? स्वभाव। यह हमारे स्व जो भाव हैं यही हमारे स्वभाव भी बन जाते हैं। हमें अगर इन भावों का ज्ञान जिनवाणी के माध्यम से न हो तो हम हमेशा यही समझेंगे यह हमारा



स्व-भाव ही स्वभाव है। कैसे? जब आप इन औदयिक आदि भावों के बारे में जान लेंगे तब

आपको समझ में आने लगेगा कि ये कौन-से हमारे स्व-भाव हैं और कौन-से ऐसे स्वभाव हैं जिनको हमने स्वभाव तो मान लिया है लेकिन वह हमारे स्व-भाव नहीं हैं। समझ आ रहा है? धीरे-धीरे आएगा। औदयिक भाव आदि ये जो भाव हैं, ये सभी जीवों में पाए जाते हैं। यहाँ पर सर्वप्रथम औपशमिक-भाव के बारे में कहा गया है- **'औपशमिक-क्षायिकौ भावौ'** यह देखा जाए तो संस्कृत के अनुसार, जब भी कभी पदों को अलग-अलग जोड़ा के रूप में बनाया जाता है, तो उनकी विभक्तियाँ अलग-अलग रखी जाती हैं। आचार्य अगर चाहते तो पाँचों ही भावों को एक साथ भी लिख सकते थे। **"औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-औदयिक-पारिणामिका: भावा:"** ऐसा भी सूत्र बन सकता था। न जाने क्यों इतनी कसरत की तो इसका भी प्रयोजन होता है।

आचार्यों द्वारा सूत्र की रचना करने में बहुत गहरे भाव छिपे होते हैं

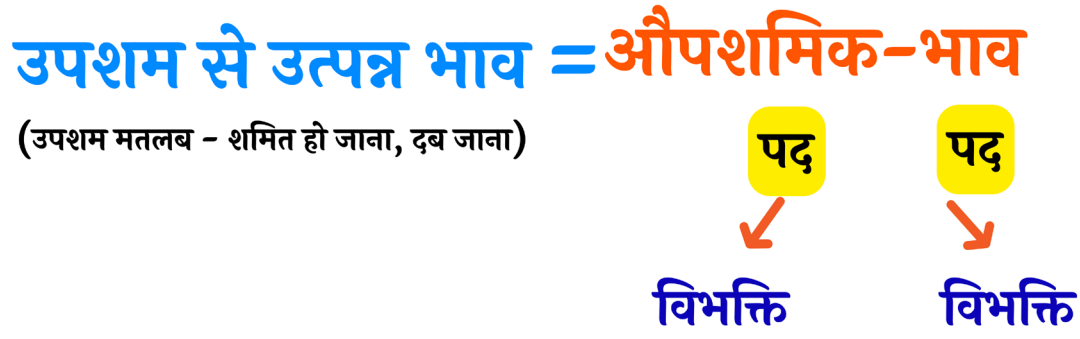
तत्त्वार्थ सूत्र ग्रन्थ के टीकाकार



- आचार्य पूज्यपाद
- आचार्य अकलंकदेव
- आचार्य विद्यानन्दी महाराज

जो सूत्रकार आचार्य होते हैं, वह महाविज्ञ, महा प्रज्ञावान होते हैं और वे जो सूत्र की रचना करते हैं, उसमें बहुत गहरे भाव छिपे होते हैं। अगर वह सूत्र को लिखते हुए कहीं पर विभक्ति को भी तोड़ रहे हैं, उसकी दो शब्दों के एक अलग पद बनाकर उसको विभक्ति अलग दे रहे हैं तो इसका एक बहुत बड़ा अर्थ है, जो अनेक टीकाकारों ने समझा है और उसको व्याख्यायित किया है। आचार्य पूज्यपाद, आचार्य अकलंकदेव, आचार्य विद्यानन्दी महाराज; ये तीन ऐसे बड़े-बड़े इन तत्त्वार्थ सूत्र ग्रन्थ के टीकाकार हुए हैं, जिन्होंने ग्रन्थ के सभी प्रकार के भावों को सूत्रों के सब प्रकार का जो एक अधिक से अधिक स्पष्टीकरण हो सकता है, वह सब उन्होंने कर डाला है। इतने प्रकाण्ड विद्वान ये आचार्य हुए हैं और इन्हीं आचार्यों के द्वारा जो टीकाएँ लिखी गई हैं, उसी से हम कुछ समझ पाते हैं और आपको कुछ समझा पाते हैं। आप यह ध्यान में रखना कि यहाँ जो कुछ भी आपको बताया जाता है, वह सब पूर्व आचार्यों के ज्ञान को पढ़

कर के ही आपको कुछ बताया जाता है। अपने आपसे कुछ नहीं बताया जाता है क्योंकि किसी भी सूत्र के बारे में अपने आप कुछ कहने की हिम्मत कभी भी कोई नहीं कर सकता।



अतः **'औपशमिक-भाव'** पहले हम यह थोड़ा सा समझने की कोशिश करे कि इन शब्दों का अर्थ क्या होता है? **'औपशमिक'** शब्द होता है- उपशम और उस उपशम से जो भाव बनता है उसका नाम कहलाता है- **'औपशमिक-भाव'**। अतः **उपशम ही जिसका प्रयोजन हो या उपशम से जो भाव उत्पन्न हो रहा हो उसका नाम हुआ 'औपशमिक-भाव'।** तात्पर्य यह निकलेगा कि औपशमिक-भाव में उपशम की प्रधानता होगी। उपशम का मतलब होता है- शमित हो जाना, दब जाना।

किसका नाम संसार और किसका नाम मोक्ष

आत्मा है और आत्मा में कर्म हैं, ये दो चीजें और इन दोनों चीजों के मेल-जोल से ही यह सब भावों का बनना-बिगड़ना चलता है। **आत्मा और कर्म, इन्हीं दोनों का खेल का नाम संसार है।** इन दोनों के खेल को जिसने बन्द कर दिया उसी का नाम मोक्ष है। यह जो उपशम हो रहा है, उपशम किसका? आचार्य कहते हैं कि आत्मा में जो कर्म बंधे हुए रहते हैं और वह कर्म अपनी शक्ति को हमेशा प्रकट किये रहते हैं, उन कर्मों की शक्ति को कुछ समय के लिए एकदम से दबा देना। कर्म अपना फल हमेशा से दिखाता आया है। अनादि काल से भी दिखाए जाने वाले कर्मों के फलों को हमने अनुभूत किया है और कर भी रहे हैं। उन कर्मों की शक्ति को किसी भी पुरुषार्थ से, किसी भी आत्मा की विशुद्धि के भाव से उन कर्मों की शक्ति को दबा देना, नष्ट नहीं किया गया। अभी क्या किया? दबा दिया। समझ आ रहा है? जैसे कि कोई हमारे सामने हमारा ही कोई गला दबाने आए या हमारे ऊपर ही कोई आक्रमण करने आए तो हम उसके साथ क्या करेंगे? कुछ नहीं बनेगा तो हम भी क्या करेंगे? उसकी गर्दन पकड़ लेंगे। हम से मतलब कोई भी, समझाने के लिए बता रहा हूँ कि अगर कोई आपको दबाता आ रहा है और आपको पता पड़ जाए कि यह मुझे दबा रहा है, तो फिर आपके अन्दर भी भाव आएगा कि मैं भी इसको सबसे पहले क्या करूँ? दबोच दूँ। दबोचना शब्द जो है, वह दबाने से ही बना है। कर्म जो हमारा एक तरह से शत्रु बन कर के हमारे ऊपर हमेशा अपना अधिकार रखा, उस कर्म

को दबोचने का भाव, उस कर्म को दबाने का भाव और उस कर्म की गर्दन पकड़ के एकदम से गिरा देना, पटक देना, इस तरीके का जो भाव है, इसका नाम ही उपशम भाव है।

उपशम भाव का अर्थ



उपशम भाव का मतलब क्या हुआ? हमने कर्म का नाश नहीं किया, उसको अभी मारा नहीं। मारने से मतलब? अभी हमने जान से नहीं मार डाला। अभी हमने क्या किया? उसको इतनी चपेट तो लगा दी कि वह गिर पड़े। गिर पड़ने का मतलब यही है कि दब गया और गिर पड़े तो उसके ऊपर फिर हम ही बैठ गए, हमने अपना अधिकार जमा लिया। यही कहलाता है- उपशम-भाव। ऐसा ही कर्मों के साथ करना पड़ेगा इसलिए ऐसा उदाहरण दे रहा हूँ। **उपशम जब कर्मों का होगा तब हमारे अन्दर जो भाव आएगा, उसका नाम कहलाएगा- 'औपशमिक-भाव'।** जैसे कि शत्रु को दबाने के बाद में जब हमें लगता है अब हमने शत्रु को अपने चपेट में ले लिया, विजय प्राप्त कर ली तब ऐसी जो एक परिणामों में उत्साह और विशुद्धि पैदा होती है उसको कहेंगे- **'औपशमिक-भाव'।** औपशमिक-भाव का मतलब क्या हो गया? **कर्मों के उपशम से जो आत्मा में भाव पैदा होंगे वह कहलायेंगे औपशमिक-भाव।**



क्षायिक भाव का मतलब

उसके बाद में **'क्षायिक-भाव'** है। **क्षायिक** का मतलब होता है- क्षय से जो आत्मा में भाव उत्पन्न हो। **कर्मों के क्षय से जो आत्मा में भाव उत्पन्न हो उसको कहेंगे- 'क्षायिक-भाव'।** क्षायिक शब्द किससे बना? क्षय से बना। क्षय एक प्रक्रिया है। जैसे उपशम एक प्रक्रिया है, उसी तरह से क्षय भी एक प्रक्रिया है। उपशम होने के बाद में जो भाव बना उसका नाम

औपशमिक, **इसी तरह से क्षय होने के बाद, क्षय मतलब नष्ट होने के बाद जो भाव उत्पन्न होगा उसका नाम है- क्षायिक।** क्षय होने का मतलब होता है कि कर्म का आत्मा में से सत्यानाश हो जाना। शब्द सुना है आपने सत्यानाश? यह शायद आप लोग एक अपशब्द के रूप में बोलते होंगे। किसी के ऊपर जब क्रोधित हो जाते होंगे तो कहते हो "तेरा सत्यानाश हो जाए"। वस्तुतः मुझे ऐसा लगता है शास्त्रों के अनुसार, शब्दावली को देखते हुए कि यह 'सत्यानाश' शब्द नहीं है, यह शब्द है- 'सत्तानाश' हो जाए। यह बोलने में आने लगा 'सत्यानाश हो जाए। शब्द शुरू हुआ होगा सत्तानाश से क्योंकि किसी की सत्ता का नाश करने का नाम ही होता है- सत्तानाश। सत्ता मतलब तेरा कोई अस्तित्व ही न बचे, existence तेरा बिल्कुल ही नष्ट हो जाए। इसको बोलते हैं- सत्तानाश।

शब्दावली के अनुसार सत्यानाश नहीं सत्तानाश शब्द होना चाहिए

सत्तानाश को बोलते-बोलते, सत्ता तो बोलने में थोड़ा सा जोर लगता है, तो सत्यानाश तक आ गए। जबकि सत्य का कभी भी नाश नहीं होता तो यह सत्तानाश है। सत्यानाश बोलोगे तो सत्या तो कोई शब्द नहीं होता और सत्य के साथ में अनाश शब्द आ जाएगा तो सत्य का नाश नहीं होना, ऐसा हो जाएगा। आप जब कुछ कह रहे हो, किसी के लिए बद्दुआ दे रहे हो तो वह आपकी बद्दुआ तभी fit बैठेगी जब आप सत्यानाश न बोल कर के सत्तानाश बोले। यह सत्तानाश शब्द कहाँ से आया? यह अपने कर्म की सत्ता का नाश करने से सत्तानाश शब्द बना; जो क्षायिक-भाव है। इसमें हम क्या कर देते हैं? कर्म की सत्ता का ही नाश हो जाता है और कहीं किसी का सत्तानाश नहीं होता है। कोई भी आदमी किसी भी आदमी की सत्ता का नाश नहीं कर सकता है।

सत् अर्थात् अस्तित्व



सत्ता मतलब सत्-स्वभाव जो उसका सत् है, अस्तित्व है, वह तो बना ही रहता है। सत् का कभी विनाश तो होता नहीं लेकिन फिर भी हम क्रोध में ऐसी उसके लिए अपशब्दावली का प्रयोग कर लेते हैं कि जो नहीं होता वह भी हम उसके लिए सोच लेते हैं जब किसी के प्रति ज्यादा विद्वेष भाव में आ जाएँ। इसलिए इस शब्द को इसके साथ जोड़ना। आपको कर्म का क्या करना है? सत्तानाश कर्म का करना है, किसी दूसरे का नहीं करना है। **अपने कर्म की अगर सत्ता का नाश अपनी आत्मा से हो गया तो उससे जो आत्मा में भाव उत्पन्न होगा, उसका नाम कहलाएगा- 'क्षायिक-भाव'।** थोड़ा समझने के लिए प्रयास करेंगे तो आपको आसानी से सब चीजें समझ में आती जाएँगी, कठिन कुछ नहीं होता। अब तो बहुत सरल विषय आने वाला है और उसमें भी बस ये पाँच भावों के बाद तो बहुत सरल विषय होने वाला है, जो आप कहोगे कि यह तो हमें पता ही था महाराज! आप लोग ऐसा कहोगे। थोड़ा-सा ये पाँच भावों का दिग्दर्शन अच्छे ढंग से समझना जरूरी है।

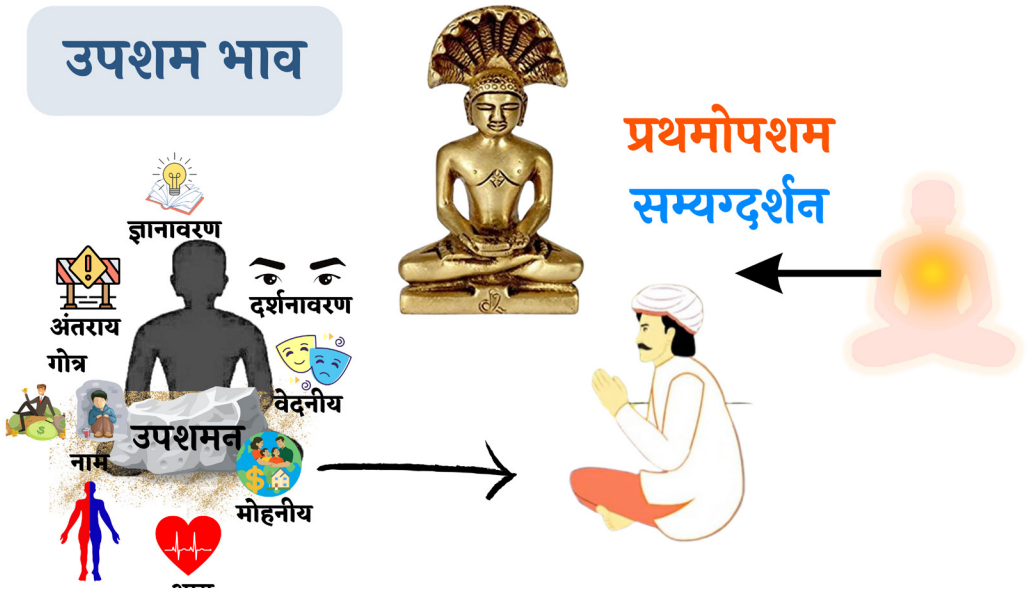
आचार्यों के अन्दर कुछ अलग सन्देश देने का भाव है

अब हम देखे कि यहाँ पर आचार्य महाराज ने विभक्ति को तोड़ दिया। विभक्ति तोड़ना का अर्थ है कि यहाँ पर उन्होंने एकदम से द्वितीया विभक्ति का प्रयोग कर दिया। **'औपशमिक क्षायिकौ'** समझ में आ रहा है? जबकि चाहते तो पाँचो भाव एक साथ लिख सकते थे। इसका मतलब है कि उनके मन में कुछ अलग सन्देश देने का भाव है। इसलिए उन्होंने दो भावों को एक साथ जोड़ा। कौन-कौन से दो भाव? **"औपशमिक और क्षायिकौ"**, क्षायिक-भाव, इन दोनों को जोड़ा। जोड़ने से शब्द क्या बन गया? एक पद बन गया। द्वितीया विभक्ति का एक पद बन गया। औपशमिकौ, औपशमिक और क्षायिक ये दो चीजें मिलाई तो एक पद समास बन गया जिसका नाम हुआ **"औपशमिकक्षायिकौ"** और फिर उसी के अनुसार **भावौ।** क्यों ऐसा किया गया? ऐसा करने का प्रयोजन यह है कि यह जो औपशमिक-भाव हैं, क्षायिक-भाव हैं, वस्तुत: भव्य जीव के लिए मोक्ष मार्ग में इनका एक अपना अलग ही स्थान है।

सबसे पहले औपशमिक सम्यग्दर्शन ही होगा

आगे के भाव Common होंगे, सब में मिलेंगे और जो विशिष्ट भाव होते हैं तो वे केवल भव्य जीव में मिलेंगे और उन भव्य जीवों में जो मोक्ष मार्ग पर चल रहे हैं। मोक्षमार्ग में उपयोगी सबसे पहले जो भाव आते हैं वह **"औपशमिक-भाव"** ही होते हैं। किसी के लिए मोक्ष मार्ग जब भी कभी बनेगा तो सबसे पहले उसे औपशमिक सम्यग्दर्शन ही होगा। **मोक्षमार्ग की शुरुआत कहाँ से होगी? औपशमिक सम्यग्दर्शन से।** किससे बना औपशमिक सम्यग्दर्शन? उपशम भाव से। **कर्मों के उपशमन से, मिथ्यात्व आदि के उपशमन से, जो उसके अन्दर सम्यग्दर्शन प्रकट होगा वह कहलाएगा- प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन।** इसका दूसरा नाम क्या है? प्रथमोपशम। **पहली बार अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ने अनन्त काल में जो कभी भी प्राप्त नहीं किया, वह जब संसार में प्रथम बार कोई भी मोक्ष मार्ग के योग्य भाव करता है, तो**

उस भाव का नाम है- औपशमिक सम्यग्दर्शन। इसी को बोलते हैं- प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन। सबसे पहले मोक्षमार्ग में यही भाव आएगा इसलिए इस भाव को सबसे पहले लिखा है जो मोक्षमार्ग के लिए अत्यन्त उपयोगी है। मोक्षमार्ग जब आगे बढ़ेगा तो उपशम की तरह ही क्षायिक-भाव भी उसके लिए काम के होंगे।



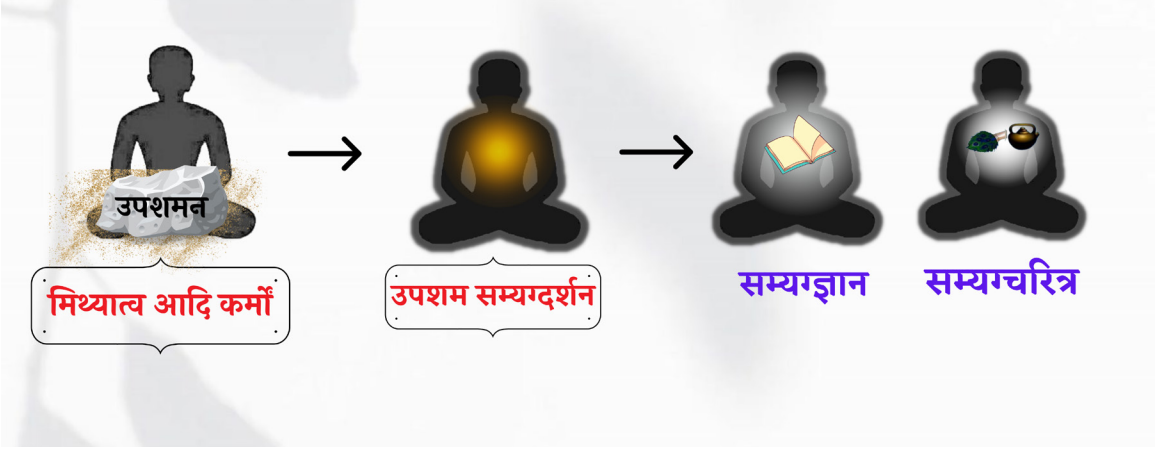
औपशमिक और क्षायिक इन दो भावों का विशेष महत्व है



अब आगे मोक्षमार्ग में कर्मों का क्षय करना होगा तो कर्मों के क्षय से उसका मोक्ष मार्ग बनेगा, मोक्ष की दशा मिलेगी तो कर्मों के क्षय से मिलेगी। अतः **इन्हीं दो भावों का विशेष महत्व है- औपशमिक और क्षायिक।** प्रक्रिया पहले उपशम से शुरू करनी पड़ेगी। किसी को भी आप एकदम से मार नहीं सकते, पहले उसको मूर्छित बना दो। क्या कर दो? मूर्छित कर दो। उसको एक इतनी जोर का चाँटा लगे कि वह गिर पड़े तब तो उस पर आप काबू पा लोगे। उसके बाद उसकी मृत्यु भी सम्भव है, उसके बिना उसकी मृत्यु सम्भव नहीं है, तो कर्मों के साथ भी ऐसा ही करना होता है। पहले कर्मों का उपशमन करना मतलब उनको एकदम से गिरा देना, दबा देना। वे कर्म पड़े तो रहेंगे अपनी आत्मा में ही, जाएँगे कहीं नहीं लेकिन पहले जिस तरीके से हमारे लिए भाव पैदा करते थे, वे भाव पैदा नहीं करेंगे। फिर बाद में कुछ प्रक्रिया अपनाई जाएगी, फिर उनकी सत्ता का भी नाश किया जाएगा। अभी उपशम में उनकी सत्ता तो पड़ी ही रहती है, उपशम में सत्तानाश नहीं हुआ। सत्तानाश किसमें होगा? क्षायिक में होगा। **अगर क्षायिक भाव आ गया और एक बार उसकी सत्ता का नाश हो गया तो दुबारा वह कर्म आत्मा में उत्पन्न हो ही नहीं सकता। इसे बोलते हैं- अत्यन्ताभाव; अत्यन्त अभाव हो**

जाना। आत्मा में कर्मों का अत्यन्त अभाव का नाम ही क्षय कहलाता है।

आत्मा में कर्मों का अत्यन्त अभाव हो जाना ही क्षय कहलाता है



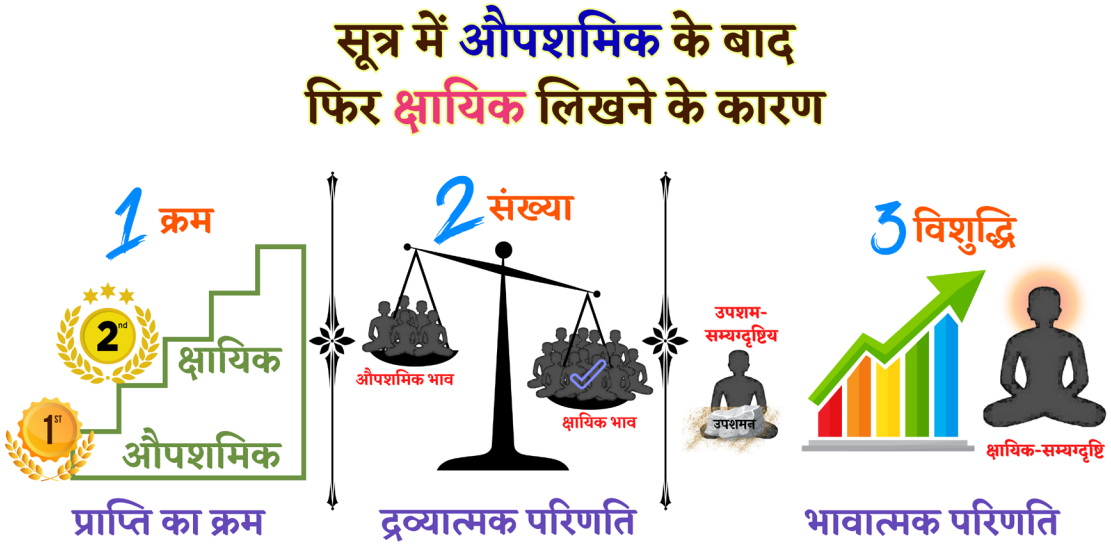
ऐसे ये जो दो भाव हैं, यही भाव मोक्ष मार्ग में विशिष्ट हैं। सबसे पहले मिथ्यात्व आदि कर्मों का उपशमन किया जाता है, तो सम्यग्दर्शन होगा। फिर उसके बाद में सम्यग्ज्ञान हो जाएगा, फिर चारित्र होगा और फिर उसके बाद में जब हम कर्मों का क्षय करेंगे तो इन्हीं सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र के बल पर फिर कर्मों का क्षय प्रारम्भ करेंगे।

इस तरह से **ये क्षायिक-भाव और औपशमिक-भाव ही भव्य जीवों के द्वारा सम्पादित किए जाते हैं, अभव्य जीव इनको नहीं कर सकते।** संसार अवस्था में ये दो भाव विशिष्ट हैं और जो विशिष्ट हैं या सबके लिए आदरणीय हैं इसलिए इन भावों को पहले लिखा गया। उनको पहले नहीं लिखा गया जो common हैं, सब जगह व्याप्त हैं, सब जीवों में हैं। पहले क्या लिखा? जो विशिष्ट भाव हैं। ये सब में नहीं होंगे। ये होंगे उन्हीं भव्य जीवों में जो मोक्ष पथ के निकट हैं। निकट भविष्य में जिनका मोक्ष निश्चित है, उनमें ही इस तरह के भाव घटित होंगे। अतः ध्यान रहेगा औपशमिक-भाव किसे कहेंगे? **कर्मों के उपशमन से होने वाले भाव- औपशमिक भाव।** कौन से कर्मों के? वह detail बाद में आएगी। क्षायिक-भाव कौन से होंगे? **कर्मों के क्षय से होने वाले भाव- क्षायिक भाव** होंगे।

क्षायिक भाव कभी भी direct नहीं हो सकता

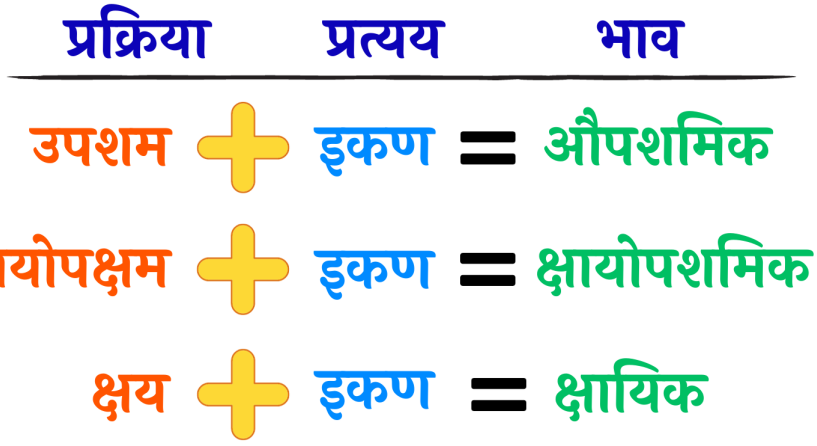
सबसे पहले आत्मा में अनादि काल से कौन-सा भाव आत्मा में उत्पन्न होगा, जो मोक्ष मार्ग के लिए उपयोगी हो? औपशमिक-भाव होगा। कभी भी क्षायिक-भाव direct नहीं होता। पहली बार किसी को कभी भव्य जीव को क्षायिक-भाव की direct उत्पत्ति किसी भी तरह से नहीं हो सकती। सबसे पहले उसके लिए औपशमिक-भाव और वह भी सम्यग्दर्शन सम्बन्धी औपशमिक-भाव ही चाहिए, जिसको बोलते हैं- प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन।

तीन कारणों से सबसे पहले औपशमिक और फिर क्षायिक लिखा गया है



ये दोनों भाव अगर हम देखे तो इनमें भी औपशमिक के बाद में क्षायिक इसलिए लिखा कि पहले तो औपशमिक ही होगा, बाद में क्षायिक होगा। एक तो यह भी भाव है। दूसरा यह भी एक कारण है कि औपशमिक-भाव की अपेक्षा से क्षायिक-भाव वाले जीवों की संख्या अधिक होती है। जो औपशमिक-भाव धारण करने वाले मान लो औपशमिक-सम्यग्दृष्टि है, उपशम-सम्यग्दृष्टि है, तो उन उपशम-सम्यग्दृष्टियों से क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जो जीव होंगे, उनकी संख्या अधिक होगी। इसलिए उपशम के बाद में क्षायिक-भाव का नम्बर आता है। तीसरा कारण यह भी है कि उपशम-सम्यग्दृष्टियों की विशुद्धि से क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीवों की विशुद्धि भी अनन्त गुणी अधिक होती है। विशुद्धि मतलब भावात्मक परिणति। संख्या हो गई द्रव्यात्मक परिणति। उपशम सम्यग्दृष्टि जीवों की अपेक्षा से क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव बहुत हैं, उनकी संख्या अधिक है। यह संख्या की अपेक्षा से अधिक पना होता है और भावों की अपेक्षा से भी दो जीव बैठे हैं- एक उपशम सम्यग्दृष्टि बैठा है, एक क्षायिक सम्यग्दृष्टि बैठा है, तो उन दोनों के भावों की विशुद्धि में बहुत अन्तर होगा। इसे विशुद्धि का प्रकर्ष बोलते हैं। यह भी होने के कारण से और सबसे पहले उपशम और उसके बाद में क्षायिक होने के कारण से इन तीन कारणों से सबसे पहले औपशमिक और फिर उसके बाद में क्षायिक लिखा गया है। ये सूत्र इसलिए सूत्र कहलाते हैं क्योंकि इनमें बहुत अर्थ गर्भित होते हैं। जो महान आचार्य हुए हैं, उन्होंने इन सब अर्थों का विश्लेषण करके हमको बताया है, उसी के अनुसार हम आपको बता रहे हैं।

मिश्र भाव किसे कहते हैं?



अब देखो! ये दो भाव हो गए- औपशमिक और क्षायिक **भावौ। "मिश्रश्च"** अब क्या कहते हैं? मिश्र-भाव। मिश्र का मतलब इन्हीं दोनों के मिश्रण से जो बनेगा वह मिश्र भाव कहलाएगा। शब्द की अपेक्षा से मिश्र जानना मतलब उपशम और क्षय ये दो शब्द हैं। उनमें क्षय पहले लिख लो, उपशम बाद में लिख लो। **क्षय और उपशम से मिल कर एक भाव बनता है जिसे बोलते हैं- क्षयोपशम। क्षयोपशम तो हो गई एक प्रक्रिया और इस क्षयोपशम की प्रक्रिया से उत्पन्न होने वाला जो भाव होगा, वह बोला जाएगा- क्षायोपशमिक-भाव।** शब्द! एक ही होता है लेकिन उससे जो दूसरा शब्द बनता है, वह उसकी अपनी परिणति को अलग बताता है।

जैसे - काल शब्द है। काल से अगर उसमें अपने इकण-प्रत्यय लगा दिया तो उसमें बन जाएगा कालिक। ऐसे ही सब में ही इकण प्रत्यय लग रहा है। उपशम में इकण-प्रत्यय लगा तो हो गया औपशमिक, क्षयोपशम में लगा तो हो गया क्षायोपशमिक, क्षय में लग गया तो हो गया क्षायिक। इस तरह से यह शब्दों की जो निर्मिति हो रही है, यह भी हमें यह बता रही है कि क्षायोपशमिक तो यह भाव है और क्षयोपशम यह एक प्रक्रिया है। क्षयोपशम से जब यह क्षायोपशमिक-भाव बनेगा तो उस क्षायोपशमिक-भाव में कर्मों का उपशमन भी है और कर्म का क्षय भी है। दोनों एक साथ होंगे।

उदयाभावी क्षय का मतलब



यह क्षय उस तरीके का नहीं जानना जैसे क्षायिक भाव में क्षय है। यह क्षय ऐसा समझना कि जैसे जो कर्म हमारे लिए उदय में आने वाले हैं और उन उदय में आने वाले कर्मों का हम अपनी शक्ति के कारण से इतना उनका अभाव कर देते हैं कि वह उदय में नहीं आ पा रहे हैं तो उसे कहेंगे- उदय का अभाव। इसी को एक साथ मिलाएँगे तो बोलेंगे- **'उदयाभाव'**। इसी को बोलते उदयाभावी क्षय। क्षय का मतलब सिर्फ इतना हो गया उदय का अभाव है। **कुछ समय के लिए जिन कर्मों की शक्तियाँ हमने उदय में आने से रोक दी और साथ साथ उन्हीं कर्मों की शक्तियों को हमने दबा भी दिया, ये दोनों काम जब हमने एक साथ कर दिए तो इसका नाम हो जाता है- क्षयोपशम।**

क्षीणाक्षीण शक्ति- इसी को बोलते हैं क्षयोपशम भाव

ऐसे समझ लो जिसको तुमने चाँटा मारा या जिसको तुमने गिरा दिया वह एकदम न तो मूर्छित हुआ और न ही वह मरा मतलब न तो उसका उपशमन हुआ अभी और न ही उसका क्षय हुआ, नाश हुआ। वह क्या है? गिर भी गया और उठने के लायक भी नहीं है। उपशम में तो क्या हुआ? मूर्छित हो गया। वह गिर गया तो अब उठेगा नहीं, कुछ समय के लिए पड़ा रह जाएगा, अन्तर्मुहूर्त के लिए वह बिल्कुल पड़ा रह जाएगा। अन्तर्मुहूर्त के बाद उसको चेतना आएगी, मैं कहाँ हूँ? किसका चाँटा पड़ा था कि ऐसा हो गया? क्षयोपशम में तो उसको चेतना बनी रहेगी लेकिन वह गिर पड़ेगा। एकदम से उठने की इच्छा करके भी वह उठ नहीं पाएगा। मतलब हमने उसकी कुछ शक्ति तो दबा दी और कुछ शक्ति उसमें है, इसको बोलते हैं- **क्षीणाक्षीण शक्ति।** इसी को बोलते हैं- क्षयोपशम-भाव। कर्मों की कुछ शक्ति का तो दबा देना और कुछ कर्मों की शक्ति को हम उदय में अनुभव भी कर रहे हैं और कुछ कर्मों की शक्ति का उदय का अभाव भी कर रहे हैं, इसी का नाम- क्षयोपशम-भाव कहलाता है। जान लो! ये प्रकरण आगे बढ़ जाएगा तो फिर बताने को भी नहीं मिलेगा। कई लोगों को यह क्षयोपशम-भाव समझ में नहीं आता। थोड़ा और सीखने की कोशिश करो, अब जल्दी तो कुछ नहीं है। अब देखो! ज्ञानावरण आदि कर्मों का क्षयोपशम कहलाता है। हम बोलते है न- ज्ञान का क्षयोपशम।

ज्ञान का क्षयोपशम



अब आप पहले-अध्याय में पढ़ चुके हैं- मतिज्ञान। मतिज्ञान में भी आपने पढ़ा- अवग्रह होता है, ईहा होती है, अवाय होती है, धारणा होती है। ये सब अलग-अलग ज्ञानावरण-कर्म हैं। अवग्रह मतिज्ञानावरण-कर्म अलग है, ईहा नाम का मतिज्ञानावरण-कर्म अलग है, अवाय नाम का मतिज्ञानावरण-कर्म अलग है, धारणा नाम का मतिज्ञानावरण-कर्म अलग है। आपने कोई भी चीज को जाना और जानने के बाद में आपने उसमें अपने इन चारों ज्ञानों अवग्रह का, ईहा का, अवाय का, धारणा का भी उपयोग कर लिया। लेकिन आपके अन्दर जो ज्ञानावरण-कर्म का उदय चल रहा होगा उसके फलस्वरूप आपको उस वस्तु का वैसा ज्ञान नहीं होगा। अब इनमें भी किसी कर्म की तीव्रता हो सकती है, किसी कर्म की मन्दता हो सकती है। है एक ही कर्म- मति-ज्ञानावरण-कर्म, अब इसका क्षयोपशम होगा तो क्या होगा? इसकी कुछ शक्ति तो दब गई और कुछ शक्ति उदय में बनी हुई है। फिर क्या होगा? जैसे मान लो आपने कोई भी, किसी भी वस्तु को देखा और देखने के बाद में वह वस्तु आपके लिए बहुत समय तक याद रह गई। इसका मतलब है कि आपका धारणा-मतिज्ञान का क्षयोपशम बहुत अच्छा था। उससे तो वह वस्तु बहुत देर तक याद रह गई और उसी समय पर आपके अन्दर जो श्रुत ज्ञानावरण-कर्म था, उसका क्षयोपशम अच्छा नहीं था तो आपने वस्तु को जैसा देखा उसको याद तो कर लिया लेकिन उसके बारे में और जो विशेषताओं के साथ जानना था वह आप जान नहीं पाओगे अथवा मति ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम सब में अलग अलग होगा तो क्या होगा?

ज्ञान के अलग-अलग क्षयोपशम की शक्तियाँ

जिस एक पदार्थ को आपने देखा। आपने तो उसे एक वर्ष तक ध्यान में रखा, किसी ने उसे एक दिन बाद ही भुला दिया, किसी को एक महीने बाद भूलने में आ गया। यह सब क्या है? ज्ञान के अलग-अलग क्षयोपशम की शक्तियाँ हैं। किसी कर्म का उदय है और किसी कर्म का क्षयोपशम अधिक है। एक ही ज्ञान में भी हो सकता है कि अवग्रह का क्षयोपशम तो मान लो कम हो और धारणा का क्षयोपशम ज़्यादा हो तो आपके साथ क्या होगा? कोई भी वस्तु जब आप देखोगे तो आपको वह वस्तु देखने में आ जाएगी, अवग्रह तो हो जाएगा लेकिन बार-बार आपके लिए वह ज्ञान इसी रूप में काम करेगा कि आप जब भी कभी किसी वस्तु को पहली बार देखोगे तो पहली बार देखने में आपका अवग्रह का क्षयोपशम कम होने के कारण से स्पष्टीकरण नहीं हो रहा। सामान्य से दिख रहा है कुछ सफेद-सफेद सा हिल रहा है। क्या हिल रहा? सफेद गुब्बारा भी हो सकता है, सफेद ध्वजा भी हो सकती है, सफेद पक्षी भी हो सकता है, सफेद किसी का कपड़ा भी हो सकता है। यह स्पष्टीकरण नहीं होना, यह अवग्रह ज्ञान के क्षयोपशम की कमी है और एक बार हो गया तो आपको वह लम्बे समय तक बना रहा, यह धारणा ज्ञान के क्षयोपशम की अधिकता। हर ज्ञान का क्षयोपशम कम-अधिक होने से ही हमें

उस तरह का ज्ञान होता है। इसी का नाम है- क्षयोपशम। क्षयोपशम को समझने के बाद हम यह जान लेंगे कि सभी जीवों में ज्ञान आदि के जो क्षयोपशम होते हैं वे उनके क्षयोपशम-भाव कहलाते हैं, उन्हीं को क्षायोपशमिक-भाव कहेंगे।



पाँचों भावों के बीच में मिश्र भाव रखा है

अब यह मिश्र कहा। मिश्र का मतलब इसमें उपशम और क्षय दोनों की प्रक्रिया मिश्र है। क्षय का मतलब इतना ही है कि उस कर्म के उदय का अभी कुछ समय के लिए अभाव है। इस तरह से जो ज्ञानावरण के क्षयोपशम हुए ये हम देखेंगे सब जीवों में पाए जाते हैं। इसलिए 5 भावों के बीच में अगर हम देखे तो बीचों-बीच में मिश्र-भाव रखा है। दो भाव इधर अलग हो गए और दो भाव इधर अलग हैं। बीच में कौन सा है? मिश्र-भाव है। मतलब यह मिश्र-भाव भव्यों में भी पाया जाता है और अभव्यों में भी पाया जाता है। ज्ञानादि के क्षयोपशम सभी भव्य-जीवों में भी होंगे और अभव्य-जीवों में भी होंगे। इसलिए ये क्षयोपशम भाव को बीच में रखा। **'मिश्रश्च'** और इसको अकेला रखा किसी के साथ जोड़ा नहीं क्योंकि इसका सम्बन्ध आगे आने वाले भावों के साथ में भी लगेगा।

औदयिक और पारिणामिक भाव

आगे कौन से भाव आ रहे हैं? औदयिक और पारिणामिक। जो औदयिक और पारिणामिक-भावों के साथ में रह रहे हैं उनमें भी मिश्र-भाव मिलेगा और जो औपशमिक, क्षायिक-भावों के साथ रह रहे हैं उनमें भी यह मिश्र-भाव मिलेगा इसलिए इस मिश्र भाव को बीच में रखा हुआ जानना चाहिए। अगर उस क्रम से देखो, केवल अगर सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से देखो तो

औपशमिक सम्यग्दृष्टियों से जैसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि अधिक बताए थे, ऐसे ही क्षायिक सम्यग्दृष्टियों से क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि अधिक होते हैं, असंख्यात गुणे होते हैं। कितने गुणे? असंख्यात गुणे। उस संख्या की अपेक्षा से भी अगर केवल सम्यग्दृष्टियों की अपेक्षा से देखेंगे तो भी यह क्षायिक के बाद में ही इस मिश्र-भाव का नम्बर आता है।



पारिणामिक भाव क्या है

इसके बाद आता है- औदयिक और पारिणामिक भाव। उदय से बना औदयिक- **कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले भाव औदयिक-भाव कहलाते हैं** और **जो आत्मा के परिणामों से ही उत्पन्न होने वाले भाव हैं वे पारिणामिक-भाव कहलाते हैं। पारिणामिक-भाव में कर्म की अपेक्षा नहीं है** इसलिए इसके साथ में definition जो अभी तक जोड़ते चले आये वह इसके साथ में मत जोड़ना। कौन-सी? जैसे-कर्म के उदय से औदयिक भाव होता है, कर्म के उपशम से औपशमिक होता है, कर्म के परिणाम से पारिणामिक होता है ऐसा नहीं कहना। पारिणामिक-भाव का मतलब क्या हो गया? जो **कर्म के उदय, उपशम, क्षयोपशम, किसी की अपेक्षा न रखता हो उसका नाम है- पारिणामिक-भाव। आत्मा का जो अपना परिणाम है, उस परिणाम का नाम ही पारिणामिक-भाव है। जो किसी कर्म के उदय आदि की अपेक्षा से रहित है।**

SCAN TO WATCH

ये दोनों भाव सभी संसारी जीवों में होते हैं

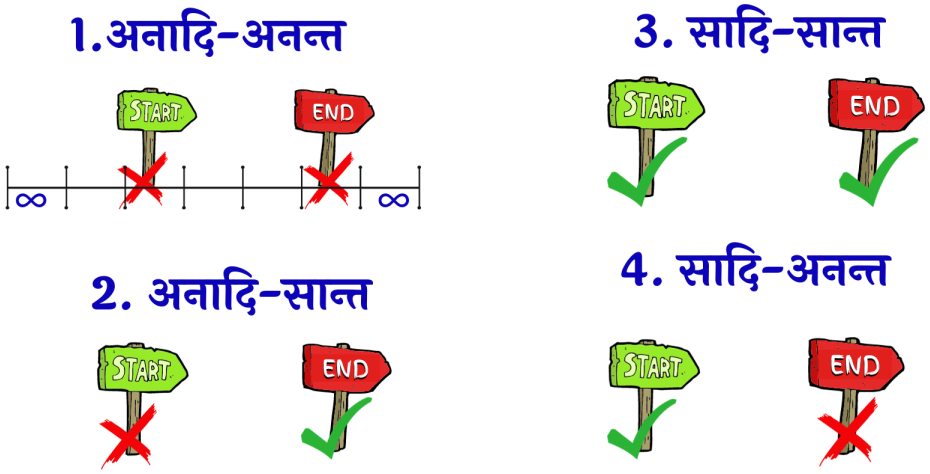
ये औदयिक-भाव और पारिणामिक-भाव सब संसारी जीवों में मिलेंगे। चाहे वह निगोद जीव हो, चाहे वह कोई पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीव हो या दो इन्द्रिय जीव हो, सभी जीवों में औदयिक-भाव और पारिणामिक-भाव तो नियम से मिलेंगे ही और साथ में मिश्र भाव भी मिल जाएँगे। क्योंकि ज्ञानादि का क्षयोपशम किसी न किसी में कुछ न कुछ तो अवश्य होता ही है, तो इस तरह से ये तीन भाव सभी संसारी जीवों में रहते हैं लेकिन इनकी जोड़ी अलग है। किस-किसकी? औदयिक और पारिणामिक भाव की। यह इसलिए है कि औदयिक और

पारिणामिक भाव वाले जीव जो हैं, ये हमेशा अनन्त संख्या में मिलेंगे। ये असंख्यात गुणे नहीं हैं, ये अनन्त संख्या वाले हैं। मतलब जितने भी संसार में भव्य-अभव्य जीव हैं, सबके अन्दर औदयिक-भाव भी होता है और पारिणामिक-भाव भी होता है।

गति औदयिक भाव है

अतः औदयिक-भाव कैसा? कोई न कोई गति का उदय होगा। 4 गतियों में ही तो जीव रहेगा तो गति औदयिक-भाव है। मतलब मनुष्य-गति के उदय में मनुष्य बनता है, तिर्यंच गति के उदय में तिर्यंच बनता है, इत्यादि। कोई भी जीव जिस गति में होगा, जिस जाति में होगा, वह उसका औदयिक-भाव कहलाएगा।

चैतन्य भाव परिणामिक भाव है



वह औदयिक-भाव उसके साथ हमेशा रहना ही है। पारिणामिक-भाव- जो जीव का अपना चैतन्य भाव है, तो जीव अपने चैतन्य भाव को तो कभी छोड़ता नहीं तो वहीं चैतन्य भाव उसका पारिणामिक-भाव है। जो चैतन्य आत्मा है वह उसका हो गया- पारिणामिक-भाव। इस तरह से ये 5 भाव जीव के क्या हैं? स्व-तत्त्व हैं। मतलब ये जीव के स्व-भाव हैं। अब इनमें से कुछ तो स्वभाव ऐसे हैं जो अपना वास्तविक स्वभाव हैं या वास्तविक स्वभाव बन जाएँगे लेकिन कुछ ऐसे हैं जो हमारे स्वभाव नहीं हैं लेकिन हमने उन्हें अपना स्वभाव बना लिया है। जैसे किसी के अन्दर कोई बुरी आदत लगातार पड़ी रहती है, तो वह उसका स्वभाव बन जाती है। ऐसे कौन-कौन से भाव हैं? इसकी भी थोड़ी सी छाँटा-बीनी की जाए। शुरू से ही चले! मान लो औपशमिक-भाव है, औपशमिक-भाव हमारा स्व-भाव है। कैसा है? स्व-भाव तो सभी हो गए लेकिन अब ऐसे भावों की छाँटाबीनी करना है कि-

1. जो स्वभाव हमेशा रहे।

2. जो स्वभाव बीच में आया बीच में चला गया।
3. जो स्वभाव हमेशा से आया था और हमेशा रहेगा।

इसको किस Language में आप समझेंगे तो इसके लिए वही भाव है।

1. अनादि-अनन्त

अनादि-अनन्त का मतलब जो Beginningless time से था और endless रहेगा। उसको क्या बोलेंगे? अनादि-अनन्त। जिसका न शुरुआत है न जिसका कोई अन्त है।

2.अनादि-सान्त

कुछ भाव ऐसे भी होंगे जो अनादि-सान्त हो जाएँगे। अनादि काल से तो आ रहे हैं लेकिन हम उन्हें शान्त कर सकते हैं, उनका अन्त कर सकते हैं, वह कहलाएँगे- अनादि-सान्त।

3.सादि-सान्त

कुछ भाव ऐसे होंगे जो अनादि से तो नहीं थे लेकिन हमने उन्हें उत्पन्न किया तो वह कहलाए-सादि मतलब उनकी हमने शुरुआत की With beginning और with end, सादि-सान्त बोलेंगे। शुरुआत भी की और कुछ समय रहे फिर उनका अभाव हो गया तो वह कहलाए-सादि-सान्त।

4.सादि-अनन्त

कुछ भाव ऐसे होंगे जिनकी हमने beginning अगर एक बार कर ली तो फिर वह endless हो जाते हैं, कभी उनका अन्त नहीं होगा, उनको बोलेंगे- सादि-अनन्त। अब घटाओ इसको।

औपशमिक भाव सादि सान्त है

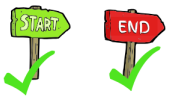
औपशमिक-भाव इन चार चीजों में से कौन-सा है? अनादि-अनन्त है कि अनादि-सान्त है कि सादि-सान्त है कि सादि-अनन्त है? सादि-सान्त। क्योंकि अनादि काल से तो नहीं था, उपशम सम्यग्दर्शन हमने उत्पन्न किया, सादि हो गया और उत्पन्न होने के बाद वह एक अन्तर्मुहूर्त तक रहता है, उसके बाद फिर छूट जाता है। इसलिए एक अन्तर्मुहूर्त के बाद अन्त हो गया। उसका time इतना ही है। इस औपशमिक-भाव का time कितना होता है? अन्तर्मुहूर्त ही होता है। अतः यह कैसा हो गया? third quality वाला **सादि-सान्त** हो गया।

क्षायिक भाव सादि अनन्त होता है

क्षायिक-भाव बताओ कैसा है? क्या यह क्षायिक भाव अनादि से आ रहा है? क्या किसी कर्म का क्षय कर के बैठे हो? हमने अभी किसी कर्म का कोई क्षय नहीं किया। जब भी करेंगे तब क्या होगा? वह सादि होगा और एक बार अगर उस कर्म का क्षय हो गया तो वह अनन्त काल तक बना रहेगा, उसको क्या बोलेंगे? **सादि-अनन्त with beginning-no end।**

क्षयोपशम भाव भी सादि सान्त है

क्षयोपशम-भाव- ये कैसे हैं? ये क्षयोपशम भी बनते-बिगड़ते रहते हैं। अगर देखा जाये तो किसी कर्म का क्षयोपशम आज नहीं है, कल हो गया, परसों फिर बिगड़ गया। ऐसा भी सम्भव है। एक गति में है, दूसरी गति में नहीं है, तो यह भी सादि-सान्त में ही जाएगा। क्षयोपशम-भाव

पारिणामिक भाव	अनादि-अनन्त Beginningless-endless	
औपशमिक भाव क्षयोपशमिक भाव	सादि-सान्त with Beginning - with end	
क्षायिक भाव	सादि-अनन्त with Beginning - without end	

भी कैसा हो गया? **सादि-सान्त है।**

औदयिक भाव भी सादि सान्त हुआ

अब! औदयिक-भाव। औदयिक-भाव भी कर्म के उदय से हो रहा है। जब तक कर्म का उदय रहेगा तब तक रहेगा, बाद में वह भी नष्ट हो जाएगा। यह भी कैसा हुआ? **सादि-सान्त** हुआ।

पारिणामिक भाव का मतलब अनादि अनन्त भाव

फिर देखो! पारिणामिक-भाव। पारिणामिक-भाव का मतलब? यह कभी भी हमारी आत्मा में कर्म के कारण से नहीं हुआ इसलिए कर्म मिट भी जाए तो भी यह रहेगा और कर्म रहेंगे तो भी यह रहेगा। यह क्या कहलाया? यह **अनादि-अनन्त** भाव कहलाया। यह पारिणामिक-भाव जो अनादि काल से है, अनन्त काल तक रहेगा। जो भी थोड़ा-सा exception होगा वह आगे बता दिया जाएगा; एक सामान्य से इतना समझना। जो लोग पढ़े-लिखे होते हैं उनके दिमाग में जल्दी प्रश्न भी आने लग जाते हैं। अपवाद जो होते हैं, वह बाद में बताये जाते है, पहले एक सामान्य नियम होता है। अब इसमें आप देखे कि जो भाव अनादि-अनन्त हैं, वह तो हमारे स्व-भाव हैं, स्व-भाव में भी हमारा स्वभाव है और जो भाव हमारे लिए अनादि-अनन्त नहीं है लेकिन फिर भी वह हमारे अन्दर अनादि काल से हैं, ऐसे भाव हमारे लिए स्व-भाव होकर के भी वह हमारे

SCAN TO WATCH

स्वभाव नहीं हैं। जैसे कि औदयिक-भाव। औपशमिक आदि भाव भी हैं लेकिन वह हमारे लिए मोक्षमार्ग के कारण होने से कुछ तो अच्छे हैं। उनके कारण से मोक्षमार्ग की शुरुआत हो जाती है। लेकिन औदयिक-भाव ऐसे भाव हैं जो हमारे लिए बहुत अच्छे नहीं होते या हमारे लिए हमेशा मिलते रहते हैं, इनमें कोई बहुत बड़ी बात नहीं होती। लेकिन हम उनके उदय में अपने आपको वैसा ही मान लेते हैं। जैसे कि कोई भी जब तक इन भावों का वर्णन न सुने तब तक वह अपने आपको मनुष्य के अलावा कुछ और मान ही नहीं सकता। मनुष्य गति- यह औदयिक-भाव है। इसलिए हमें हमेशा क्या feel आती है? हम मनुष्य हैं। हमें कभी feeling आती है कि हम चैतन्य आत्मा हैं? अनादि पारिणामिक-भाव तो हम भूल ही गए तो हमारी आदत क्या बन गई? यही बन गई। मनुष्यों में भी जो पुरुष हैं, उन्हें पुरुष जैसी feeling आएगी, जो स्त्री हैं उन्हें स्त्री जैसी feeling आएगी। यह भी औदयिक-भाव है। स्त्रीवेद के उदय से स्त्रीवेद के भाव आएँगे, पुरुषवेद के उदय से पुरुषवेद के भाव आएँगे तो ये सब औदयिक-भाव हैं। ये हमारे लिए विभाव होते हुए भी हमारे स्वभाव जैसे बन चुके होते हैं। बाकी के जो भाव हैं, वे सब भाव हमारे लिए कथंचित समझ में आते हैं, कथंचित नहीं भी आते हैं।



परिणामिक भाव अनादि काल से हैं, अनन्त काल तक रहेंगे

इसलिए वास्तविक जो हमारा स्वभाव है, वह तो पारिणामिक-भाव है। जो कैसा है? अनादि काल से है और आगे भी अनन्तकाल तक रहेगा। क्योंकि यह किसी कर्म पर आधारित नहीं है। इस तरह से इस सूत्र के व्याख्यान को समझने के बाद में आगे के सूत्रों में अब आप इन भावों की और detail जानेंगे। सबसे पहले इन भावों के जो विभाजन है, वह बताये जा रहे हैं कि कौन से भाव कितने प्रकार के होते हैं? आगे का सूत्र-



पाँचों प्रकार के भावों के भेदों की संख्या

द्वि-नवाष्टा-दशैक-विंशति-त्रि-भेदा यथा-क्रमम् ॥2.2॥

द्वि-नव+अष्टादश+एकविंशति-त्रि-भेदा यथा-क्रमम्

दो, नव, अठदश, बीस इक, तथा तीन परकार ।
क्रम से मिल त्रेपन बनें, निज में नेक निहार ॥2.2॥

अब इनको क्रम-क्रम से लगाना। जिस order में ऊपर लिखा हुआ है, उसी order में इनके ये जो भेद हैं, उनको लगाना है। **द्वि** मतलब 2 प्रकार के। कौन से भाव?

- **औपशमिक-भाव 2 प्रकार के होते हैं।**
- **फिर क्षायिक-भाव** कितने प्रकार के होते हैं? **9 प्रकार के होते हैं।**
- फिर मिश्र-भाव मतलब **क्षायोपशमिक-भाव।** कितने प्रकार के होते हैं? **अष्टादश** मतलब **18 प्रकार के होते हैं।**
- फिर **औदयिक-भाव- एकविंशति मतलब 21 प्रकार के होते हैं।**
- और उसके बाद में **पारिणामिक-भाव।** ये 3 प्रकार के होते हैं।

अब इनके हमने भेद समझ लिए। क्रम-क्रम से इनको लगाना और जिसके जितने भेद हैं, उतने भेदों को ही ध्यान में रखना। कोई भी भेद को किसी दूसरे भाव के साथ मत जोड़ना। जिस भाव का जितना, जिस क्रम में, जो भेद बताया जा रहा है, उतना ही भेद जानना। हम आपसे बीच में से पूछ तो ले लेकिन आप उसको बीच में से भी उसी order के साथ जोड़कर बताना। क्षायिक-भाव कितने प्रकार का? 9 प्रकार का, इतना तो ध्यान में रख कर चलो, याद ही कर लो। homework आपके लिए कोई अलग से देना तो मुश्किल है। आपके पास time भी नहीं है। अच्छा teacher तो वही होता है, जो class में ही सब रटा दे। हमने सुना तो ऐसे ही है। क्षायिक-भाव कितने प्रकार का? 9 प्रकार का। 21 प्रकार के कौन-से भाव होते हैं? औदयिक-भाव। औपशमिक-भाव कितने प्रकार के? 2 प्रकार के। 3 प्रकार के भाव कौन से होते हैं? पारिणामिक-भाव। क्षायोपशमिक-भाव कितने प्रकार के? 18 प्रकार के। समझ आ गया? इस तरह से हम कुछ भी पूछे आपको आ जाना चाहिए, बिल्कुल perfect बनना है। ये 5 भावों के नाम याद करना और इन्हीं 5 भावों के साथ में इन 5 भावों की संख्याओं का भी यह ज्ञान करना तब आपके लिए आगे की चीजें भी समझ में आने लगेगी।

एक सूत्र और ले लेते है-

सम्यक्त्व-चारित्रे ॥2.3॥

सम्यक् + त्व - चारित्रे

औपशिमक के भेद दो, सम्यक् चारित धार ।
भव सागर में भ्रमण से, नाव लगे उस पार ॥2.3॥

अब इसमें क्रम से वर्णन चल रहा है। सबसे पहले 2 प्रकार के औपशमिक-भाव हैं, उनका कथन इस सूत्र में किया गया। औपशमिक-भाव दो चीजों से ही सम्बन्ध रखते हैं- सम्यक्त्व से और चारित्र से। सम्यक्त्व के साथ होंगे तो उसको बोलेंगे- औपशमिक-सम्यक्त्व और चारित्र का सम्बन्धी कोई भाव होगा तो वह कहलाएगा - औपशमिक-चारित्र।

औपशमिक भाव सम्यक्त्व और चारित्र से ही सम्बन्ध रखते हैं

अब! इससे यह समाधान निकलता है कि ज्ञान का कोई भी औपशमिक-भाव नहीं होता। सूत्र के अनुसार चलना है। मतलब ज्ञान में कभी भी औपशमिक-भाव पैदा नहीं होता। ज्ञान में तो क्षायोपशमिक होगा या क्षायिक होगा, जो आगे बताया जाने वाला है। क्योंकि आगे जो आपको ज्ञान की बात बताई जाएगी तो उसमें क्षायोपशमिक-भावों में उसका वर्णन आएगा या क्षायिक-भाव में आएगा। अतः मतलब यह समझ कर चलो कि ज्ञान में उपशम नहीं होता। उपशम किसमें आएगा? औपशमिक-भाव किसका होगा? सम्यक्त्व सम्बन्धी या चारित्र सम्बन्धी। सम्यक्त्व का उपशमन नहीं है, उपशमन किसका है? उपशमन तो सम्यक्त्व का जो विरोधी कर्म है, उसका उपशमन होता है और उससे सम्यक्त्व भाव की उत्पत्ति होती है, यह जानना। ऐसे ही चारित्र का उपशमन नहीं है, औपशमिक चारित्र का मतलब यह नहीं समझना कि चारित्र को हमने दबा दिया। चारित्र का जो विरोधी कर्म है, जिसके कारण से चारित्र उत्पन्न नहीं हो रहा था, उस कर्म को दबा देने के बाद में जो भाव उत्पन्न होगा, उसको बोलेंगे- औपशमिक-चारित्र।

सम्यक्त्व और चारित्र हमारा आत्मा का भाव है

क्योंकि सम्यक्त्व और चारित्र यह हमारा आत्मा का भाव है, आत्मा का परिणाम है लेकिन कर्म के कारण से इसकी अनुभूति हमें नहीं होती। जब हम कर्म को दबा देंगे तब इसका हम अनुभव करेंगे। तब उस भाव को हम बोलेंगे- औपशमिक-सम्यक्त्व। इसको बोलते हैं- विरोधी, प्रतिपक्षी। जैसे अभी उदाहरण दे कर बता रहे थे, दुश्मन सामने वाला, उसी को तो प्रतिपक्षी बोलते हैं, उसी को शत्रु बोलते हैं। आपको यह ध्यान में रखना है कि सम्यक्त्व का विरोधी

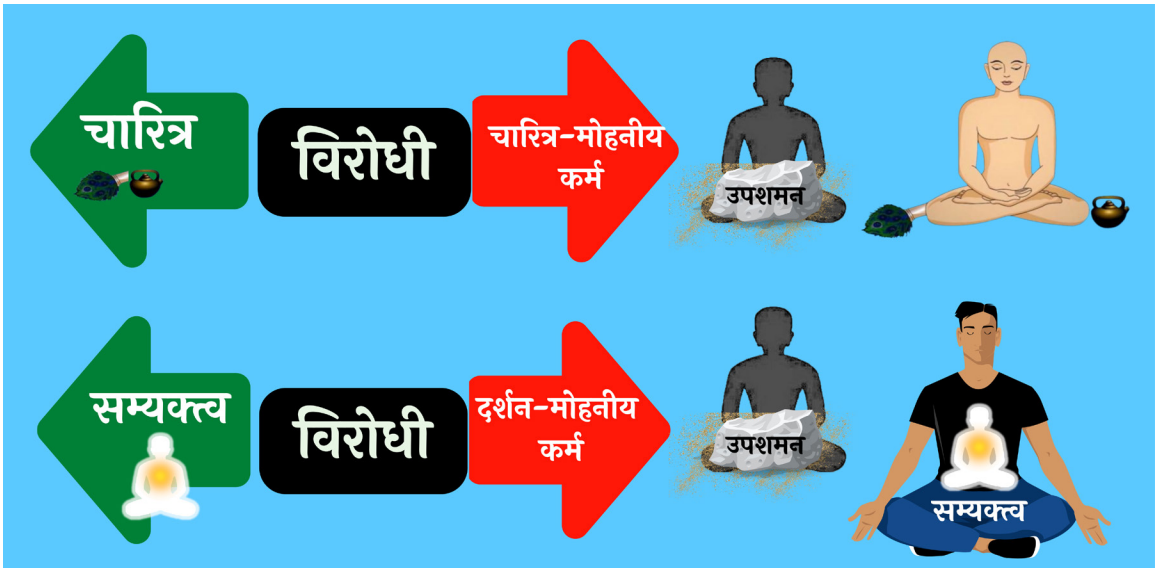
कौन? मिथ्यात्व या दर्शन-मोहनीय कर्म। सम्यक्त्व का विरोधी कौन है? दर्शन-मोहनीय कर्म। चारित्र का विरोधी कौन है? कषाय भाव। जब हमने औपशमिक-सम्यक्त्व प्राप्त किया तो हमने किसका उपशमन किया? हमने दर्शनमोहनीय कर्म का उपशमन किया। जब हम औपशमिक-चारित्र प्राप्त करेंगे तो किसका उपशमन करेंगे? कषायों के उपशमन से चारित्र की प्राप्ति होगी। अब इसकी थोड़ी सी detail और जानते हैं। मोहनीय कर्म का ही सबसे पहले हम किसी भी तरह से उपचार करते हैं। आठ कर्मों में सबसे पहले किसके ऊपर वार करना होता है? मोहनीय कर्म के ऊपर।

मोहनीय कर्म दो प्रकार का होता है-

SCAN TO WATCH

1. **दर्शनमोहनीय -** जो हमारे सम्यग्दर्शन को मोहित करे, न होने दे, उसका नाम दर्शनमोहनीय है।
2. **चारित्रमोहनीय -** जो हमारे अन्दर चारित्र के प्रति एक मूर्छा पैदा कर दे मतलब हमारे अन्दर के चारित्र को ही हम से मोहित कर दे, उसका नाम चारित्र-मोहनीय है।

उपशम सम्बन्धी दो भाव होते हैं



एक तरह से आप यह समझना कि दर्शन-मोहनीय कर्म के उपशमन से औपशमिक-सम्यग्दर्शन हो जाता है और चारित्र मोहनीय कर्मों के उपशमन से औपशमिक-चारित्र हो जाता है। इसलिए उपशम सम्बन्धी 2 ही भाव होते हैं और ये दोनों भाव मोहनीय-कर्म में ही घटित होते हैं और किसी कर्म में उपशम-भाव घटित नहीं होगा। इसलिए यहाँ पर केवल 2

ही प्रकार का औपशमिक-भाव लिखा हुआ है। इतना तो सबको पता है कि कर्म कितने हैं? 8 प्रकार। मोहनीय के अलावा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय तो इसका मतलब किसी कर्म में उपशमन का कोई भाव नहीं होता, किसी कर्म में औपशमिक-भाव नहीं बनेगा। जैसे ज्ञान का औपशमिक-भाव नहीं है, ऐसे ही दर्शनावरणीय कर्म का भी उपशमन नहीं, अन्तराय का भी उपशमन नहीं। फिर आगे जो आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय इन में भी किसी कर्म का कोई उपशमन नहीं होता। यह पक्का जान कर रखना। उपशमन केवल किसका होगा? मोहनीय-कर्म का और मोहनीय के दोनों भेदों का। मोहनीय के उस परिवार में उसके वंश वृक्ष की दो ही प्रकार की उसकी शाखाएँ हैं। एक शाखा गई दर्शन-मोहनीय के साथ और एक गई चारित्र-मोहनीय के साथ। उनके भेद-प्रभेद आगे बताये जाएँगे। जब दर्शन-मोहनीय के उपशमन से सम्यग्दर्शन हो गया और चारित्र-मोहनीय के उपशमन से सम्यग्चारित्र होगा। तभी ये औपशमिक-भाव कहलाएँगे अन्यथा और किसी कर्म के उपशमन न होते हैं और न उस सम्बन्धी औपशमिक-भाव होते हैं।

बोलो महावीर भगवान की जय!

सारांश

1. हमने संसार में अनन्त जीव की आत्मा में उत्पन्न होने वाले पाँच प्रकार के भावों को जाना
2. **औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ** च
3. औपशमिक, क्षायिक, मिश्र (क्षयोपशम), औदयिक और पारिणामिक जीव के स्व-तत्त्वम् या स्व-भाव हैं
4. आगे हम जानेंगे कि ये स्व-भाव होते हुए भी स्वभाव नहीं हैं
5. आत्मा और आत्मा में कर्मों के ही सब भावों का बनना-बिगड़ना चलता है, इसी का नाम संसार है
6. इन दोनों के पृथक होने का नाम मोक्ष है
7. 'औपशमिक' शब्द का अर्थ है उपशम मतलब शमित हो जाना, दब जाना
8. यहाँ आत्मा में कर्मों की शक्ति को किसी भी पुरुषार्थ से, विशुद्धि के भाव से दबा देने को उपशम कहा है और उससे उत्पन्न आत्मा के भाव को औपशमिक-भाव कहा है
9. आत्मा में कर्मों के क्षय या सत्तानाश से जो आत्मा में जो भाव उत्पन्न होते हैं उन्हें 'क्षायिक-भाव' कहते हैं

10. सत् अर्थात् अस्तित्व, सत्ता
11. **कर्म की सत्ता का नाश** आत्मा से होने पर आत्मा में जो भाव उत्पन्न होगा, उसका नाम कहलाएगा- 'क्षायिक-भाव'
12. औपशमिक और क्षायिक भावों का भव्य जीव के लिए मोक्ष मार्ग में एक अलग स्थान है
13. मोक्षमार्ग की शुरुआत उपशम भाव से उत्पन्न औपशमिक सम्यग्दर्शन से ही होती है
14. मिथ्यात्व आदि के कर्मों के उपशमन से उत्पन्न सम्यग्दर्शन को प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन कहते हैं
15. **अनादि मिथ्यादृष्टि** जीव सबसे पहले इसी सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है
16. आत्मा में कर्मों के अत्यन्त अभाव का नाम क्षय है और उससे उत्पन्न भाव को क्षायिक भाव कहते हैं
17. एक बार कर्मों की सत्ता का नाश हो गया तो दुबारा वह कर्म आत्मा में उत्पन्न हो ही नहीं सकता

18. हमने जाना कि कर्मों के उपशमन से औपशमिक भाव होता है
19. और कर्मों के क्षय से क्षायिक भाव
20. क्षायिक भाव औपशमिक भाव के बाद ही होता है, direct नहीं होता
21. **औपशमिक और क्षायिक भाव** सिर्फ भव्य जीवों में ही होते हैं; अभव्य में नहीं
22. आचार्य महाराज ने पहले औपशमिक फिर क्षायिक भाव लिखे -

- क्योंकि पहले औपशमिक होता है और बाद में क्षायिक
- उपशम-सम्यग्दृष्टियों से क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीवों की संख्या अधिक होती है
- क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीवों की विशुद्धि उपशम-सम्यग्दृष्टियों से अनन्त गुणी अधिक होती है; इसे विशुद्धि का प्रकर्ष कहते हैं

23. यहाँ **विशुद्धि भावात्मक** परिणति है और संख्या द्रव्यात्मक परिणति
24. मिश्र का अर्थ है औपशमिक और क्षायिक के मिश्रण से बना भाव यानि क्षायोपशमिक-भाव
25. क्षय और उपशम से मिल कर क्षयोपक्षम होता है और उससे उत्पन्न भाव होता है क्षायोपशमिक भाव
    - जहाँ क्षायिक में क्षय का अर्थ है अत्यन्ताभाव
    - वहीं क्षायोपशमिक में क्षय का अर्थ है उदयाभावी क्षय अर्थात अपनी शक्ति के कारण से कर्मों के उदय में आने का अभाव

26. क्षयोपक्षम में कुछ समय के लिए कर्मों की शक्तियाँ उदय में नहीं आती और दब भी जाती हैं
27. इसे **क्षीणाक्षीण शक्ति** भी कहते हैं
28. एक ही समय में अलग-अलग कर्मों के क्षयोपशम की तीव्रता और मंदता अलग अलग हो सकती है
29. जैसे अगर अवग्रह मतिज्ञान का क्षयोपक्षम कम है और धारणा मतिज्ञान का अधिक है तो वस्तु का अवग्रह तो होगा मगर स्पष्टीकरण एक बार में नहीं हो पायेगा
    - एक बार स्पष्टीकरण होने पर वह बहुत समय तक वैसी ही ज्ञान में रहेगी
    - और अगर श्रुत ज्ञानावरण-कर्म का क्षयोपक्षम भी अच्छा नहीं है तो उस वस्तु की विशेषताओं को अच्छे से नहीं जान पाएंगे

30. हमने जाना कि मिश्र भाव पाँचों भावों में बीच में है
31. ज्ञानादि के क्षयोपक्षम सभी **भव्य और अभव्य संसारी** जीवों में होंगे
32. क्षायिक सम्यग्दृष्टियों से क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे अधिक होते हैं
33. **औदयिक-भाव** कर्म के उदय से उत्पन्न होते हैं
34. **पारिणामिक-भाव** आत्मा के अपने परिणामों से ही उत्पन्न होते हैं
35. इनमें कर्म के उदय, उपशम, क्षयोपक्षम या क्षय की अपेक्षा नहीं होती
36. क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक भाव सभी संसारी जीवों में मिलेंगे
37. औदयिक और पारिणामिक भाव वाले जीव अनन्त हैं
38. हमने जाना कि जहाँ गति एक औदयिक भाव है
39. वहीं चैतन्य हमारा **पारिणामिक भाव** है

40. हमने अलग-अलग भावों के काल के बारे में जाना
    - **अनादि-अनन्त:** अर्थात जिसकी न शुरुआत है, न कोई अन्त है। जो भाव सदा से रहे हों और सदा रहेंगे जैसे पारिणामिक भाव - ये कर्मों से निरपेक्ष हैं अतः ये कर्मों से independent हैं
    - **अनादि-सान्त:** अर्थात जो अनादि काल से तो आ रहे हैं लेकिन हम उनका अन्त कर सकते हैं
    - **सादि-सान्त:** अर्थात जो उत्पन्न होते हैं और अंत को प्राप्त होते हैं जैसे औपशमिक भाव। उपशम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने के अन्तर्मुहूर्त पश्चात् अन्त हो गया
    - **सादि-अनन्त:** अर्थात जिनकी अगर हमने शुरुआत कर ली तो कभी उनका अन्त नहीं होगा। जैसे- क्षायिक भाव। किसी कर्म का क्षय करने से क्षायिक भाव सादि हो गया मगर अब वह अनन्त काल तक बना रहेगा

41. क्षयोपशमिक और औदयिक भाव भी **सादि सान्त** होते हैं क्योंकि
    - **क्षयोपशम** भी बनते-बिगड़ते रहते हैं। किसी कर्म का क्षयोपशम आज नहीं है, कल हो गया, एक गति में है, दूसरी गति में नहीं है
    - **औदयिक-**भाव भी कर्म के उदय से हो रहा है। जब तक कर्म का उदय रहेगा तब तक रहेगा, बाद में वह भी नष्ट हो जाएगा

42. हमने स्व-भाव और स्वभाव के अंतर को भी जाना
43. पाँचों ही भाव जीव के स्व-तत्त्व हैं अर्थात स्व-भाव है, ऐसे भाव हैं जो जीव के अपने भाव हैं, जीव में होते हैं
44. लेकिन सभी भाव जीव के वास्तविक स्वभाव नहीं हैं, उसके innate nature नहीं हैं
45. जो भाव अनादि-अनन्त हैं, वे हमारे स्व-भाव और स्वभाव हैं जैसे पारिणामिक-भाव
46. मगर जो भाव अनादि-अनन्त नहीं है लेकिन फिर भी वह हमारे अन्दर अनादि काल से हैं, ऐसे भाव हमारे लिए **स्व-भाव** होकर के भी वह हमारे **स्वभाव** नहीं हैं। जैसे कि औदयिक-भाव
    - यह हमारे लिए अच्छे नहीं है क्योंकि उनके उदय में हम उन भावों को अपना स्वभाव मान लेते हैं जैसे- मनुष्य गति में अपने को मनुष्य मान लेना
    - ये विभाव होते हुए भी हमारे स्वभाव बन गए हैं
47. औपशमिक आदि भाव से मोक्षमार्ग की शुरुआत होती है इसलिए ये हमारे लिए अच्छे हैं

48. सूत्र 3 में हमने भावों के भेदों को जाना
    - औपशमिक के 2 प्रकार

- क्षायिक के 9 प्रकार
- मिश्र या क्षायोपशमिक के 18 प्रकार
- औदयिक के 21 प्रकार
- और पारिणामिक के 3 प्रकार होते हैं

49. सूत्र 3 **सम्यक्त्व-चारित्रे** में हमने जाना कि औपशमिक-भाव **सम्यक्त्व** और **चारित्र** से सम्बन्ध रखता है
50. आठ कर्मों में सबसे पहले मोहनीय कर्म के ऊपर वार करना होता है
51. यह दो प्रकार का होता है
    - **दर्शन मोहनीय-** जो हमारे सम्यग्दर्शन को मोहित करे, न होने दे
    - **चारित्र-मोहनीय-** जो हमारे अन्दर चारित्र के प्रति एक मूर्छा पैदा कर दे, उसे उत्पन्न न होने दे

52. दर्शन-मोहनीय के उपशमन से औपशमिक-सम्यग्दर्शन और चारित्र मोहनीय के उपशमन से औपशमिक-चारित्र होता है
53. दर्शन-मोहनीय और चारित्र-मोहनीय कर्म के अलावा किसी अन्य कर्म का उपशमन नहीं होता अतः उनसे सम्बन्धी औपशमिक-भाव भी नहीं होते

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1. तत्वार्थ सूत्र के प्रथम अध्याय में किस विषय का वर्णन है?
1. सम्यक दर्शन
2. सम्यक ज्ञान
3. सम्यक चारित्र
4. जीव तत्व

Q2. प्रत्येक जीव में कितने प्रकार के भाव पाए जा सकते हैं?
1. 3
2. 4
3. 5
4. 7

Q3. तत्वार्थ सूत्र के दुसरे अध्याय में किस विषय का वर्णन है?
1. सम्यक दर्शन, ज्ञान, चरित्र
2. जीव तत्व
3. अजीव तत्व
4. जैन भूगोल

Q4. जीव में भावो के उत्पन्न होने का मुख्य कारण क्या होता हैं?
1. उसके विचार
2. उसका भव
3. उसका उपादान
4. उसके कर्म

Q5. "औपशमिक" शब्द किस शब्द से बना है?
1. उपशम
2. सक्षम
3. उदय
4. औषध

Q6. उपशम का अर्थ क्या है?
1. प्रकट होना
2. दब जाना
3. उदय में आना
4. खिर जाना

Q7. कौन-कौन से भावो का मोक्ष मार्ग में एक विशिष्ट स्थान है?
1. पारिणामिक भाव
2. क्षायिक भाव
3. क्षयोपशमिक भाव
4. औपशमिक भाव

Q8. क्षायिक शब्द कौन से शब्द से बना है?
1. शक्ति
2. श्रद्धा
3. क्षमन
4. क्षय

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q9. निम्न में से कौन सा भाव सादि सांत है?
1. औदयिक भाव
2. मिश्र भाव
3. औपशमिक भाव
4. पारिणामिक भाव

Q10.किस लब्धि से कर्मों की स्थिति घटकर अन्त:कोड़ा-कोड़ी सागर हो जाती है
1. क्षयोपशम
2. प्रयोग्य
3. विशुद्धि
4. देशना

Q11.कौन सा भाव कर्मों के आश्रित नहीं है?
1. मिश्र भाव
2. क्षायिक भाव
3. औपशमिक भाव
4. पारिणामिक भाव

Q12.किस का उपशम नहीं होता?
1. दर्शन
2. ज्ञान
3. चारित्र
4. सभी का

Q13.औपशमिक भाव किस से सम्बन्ध रखते हैं?
1. ज्ञान
2. दर्शन
3. चारित्र
4. उपयोग

Q14. आठ कर्मों में सबसे पहले किसके ऊपर वार करना होता है?
1. ज्ञानावरणी
2. दर्शनावरणी
3. मोहनीय
4. अंतराय

Q15.मोहनीय कर्म कितने प्रकार का होता है?
1. 2
2. 3
3. 4
4. 5

Q16. उपशम सम्बन्धी 2 भाव कौन से कर्म में घटित होते हैं?
1. अंतराय
2. मोहनीय
3. ज्ञानावरणी
4. दर्शनावरणी

Q17.स्व भाव कैसे होते हैं ?
1. अनादि सांत
2. अनादि अनंत
3. सादि अनंत
4. सादि सांत

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1. जीव के कितने भाव होते हैं ?
2. औपशमिक , क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भावों में अंतर बताइये ।
3. कौनसे भाव सभी छद्मस्थ जीवों में मिलते हैं?
4. मोक्षमार्ग की शुरुआत कौनसे भाव से होती है?
5. सूत्र में क्षायिक भाव से पहले औपशमिक भाव लिखने के कारण बताइये।
6. पांच भावों के बीच में मिश्र भाव को क्यों रखा गया है?
7. अभव्य के कौन-कौन से भाव हो सकते हैं?
8. कौनसा भाव अनादि अनन्त है?
9. गति नामकर्म के उदय के कारण होने वाले औदयिक भाव से हमको क्या हानि हो रही है?
10. औदयिक भाव कितने प्रकार के होते हैं?
11. किन कर्म प्रकृतियों के उपशमन से औपशमिक भाव उत्पन्न होता है?

प्रवचन 02

तत्त्वार्थ सूत्र के द्वितीय-अध्याय में जीव के भावों का वर्णन प्रारम्भ हुआ है। पाँच प्रकार के भावों का कथन करते हुए कौन से भाव, कितने प्रकार के होते हैं, उनके उपभेदों का भी कथन किया जा रहा है। कल आपको बताया जा चुका है कि उपशम-भाव दो प्रकार का होता है, जो उपशम-सम्यक्त्व और उपशम-चारित्र के नाम से जाना जाता है।

पाँच लब्धियों का वर्णन

सम्यक्त्व-चारित्रे ॥2.3॥

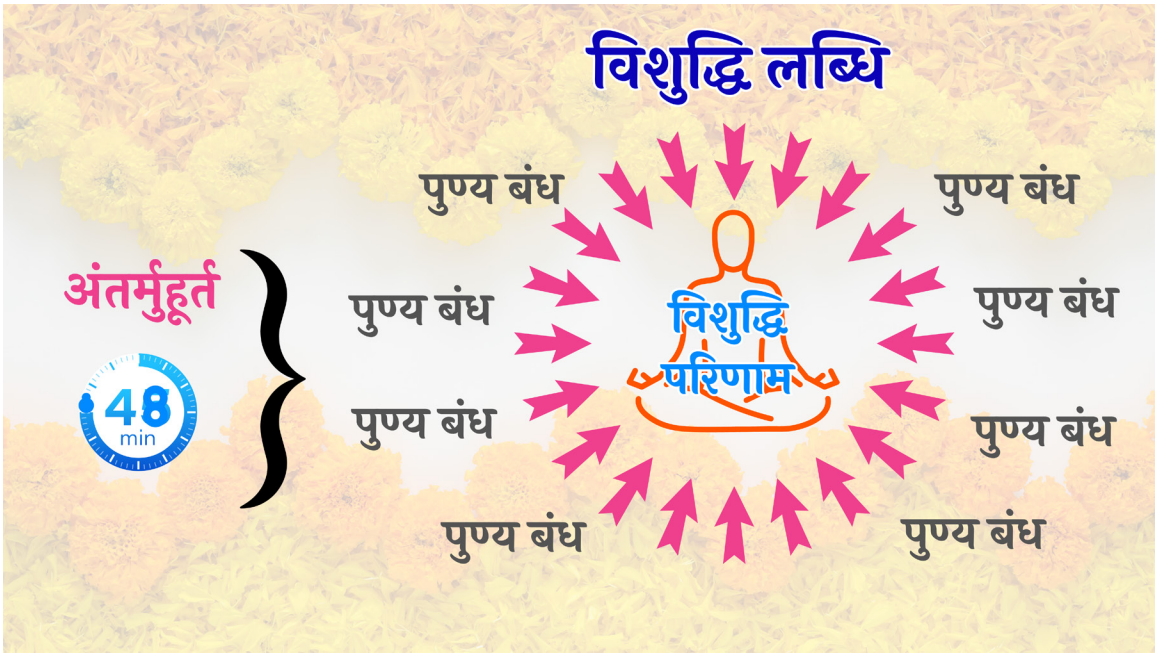
सम्यक् - त्व - चारित्रे

औपशिमक के भेद दो, सम्यक् चारित धार ।
भव सागर में भ्रमण से, नाव लगे उस पार॥2.3॥

इसी सूत्र की व्याख्या में उपशम-सम्यक्त्व के बारे में थोड़ा-सा और समझने की कोशिश करना चाहिए और वह इसलिए भी करना चाहिए क्योंकि जो चीज सबसे पहले मोक्ष मार्ग में घटित हो, उसके बारे में जो जानकारी सैद्धान्तिक तरीके से आचार्यों ने दी है, उसके बारे में थोड़ा-सा हमारे अन्दर भी ज्ञान होना चाहिए। **जब उपशम-सम्यक्त्व का भाव उत्पन्न होता है, तो उसके लिए पहले पाँच लब्धियों की आवश्यकता पड़ती है।**



1. **क्षयोपशम लब्धि-** यह पहली लब्धि है। इस क्षयोपशम लब्धि में क्या होता है? जो जीव के परिणाम होते हैं, वह उसके अपने **कर्मों के क्षयोपशम से** इस तरह के बनते चले जाते हैं कि जो हमारे कर्मों में पूर्व बुद्ध अनुभाग है मतलब कर्मों का जो पहले का बना हुआ अनुभाग-बन्ध है, वह अनुभाग-बन्ध जो अप्रशस्त होता है, पाप-प्रकृतियों के साथ बंधा हुआ रहता है या पाप का अनुभाग होता है, वह अनुभाग-बन्ध प्रति समय अनन्त गुणा घटता चला जाता है। इसका नाम एक तरह से **क्षयोपशम लब्धि** कहा है।



2. **विशुद्धि लब्धि–** ये लब्धियाँ अन्तर-अन्तर अन्तर्मुहूर्त के लिए होती हैं और एक के बाद एक होती चली जाती हैं। जब क्षयोपशम-लब्धि हो जायेगी तो उसके बाद में विशुद्धि-लब्धि के जब परिणाम आएँगे तब आत्मा में विशुद्धि परिणामों की वृद्धि होगी तो प्रति समय साता आदि जो पुण्य प्रकृतियाँ होती हैं, उनका ही निरन्तर बन्ध होगा। इसको बोलेंगे- **विशुद्धि लब्धि।** अन्तर्मुहूर्त तक निरन्तर केवल पुण्य प्रकृति का ही बन्ध होना, यह विशुद्ध लब्धि के अन्तर्गत आ जाता है।

3. **देशना लब्धि–** जिसमें छह द्रव्य, नौ पदार्थों को जानने वाले कोई भी उपदेशक आचार्य आदि हैं उनका सानिध्य मिले या उनकी देशना का लाभ हो तो यह **देशना लब्धि** के रूप में कहा गया है।

4. **प्रायोग्य लब्धि–** इस प्रायोग्य लब्धि में जो कर्मों की स्थितियाँ हैं, स्थिति-बन्ध हैं या पूर्वबद्ध कर्मों की स्थिति बन्ध हैं, वह घटकर के कम होते-होते अन्तः कोड़ा-कोड़ी प्रमाण रह जाते हैं। यानी एक कोड़ा-कोड़ी सागर के भीतर ही यह कर्मों की स्थिति बन्ध होने लगे, यह प्रायोग्य लब्धि में ही सम्भव होता है। यानी विशुद्धि निरन्तर बढ़ रही है। उन परिणामों की विशुद्धि से जो भीतर कर्मों के अनुभाग और कर्मों की स्थितियाँ जो घट रही हैं, यही इन लब्धियों का एक मुख्य कार्य है।

SCAN TO WATCH



अतः प्रायोग्य लब्धि में वह परिणामों की विशुद्धि के कारण से कर्मों की स्थिति जो बन्ध को प्राप्त हो रही हो वह और कर्मों की स्थिति जो सत्ता में पड़ी है वह, दोनों की ही जो स्थिति है वह घटने लग जाती है और वह घटकर के अन्त:कोड़ा-कोड़ी सागर तक हो जाती है। बन्ध तो अन्त:कोड़ा-कोड़ी का होगा लेकिन जो उसका स्थिति का जो सत्त्व है, वह उसमें भी संख्यात हजार सागरोपम और कम हो जाएगा। इस तरह की प्रक्रिया का होने का नाम है- **प्रायोग्य लब्धि।**



5. **करण लब्धि-** जिसमें अध:करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण के ये विशिष्ट परिणाम होते हैं। जिन परिणामों के माध्यम से मिथ्यात्व आदि कर्मों का, एक तरह से अन्त:करण, अन्तर करण आदि के माध्यम से उनकी एक स्थिति और जो अनुभाग है उसमें इतनी कमी लाई जाती है या उन्हें इतना दबा दिया जाता है कि वह एक अन्तर्मुहूर्त के लिए किसी भी तरह से न उदय में आ पाएँ और न वह एक अन्तर्मुहूर्त के लिए उदय के योग्य रह पाएँ, इस तरह की स्थिति बना देने का नाम करण लब्धि कहलाता है।

SCAN TO WATCH

भव्य-अभव्य जीवों की लब्धि



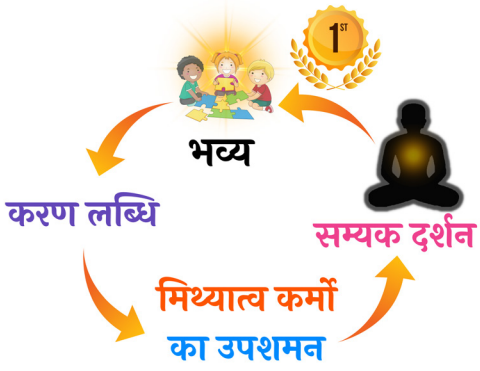
भव्य

1. क्षयोपशम लब्धि
2. विशुद्धि लब्धि
3. देशना लब्धि
4. प्रायोग्य लब्धि
5. करण लब्धि



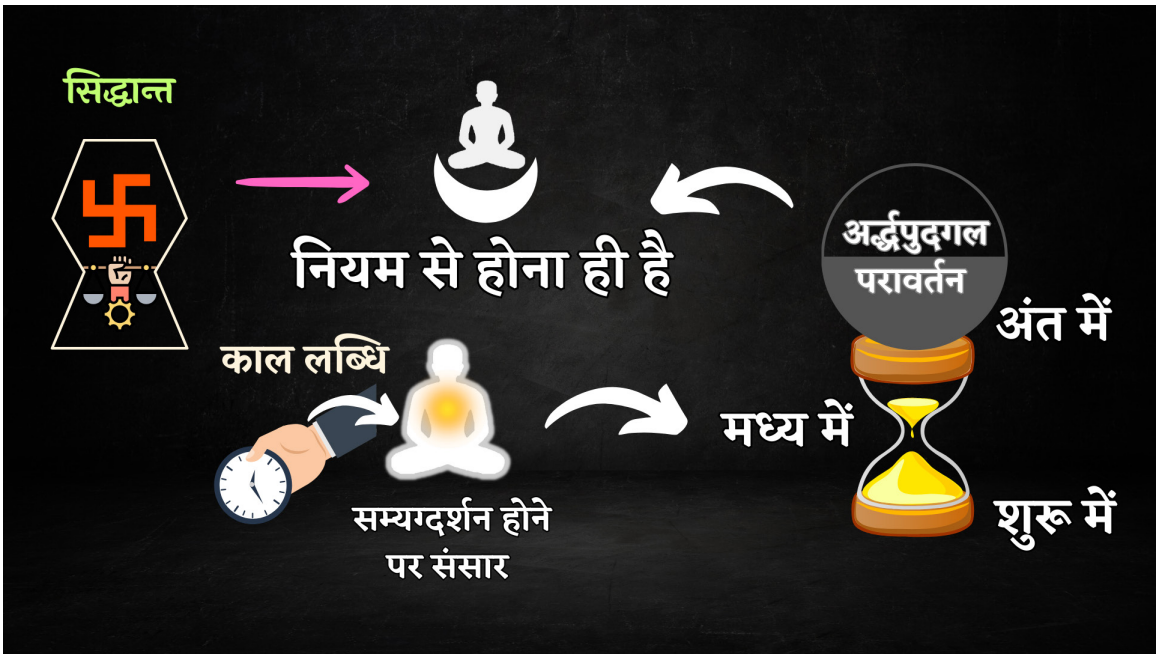
अभव्य

1. क्षयोपशम लब्धि
2. विशुद्धि लब्धि
3. देशना लब्धि
4. प्रायोग्य लब्धि



ये पाँच लब्धियाँ हैं। इनमें से चार लब्धियाँ तो भव्य-अभव्य दोनों जीवों के सम्भव हैं। मतलब भव्य-अभव्य दोनों ही जीव चार लब्धियों तक की योग्यता प्राप्त कर सकते हैं। **लेकिन अभव्य जीवों को करण लब्धि नहीं होगी। करण-लब्धि केवल भव्य जीवों को ही होती है।** करण-लब्धि में एक बार अगर आत्मा उन परिणामों में ढल जाती है, उसमें एक बार उन परिणामों की शुरुआत हो जाती है, तो उसका वह कार्य अवश्य ही घटित होता है और उस करण-लब्धि के माध्यम से ही मिथ्यात्व आदि कर्मों का उपशमन हुआ करता है। सबसे पहले सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता वाला जब कोई भव्य जीव अपने अन्दर सम्यग्दर्शन को प्राप्त करेगा तो उसे इन पाँच लब्धियों की आवश्यकता होती ही है। यानी भीतर पाँच लब्धियों के माध्यम से कार्य प्रति समय अन्तर-अन्तर अन्तर्मुहूर्त में घटित होते रहेंगे और इन्हीं परिणामों के फलस्वरूप उसे सम्यग्दर्शन का लाभ मिलेगा। यह भीतरी प्रक्रिया सैद्धान्तिक प्रक्रिया है और इसी के माध्यम से इन पाँच लब्धियों का वर्णन किया जाता है।

काल भी मुख्यता रखता है



इन पाँच लब्धियों का वर्णन करते हुए आचार्य कहते हैं कि इसमें एक काल-लब्धि भी और जोड़ना चाहिए या काल-लब्धि का भी एक अलग से वर्णन किया जाता है। इसलिए किया जाता है कि जब भी कोई कार्य सम्पादित होता है, तो उसमें काल भी अपनी एक मुख्यता रखता है। वह काल-लब्धि कोई ऐसी काल-लब्धि नहीं होती कि ऐसा होने पर या इस तरह का काल होने पर इस तरह से आपको सम्यग्दर्शन हो ही जाएगा। ऐसा नहीं होता।

आचार्यों ने काल-लब्धि को भी तीन प्रकार से बताया है

SCAN TO WATCH

एक काल-लब्धि तो वह होती है कि जब हमारा संसार केवल अर्ध-पुद्गल-परावर्तन मात्र रह जाए तो उस समय पर हमारे लिए सम्यग्दर्शन होगा। वह एक प्रकार की पहली काल-लब्धि कही गई है। अगर हम इस काल-लब्धि के बारे में देखे तो सिद्धान्त ग्रन्थ कहते हैं कि संसार कभी भी अपने आप अर्ध-पुद्गल-परावर्तन मात्र नहीं रहता है, उसे करना पड़ता है। अर्ध-पुद्गल-परावर्तन रूप संसार तभी रहेगा जब उसे सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाएगा। जब यह सिद्धान्त सामने आता है कि सम्यग्दर्शन होने पर संसार अर्ध-पुद्गल बचता है। क्या कहा जाता है सिद्धान्त में? सम्यग्दर्शन प्राप्त अगर हो गया तो उस जीव का संसार कितना बचेगा? अर्ध-पुद्गल-परावर्तन मात्र संसार बचेगा। उस काल में उसके लिए नियम से मोक्ष होगा या उसी काल में शुरु में हो जाए या मध्य में कभी हो जाए या अन्त में तो नियम से

होना ही है। इधर जब हम काल-लब्धि का वर्णन करते हैं तो काल-लब्धि का वर्णन किया जाएगा तो काल की मुख्यता से किया जाएगा।

पहली काल लब्धि है- अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल की अवधि शेष रह गयी



जब सम्यग्दर्शन का वर्णन करेंगे तो सम्यक्त्व परिणामों की मुख्यता से होगा। यह कथन की पद्धति होती है कि मुख्यतः हम किसका वर्णन कर रहे हैं? हम उसी को मुख्यता देते हैं। जो लोग स्याद्वाद की इस गौण-मुख्य पद्धति को नहीं जानते, वे लोग भ्रमित हो जाते हैं। कैसे भ्रमित हो जाते हैं? अगर काल-लब्धि का वर्णन किया जा रहा है, तो आपको उसकी परिभाषा में लिखा मिलेगा- '**अर्धपुद्गल परिवर्तनाख्ये-कालेऽवशिष्टे**' यानी अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल के अवशिष्ट रह जाने पर, अर्थात शेष रह जाने पर ही यह जीव सम्यग्दर्शन के योग्य होता है, यह पहली काल-लब्धि है। जब आप यह पढ़ोगे तो आपके दिमाग में क्या आएगा? जब इतना काल बचेगा न! तभी हम सम्यग्दर्शन के योग्य हो पाएँगे, तभी सम्यग्दर्शन की योग्यता आएगी। अगर इससे ज्यादा काल है हमारा तो अभी हम सम्यग्दर्शन के योग्य ही नहीं है। इस तरह का जो विचार आएगा, वह विचार आपके लिए पढ़ने के अनुसार तो ठीक आएगा लेकिन आप यह नहीं समझते कि यह किस विवक्षा से क्या कहा जा रहा है?

काल-लब्धि क्या होता है?



काल-लब्धि का मतलब होता है- जिस समय पर जो काम हो जाए, वही समय उसकी काल-लब्धि कहलाती है। काल से काम नहीं होता लेकिन जिस समय पर जो काम होगा, उसी का नाम काल-लब्धि है। जब हम यह देखते हैं कि जब अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल बचेगा तब हमारे लिए सम्यग्दर्शन होगा कि सम्यग्दर्शन होगा तब अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल बचेगा? यह विचारणीय बात रहती है। **जो लोग सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक वगैरह इस ग्रन्थ की टीकाएँ पढ़ते हैं तो उन्हें जब काल-लब्धि का वर्णन लिखा मिलता है,** तो इसी रूप में लिखा हुआ मिलता है। तब उनकी धारणा में यह आ जाता है कि देखो! आचार्यों ने लिखा है कि काल-लब्धि का मतलब यह है कि जब अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल अवशिष्ट रह जाएगा तब आपके लिए सम्यग्दर्शन होगा तो अब हम क्या कर सकते हैं?

आचार्यों द्वारा की गयी काल लब्धि की व्याख्या को उल्टा समझना

अगर अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल अवशिष्ट होगा तो सम्यग्दर्शन की योग्यता हो जाएगी तो कार्य हो जाएगा और इससे ज्यादा होगा तो हम कभी भी कोई भी पुरुषार्थ करेंगे, उससे हमको कभी भी सम्यग्दर्शन होने वाला नहीं है। इस तरह से सोच लेते हैं, पढ़ लेते हैं और पढ़ा भी देते हैं। जबकि सिद्धान्त ग्रन्थों की जो व्याख्याएँ हैं, आचार्य वीरसेन महाराज की धवला आदि टीकाएँ हैं उसमें वे लिखते हैं कि **सम्मद्दंसणपरिणामेहि अध्दपोग्गलपरियट्टणकालो-कदो** मतलब सम्यग्दर्शन के परिणामों से वह अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल किया जाता है, काल अपने आप नहीं आ जाएगा जो तुम्हें सम्यग्दर्शन करा दे। जब सम्यग्दर्शन के परिणाम होंगे तो इतना काल अवशिष्ट बचेगा। अगर हम काल-लब्धि का वर्णन कर रहे हैं तो हम ऐसा ही कहेंगे कि जब इतना काल बचेगा तभी आपको सम्यग्दर्शन होगा। समझ आ रहा है? यह काल-लब्धि की अपेक्षा से कहेंगे तो कथन सही है लेकिन अगर हम सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से देखेंगे तो सम्यग्दर्शन होने पर ही यह अर्ध-पुद्गल-परावर्तन मात्र काल बचता है, यह आचार्यों का कहना है। इसलिए यह ध्यान रखना काल में काम नहीं होता है; काम होने पर जो काल, जिस समय पर होता है, वही उसका समय कहा जाता है, वही उसकी काल-लब्धि, उस काल की योग्यता कही जाती है।

काल लब्धि समझने के लिये उदाहरण

आप लोगों को बुखार आता है न। Thermometer से नापते हो? क्या नापते हो? बुखार नाप रहे हैं, बुखार किसमें है? शरीर में और नाप किसमें रहे हो? Thermometer में। अच्छा! thermometer में जब आपने बुखार नापा तो उसमें आपने देखा, thermometer में बुखार है कि बुखार आपके शरीर में है? जब हम thermometer में देखेंगे तो हम कहेंगे, इसमें बुखार 99 डिग्री C आ रहा है। हम क्या बोलेंगे? इसमें बुखार 99 डिग्री C आ रहा है।

किसमें? thermometer में तो thermometer में बुखार होता है कि बुखार होने पर उस thermometer में 99 डिग्री C पर वह पारा चढ़ता है। बोलो तो ऐसे ही है न! बुखार शरीर में होगा तो वह thermometer में 99-100 डिग्री C तक वह पारा बढ़ता हुआ दिखाई देगा। इसका मतलब क्या है? अगर बुखार शरीर में है, तो ही वह पारा 99-100 तक जाएगा या उसके above जाएगा। जब बुखार होगा तभी तो वह उस thermometer के द्वारा हमें जानने में आएगा, वही हमको बताएगा कि यह बुखार इतना है। thermometer में बुखार नहीं है, thermometer तो बुखार को बताने का एक यन्त्र है। इसी तरह से जब कार्य होगा, सम्यग्दर्शन होगा तो सम्यग्दर्शन होने पर यह बताया जाएगा कि जब सम्यग्दर्शन हो गया तो यह काल अब संसार का अर्ध-पुद्गल-परावर्तन मात्र रह गया। काल होने पर कोई काम नहीं होता। मान लो हमने किसी भी तरीके से thermometer में temperature 100 डिग्री C कर भी दिया। धूप में रख दिया या किसी और तरीके से हमने thermometer का temperature तो 100 डिग्री C कर दिया और फिर आप को लगा दिया तो आपका temperature 100 हो जायेगा? इसी तरीके से काल लब्धि आ गई फिर हमें सम्यग्दर्शन हो गया मतलब हम thermometer लगाने के बाद में सम्यग्दर्शन मतलब बुखार पैदा कर रहा है। जो लोग इस तरह से पढ़ते हैं, समझाते हैं, उन्हें कहीं न कहीं कोई समझाने वाला नहीं मिलता इसलिए वह इस तरीके समझाते हैं। यह मुख्य और गौणता की व्यवस्था होती है लेकिन जब हम thermometer की दृष्टि से देखेंगे तो हम यही कहते हैं, देखो! इसमें 100 डिग्री C बुखार आ रहा है। क्या बोलते है हम? इसमें 100 बुखार आ रहा है। किसमें? thermometer में।

स्याद्वाद :- कथन की पद्धति



- मुझको बुखार था या है इसलिए thermometer में 100 डिग्री C तक यह पारा चढ़ रहा है

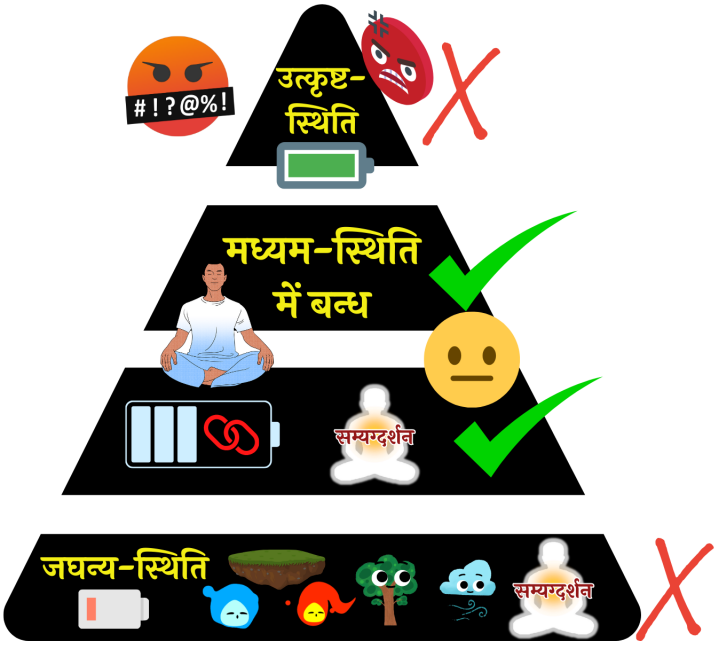


- सम्यग्दर्शन होने के बाद संसार का काल अर्द्ध पुद्गल परावर्तन मात्र रह गया



इसमें 100 डिग्री C temperature आ रहा है मतलब आप को 100 डिग्री C बुखार है, तो यह किसकी मुख्यता हो गई? यह thermometer की मुख्यता हो गई। यह काल-लब्धि हो गई, काल-लब्धि की मुख्यता हो गयी। अगर काल-लब्धि की मुख्यता से हम कथन करेंगे तो हम ऐसा बोलेंगे और अगर हम अपने temperature की मुख्यता से कथन करेंगे तो हम क्या बोलेंगे? मुझमें बुखार था या है इसलिए thermometer में 100 डिग्री C तक यह पारा चढ़ रहा है, कथन की पद्धति समझो। स्याद्वाद! स्याद्वाद! दुनिया चिल्लाती तो रहती है, उपयोग करना किसी को कुछ आता नहीं। स्याद्वाद की शैली को जानने वाले आचार्यों ने कहाँ क्या लिखा है? यह पता भी हमें गुरुओं की कृपा के बिना नहीं मिलता है। यह एक पद्धति है, अगर हम काल-लब्धि की मुख्यता से किसी चीज को देख रहे हैं तो हम यही कहेंगे कि इतना काल रहेगा तो यह सम्यग्दर्शन होगा। कहना गलत नहीं है लेकिन वह काल-लब्धि की मुख्यता से कथन है। **कभी भी आप जब ऐसा सुने कि काल-लब्धि आएगी तो काम हो जाएगा। ऐसे लोगों से हाथ जोड़ना, कहना, तुम काल-लब्धि का इन्तजार करो, हम अपना पुरुषार्थ कर रहे हैं। इस तरह पहली प्रकार की काल-लब्धि बताई।**

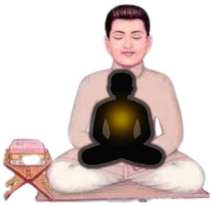
दूसरी काल लब्धि- जब मध्यम स्थिति का बन्ध होगा



दूसरी काल-लब्धि होती है- जब हमारे कर्मों की स्थितियाँ, भीतर जो हमारे कर्मों की स्थिति, सत्त्व और बन्ध पड़े होते हैं। अगर वह जघन्य-स्थिति में बन्ध रहे होंगे या उत्कृष्ट-स्थिति में बन्ध रहे होंगे तो भी आचार्य कहते हैं- ऐसी स्थिति में कभी भी सम्यग्दर्शन नहीं होगा। सम्यग्दर्शन

कब होगा? जब मध्यम-स्थितियों के बन्ध हो रहे होंगे। उत्कृष्ट-स्थिति का बन्ध होगा तब तो आदमी का बहुत temper बहुत high होगा और जब बिल्कुल low स्थिति का बन्ध होगा तब उसके लिए इस तरीके की योग्यता ही नहीं होगी। एकेन्द्रिय आदि में ऐसी स्थिति का बन्ध होता है, तो उसमें भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। वह सम्यग्दर्शन कब होगा? जब मध्यम स्थिति का बन्ध होगा। यह दूसरी काल-लब्धि है। काल-लब्धि का मतलब है कि आप किसी न किसी तरीके से यह जानें कि आपका कौन सा समय सम्यग्दर्शन के योग्य है?

तीसरी काल-लब्धि की योग्यता



- जीव भव्य हो,
- संज्ञी पंचेन्द्रिय हो,
- विशुद्धि से सहित हो,
- जाग्रत हो,
- पर्याप्तक हो

उसको आचार्यों ने तीन रूपों से व्याख्यायित किया है- एक तो अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल के साथ में, दूसरा कर्मों की स्थिति मध्यम रह जाए तब और एक तीसरा बताया कि **जब कोई जीव भव्य हो, संज्ञी पंचेन्द्रिय हो, विशुद्धि से सहित हो, जागृत हो, पर्याप्तक हो तभी वह सम्यग्दर्शन के योग्य होता है।** यह तीसरी काल-लब्धि है। अब इन तीनों ही काल-लब्धियों को अगर हम देखें तो कोई भी काल-लब्धि ऐसी नहीं है, जिसके हो जाने पर अपने आप सम्यग्दर्शन हो जाता हो। यह तो योग्यता बताई गई और जब ऐसा होगा तब इसकी योग्यता अवश्य ही होगी। देखो! अगर हम उसी अर्ध-पुद्गल-परावर्तन वाली काल-लब्धि को समझने के लिए अगर हम दूसरी वाली तो हमारी समझ में आ नहीं सकती कि कब जघन्य स्थिति का बन्ध हो रहा है, कब उत्कृष्ट हो रहा है? यह तो हमारे ज्ञान का विषय है नहीं तो चलो ठीक है! इसको तो हमने छोड़ दिया।



तीसरी जो काल-लब्धि है- भव्य होना चाहिए, संज्ञी होना चाहिए, पर्याप्तक होना चाहिए, पंचेन्द्रिय ही होना चाहिए, विशुद्ध होना चाहिए, जागृत होना चाहिए। ये जितनी भी योग्यताएँ हैं, ये योग्यताएँ तो संसार में तमाम पंचेन्द्रिय जीवों को मिली रहती हैं। किन-किन को सम्यग्दर्शन हो जाता है? कितने ही भव्य-जीव देव गति में, नरक गति में, मनुष्य गति में, तिर्यंच गति में हैं। कितने ही संज्ञी-पंचेन्द्रिय-जीव हैं? कितने ही पर्याप्तक जीव हैं? कितने ही विशुद्धि से युक्त हैं? क्या सबको सम्यग्दर्शन हो जाता है? यह हमें जब जानने में आ जाता है, तो हमें समझ लेना चाहिए कि यहाँ काल-लब्धि का मतलब सिर्फ एक योग्यता बताना है। ऐसा नहीं है कि ऐसा होने पर नियम से सम्यग्दर्शन हो ही जाएगा। भव्य-जीव होगा तो ही वह सम्यग्दर्शन के योग्य होगा लेकिन सभी भव्य हो गए तो सम्यग्दर्शन है, तो क्या सभी को हो जाए सम्यग्दर्शन क्योंकि भव्य तो अनन्त जीव है।



संज्ञी-पंचेन्द्रिय असंख्यात जीव हैं, सबको हो जाए सम्यग्दर्शन। पर्याप्तक सभी हैं, विशुद्ध सभी हैं, जागृत सभी रहते हैं, कौन सा हमेशा सब सोते रहते हैं? ज्ञानोपयोग के साथ हमेशा सभी रहते हैं तो ये सारी योग्यताएँ तो **सामान्य योग्यताएँ हैं। इन योग्यताओं से सम्यग्दर्शन नहीं होता लेकिन सम्यग्दर्शन होगा तो इन योग्यताओं के होने पर ही होगा।** उनके लिए इस तरीके का योग्य-व्यक्ति होना चाहिए। यह कई बार लोगों के पढ़ने में आता है लेकिन लोग इसको समझ नहीं पाते हैं तो काल-लब्धि को भी समझे और पाँच-लब्धियों को भी समझे।

गोटेगाँव चातुर्मास में पंच लब्धि की गोष्ठी

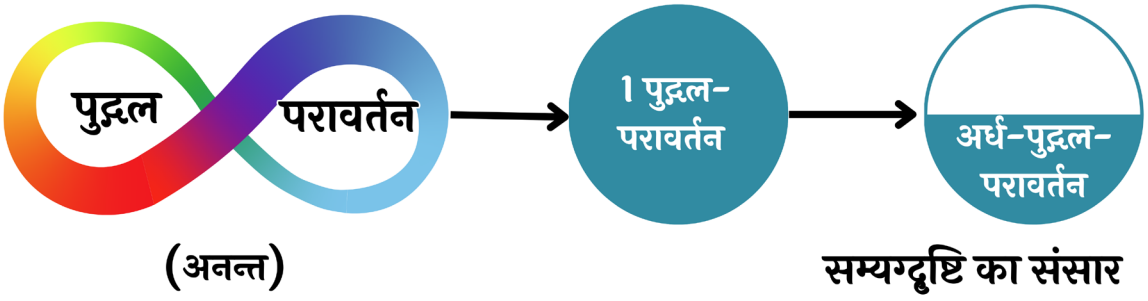


बहुत पहले हमने इसके विषय में एक चिन्तन दिया था। शायद 2012 में जब मेरा गोटेगाँव में चातुर्मास था। तब बहुत अच्छे-अच्छे पढ़े-लिखे ब्रह्मचारी लोग सामने आए थे और ब्रह्मचारियों के लिए ही यह गोष्ठी हुई थी। उसमें यह पंच-लब्धि का विषय ही हमने उनको तीन-चार दिन तक परोसा था और उनमें से कुछ ब्रह्मचारी जो आज-कल मुनि महाराज भी बन गए हैं। जो संघ में ब्रह्मचारी पवन, ब्रह्मचारी कमल थे, वे अब निर्दोष सागर और निर्लेप सागर महाराज है। ये सभी जो ब्रह्मचारी हैं, ये भी पहले उस संगोष्ठी में आए थे और उस समय पर हमने पंच-लब्धि का बहुत अच्छा व्याख्यान किया था। वह व्याख्यान आपको आज भी आपके mobile पर मिल जाएगा क्योंकि जो चीज एक बार upload हो गई है, तो वह तो पड़ी रहती है। अगर आप को वह चिन्तन पंच-लब्धि और काल लब्धि का सुनना हो। अब हम ये सोचे कि पंच-लब्धि का जब आचार्यों ने वर्णन किया है। यह काल लब्धि अलग से कहाँ से आ गयी।

एक काल-लब्धि अलग से कहाँ से आ गई?

पाँच लब्धियों में काल-लब्धि तो कोई चीज ही नहीं है। जब पाँच लब्धि सम्यग्दर्शन के लिए नियामक हैं तो काल-लब्धि का अलग से वर्णन किस तरह से पंच-लब्धि से संगत बैठता है? इसकी समायोजन के लिए आपको वही प्रवचन सुनना पड़ेगा। मैं अभी आपको नहीं बता पाऊँगा। हाँ! आप फुर्सत में बैठकर सुनना, पंच-लब्धि के नाम से आपको YouTube वगैरह पर ये प्रवचन मिलेंगे। तब आप समझेंगे कि यह काल-लब्धि को भी हम एक तरह से सामान्य लब्धियाँ समझे और ये सभी लब्धियाँ इन पंच-लब्धियों में गर्भित हैं। क्षयोपशम आदि में ये लब्धियाँ सभी गर्भित हो जाती हैं तो इन पाँच लब्धियों के माध्यम से जब हमें लब्धि की प्राप्ति होती है, तो उस सम्यग्दर्शन के माध्यम से ही हमें यह पता चलता है कि यह जो काल रह गया है, वह अब केवल अर्ध-पुद्गल-परावर्तन मात्र काल रह गया है।

सम्यग्दृष्टि का संसार अनन्त से घटकर अर्ध-पुद्गल-परावर्तन प्रमाण रह जाएगा



इसको बोलते हैं- एक बार जिसको सम्यग्दर्शन को प्राप्ति हो गई, उसका संसार अनन्त से घटकर केवल अर्ध-पुद्गल-परावर्तन प्रमाण रह जाएगा। जो पुद्गल-परावर्तन थे, वह हम अनन्त कर चुके, उनमें केवल एक पुद्गल-द्रव्य-परावर्तन का भी आधा रह जाता है, उसका नाम है- **अर्ध-पुद्गल-परावर्तन**। इस तरह से यह कहा जाता है कि सम्यग्दर्शन के माध्यम से अनन्त संसार घटकर के अब तो यह केवल चुल्लू भर रह गया। क्योंकि अनन्त संसार तो अब नहीं बन्धा और सम्यग्दर्शन होने के बाद में इतनी योग्यता आ जाती है कि वह फिर अनन्त काल तक संसार में नहीं रहेगा। यद्यपि यह जो अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल है, यह भी बहुत बड़ा है। क्योंकि हम लोगों के ज्ञान की अपेक्षा से पुद्गल-परावर्तन का आधा, यह भी एक तरीके से देखा जाए तो अनन्त ही है। लेकिन केवली सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान की अपेक्षा से यह सीमित है, इसलिए इसको अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल कहा जाता है। यह काल अनन्त होते हुए भी बहुत सीमित कहा गया है, यह भी बहुत-बड़ा काल है। अब आपको बड़ा तो तब दिखेगा जब संसार में परिभ्रमण बहुत दुःखकारी समझ में आ रहा हो। अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल भी बहुत बड़ा काल है मतलब यह भी अनन्त काल है।

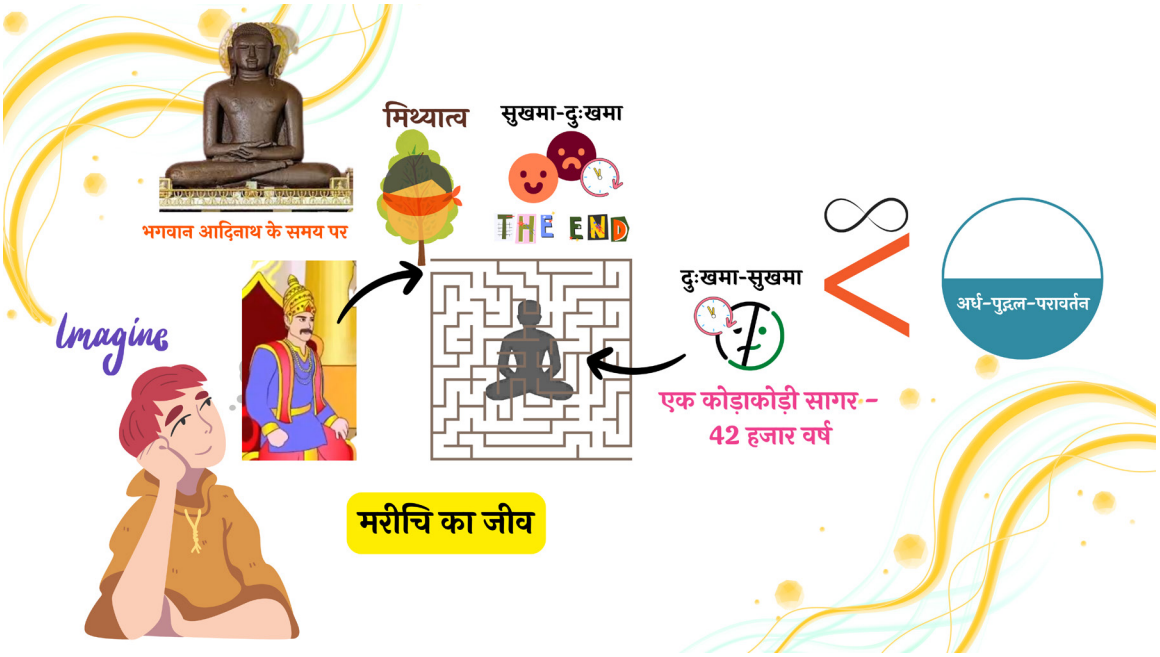


अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल भी बहुत-बड़ा संसार है

आप एक अन्दाजा लगाएँ कि मरीचि का जीव जो भगवान आदिनाथ के समय पर था और उस जीव ने वहाँ से मिथ्यात्व का पोषण करना प्रारम्भ किया तो भटकते-भटकते उसकी लब्धि फिर कब आई? चौथे काल के प्रारम्भ से भी पहले मतलब तृतीय काल के अन्त में जब आदिनाथ भगवान हुए, उस समय पर वह मरीचि का जीव था। पूरा चौथा काल निकल गया, बयालीस हजार वर्ष कम **एक-कोड़ा-कोड़ी सागर का होता है चौथा काल**। इतने समय तक वह जीव भटकता रहा। जब इतना ही काल इतना बड़ा दिखाई दे रहा है, तो अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल तो बहुत-बड़ा संसार है। सम्यग्दर्शन के बाद भी जो लोग प्रमादी बन जाते हैं, वह इतने अनन्तकाल तक भटकते रहते हैं लेकिन शास्त्रों में लिखा है कि उसे अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल के अन्त में जरूर उसकी बुद्धि अनुकूल हो जाएगी और उसके लिए नियम से मोक्ष का लाभ

SCAN TO WATCH

मिलेगा तो भी आप लोगों को निश्चिन्त नहीं बैठना चाहिए। प्रमादी नहीं होना चाहिए।



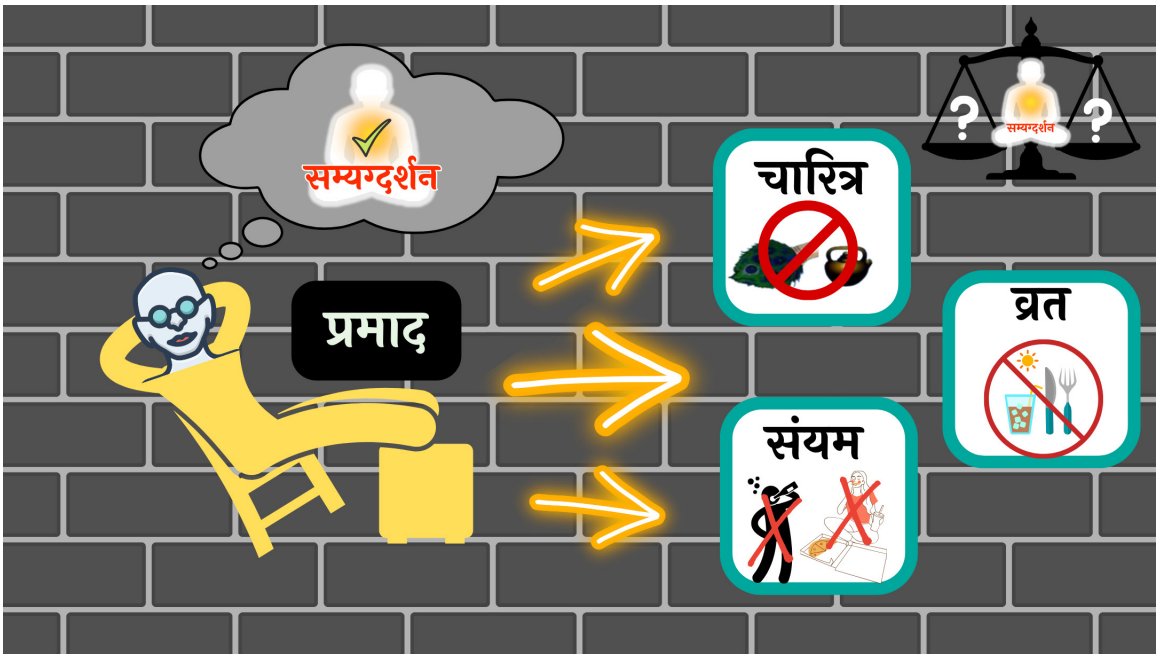
हमें प्रमादी नहीं होना चाहिए



क्योंकि आपके लिए तो अभी पता ही नहीं है कि सम्यग्दर्शन हुआ कि नहीं हुआ? यह तो उनके लिए जिनका सम्यग्दर्शन केवली भगवान ने कह दिया हो या अवधिज्ञानी किन्हीं महाराज ने कह दिया हो कि हाँ! भैया! तेरे लिए एक बार सम्यग्दर्शन हो गया। अब हो गया तब तो ठीक भी है कुछ। लेकिन ऐसा जीव भी प्रमाद नहीं करता तो जिसके लिए सम्यग्दर्शन का नियम नहीं हुआ तो वह जीव प्रमाद कैसे कर सकता है?

बहुत से लोग इसी खुशी में प्रमादी बने रहते हैं कि हमें सम्यग्दर्शन हो गया। आज तत्त्व का निर्णय हो गया इसलिए अब हमें कोई भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। हमारे इस सम्यग्दर्शन के कारण से संसार केवल चुल्लू भर रह गया। सम्यग्दर्शन हो गया मतलब सब हो गया, अब हमें कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। अन्तरंग में सब तरह का प्रमाद-चारित्र के प्रति, व्रत के प्रति, संयम के प्रति, यह सब प्रमाद ही उनको खा जाता है। हमने मान लिया उन्हें पता नहीं होता क्योंकि सम्यग्दर्शन का कोई निर्णय तो हुआ नहीं है। क्यों मान लिया?

पण्डित लोग मान लेते हैं कि उनको तो सम्यग्दर्शन निश्चित होगा

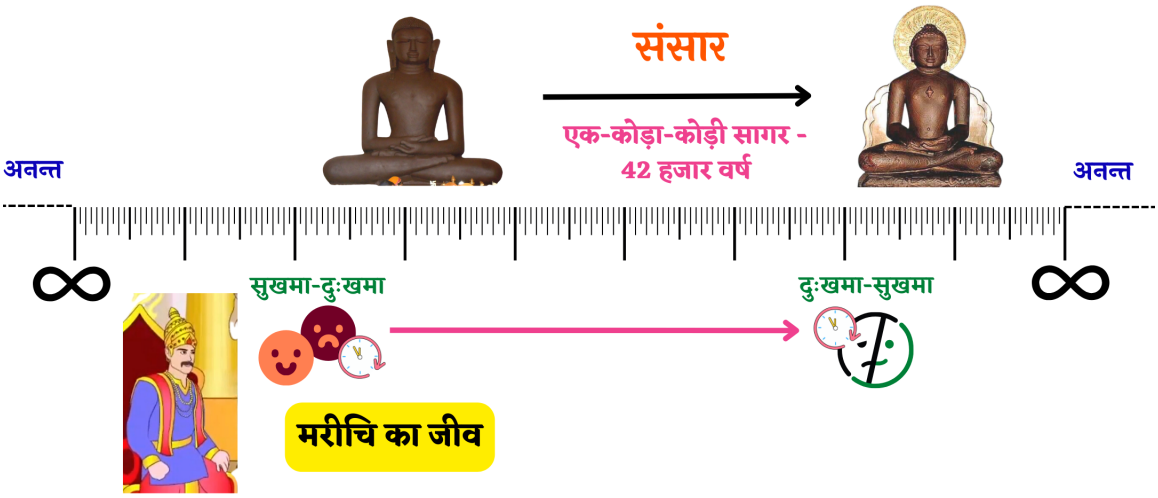


पढ़ाते-पढ़ाते, पढ़ते-पढ़ते बीस साल हो गए। सब पण्डित जी, पण्डित जी कह रहे हैं, जब इतने लोगों को हम पढ़ा चुके तो हमको तो सम्यग्दर्शन होगा ही। ऐसा सोच कर के कई लोग प्रमादी बने बैठे रहते हैं। सम्यग्दर्शन के आगे किसी भी तरीके की सम्यग्चारित्र की भावना आदि तो उनके लिए जैसे उनके course में ही नहीं। यह समझ लो! वह उनके course का विषय ही नहीं, उनको उस बारे में सोचना ही नहीं। इस तरह के लोगों का कोई भी ठिकाना नहीं है क्योंकि सम्यग्दर्शन के बाद भी जब अनन्त काल इतना बड़ा है, तो जिनको सम्यग्दर्शन की कोई guarantee नहीं है, तो आप सोचे कि वह अनन्तकाल कितना और होगा?

जो सम्यग्चारित्र की आराधना करता है वह सब की आराधना कर लेता है।

जब हमें एक कोड़ा-कोड़ी सागर का काल इतना बड़ा दिखाई दे रहा है, आदिनाथ भगवान से लेकर अन्तिम वह मरीचि का जीव ही अन्त में जाकर के सुलझा, तीर्थंकर बना वर्धमान महावीर भगवान का जीव बना। अतः समझो कि एक कोड़ा-कोड़ी सागर मतलब असंख्यात वर्षों का यह काल हो गया और भटकता रहा। इस तरह की स्थिति को जान कर के कभी भी किसी भी जीव को भीतर से प्रमादी बनकर यह नहीं सोचना कि बस सम्यग्दर्शन होने पर ही सब कुछ हो जाएगा, course आगे का करो। जैसे- बच्चों से कहा जाता है, बेटा 12th तो करना है लेकिन आगे IIT करना है, तो पहले IIT की भी तैयारी साथ में करो। पहले 12th तो कर ले, IIT बाद में कर लेंगे। नियम भी यही है कि जब 12th करोगे तभी IIT का exam दे पाओगे लेकिन

पहले तैयारी तो IIT की करनी पड़ती है और साथ में 12th की भी हो जाती है। जब 12th पास हो जाओगे तभी जाकर के IIT का exam देने के योग्य बन पाओगे। क्योंकि आपने तैयारी पहले से की है, तो आपको कुछ आएगा वहाँ पर, इधर तो हम ऐसा करते हैं। कैसा? बच्चों को पढ़ाने के लिए तो हम ऐसा करते हैं, आठवीं से ही पढ़ाने लग जाते हैं। IIT पढ़ना है बेटा इसलिए ये books पढ़, ये coaching कर, ये course कर, ये कर और इधर जब सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की बात आती है, तो पहले सम्यग्दर्शन कर लो, सम्यग्चारित्र तो बाद में आएगा। बाद में क्या अगले जन्म में आएगा?



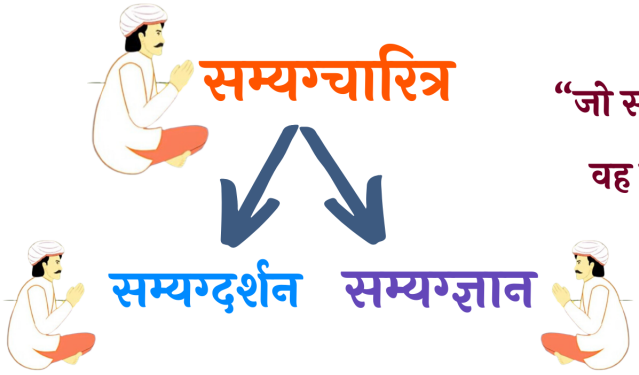
सम्यग्चारित्र पर केन्द्रित होने से सम्यग्दर्शन तो स्वतः हो जायेगा

SCAN TO WATCH

अरे भाई! वह course है, अगर आपका सम्यग्चारित्र पर focus हो जाएगा, सम्यग्दर्शन तो करके अपने आप आपके अन्दर सम्यग्चारित्र आ ही जाएगा और अगर आप बड़ी चीज पर focus करोगे तो उससे पहले मिलने वाली चीज तो आपके अन्दर आ ही जाएगी। अगर आप IIT के question solve करने लग गए, IIT किताबें पढ़ने लग गए तो 12th पास करना और 8th पास करना, आपके लिए कौन-सी बड़ी बात होगी? नहीं समझ आ रहा है? वहाँ तो हम IIT की तैयारी 11th, 10th के बाद ही शुरू कर देते हैं, कभी-कभी तो 8th के बाद ही शुरू हो जाते हैं। बाकि सब उसके parallel में होता रहेगा और इधर पहले सम्यग्दर्शन! पहले सम्यग्दर्शन! अरे भैया! सम्यग्दर्शन का तुमको कौन-सा टीका लगेगा। अतः सम्यग्चारित्र की आराधना करने वाला सम्यग्दर्शन की भी आराधना कर लेता है, सम्यग्ज्ञान की भी आराधना कर लेता

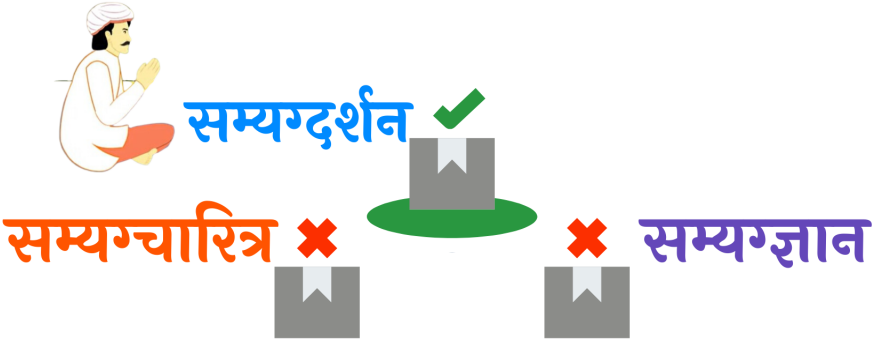
है इसलिए **भगवती आराधना आदि ग्रन्थों में कहा है, जो सम्यग्चारित्र की आराधना करता है वह सब की आराधना कर लेता है।**

भगवती आराधना



"जो सम्यग्चारित्र की आराधना करता है वह सब की आराधना कर लेता है"

सिर्फ सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान की आराधना करने से सम्यग्चारित्र की भी आराधना हो यह आशय नहीं



लेकिन जो सम्यग्दर्शन की आराधना कर रहा है, उसके लिए नियम नहीं कि वह सम्यग्चारित्र की भी आराधना करे या सम्यग्ज्ञान की भी आराधना करे। ये बातें आज कल लोगों को कहीं से कहीं तक पता नहीं क्यों बुद्धि में जाती नहीं? कौन-सा उसने अपनी बुद्धि में बिल्कुल, shield लगा रखी है कि किसी के अन्दर कोई भी चीज कहीं fit ही नहीं होती। सब को बस थोड़ा-सा भी कोई पढ़ लेगा सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यग्चारित्र तो सबसे पहले क्या? सम्यग्दर्शन तो कर लो। अब कब कर लो? कैसे कर लो? कैसे पता पड़ेगा कि आपको सम्यग्दर्शन हो गया? काल-लब्धि आ चुकी? कैसे पता पड़ेगा आपको अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल रह गया? कैसे

पता पड़ेगा कि आपके अन्दर पाँचों लब्धियाँ हो गई? अन्तःकरण के परिणाम हो गए, कैसे पता पड़ेगा? क्या है उसकी अनुभूति? कुछ नहीं है।

पण्डित लोग सही मार्ग से वंचित करते हैं

ये लोग अपने तरह से, इस तरह से अपने ढंग का, एक अलग तरीके का ढिंढोरा पीटते रहते हैं और लोगों को जो सही मार्ग है, उससे भी गाफिल करते रहते हैं। यह काम किसने शुरू किया? घर बैठे हुए पण्डितों ने यह काम शुरू किया क्योंकि उन्हें घर पर बैठना है, चारित्र लेना नहीं है और घर पर बैठे-बैठे सब ग्रन्थ पढ़ना है। अतः उन्होंने ही इस तरीके की बातें करना शुरू की और उन्हीं को follow करने वाले अनेक गृहस्थ भी हो गए। समझ आ रहा है? जबकि यह तरीका ही नहीं है।

सम्यग्चारित्र के साथ निश्चित रूप सम्यग्दर्शन से आएगा

अगर आपके अन्दर सम्यग्दर्शन आएगा तो आप यह मान करके रखे कि सम्यग्चारित्र भी आपके पास में जरूर होगा क्योंकि सम्यग्दृष्टि के पास में सम्यग्चारित्र की तीव्र भावना होती है। अब जिन्दगी-भर से आप गा रहे हो, सम्यग्दृष्टि! सम्यग्दृष्टि! सम्यग्दृष्टि! और सम्यग्चारित्र को देख कर आपका मुँह बन जाता है। काहे की सम्यग्दृष्टि? समझ में रहा है? बुरा नहीं मानना, समझने की कोशिश करना। यह जो हम एकान्त धारणा बना कर जी रहे हैं कि पहले सम्यग्दर्शन-फिर सम्यग्चारित्र, ऐसा क्या है? यह तो course है, अगर आप आगे वाला course पहले से करने की हिम्मत करोगे तो उसके साथ पिछले वाला course तो हो ही जाएगा। क्या बड़ी बात है? अगर आपने तीर्थंकरों की इस बात पर श्रद्धान करके, गुरुओं की बात पर श्रद्धान करके, सम्यग्चारित्र धारण कर लिया तो सम्यग्दर्शन तो आपको इसी बात से हो जाएगा कि आपके अन्दर इतना बड़ा श्रद्धान है कि आपने अपनी सब कुछ चीजें दांव पर लगा दी और केवल एक बार विश्वास के साथ में आपने सम्यग्चारित्र को धारण कर लिया मतलब सम्यग्दर्शन के बिना इतना विश्वास कैसे आएगा आपको? और ज्ञान के लिए तो जिन्दगी पड़ी है, पढ़ते रहना-सुनते रहना तो यह भी एक तरीका है, यह गलत नहीं है।

आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने पंच-लब्धियों को train के उदहारण से समझाया

फिर यह समझे कि यहाँ पर जो उपशम-सम्यक्त्व बताया जा रहा है, यह प्रथमोपशम सम्यक्त्व हमेशा पंच-लब्धि के माध्यम से प्रारम्भ होता है और इसमें कोई भी लब्धि यदि है, तो वह हमारे ज्ञान में आ पाए, यह जरूरी नहीं है और आती भी नहीं है।आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज, जो गुरु महाराज के भी गुरु महाराज हुए हैं, उन्होंने एक **सम्यक्त्व-सार-शतक** के नाम से एक ग्रन्थ लिखा है। उसमें उन्होंने उसकी हिन्दी व्याख्या में एक बहुत अच्छा उदाहरण पंच-लब्धियों को समझाते हुए दिया है। जैसे- मान लो आप train और उसकी पटरियों को देखते हो जिस पर train चलती है। train के डिब्बे या पूरी train तो हो गई एक तरीके से

मोक्ष का मार्ग, अब वह आपको मोक्ष में ले जाएगी।

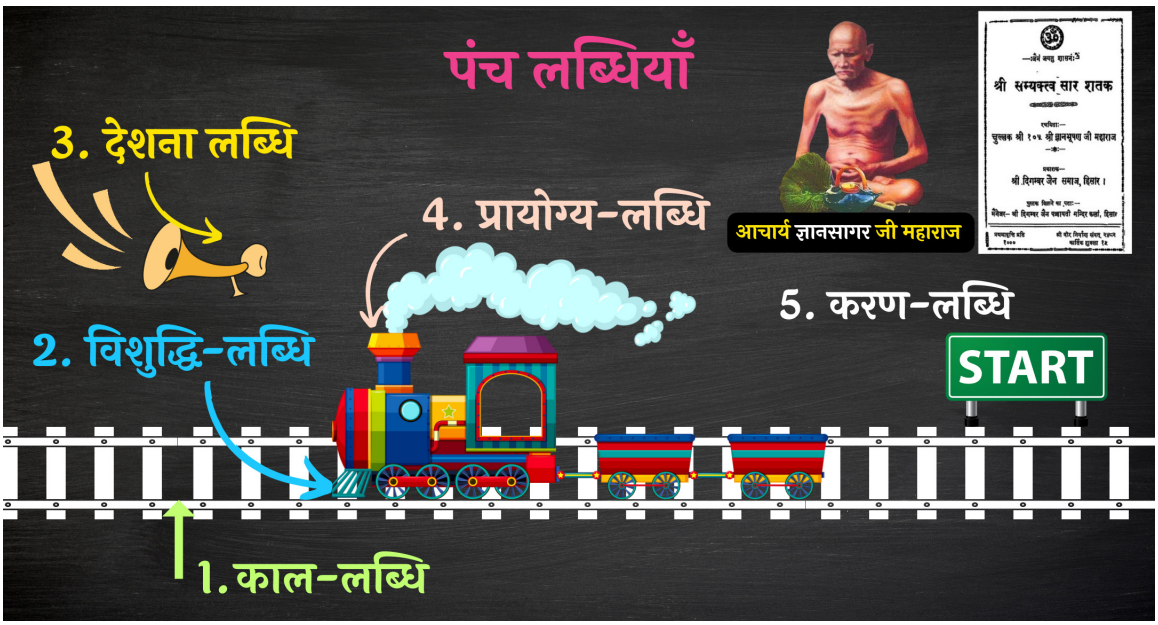
काल-लब्धि चाहिए! चलो ठीक है! मान लेते हैं काल-लब्धि चाहिए तो काल-लब्धि कैसी होती है? वह समझाते हुए कहते है- देखो! जो पटरियाँ बिछी हुई हैं, यह काल-लब्धि है। जो पटरियाँ बिछी हुई हैं, यह क्या हैं? काल-लब्धि है। फिर आगे वह समझाते हुए कहते हैं कि देखो! इस train को अगर हमें आगे बढ़ाना है, तो इसमें हम क्या देखे?

क्षयोपशम-लब्धि- इसमें कम से कम जैसे- मान लो engine है, तो उस engine के नीचे दो पहिये तो होने ही चाहिए। अगर पटरियाँ बिछी है, तो उसमें जो उसके पहिये हैं, वह हो गई उसकी क्षयोपशम-लब्धि।

विशुद्धि लब्धि- पटरी की बाधाएँ दूर करना

SCAN TO WATCH

फिर कहते हैं- विशुद्धि-लब्धि, विशुद्धि-लब्धि में क्या होगा? आप जो उस engine को देख रहे हो, उसके अन्दर आगे बढ़ने की जो क्षमता है और उसके अन्दर जो किसी भी तरीके का सामने कोई व्यवधान नहीं आना, इसके लिए आगे जो है, एक instrument जैसा लगा रहता है। पटरी पर आगे-आगे वह जैसे फावड़ा type का होता है न! वह आगे-आगे लगा रहता है, वह आगे-आगे सब बाधाएँ दूर करता चला जाता है। पटरी पर अगर कोई छोटी-मोटी कुछ चीजें पड़ी हो, वह सब हटाता चला जाता है, वह एक तरीके की क्या है? **विशुद्धि-लब्धि**। आगे-आगे का रास्ता check करते जाना, आगे-आगे का रास्ता बिल्कुल clear रखना, जहाँ पर हमें अपने engine को दौड़ाना है। इसका नाम क्या हो गया? विशुद्धि-लब्धि।



देशना लब्धि- गाड़ी चलने वाली है

देशना-लब्धि, देशना-लब्धि क्या है? जो आप के लिए सीटी बज रही है कि गाड़ी अब चलने वाली है, यह हो गई देशना-लब्धि। सीटी तो आज-कल भी बजती होगी? electricity से चलती है, इनमें सीटी बजती है कि नहीं बजती? हाँ! कोई न कोई signal तो होता ही होगा, signal किसी न किसी तरीके का मतलब गाड़ी को start होने के लिए, बस! तो वह हो गयी देशना लब्धि।

SCAN TO WATCH

प्रायोग्य-लब्धि - भाप बनने का नाम है

अब प्रायोग्य-लब्धि क्या है? जो उस engine के अन्दर जो boiler है, जहाँ पर भाप बनती है। वह उसका जो boiler है, उसमें जो हम निरन्तर process कर रहे हैं। उसको पहले बहुत गर्म किया जाता है, उसको मैंने भी अन्दर जा कर एक बार देखा। उसको बहुत heated किया जाता है। पहले उसके अन्दर खूब-खूब सारा material भरा जाता है, खूब उसके अन्दर आग पैदा की जाती है, फिर उसमें भाप बनती है। उसके बाद उसमें jerk लगता है, भाप बनने का नाम है, यह पूरा का पूरा हो गया- प्रायोग्य-लब्धि।

करण-लब्धि- गाड़ी चलना शुरू होना



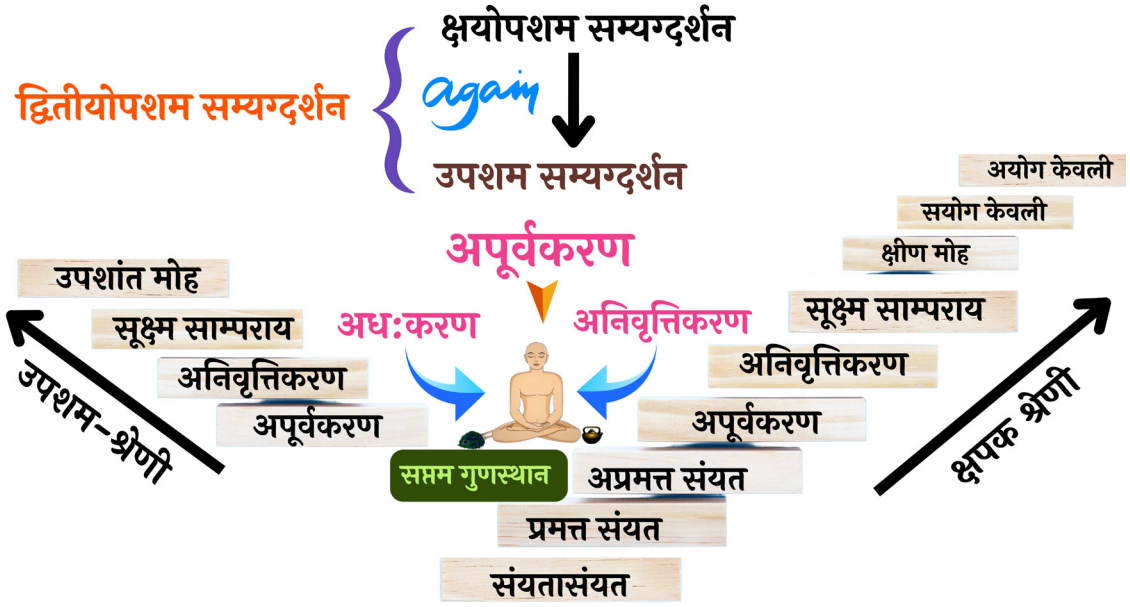
अब करण-लब्धि- the rail has started. अब वह गाड़ी जब start हो गई तो इसका नाम है- करण-लब्धि। जैसे ही start होगी, एक झटका आपको पीछे की ओर भी लगेगा, फिर वह गाड़ी चलना शुरू हो जाएगी। बैठे हो कि नहीं train में कि plane में ही बैठते रहते

हो? यह जो start होना है, अगर start हो गयी एक बार तो ऐसा नहीं कि वह बार-बार रुकती है। अब जो है वह इतनी अच्छी express गाड़ी होती है कि वह अब कम से कम अपने अगले station से पहले नहीं रुकेगी। बस! ये उसके station हो गए- **अधः प्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण, अनिर्वृत्तिकरण**। ऐसी fast express है कि ये तीन स्टेशनों को पार करने के बाद ही शान्त होगी, रुकेगी। इस तरह से यह गाड़ी का उदाहरण देकर आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज ने हमें पाँच-लब्धियों को समझाया। अब आप समझ लो काल-लब्धि क्या है? और बाकी की पाँच-लब्धियाँ क्या हैं?

अध:करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण परिणामों की उत्पत्ति

(जिन लब्धियों के बारे में कई लोग पूछते रहते हैं, महाराज! पाँच-लब्धि समझा दो, सुना दो। भैया! जब प्रसंग आएगा, समय आएगा तभी समझाएँगे। हर चीज को समझने की काल-लब्धि भी आनी चाहिए। अब यह काल-लब्धि आई, इसलिए हम आपको समझा पा रहे हैं तो इस तरह से आप इन पाँच-लब्धियों का वर्णन सुनने के बाद यह समझना कि ये हमारी योग्यताएँ हैं, जिनसे हमें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।)

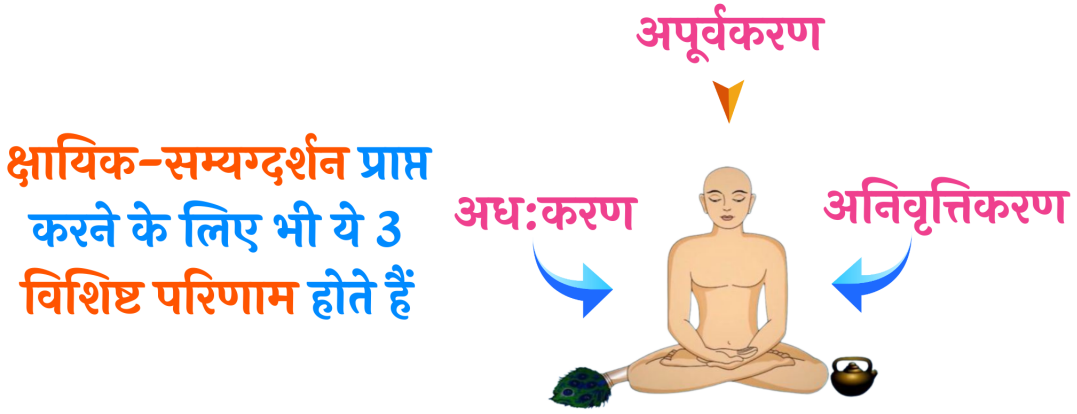
अब इन पाँच-लब्धियों में एक छोटी-सी बात आगे और आपको बताना है कि जैसे- ये **अध:करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, जो तीन परिणाम हैं, ये तीन परिणाम हमारे लिए कई बार तब-तब होंगे, जब-जब हम कुछ असंख्यात-गुणी निर्जरा वाला कोई विशेष कार्य करेंगे।** क्योंकि यह तो **उपशम-सम्यग्दर्शन** के साथ हो गया।



द्वितीयोपशम-सम्यग्दर्शन

जब हम श्रेणी के सम्मुख होते हैं तब हम **द्वितीयोपशम-सम्यग्दर्शन** करेंगे। उपशम-श्रेणी पर चढ़ने वाला जीव या तो उपशम-सम्यग्दृष्टि होगा या क्षायिक-सम्यग्दृष्टि होगा। क्षयोपशम-सम्यग्दृष्टि कभी श्रेणी पर चढ़ नहीं सकता तो उस समय पर जिसके लिए क्षायिक-सम्यग्दर्शन की योग्यता नहीं है, तो वह जीव जो क्षयोपशम-सम्यग्दृष्टि है, वह उपशम-श्रेणी चढ़ने से पहले सप्तम गुणस्थान में अपने सम्यग्दर्शन को फिर से उपशम-सम्यग्दर्शन करता है, जिसका नाम है- **द्वितीयोपशम-सम्यग्दर्शन** तो उस समय पर भी ये करण-परिणाम होंगे।

तीन करण परिणाम किसके लिए चाहिए?



अगर हम **क्षायिक-सम्यग्दर्शन** कभी प्राप्त करेंगे तो उसके लिए भी यही **अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण**, ये तीन विशिष्ट परिणाम होते हैं। यह हमेशा बड़े-बड़े कामों में किए जाते हैं। कभी detail इसकी आएगी तब आगे और बताएँगे। तत्त्वार्थ-सूत्र के नौवें अध्याय में इसकी detail आएगी। असंख्यात-गुणी कर्म-निर्जरा के वह दस स्थान बताये जाएँगे तब आपको उसके detail बताएँगे। अभी एक सामान्य से जानकारी है और भी कई काम होते हैं। उपशम-श्रेणी पर चढ़ने में, **चारित्र-मोहनीय का उपशमन करना है,** तो उसके लिए भी ये करण चाहिए। **चारित्र-मोहनीय का क्षय करना है,** तो उसके लिए भी ये करण-परिणाम चाहिए। ये तीन करण परिणाम इस तरह से विशेष रूप से जानना।

नई-छहढाला में गुणस्थान का अच्छा वर्णन है

जैसे उपशम-सम्यक्त्व के बारे में जाना, ऐसे ही औपशमिक-चारित्र यह कहाँ होगा अब? **उपशम-सम्यक्त्व होते ही उस आत्मा का गुणस्थान पहले से चौथा भी हो सकता है, पहले से पाँचवाँ भी हो सकता है और पहले से सातवाँ भी हो सकता है।** अभी तक तो यही सुना

था कि उपशम-सम्यग्दर्शन होने पर पहले से चौथा ही होता है। नई-छहढाला पढ़ो। उसमें तीसरी-ढ़ाल पढ़ना, उसमें आपको गुणस्थान का अच्छा वर्णन मिलेगा। उसके माध्यम से आपको समझ में आएगा कि केवल पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान की प्राप्ति के समय उपशम-सम्यग्दर्शन नहीं होता, उपशम-सम्यग्दर्शन के साथ हम पहले गुणस्थान से direct सातवाँ भी प्राप्त कर सकते हैं।

SCAN TO WATCH

उपशम-सम्यग्दर्शन के साथ में सातवाँ गुणस्थान भी हो सकता है



कैसे? वैसे ही जैसे अभी बता रहा था कि जो सीधा सम्यग्चारित्र का course अपना लेते हैं तो सम्यग्दर्शन तो उनके साथ हो ही गया। जिन्होंने देश संयम वाला सीधा course पकड़ लिया तो सम्यग्दर्शन का course तो उससे पहले का वह तो हो ही गया। यह कोई नियम नहीं है, जो आपने सुन रखा है और आपको पण्डितों ने पढ़ा रखा है कि पहले सम्यग्दर्शन कर लो फिर कुछ होगा। यह सिद्धान्त ऐसा है ही नहीं, यह तो एकांकी एक दृष्टिकोण है। पहले से चौथा गुणस्थान होता है, दुनिया में यह दृष्टिकोण तो बताया जा रहा है लेकिन यह नहीं बताया जा रहा कि पहले से direct पाँचवा भी होता है, पहले से direct सातवाँ भी होता है, यह भी सिद्धान्त है। कैसे होगा? इसी तरीके से होगा। जो महाव्रतों को direct धारण कर रहा है, उसका सम्यग्दर्शन हो ही गया। उसने गुरु के ऊपर श्रद्धा कर ली, इन्हीं व्रतों से मेरा कल्याण होगा इसी का नाम सम्यग्दर्शन और कुछ नहीं चाहिए ज्यादा-से-ज्यादा। इस तरह से उपशम-सम्यग्दर्शन के साथ में चौथा गुणस्थान भी है, उपशम-सम्यग्दर्शन के साथ में पाँचवाँ भी है और उपशम के साथ में सातवाँ भी है, यह सब प्रथमोपशम के साथ में घटित हो रहे हैं।

औपशमिक चारित्र आठवें से ग्यारहवें गुणस्थान में होगा

अगर हम उपशम-चारित्र देखेंगे तो उपशम-चारित्र जो होगा वह आठवें गुणस्थान से माना जाएगा। औपशमिक-चारित्र कहाँ से माना जाएगा? आठवें गुणस्थान से तो आठवाँ, नौवाँ, दसवाँ और ग्यारवाँ ये चार गुणस्थानों में यह औपशमिक चारित्र होगा। जो यहाँ लिखा है- '**सम्यक्त्व चारित्रे**।' इस सूत्र की व्याख्या अब पूर्ण होती है। इसके अलावा कोई द्वितीयोपशम-सम्यग्दर्शन है, तो वह आपको मैं बता चुका हूँ कि वह जो है **द्वितीयोपशम-सम्यग्दर्शन, वह सप्तम गुणस्थान में जब श्रेणी के अभिमुख होगा तब होगा।** जो उपशम श्रेणी के अभिमुख होगा, उसके लिए होगा। इस तरह से इस उपशम-सम्यक्त्व और उपशम-चारित्र, ये सभी जो औपशमिक-भाव हैं, इनके गुणस्थान, इनकी व्यवस्थाएँ, ये आपके ज्ञान में अच्छे ढंग से बैठ जाना चाहिए। (एक बार न बैठी हो तो बार-बार सुन-सुन करके भी बिठाने की कोशिश कर लेना क्योंकि आपका ज्ञान अब तो आपकी जेब में रखा हुआ है।)

अंजन चोर का श्रद्धान



जो गृहस्थ हैं, वह चौथे-पाँचवें गुणस्थान तक ही जा सकते हैं। जो दीक्षा लेते हैं, direct उनका सातवाँ गुणस्थान हो जाता है। ऐसे कितने पुराणों में घटनाएँ हैं। मुनि महाराज को देखा, मुनि महाराज के सामने पहुँचे, उन्हें कुछ नहीं आता। मान लो अंजन चोर था, सीधा उसको विद्या सिद्धि हुई, सीधा सेठ जिनदत्त के पास पहुँच गया, जिनदत्त सेठ सीधा उसको मुनि महाराज के पास ले गया। उसको श्रद्धा बैठ गई कि जब मैं जिनदत्त सेठ की बात से मरने से बच सकता हूँ और आकाशगामिनी विद्या मुझे सिद्ध हो सकती है, तो यह मेरे लिए कभी गलत

होगा ही नहीं। अगर यह कह रहा है कि मुझे अनन्त-सुख इस तपस्या से मिलेगा तो मिलेगा।



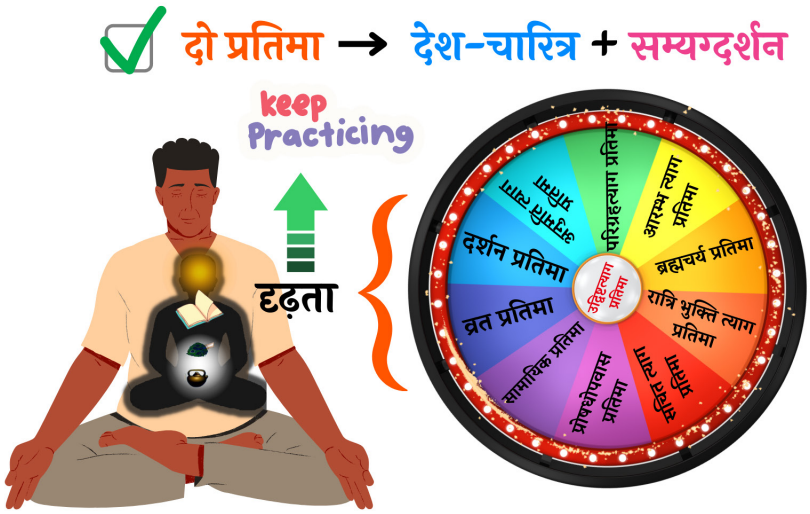
फिर मैं क्यों इन छोटे-छोटे सुखों के पीछे पड़ूँ। वह सीधा कहता है, बताओ! मेरी आत्मा का कल्याण कैसे होगा? चल! तुझे महाराज के पास ले चलते हैं और वह सीधा महाराज के पास ले गया। महाराज ने कहा- जब तक तू सब परिग्रह नहीं छोड़ेगा, मेरी तरह बिल्कुल निर्विकल्प होकर के ध्यान नहीं करेगा तब तक तेरे को कुछ नहीं होने वाला! ठीक है! उसने बात कही पक्की। अंजन चोर है, एक रात पहले वैश्या के पास था, चोरी कर रहा था और दूसरे ही दिन सुबह, वह पहुँच गया सुमेरू पर्वत पर और वहाँ पर जो मुनि महाराज बैठे ऋद्धिधारी, उनके सामने दीक्षा ले रहा है, इसी को बोलते हैं- "**जो कम्मे-सूरा सो धम्मे-सूरा।**"

सिर्फ सम्यग्दर्शन की बातें करने से कुछ नहीं होगा - तुम जैसे घर में रहने वाले बनिया लोगों का यह काम ही नहीं है इसलिए तुमने सारे ग्रन्थों को पढ़-पढ़ कर के, पढ़-पढ़ कर के, उनकी जो है ऐसी छँटाई कर डाली कि जितने भी कपड़े वाले सारे-के-सारे पण्डित हैं उल्टा ज्ञान देने लगे। बुरा नहीं मानना। हाँ! आजकल लोग बुरा भी बहुत जल्दी मान जाते हैं, क्षमा का दिन है। इसलिए कहना पड़ता है कि जब एक ही धारा में सब बहे जा रहे हैं, हमारी कोई सुन ही नहीं रहा तो समझो कि direct जब उस अंजन चोर को दीक्षा हो रही है, उसको सम्यग्चारित्र हो रहा है, तो सम्यग्दर्शन है नहीं उसके पास में? तत्त्व निर्णय तो है ही नहीं, तत्त्व की अभी सात तत्त्वों का ज्ञान तो है ही नहीं। अरे! यही ज्ञान है। समझ आ रहा है? पहले दिन सब बता चुका हूँ- जो गुरु के वचनों पर, अरिहन्त भगवान की वाणी पर विश्वास रखता है, उसे सप्त-तत्त्वों का ज्ञान होता है और तुम तत्त्व का ज्ञान करते रहो-कराते रहो, कुछ नहीं होने वाला क्योंकि तुम्हें गुरुओं पर श्रद्धा नहीं और तुम्हें चारित्र देख करके, तुम्हारे भाव कभी कुछ चारित्र के बनते नहीं। हाँ! बुरा लगे तो लग जाए, जिनवाणी के विरुद्ध तो नहीं बोल रहा न! बस! हमें क्या फर्क पड़ रहा है? ये जो एकान्त पट्टी पढ़ रखी है लोगों ने, सम्यग्दर्शन! सम्यग्दर्शन! इसको थोड़ा change करो, attitude अपना change करो अब।

सम्यग्चारित्र ग्रहण करने की विधि

सम्यग्दर्शन के साथ भी अगर कोई देशव्रती बनता है, तो भी वह गृहस्थ हो सकता है और direct अगर किसी गृहस्थ के अन्दर एकदम से भाव आ जाए कि महाराज! अब बहुत हो गया, संसार मैंने सब देख लिया। आप तो मुझे बताओ आत्म-कल्याण कैसे करना है? तो भैया! दो प्रतिमा लिए बिना तेरा कल्याण नहीं होगा। चल! तू दो प्रतिमाएँ लेने को तैयार है? हाँ! महाराज! आप जो कहो मैं सब करने को तैयार हूँ। क्या दिक्कत है उसको? देश-चारित्र हो गया। सम्यग्दर्शन के बिना इतनी श्रद्धा आएगी नहीं, इतना विश्वास आएगा ही नहीं। अब जो व्रत लेने के बाद में, जो वह उसका निरन्तर अभ्यास करेगा, यही उसके अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दृढ़ता को बनाता चला जाएगा। तो यह विधि है और ऐसा होता आया है।

लेकिन आज इस पंचम -काल में पढ़े-लिखे गृहस्थ लोगों ने, लोगों को बरगला रखा है। इसलिए गृहस्थ लोग न प्रतिमा लेते हैं, न व्रत लेते हैं और न चारित्र की कोई भावना करते हैं। सम्यग्दर्शन-सम्यग्दर्शन गाते रहते हैं।



क्षायिक भाव कितने प्रकार के हैं?

ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोगोप-भोग-वीर्याणि च ॥ 2.4॥

ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्याणि च

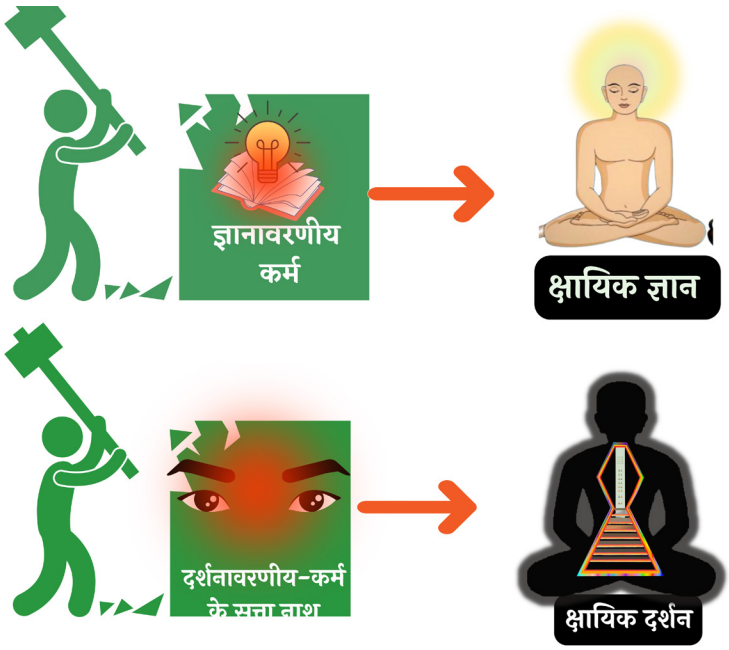
दरश ज्ञान उपभोग सह, लाभ भोग बल दान ।
सम्यक चारित भाव नव, विधि छय से ही जान॥ 2.4॥



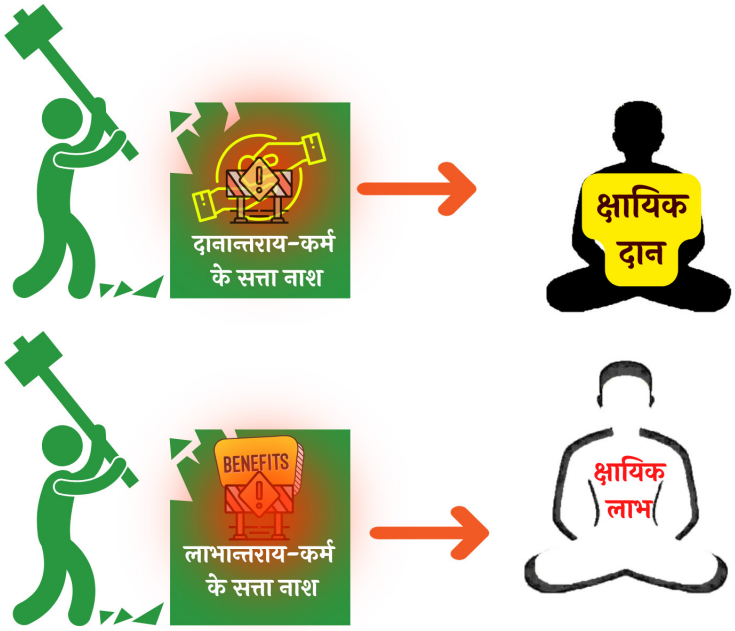
अब क्षायिक-भावों को बताने के लिए, यह सूत्र आया है। हम लोगों ने दूसरे ही सूत्र में पढ़ा था न? क्षायिक भाव कितने प्रकार के? नौ प्रकार। इसमें देखो, गिनो, कितने प्रकार के लिखे हैं? ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य कितने हुए? सात हुए। दो भूल गए क्या महाराज? ये सूत्र ग्रन्थ हैं, इनको लगाया जाता है। कैसे लगाया जाता है? आगे "च" लिखा हुआ है। **सूत्र में एक भी शब्द व्यर्थ का नहीं होता है।** समझ आ रहा है? "च" को "चा" नहीं पढ़ना, कई लोग "चा" पढ़ते हैं। **'वीर्याणि चा' 'चा'** नहीं है वह, **'च'** है, **'वीर्याणि च'**। 'च' का मतलब होता है, जो हम ऊपर कह आए हैं, उसको इसके साथ जोड़ लेना। जो बहुत बड़े सूत्रकार होते हैं, सूत्र वचन बोलने वाले होते हैं, मुनि महाराज होते हैं, वह अल्प बोलते हैं, सारभूत बोलते हैं और एक-बार बोलने के बाद में वह चीजें बार-बार दोहराते नहीं है। लिखने की यह पद्धति है। समझाने में तो दस बार भी कहना पड़ेगा, वह अलग बात है। 'च' शब्द से क्या लेना? जो ऊपर अभी हमने क्या लिखा था? **सम्यक्त्व-चारित्रे** तो इसको यहाँ 'च' शब्द से जोड़ना मतलब सम्यक्त्व और चारित्र, ये दो चीजें और जोड़ लेना और सब के आगे क्षायिक, क्षायिक, क्षायिक, क्षायिक लगा देना। तो क्या हो जाएगा?

1. क्षायिक-ज्ञान
2. क्षायिक-दर्शन
3. क्षायिक-दान
4. क्षायिक-लाभ
5. क्षायिक-भोग
6. क्षायिक-उपभोग
7. क्षायिक-वीर्य
8. क्षायिक-सम्यक्त्व
9. क्षायिक-चारित्र

यह कितने हो गए? यह नौ भाव हो गए, इन नौ भावों में हर भाव कैसा है? **क्षायिक-भाव** है। समझ आ रहा है?



क्षायिक भावों का वर्णन



क्षायिक का मतलब क्या हो गया? **किसी न किसी कर्म के क्षय से यह भाव उत्पन्न हुआ है।** क्षय का मतलब क्या हो गया? उस आत्मा के अन्दर अत्यन्त उसका अभाव हो गया। अत्यन्ताभाव का मतलब? उसका बिल्कुल सत्ता-नाश हो गया। अब तो समझ में आ गया न? सत्ता-नाश। अपने कर्मों का सत्ता-नाश करना और किसी का सत्ता-नाश नहीं करना। मतलब कि क्षायिक-ज्ञान उत्पन्न हुआ तो कौन से कर्म का सत्ता-नाश हुआ?

SCAN TO WATCH

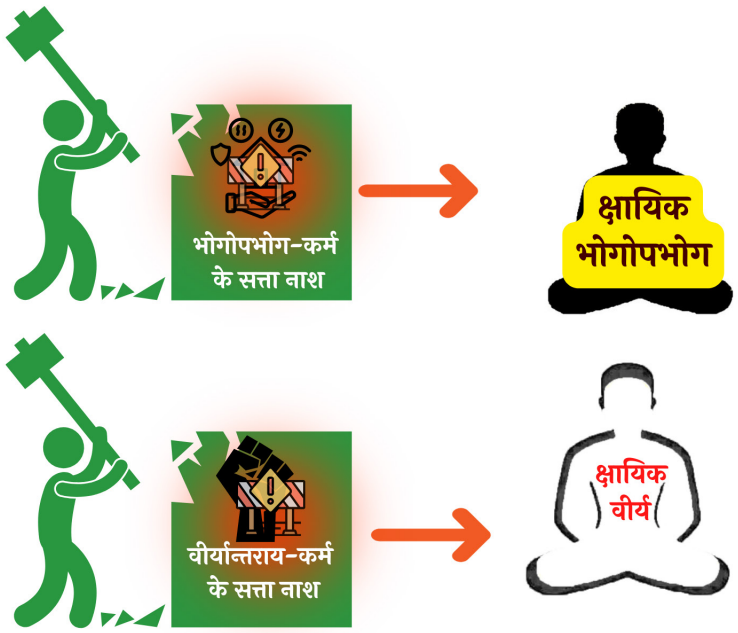
- ज्ञानावरणीय कर्म का। **ज्ञानावरणीय कर्म के सत्ता-नाश से आत्मा में क्षायिक-ज्ञान उत्पन्न होगा।**

- फिर **ज्ञान** के बाद में, क्षायिक-दर्शन उत्पन्न हुआ। कौन से कर्म के नाश से होगा? **दर्शनावरणीय कर्म के सत्ता नाश से आत्मा में क्षायिक-सम्यग्दर्शन होगा**

- **दान**- क्षायिक दान किसके सत्ता-नाश से होगा? कोई है कर्म ऐसा जो दान में विघ्न उत्पन्न करता है? **दान अन्तराय** कर्म! दान अन्तराय कर्म के सत्ता नाश से क्षायिक-दान उत्पन्न होगा।

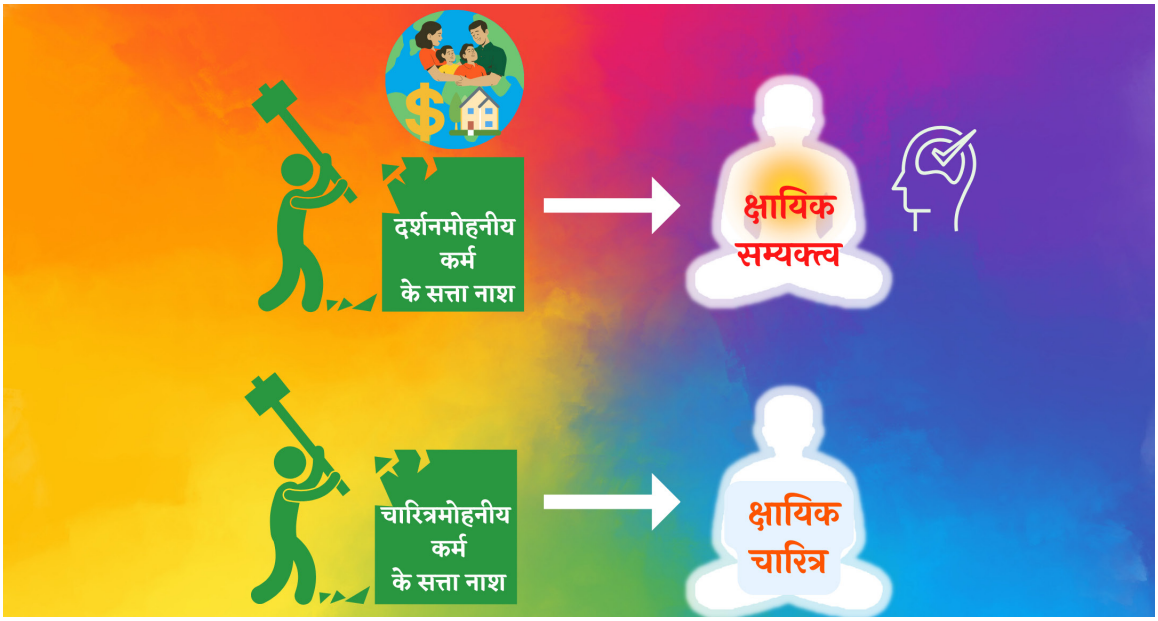
• फिर **लाभ**, **लाभ अन्तराय** कर्म के सत्ता-नाश से आत्मा में क्षायिक-लाभ की प्राप्ति होगी।

• फिर **भोग**, **भोग अन्तराय** कर्म के नाश से, नाश से मतलब? सत्ता-नाश से, आत्मा में क्षायिक-भोग की प्राप्ति होगी।
• फिर **उपभोग**, **उपभोग अन्तराय** कर्म के सत्ता-नाश से आत्मा में क्षायिक-उपभोग की प्राप्ति होगी।
• फिर **वीर्यान्तराय** कर्म के सत्ता नाश से आत्मा में क्षायिक-वीर्य की प्राप्ति होगी।
• फिर **सम्यक्त्व** क्षायिक, सम्यक्त्व भी है न! दर्शन-मोहनीय कल बताया था न! सम्यक्त्व का विरोधी कौन है? पूरा दर्शन-मोहनीय कर्म। दर्शन-मोहनीय कर्म के; एक दर्शनावरणीय कर्म अलग है और मोहनीय कर्म के भेद में, जो दर्शन-मोहनीय कर्म आता है, वह दर्शन-मोहनीय कर्म अलग है, ऐसा अन्तर अलग-अलग जानना। **दर्शन-मोहनीय कर्म के सत्ता-नाश से आत्मा में क्षायिक-सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी।**
• क्षायिक-**चारित्र, चारित्र-मोहनीय कर्म के सत्ता-नाश से आत्मा में क्षायिक-चारित्र की प्राप्ति होगी।**



ऐसे हर कर्मों के नाश से आत्मा में ये नौ क्षायिक-भाव प्राप्त हो जाते हैं। 'च' शब्द का जो पेट है, वह बहुत-बड़ा है। बड़ा इसलिए है अगर 'च' लिख दिया तो जो कुछ भी आप कहो, महाराज यह छूट गया क्या? क्षायिक भाव नौ ही होते हैं क्या? और भी तो हो सकते हैं और भी बहुत से

भाव हो सकते हैं। मान लो, **एक सिद्धत्व-भाव ही है। यह किसमें आएगा?** आचार्य कहते हैं- 'च' में सब समाते चला जाएगा। जो भी बचा रह गया है, कुछ भी, जो आपको और भी क्षायिक भाव समझ में आएँ, वह सब किसमें जाएँगे? हाँ! इसी सूत्र के 'च' शब्द के अन्दर डाल देना। च शब्द का पेट इसलिए बड़ा कह रहा था मैं। समझ आ रहा है? पारा देखा न आपने? पारा! उसमें कितना भी सोना डालते जाओ। सबको खाता जाएगा-खाता जाएगा-खाता जाएगा। ऐसे यह 'च' शब्द पारा की तरह होता है। इन सूत्रों के एक-एक शब्दों के अपने बड़े गम्भीर अर्थ होते हैं, इसलिए ये सूत्र कहलाते हैं।



बोलो महावीर भगवान की जय!

सारांश

1. हमने सूत्र तीन **सम्यक्त्व-चारित्रे** की व्याख्या में उपशम-सम्यक्त्व के लिए **आवश्यक** पाँच लब्धियों के बारे में जाना
2. ये लाब्धियाँ हैं

- **क्षयोपशम लब्धि:** कर्मों के क्षयोपशम से कर्मों के पूर्वबद्ध अप्रशस्त अनुभाग प्रति समय अनन्त गुणा घटता चला जाता है
- **विशुद्धि लब्धि:** क्षयोपशम-लब्धि होने के बाद, विशुद्धि-लब्धि के परिणामों में अन्तर्मुहूर्त तक निरन्तर केवल पुण्य प्रकृति का ही बन्ध होता है
- **देशना लब्धि:** में छह द्रव्य, नौ पदार्थों को जानने वाले उपदेशक का सानिध्य या देशना का लाभ होता है
- **प्रायोग्य लब्धि:** में विशुद्धि निरंतर बढ़ती है; इसमें कर्मों की स्थितियाँ घटकर अन्तः कोड़ा-कोड़ी से कम रह जाती हैं
- **करण लब्धि:** में अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण के विशिष्ट परिणाम होते हैं जिनके माध्यम से मिथ्यात्व आदि कर्मों का उपशमन होता है। इन परिणामों के माध्यम से उनकी स्थिति और अनुभाग में कमी लाई जाती है या इतना दबा दिया जाता है कि वह एक अन्तर्मुहूर्त के लिए किसी भी तरह से न उदय में आ पाएँ और न ही एक अन्तर्मुहूर्त के लिए उदय के योग्य रह पाएँ, इस तरह की स्थिति को करण लब्धि कहते हैं

3. कारण लब्धि सिर्फ भव्य जीवों के होती हैं
4. शेष चार लब्धियाँ भव्य-अभव्य दोनों में सम्भव हैं
5. भव्य जीव में पाँच लब्धियों के माध्यम से कार्य प्रति समय अन्तर-अन्तर अन्तर्मुहूर्त में घटित होंगे और इन्हीं परिणामों के फलस्वरूप उसे सम्यग्दर्शन का लाभ मिलेगा
6. हमने जाना चूँकि किसी भी कार्य के लिए काल की एक मुख्यता होती है, आचार्य कहते हैं कि इन पाँच लब्धियों के साथ में काल-लब्धि भी जोड़ना चाहिए
7. जिस समय पर जो काम हो जाए, वही समय उसकी काल-लब्धि कहलाती है
8. काल-लब्धि अनुसार अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल की अवधि शेष रह जाने पर ही जीव सम्यग्दर्शन के योग्य होता है
9. इससे **विद्वान** लोगों को भ्रमित भी करते हैं

- जब सम्यग्दर्शन अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल के अवशिष्ट रह जाने पर ही होगा तो अब हम क्या कर सकते हैं?
- हमने जाना आचार्य वीरसेन महाराज की धवला आदि टीकाओं में स्पष्ट है सम्यग्दर्शन के परिणामों से वह अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल किया जाता है, काल अपने आप नहीं आता

10. अगर हम काल-लब्धि का वर्णन कर रहे हैं तो ऐसा कहेंगे कि जब इतना काल बचेगा तभी सम्यग्दर्शन होगा

11. और अगर हम सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से देखेंगे तो सम्यग्दर्शन होने पर ही यह अर्ध-पुद्गल-परावर्तन मात्र काल बचेगा
12. इससे हमें पता लगा कि कभी यह नहीं मानना कि काल-लब्धि आएगी तो काम हो जाएगा
13. आचार्यों ने काल-लब्धि को तीन रूपों से व्याख्यायित किया है-
- एक तो अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल के साथ में,
- दूसरा कर्मों की स्थिति मध्यम रह जाए तब और
- एक तीसरा बताया कि जब कोई जीव भव्य हो, संज्ञी पंचेन्द्रिय हो, विशुद्धि से सहित हो, जागृत हो, पर्याप्तक हो तभी वह सम्यग्दर्शन के योग्य होता है

14. अब इन तीनों ही काल-लब्धियों को अगर हम देखें तो कोई भी काल-लब्धि ऐसी नहीं है, जिसके हो जाने पर अपने आप सम्यग्दर्शन हो जाता हो यह तो योग्यता बताई गई और जब ऐसा होगा तब इसकी योग्यता अवश्य ही होगी
15. हमने समझा कि काल-लब्धि का मतलब सिर्फ एक योग्यता बताना है। ऐसा नहीं है कि ऐसा होने पर नियम से सम्यग्दर्शन हो ही जाएगा।
16. संज्ञी-पंचेन्द्रिय होना, पर्याप्तक होना, विशुद्ध होना, जागृत होना आदि सामान्य योग्यताएँ हैं। इन योग्यताओं से सम्यग्दर्शन नहीं होता लेकिन यह होगा तो इन योग्यताओं के होने पर ही होगा।
17. काल-लब्धि भी एक सामान्य लब्धि ही है
18. तीनों प्रकार की काल लब्धि **पंच-लब्धियों** में गर्भित हैं
19. सम्यग्दृष्टि का संसार **अनन्त** से घटकर अर्ध-पुद्गल-परावर्तन प्रमाण रह जाता है
- यह संसार परिभ्रमण की अपेक्षा बहुत बड़ा काल, अनन्त जैसा जी काल है
- लेकिन केवली सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान की अपेक्षा से यह सीमित है

20. भगवान आदिनाथ के समय से लेकर मरीचि का जीव **पूरे चौथे** काल में भटकता रहा; तब उसकी लब्धि फिर आई
- इससे हमें सोचना चाहिए कि हम प्रमादी न बनें और न ये सोचें कि सम्यग्दर्शन होने पर ही सब कुछ हो जाएगा
- अन्तरंग में चारित्र, व्रत, संयमादि के प्रति प्रमाद भटकाता है

21. हमें विचार करना चाहिए कि जब सम्यग्दर्शन के बाद भी जब इतना संसार है तो जिनको सम्यग्दर्शन की कोई guarantee नहीं है उनका कितना संसार है
22. हमने जाना कि एकान्त धारणा कि पहले सम्यग्दर्शन कर लो फिर सम्यग्चारित्र तो आ ही जाएगा भी **मिथ्या धारणा** है
- अगर आप बड़ी चीज पर focus करोगे तो उससे पहले मिलने वाली चीज तो आपके अन्दर आ ही जाएगी
- भगवती आराधना आदि ग्रन्थों के अनुसार सम्यग्चारित्र की आराधना करने से सम्यग्दर्शन,

सम्यज्ञान की आराधना हो जाती है
- अगर सम्यग्चारित्र पर केन्द्रित होंगे तो से सम्यग्दर्शन स्वतः हो जायेगा

23. अगर आपने आप्त और गुरुओं की बात पर श्रद्धान करके, सम्यग्चारित्र धारण कर लिया तो यह श्रद्धान ही आपके लिए सम्यग्दर्शन का कारण है
24. हमने जाना प्रथमोपशम सम्यक्त्व हमेशा पंच-लब्धि के माध्यम से प्रारम्भ होता है
25. आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने **सम्यक्त्व-सार-शतक** ग्रन्थ में पंच-लब्धियों को train के उदाहरण से समझाया।
- train के डिब्बे या पूरी train तो हो गई **मोक्ष का मार्ग**, अब वह आपको मोक्ष में ले जाएगी
- जो पटरियाँ बिछी हुई हैं वह **काल-लब्धि** है
- train में engine है, उसमें जो उसके पहिये हैं, वह हो गई उसकी **क्षयोपशम-लब्धि**
- पटरी पर व्यवधान हटाने वाला यन्त्र हो गया विशुद्धि लब्धि
- गाड़ी सीटी बजाकर चलने वाली है, यह है देशना लब्धि
- engine के अन्दर boiler में भाप बनना, उसमें jerk लगता यह हैं **प्रायोग्य-लब्धि**
- गाड़ी चलना शुरु होना है **करण-लब्धि**

26. उसके station हो गए- **अधः प्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण, अनिर्वृत्तिकरण**
27. यह train ऐसी fast express है कि ये तीन स्टेशनों को पार करने के बाद ही शान्त होगी, रुकेगी
28. हमने जाना कि पाँचों लब्धियाँ योग्यतायें हैं और काल-लब्धि इन्हीं में गर्भित है
29. काल-लब्धि भी हमें काल-लब्धि आने पर ही समझ आयेगी :)
30. हमने जाना कि उपशम-श्रेणी पर उपशम-सम्यग्दृष्टि या क्षायिक-सम्यग्दृष्टि ही चढ़ते हैं
- क्षयोपशम-सम्यग्दृष्टि नहीं
- वे पहले सप्तम गुणस्थान में अपने सम्यग्दर्शन को फिर से उपशम-सम्यग्दर्शन करता है
- इसे द्वितीयोपशम-सम्यग्दर्शन कहते हैं

31. जब भी कुछ असंख्यात-गुणी निर्जरा के विशेष कार्य होते हैं तो अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के विशिष्ट परिणाम होते हैं जैसे
    - क्षायिक-सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करना
    - चारित्र-मोहनीय का उपशमन करना, उसका क्षय करना
    - द्वितीयोपशम-सम्यग्दर्शन करना
32. प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन होते ही उस आत्मा का गुणस्थान पहले से चौथा, छटवाँ और direct सातवाँ भी हो सकता है
    - गृहस्थ के लिए चौथे-पाँचवें गुणस्थान और मुनि महाराज सातवें गुणस्थान में जा सकते हैं

33. एक एकांत भ्रान्ति जो कुछ पण्डितों ने पढ़ा राखी है कि पहले सम्यग्दर्शन कर लो फिर कुछ होगा
    - उन्हें कभी भी चारित्र के भाव नहीं होते
34. सिद्धान्त से जो महाव्रतों को direct धारण कर रहा है, उसे सम्यग्दर्शन हो ही जाता है
    - उसने गुरु के ऊपर श्रद्धा कर ली और व्रतों से कल्याण होगा यह मान लिया तो इसी का नाम सम्यग्दर्शन है
35. हमने जाना औपशमिक-चारित्र आठवें, नौवें, दसवें और ग्यारवें गुणस्थानों में होता है
36. हमने अंजन चोर की कहानी से समझा कि एक चोर जो रात्रि में वैश्या के पास था, सही श्रद्धान होने पर दूसरे दिन सुबह सुमेरु पर्वत पर ऋद्धिधारी मुनि महाराज से दीक्षा ले लेता है
    - जो कम्मे-सूरा सो धम्मे-सूरा
    - अंजन चोर ने direct दीक्षा ली, उसको सम्यग्चारित्र हो रहा है
    - बिना तत्त्वों के ज्ञान के सम्यग्दर्शन हो रहा है क्योंकि
    - गुरु और अरिहंत भगवान के वचनों पर अटूट विश्वास रखने से उसे सप्त-तत्त्वों का ज्ञान रहा है
37. जो एकांती तत्त्व ज्ञान से सम्यग्दर्शन का ढिंढोरा करते हैं और जिन्हें गुरुओं पर श्रद्धा नहीं, चारित्र लेने के कभी भाव नहीं - उन्हें तत्त्व ज्ञान का कोई लाभ नहीं
38. हमने जाना कि गृहस्थ का भी दो प्रतिमा लिए बिना कल्याण नहीं होगा
39. व्रत लेने के बाद निरन्तर अभ्यास से उसके अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दृढ़ता बढ़ती जाती है
40. हमने सूत्र चार में जाना कि क्षायिक भाव नौ प्रकार के होते हैं
    - ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से क्षायिक-ज्ञान
    - दर्शनावरणीय कर्म के क्षय से क्षायिक-सम्यग्दर्शन
    - दान-अन्तराय कर्म के क्षय से क्षायिक-दान
    - लाभ अन्तराय कर्म के क्षय से क्षायिक-लाभ
    - भोग अन्तराय कर्म के क्षय से क्षायिक-भोग
    - उपभोग अन्तराय कर्म के क्षय से क्षायिक-उपभोग
    - वीर्यान्तराय कर्म के क्षय से क्षायिक-वीर्य
    - दर्शन-मोहनीय कर्म के क्षय से क्षायिक-सम्यक्त्व
    - चारित्र-मोहनीय कर्म के क्षय से क्षायिक-चारित्र की प्राप्ति होती है
41. सूत्र में सिर्फ सात प्रकार दिए हैं मगर "च"शब्द से सम्यक्त्व और चारित्र की वृत्ति होने से नौ प्रकार हो जाते हैं
42. क्षायिक मतलब किसी कर्म के क्षय से उत्पन्न भाव
43. क्षय का मतलब उस आत्मा के अन्दर अत्यन्त अभाव हो जाना

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1.किस लब्धि में आचार्य महाराज के उपदेश का लाभ मिलता है?
1. क्षयोपशम लब्धि
2. विशुद्धि लब्धि
3. देशना लब्धि
4. प्रायोग्य लब्धि

Q2.कौन सी लब्धि केवल भव्य जीवों को होती है ?
1. क्षयोपशम लब्धि
2. विशुद्धि लब्धि
3. करण लब्धि
4. प्रायोग्य लब्धि

Q3.किस लब्धि में अन्तर्मुहूर्त तक केवल पुण्य प्रकृति का बंध होता है ?
1. क्षयोपशम लब्धि
2. विशुद्धि लब्धि
3. देशना लब्धि
4. प्रायोग्य लब्धि

Q4.सम्यग्दर्शन के लिए क्या योग्यता (काल लब्धि) चाहिए ?
1. भव्य संज्ञी पचेन्द्रिय
2. विशुद्धि सहित जाग्रत अवस्था
3. पर्याप्तक
4. उपयुक्त तीनों

Q5.प्रथम लब्धि कौन सी हैं?
1. क्षयोपशम लब्धि
2. कारण लब्धि
3. विशुद्धि लब्धि
4. देशना लब्धि

Q6.कर्मों की स्थिति उत्कृष्ट है या नहीं यह किसके ज्ञान का विषय है?
1. भव्य जीव
2. अभव्य जीव
3. केवलज्ञानी

Q7.काल लब्धि का मतलब?
1. जीव के सम्यक दर्शन होने का काल बताना
2. जीव को सम्यक दर्शन प्राप्त कराने की योग्यता बताना
3. दोनों गलत

Q8.चौथे काल का प्रमाण?
1. एक कोड़ा कोड़ी सागर
2. 40000 वर्ष कम एक कोडाकोड़ी सागर
3. 42000 वर्ष कम एक कोडाकोड़ी सागर

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q9.एक बार सम्यग्दर्शन होने पर?
1. जीव को व्रत- संयम के प्रति प्रमाद होना चाहिए
2. प्रमाद नहीं होना चाहिए
3. सम्यक चारित्र के लिए आगे बढ़ना चाहिए

Q10. एक कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण?
1. संख्यात वर्ष
2. असंख्यात वर्ष
3. अनंत वर्ष

Q11.प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन की शुरुआत कहाँ से होती है ?
1. चौथे गुणस्थान से
2. पांचवे गुणस्थान से
3. छटे गुणस्थान से
4. सांतवे गुणस्थान से

Q12.द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन की शुरुआत कहाँ से होती है ?
1. चौथे गुणस्थान से
2. पांचवे गुणस्थान से
3. छटे गुणस्थान से
4. सांतवे गुणस्थान से

Q13.अध: करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण की आवश्यकता कब होती है ?
1. उपशम सम्यग्दर्शन में
2. क्षायिक सम्यग्दर्शन में
3. उपरोक्त दोनों में

Q14. औपशमिक चारित्र कौन से गुणस्थान में होगा ?
1. पहले से पांचवा
2. पांचवे से सांतवा
3. आठवें से ग्यारहवें
4. छटे से ग्यारहवें

Q15.द्वित्तीय उपशम सम्यग्दर्शन कब होगा?
1. कभी भी
2. प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन के तुरंत बाद
3. जब जीव उपशम श्रेणी के सन्मुख होगा
4. जब जीव क्षपक श्रेणी के सन्मुख होगा

Q16.क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणी?
1. सीधे चढ़ जाएगा
2. छठवें गुणस्थान में फिर से उपशम सम्यग्दर्शन करेगा
3. सातवें गुण स्थान में फिर से उपशम सम्यग्दर्शन करेगा

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1. पांच लब्धियों का महत्व बताइये।
2. पाप प्रकृतियों का अनुभाग अनन्तगुणा हीन किस लब्धि में होता है?
3. पहली लब्धि का नाम बताइये।
4. तीन करण परिणामों के नाम बताइये।
5. किन लब्धियों को अभव्य जीव प्राप्त कर सकता है और किसको नहीं?
6. सम्यग्दर्शन प्राप्ति के लिये आवश्यक योग्यताएं बताइये।
7. सम्यक्त्वसार शतक ग्रंथ के रचयिता कौन है?
8. क्या अनादि मिथ्यादृष्टि जीव सीधे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है?
9. कौनसा सम्यग्दृष्टि जीव श्रेणी पर चढ़ने योग्य होता है?
10. तीन करण परिणाम कब-कब होते हैं?
11. अंजन चोर की कहानी से आपको क्या शिक्षा मिलती है?

प्रवचन 03

तत्त्वार्थ-सूत्र ग्रन्थराज के दूसरे अध्याय में, जीव के भावों का वर्णन चल रहा है।

पारिणामिक भाव ही कर्म की अपेक्षा नहीं रखता है

5 प्रकार के जीव के भाव बताए गए हैं, जो कि कर्म के ही ऊपर निर्भर हैं। एक मात्र पारिणामकि-भाव ही ऐसा होता है, जो कर्म की अपेक्षा नहीं रखता। कर्म की अलग-अलग जो दशाएँ बनती हैं, उनके आधार पर अन्य भाव उत्पन्न होते हैं। कर्म का उदय तो सभी लोग जानते ही हैं और केवल उदय को ही सभी लोग समझते हैं। 'कर्म का उदय चल रहा है' महाराज! क्या करें? कर्म का उदय तो सब जान रहे हैं लेकिन केवल कर्म में एक उदय वाली ही दशा नहीं होती, उदय के अलावा और भी कुछ होता है। यह अब आप को जानना है। कर्म के उदय में तो हमारे अन्दर अनुभव होता ही है और उदय के कारण से हमारे अन्दर औदयिक-भाव पैदा होते हैं लेकिन कर्म का जब उपशमन होता है, क्षय होता है, क्षयोपशम होता है, तो उनसे भी भाव पैदा होते हैं। यह भी अब आपको जानकारी रखना है।

क्षायिक भाव का परिचय

उपशम से होने वाले भी भाव है, जो पहले बताए गए- औपशमिक-सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र। इसके बाद में क्षय से उत्पन्न होने वाले जो कर्म के भाव हैं, उनके बारे में भी आपको बताया गया और उसी की चर्चा अभी चल रही है। 9 प्रकार के यह क्षायिक-भाव हैं, जिनका सूत्र पढ़ करके पहले आपको अर्थ तो बता दिया गया था।

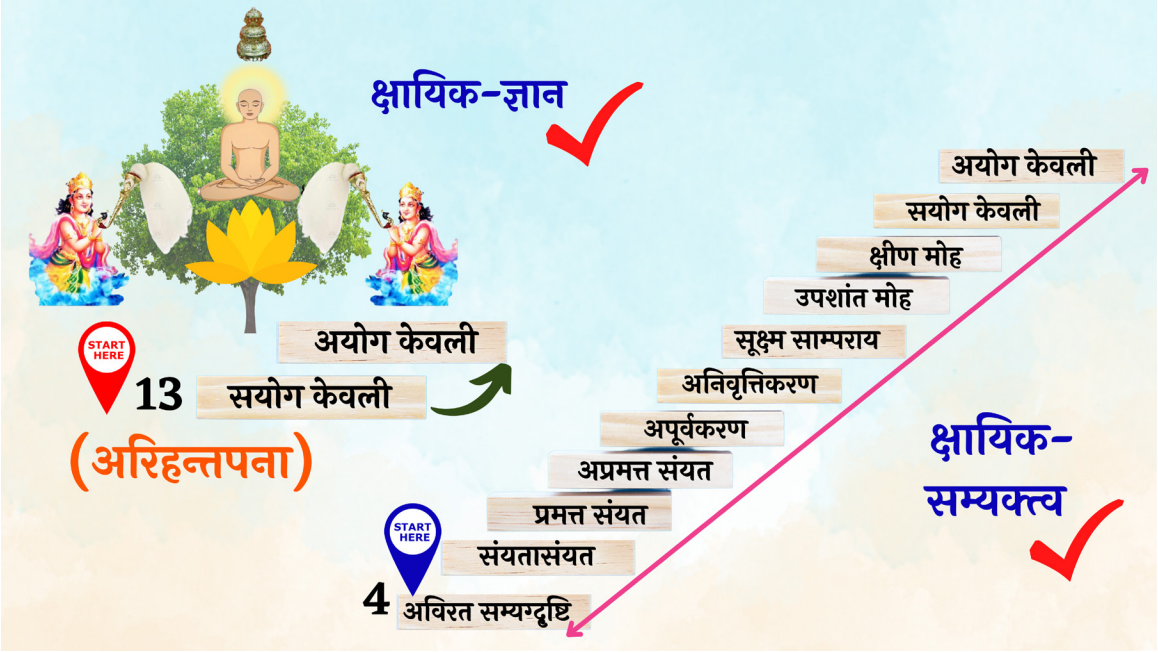
ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोगोप-भोग-वीर्याणि च ॥2.4॥

ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्याणि च

दरश ज्ञान उपभोग सह, लाभ भोग बल दान ।
सम्यक चारित भाव नव, विधि छय से ही जान॥2.4॥

अगर हम थोड़ा-सा जानना चाहे, कर्म के क्षय से होने वाले जो क्षायिक-भाव हैं, उनका थोड़ा-सा हम परिचय और प्राप्त कर सकते हैं। जैसे कि क्षायिक दान, क्षायिक-ज्ञान जो सबसे पहले बताया गया है। क्या वस्तु है क्षायिक-ज्ञान? **ज्ञान का यह क्षायिक-भाव है।** अब आप यह भी समझने लग जाएँ कि **सम्यग्दर्शन का क्षायिक-भाव अलग चीज है और ज्ञान का क्षायिक-भाव अलग चीज है। सम्यग्दर्शन में जब क्षायिक-भाव आएगा तो वह कहलाएगा- क्षायिक-सम्यक्त्व,** जिसका भी वर्णन इसी सूत्र में **"च"** शब्द से कर दिया गया

और जब **ज्ञान का क्षायिक-भाव आएगा तो वह कहलाएगा क्षायिक-ज्ञान।**



क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक ज्ञान में गुणस्थानों की अपेक्षा से अन्तर होता है

सभी क्षायिक-भाव एक साथ उत्पन्न नहीं हो जाते। क्षायिक-सम्यक्त्व में और क्षायिक-ज्ञान में गुणस्थानों की अपेक्षा से अन्तर दिखाई देता है। क्षायिक-सम्यक्त्व तो चतुर्थ गुणस्थान में भी हो सकता है। **चौथे से लेकर के आगे के सभी गुणस्थानों में क्षायिक-सम्यक्त्व रह सकता है,** रहता है। लेकिन क्षायिक-ज्ञान चौथे गुणस्थान में नहीं होगा, क्षायिक-ज्ञान **तेरहवें गुणस्थान** में होगा जब **अरिहन्तपना प्राप्त होगा। अरिहन्त-दशा आने पर ही क्षायिक-ज्ञान होता है** मतलब प्रारम्भ में चतुर्थ गुणस्थान में क्षायिक-सम्यग्दर्शन तो हो सकता है।

केवलज्ञानावरण का क्षय होने पर ही क्षायिक ज्ञान होगा

लेकिन क्षायिक -ज्ञान जब भी होगा तो **ज्ञानावरण-कर्मों का क्षय** होने पर होगा और उन ज्ञानावरण-कर्मों में भी जो **केवल ज्ञानावरण नाम का जो कर्म है, इसका क्षय होने पर ही क्षायिक-ज्ञान होगा।** इन कर्मों का क्षय होने पर जो क्षायिक-ज्ञान प्राप्त हुआ, **उसको अनन्त-ज्ञान कहा जाता है,** उसी को क्षायिक-ज्ञान कहते हैं। इस क्षायिक-ज्ञान में क्या होता है? अनन्त जब ज्ञान हो गया तो अनन्त-ज्ञान के माध्यम से अनन्त-ज्ञेयों को जाना जा सकता है और जाना जाता है। अनन्त-द्रव्य हैं और अनन्त-द्रव्यों के हर एक द्रव्य के अनन्त-गुण हैं और हर एक गुण

SCAN TO WATCH

की अपनी पर्यायें हैं, परिणतियाँ हैं। उन सभी **अनन्त-द्रव्यों को, अनन्त-गुणों को, अनन्त-पर्यायों को, जो एक साथ जानने में समर्थ हो जाता है, उसको क्षायिक-ज्ञान कहते हैं, केवलज्ञान कहते हैं। क्षायिक ज्ञान मतलब यह तो केवलज्ञान का स्वरूप हो गया।**

क्षायिक दर्शन दर्शनावरणी कर्म के क्षय से होगा



दूसरे नम्बर पर क्षायिक-भाव आया, क्षायिक दर्शन। **क्षायिक-दर्शन** में क्या होगा? यह **दर्शनावरणीय-कर्म के क्षय से होगा,** पहले आपको बताया ही था। जब दर्शनावरणीय-कर्म का क्षय हो जाएगा तो **क्षायिक-ज्ञान और क्षायिक-दर्शन, ये दोनों ही काम तो एक साथ करेंगे लेकिन आत्मा के ये अलग-अलग गुण** होने के कारण से इनको अलग-अलग व्याख्यायित किया जाता है और ये अलग-अलग इनके आवरणीय-कर्म **हैं, उन आवरणीय-कर्मों के क्षय होने पर ये अलग-अलग गुण आत्मा में प्रकट होते हैं।** अतः वस्तु को क्षायिक-ज्ञान से जाना जाता है और क्षायिक-दर्शन से उस वस्तु के उस सामान्य स्वरूप को देखा जाता है। **सामान्य स्वरूप का जो अवलोकन है, वह छद्मस्थ-अवस्था में तो पहले होता है और उसके बाद में वस्तु का ज्ञान होता है। लेकिन केवली भगवान के क्षायिक-ज्ञान और क्षायिक-दर्शन, ये दोनों की प्रवृत्तियाँ एक साथ चलती हैं और वे एक साथ ही जानते हैं और एक-साथ ही सामान्य वस्तु का अवलोकन भी एक-साथ करके क्षायिक-दर्शन से उसको देखते हैं।** यह दर्शन और ज्ञान गुण की प्रधानता से आत्मा में ये क्षायिक-भाव उत्पन्न होते हैं, जिन्हें क्षायिक-ज्ञान और क्षायिक-दर्शन कहा जाता है।

अब हम आते हैं...अन्तराय-कर्मों के भेदों पर।

पाँच प्रकार के अन्तराय बताए गए हैं-

- **दान अन्तराय**
- **लाभान्तराय**
- **भोग अन्तराय**
- **उपभोग अन्तराय**
- **वीर्यान्तराय**

पाँच प्रकार के अन्तरायों का क्षय हो जाने पर पाँच प्रकार की क्षायिक लब्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं



इन पाँच प्रकार के अन्तरायों का क्षय हो जाता है, तो 5 प्रकार की ये क्षायिक-लब्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। ये पाँच प्रकार के क्षायिक-भाव प्राप्त हो जाते हैं, इन्हें लब्धियाँ भी कहा जाता है। **दानान्तराय-कर्म का क्षय हुआ...दानान्तराय-कर्म के क्षय से आत्मा में दान देने की क्षमता आ गई,** यह भी एक क्षमता है। **जो छद्मस्थ जीव होंगे, जिनको केवलज्ञान नहीं है, उनके लिए भी यह दानान्तराय-कर्म का क्षयोपशम होगा तो वे अपने क्षयोपशम के अनुसार ही दान कर पाएँगे। दान आप अपनी शक्ति के ही अनुसार कर पाते हो और वह शक्ति भी दानान्तराय-कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होती है।** जिनके लिए कर्म का क्षय ही हो गया, अब उनको अनन्त-दान की उपलब्धि हो गई। क्षायिक-दान का मतलब क्या? अनन्त-दान। अनन्त काल के लिए, वे अनन्त-दान, अनन्त काल तक देते रह सकते हैं, इतनी क्षमता उनके लिए आ गयी। किसके लिए आ गई? जो केवलज्ञानी हो गए, उनके लिए आ गयी। मतलब यह लब्धि भी केवलज्ञानी में ही घटित होगी।

पाँच प्रकार की लब्धियाँ भी अरिहन्त भगवान में ही प्रकट होती हैं

पाँचों प्रकार के अन्तराय-कर्मों का क्षय भी अरिहन्तों के ही होता है और किसी के नहीं होता। इसलिए यहाँ पर ये जो 5 प्रकार की लब्धियों के भाव बताए जा रहे हैं, ये भी अरहिन्त भगवान में ही घटित होते हैं। इसलिए क्षायिक-दान अरिहन्तों में होगा, सिद्धों में भी होगा क्योंकि **क्षायिक-भाव जो एक बार उत्पन्न हो जाते हैं वे सभी हमेशा उस आत्मा के अन्दर बने रहते हैं। जो भाव अरिहन्तों में आ गए, वही भाव सिद्धों में भी रहेंगे ही** लेकिन अरिहन्तों में हमें कुछ दिखाई दे सकते हैं, उनका कार्य समझ में आ सकता है, सिद्धों में कोई कार्य समझ में नहीं आ सकता। इसलिए आपको अरिहन्तों के माध्यम से ही थोड़ा इसके बारे में बताया जाएगा। क्षायिक-दान! अरिहन्त भगवान क्या दान करते हैं..क्षायिक दान?

सबसे बड़ा दान अभय दान है

दान देने का मतलब हाथ से ही देना नहीं होता। समझ आ रहा है? दान में **सबसे बड़ा दान है- अभय-दान।** क्या है? अभय-दान। अभय का मतलब? लोगों में भय-संज्ञा पड़ी है, सब जीव भयभीत हैं। किसी न किसी रूप से सबके अन्दर भय पड़ा रहता है, उनको अभय बनाना। जो उनके सम्पर्क में एक-बार आ जाएगा या उनके सम्पर्क में direct भी न आए, उनकी range में आ जाएगा तो भी वह अभय-दान को प्राप्त हो जाएगा। मतलब **अरिहन्त जहाँ पर होते हैं, तीर्थंकर** जहाँ पर होते हैं, वहाँ आस-पास इतना **अहिंसा, अभय का वातावरण होता है कि किसी जीव को एक-दूसरे से भय नहीं लगता, चाहे वह जीव कितना ही हिंसक पशु भी क्यों न हो।**

अभय का मतलब एक दूसरे से भय नहीं लगना



समवशरण में भी हिंसक पशु बैठे रहते हैं। चीता भी बैठा होगा, शेर भी बैठा होगा और वहीं पर बिल्ली भी बैठी होगी और उसी के बगल में कुत्ता भी बैठा होगा। उनका पशुओं का जो कोटा है, उसमें वे सब पशु बैठे हैं और ऐसा भी नहीं कि कोई भी वहाँ पर उपद्रव कर सके। यह अभयदान सबके लिए...किसी को भय नहीं। यह अभयदान ही जो है, अनन्तकाल तक वे देने की क्षमता रखते हैं, बस लेने वाला होना चाहिए। अब आप कहोगे...अरिहन्तों में तो अभयदान हमें समझ में आता है कि जब तक वे सामने हैं...चलो! हमें भय नहीं लगेगा। क्योंकि हमारे अन्दर एक सम्यक्त्व का भाव भी आ जाएगा और हम उनकी शरण में आकर के निर्भीक हो

जायेंगे। हम यह अभयदान तो समझ सकते हैं लेकिन अगर यह क्षायिक-भाव है, तो सिद्धों में भी रहेगा। सिद्धों में अभयदान कैसे होगा?



आप यह ध्यान रखें कि **सिद्धों में अभयदान! शरीर नहीं है इसलिए उनकी आत्मा का वह क्षायिक-भाव होकर के, उनके अन्दर अभयदान का भाव तो निरन्तर है।** अब वे आपके सामने नहीं हैं तो आपको ध्यान के माध्यम से उन्हें अपने सामने लाना पड़ेगा। जब आप ध्यान करेंगे, वे आपके ध्यान का विषय बनेंगे और उनका स्वरूप आपके ध्यान में आएगा तो आप किसी भी भय की स्थिति में पड़े होंगे, निर्भीक हो जाएँगे, यह उनका अभयदान है। अनन्तकाल तक भी चलेगा, अनन्तकाल के बाद भी जो लोग, जो जीव उनको स्मरण करेंगे...भाई! कोई सिद्ध भगवान हैं, सिद्ध भगवान का आप स्मरण करो। जब-जब स्मरण करोगे तब-तब आपके लिए अभयदान का भाव अपने आप आ जाएगा। यह अभयदान की प्रक्रिया अनन्तकाल तक चलने वाली प्रक्रिया है।

अभयदान की प्रक्रिया अनन्तकाल तक चलने वाली प्रक्रिया है

यह अरिहन्तों में तो शरीर के साथ अनुभूति में आती है लेकिन सिद्धों में आपको उनका ध्यान करके खुद अनुभूति में लाना पड़ेगा। वे तो दान कर ही रहे हैं इसलिए मैं कहता हूँ...सिद्ध भगवान भी दान करते हैं, बस आपको लेने के लिए उनका ध्यान करना है। जब आप ध्यान करोगे तो आप भी अभय को प्राप्त हो जाओगे। यह हुआ **दान अन्तराय कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाले क्षायिक-दान** का परिणाम।

लाभान्तराय कर्म के क्षय से क्षायिक लाभ प्राप्त हुआ



लाभान्तराय कर्म का क्षय हुआ तो क्या होगा? **क्षायिक-लाभ की प्राप्ति** हुई। वह भी किसको होगी? अरिहन्तों को होगी। क्षायिक-लाभ के होने से उनके अन्दर क्या होगा? क्या दशा प्रकट होगी? **आचार्य कहते हैं कि क्षायिक-लाभ जब अरिहन्तों को हो जाता है, तो उन अरिहन्तों को उस क्षायिक-लाभ के कारण से ही उनके शरीर, बिना कवलाहार के भी बहुत समय तक बना रहता है।** समझ में आया? यह तो आपको पता ही है कि अरिहन्त बनने के बाद में वे कभी भी आहार ग्रहण नहीं करते।

SCAN TO WATCH

कर्मभूमि की उत्कृष्ट आयु पूर्व कोटि वर्ष की होती है

अब मान लो वे अरिहन्त बन गए। जन्म लेने के आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त के बाद अरिहन्त बन सकते हैं और कर्मभूमि की जो उत्कृष्ट आयु होती है, वह पूर्व-कोटि वर्ष की होती है। एक पूर्व-कोटि मतलब एक करोड़-पूर्व की आयु है। अब आप विचार करें कि एक करोड़-पूर्व की आयु और आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त के बाद में उन्हें क्या हो गया? क्षायिक-सम्यक्त्व नहीं हो गया, क्षायिक-ज्ञान हो गया, क्षायिक-लाभ हो गया अर्थात् वे अरिहन्त बन गए। अब उनकी जो आयु है, वह पूरी की पूरी आयु पूरा एक पूर्व कोटि काल तक उस अरिहन्त दशा में चलेगी। लेकिन वे **कभी भी उस इतने दीर्घकाल में भी, करोड़ों वर्षों के उस काल में भी, कभी भी उनके शरीर में कोई भी कमी नहीं आएगी। न उनका शरीर कभी ढ़ीला पड़ेगा, न उनका शरीर कभी भी मुरझाएगा, न उनके शरीर में किसी भी तरह की कोई भी म्लानता आएगी।**

किसके कारण से? क्षायिक-लाभ होने के कारण से। यह देखो आत्मा की शक्तियाँ ऐसे प्रकट होती हैं।

क्षायिक लाभ हुआ तो क्या होगा?

जब क्षायिक-लाभ हुआ तो क्या होगा? शरीर के लिए भोजन की आवश्यकता नहीं होती है। शरीर में शरीर के योग्य जो पुद्गल-वर्गणाएँ हैं, उनको ग्रहण करने की आवश्यकता होती है। जब हम उन पुद्गल-वर्गणाओं को ग्रहण करने के लिए अपने अन्दर शक्ति नहीं रख पाते तो वह पुद्गल-वर्गणाएँ जो शरीर के योग्य ग्रहण होनी चाहिए वह ग्रहण नहीं कर पाते तो इसी कारण से क्या होता है? हमें भोजन ग्रहण करना पड़ता है। लेकिन **अरिहन्त अवस्था में आत्मा के अन्दर इतनी क्षायिक शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वे बिना भोजन ग्रहण किए हुए भी बहुत अच्छी पुद्गल की वर्गणाओं को ग्रहण करते रहते हैं और वे पुद्गल वर्गणाएँ** हम-आप लोगों को नहीं मिलेंगी, वे उन्हीं को मिलेंगी।

अरिहन्तों द्वारा लिए जाने वाली पुद्गल वर्गणाओं की विशेषता



कैसी होंगी वे पुद्गल वर्गणाएँ? **बड़ी सूक्ष्म होंगी, शुभ होंगी, मधुर होंगी, स्निग्ध होंगी।** ऐसे सूक्ष्म, स्निग्ध, मधुर **अनन्त-अनन्त की संख्या में वे पुद्गल के परमाणु इकट्ठे होकर के प्रति समय उनके शरीर में ग्रहण करने में आएँगे, ऐसी उनके भीतर अपनी योग्यता आ गई।** जैसे- एक मशीन वह होती है, जो बहुत तेल खाती है, बहुत धुआँ छोड़ती है, average कम देती है। मशीन, गाड़ी का standard कैसे देखा जाता है? उसमें fuel तो बिल्कुल न निकले, उसके अन्दर oil की खपत कम हो और mileage ज्यादा हो तो उसको बहुत standard की मशीन मानी जाती है। अरिहन्त भगवान ऐसी ही मशीन बन जाते हैं। पूरी जिन्दगी भर चलेगी लेकिन कोई fuel की तो बात ही नहीं, कोई oil भी उसमें डालने की जरूरत नहीं। किसी भी तरीके का कोई भी उसमें fuel डालने की भी जरूरत नहीं है। यहाँ तक कि कोई भी जैसे oil आदि कई बार डालना पड़ता है...भैया! और कुछ नहीं डाल रहे हैं तो कम से कम पहियों में grease तो लगा ही दो थोड़ी-सी, उसकी भी जरूरत नहीं पड़ेगी। समझो! ऐसे ही मशीन होती है। अब वह मशीन बन पाए, न बन पाए, वह आपके विज्ञान के ऊपर है लेकिन यह मशीन तो खुद अपने पुरुषार्थ से बनाई जाती है।

आप देखेंगे कि **यह क्षायिक-लाभ का काम है।** क्या काम है? **प्रति समय अनन्तानन्त, सूक्ष्म, स्निग्ध, सुमधुर पुद्गल परमाणुओं का ग्रहण होना और उसके माध्यम से सुन्दर शरीर जैसा है, वैसा ही बना रहना, यह काम ही क्षायिक-दान की लब्धि का है।** अब शरीर नामकर्म का उदय है उनके लिए तो उनके लिए इस तरह से यह शरीर आश्रित यह उसका फल दिखाई देता है। क्षायिक-लाभ तो आत्मा की शक्ति है लेकिन फल किसमें दिखाई दे रहा है? शरीर में। क्योंकि कुछ कर्म ऐसे होते हैं जिनका फल हमें शरीर में ही देखना होता है, शरीर में

ही भोगना होता है या यूँ कहे कि पुद्गल के आश्रित हमें उन कर्मों का भोग करना होता है। अब जैसे मान लो, इसके भी आगे आता है- एक भोगान्तराय कर्म।

भोग अन्तराय कर्म का अर्थ

भोग अन्तराय कर्म का मतलब जो चीजें हम अपने भोग वस्तुओं के रूप में उपयोग में ला रहे हैं, उन चीजों का भोग करना। भोग मतलब उनको अपना भोक्ता का विषय बनाना। भोग अन्तराय कर्म में क्या होगा? अगर **क्षयोपशम है, तो आपको थोड़ी-थोड़ी चीजें मिलती रहेंगी, मिल जाएँगी लेकिन जिनके पास क्षय हो गया।** वह कैसे समझ में आएगा कि **भोग अन्तराय-कर्म के क्षय से** उन्हें क्या भोग उपलब्ध हो गये? **अरिहन्त भगवान** के लिए क्या भोग हैं? कोई मिष्ठान-व्यंजन आदि कुछ भी तो उनके लिए उपयोगी ही नहीं है, तो उनके लिए भोग में क्या आ रहा है?

अरिहन्त भगवान के लिए भोग क्या है?



आचार्य कहते हैं...जहाँ वे बैठते हैं, वहाँ पुष्पवृष्टियाँ होती हैं, वही उनका भोग है या यूँ कहें कि अब उनके **भोग अन्तराय-कर्म के क्षय के कारण** से इस तरह की **पुष्पवृष्टियाँ** उनके साथ में **होंगी, गन्धोदक-वृष्टि होगी, सुगन्धित पवन बहेगी।** समझ आ रहा है? वे **भले ही उसका भोग नहीं कर रहे हैं लेकिन उनके भोग अन्तराय कर्म के क्षय से ये सामने लोगों को देखने को मिलेगा** और उसका उपयोग दूसरे लोग करेंगे। न तो कोई उन्हें सुगन्धी सूँघना, अब गन्धोदक-वृष्टि हो रही है, तो उनके लिए क्या हो गया भोग? अब यह उनके कर्म के क्षय से हो रहा है लेकिन उसको वे स्वयं नहीं भोग रहे हैं और कहा जा रहा है कि यह भोग अन्तराय कर्म के क्षय से हुआ है। क्या समझ आया? इस तरह से पराश्रित होकर के कर्म के क्षय से होने वाले कार्य हमें देखने को मिलते हैं और आचार्यों ने दिखाए हैं।

पुष्पवृष्टि आदि कैसी होती है?

अब यह पुष्पवृष्टि हो गई, गन्धोदक-वृष्टि हो गई, पुष्पवृष्टि भी वे देख नहीं रहे हैं। उस पुष्पवृष्टि के बारे में भी कई लोग पूछते हैं...महाराज! वह पुष्पवृष्टि होती है, उसमें वास्तव के फूल होते हैं कि वैसे ही होते हैं? वह भोगान्तराय कर्म के क्षय से हुआ है, तो नकली नहीं होगा, सब कुछ असली होगा, बढ़िया वाला होगा। आचार्यों ने जब स्तुतियाँ की हैं **'समद भ्रमर परितै'** मतलब कि जो पुष्पवृष्टियाँ हैं, वे मद से सहित भ्रमरों से मतलब जो भ्रमर होते हैं, उनसे युक्त होती हैं। मतलब उनमें भँवरे भी आकर के चिपकते हैं, इतनी उसमें मकरन्द होती है। निर्जीव होगा, नकली होगा तो उसमें भँवरे कहाँ से आएँगे? यह मान कर चलना कि वे पुष्पवृष्टियाँ असली होती हैं लेकिन उनकी आँखें बन्द हैं। उन्हें उस पुष्पवृष्टि का कोई आनन्द नहीं है। उनके लिए

यह भोगान्तराय कर्म का क्षय क्या काम कर रहा है? दूसरों के देखने के लिए काम में आ रहा है...क्या आपको वैभव मिला है कि इतनी भोग सम्पदा आपके सामने बरस रही है। ऐसी सुगन्धी और कहीं नहीं मिलेगी, ऐसी पुष्पवृष्टि कहीं और नहीं मिलेगी।

तीर्थंकरों के चरणों के नीचे 225 कमलों की रचना होती है



जब वे चलते हैं तो उनके चरणों के नीचे कमल की रचना होती है। वे भी नकली नहीं होती, वह रचना भी ऐसे ही सुगन्धित पुष्पों की होती है और वह भी थोड़ी-बहुत नहीं...दो सौ पच्चीस। एक-एक step पर कमल रखे जाते हैं, बन जाते हैं और अगला step जब वे उठाएँगे तो अब पीछे वाले मिट जाएगा। अगले वाले step के नीचे फिर से दो सौ पच्चीस कमल की रचना हो जाएगी। इतना तो वैभव-जलवा है! मतलब कि एक-एक कदम पर दो सौ पच्चीस-पच्चीस कमल, फूल waste हो रहे हैं। लेकिन करें क्या? कर्म का क्षय हुआ है तो यह सब मिलेगा।

सिर्फ तीर्थंकर भगवान के चरणों के नीचे 225 कमल की रचना होती है

अब यह सब जो उनके लिए क्षायिक-भोग के रूप में है, आचार्यों ने बताया, इससे हमें एक बात या फिर यह माननी पड़ेगी कि ये जो तीर्थंकर होते हैं और सामान्य केवली होते हैं, इन दोनों में हमें फिर यह बात घटित करनी पड़ेगी। अगर यह कार्य भोगान्तराय कर्म के क्षय से ही हो रहा है, तो भोगान्तराय कर्म का क्षय तो सामान्य केवली को भी हो गया। फिर हमें यह मानना पड़ेगा कि जो सामान्य केवली होते हैं, तीर्थंकर नहीं होते हैं, उनके भी नीचे चलने पर दो सौ पच्चीस

कमलों की रचना होगी या दो सौ पच्चीस नहीं तो दो-चार कमल तो होने ही चाहिए और हम कहते हैं- अगर दो सौ पच्चीस भी हो तो क्या दिक्कत है? जब भोगान्तराय कर्म का क्षय ही हो गया और उस क्षय से ही यह सब मिल रहा है, तो उनके लिए भी इस तरह के वैभव दिखाई देने चाहिए। सुन रहे हो? अगर यह प्रश्न किया जाए तो उत्तर क्या मिलेगा? आप क्या बताओगे? क्या विचार है आपका? आप कहोगे कि चलो महाराज! उनको भी हो जाए तो अपना क्या जा रहा है? लेकिन अगर हम देखेंगे तो हमें पता पड़ेगा कि यह वैभव केवल तीर्थंकरों का ही होता है, सामान्य केवली का नहीं होता। इस तरह के कमलों की रचना, सब के पैरों के नीचे नहीं होती, सब के कदमों के नीचे नहीं होती, यह केवल तीर्थंकरों के लिए ही है। पुष्पवृष्टि वगैरह यह भी सब तीर्थंकरों के लिए ही है। थोड़ा-बहुत ज्ञान का कल्याणक मनाने के समय पर कुछ हो जाए, अलग बात है लेकिन हमेशा अनवरत यह चलता रहे, जब तक गन्धकुटी में बैठे हैं, समवशरण में बैठे हैं, तब तक हमेशा चलता रहे, यह और किसी के साथ सम्भव नहीं है। क्यों नहीं है? इसके साथ हमें दूसरे भी कर्मों का उदय मानना पड़ेगा।

तीर्थंकर नामकर्म का उदय होता है उन्हीं को यह फल प्राप्त होगा

तीर्थंकर-नामकर्म का जो उदय होता है, उस कर्म का भी उदय होगा, शरीर-नामकर्म का भी उदय होगा तब जाकर के इस तरह के फल हमें देखने को मिलेंगे। जिनके तीर्थंकर-नामकर्म का उदय नहीं है, उन्हें इस तरह के फल देखने को नहीं मिलेंगे। भले ही उनके लिए क्षायिक-भोग की प्राप्ति हो गई हो, भोगान्तराय कर्म का क्षय हो गया हो, फिर भी उनके लिए ऐसा फल देखने को नहीं मिलेगा क्योंकि उनके लिए तीर्थंकर-नामकर्म का उदय साथ में नहीं है। इससे आप समझ सकते हो कि ये जो भोग आदि कर्मों के क्षय हैं, इनका कार्य भी तीर्थंकरों के समक्ष ही देखने के लिए मिल पाता है। आत्मा में इन लब्धियों के होने पर भी आत्मा को इससे क्या मिल रहा है? यह बात तो जैन-ग्रन्थों में, तत्त्वार्थ-सूत्र की टीकाओं में भी कहीं पर स्पष्ट उल्लेखित नहीं मिलती है। जैसे यह भोगान्तराय-कर्म का क्षय से हो गया। अब ऐसे ही अन्य कर्मों के क्षय से भी होगा। लेकिन प्रश्न यह है कि ये आखिर आत्मा की लब्धियाँ हैं तो आत्मा में इनको क्या मिल रहा है?

क्षायिक भाव का फल तो अरिहन्त ही अनुभूत कर सकेंगें



जो अरिहन्त बन गए हैं, उन्हें तो न किसी तरह की पुष्पवृष्टि और न ही उन्हें फूलों की रचना से कोई प्रयोजन है, वह तो सब हो रहा है। आत्मा में तो कुछ नहीं हो रहा, जबकि लब्धियाँ तो आत्मा में उत्पन्न हुई तो भाव तो आत्मा में क्षायिक होना चाहिए तो उस क्षायिक-भाव का जो फल है, वह फल तो केवल अरिहन्त ही अनुभूत कर सकेंगे। कार्य के रूप में अगर हमें देखना है, तो हम तीर्थंकरों में इस तरह का कार्य देख करके उसका अनुमान लगाते हैं, यह हमें जानना होगा।

समझ आया? उस कर्म के क्षय का जो कार्य है, इस तरह से करके उसका हम अनुमान लगा रहे हैं। लेकिन हम यह नहीं कह सकेंगे कि इस कर्म के क्षय का यही कार्य है क्योंकि अगर जहाँ पर सामान्य-केवली हैं, वहाँ पर इस कर्म का क्षय हुआ है, तो उनके लिए हम क्या कार्य दिखाएँगे? जिनको तीर्थंकर-नामकर्म का उदय नहीं है, तीर्थंकर नहीं है, सामान्य-केवली हैं तो क्षायिक-लब्धियाँ तो उनके पास भी हो गई। लेकिन उनके लिए जो क्षायिक-भोग है, क्षायिक-दान है, क्षायिक-लाभ है, क्षायिक-उपभोग है, ये सब आत्मा में ही बार-बार घटित होने वाली अनुभूति की प्रक्रिया ही होगी और बाहर इनका किसी भी पुद्गल से सम्बन्ध नहीं है। अब क्षायिक-भोग में चलो यह हो गया।

भोग और उपभोग में अन्तर



अब **क्षायिक-उपभोग** में क्या होगा? भोग और उपभोग में अन्तर जानते हो? **भोग की वस्तु वह होती है- जो केवल एक-बार उपयोग में आती हैं।** जैसे आपने भोजन एक-बार कर लिया। पुष्पों की माला है, एक-बार ही पहनी जाती है। आपके पास नहीं है, तो कंजूसी से आप उसे दस-बार पहनते रहो लेकिन वह एक ही बार पहनने योग्य होती है। कोई भी पुष्प किसी के लिए चढ़ा दिये गए, वे एक ही बार चढ़ने में आते हैं, दूसरी-बार तो बेकार हो जाते हैं। इसलिए पुष्पवृष्टियाँ, गन्धोदक-वृष्टियाँ भोग हैं। एक-बार आ गई उपयोग में, उसके बाद में ये बेकार हो जाती हैं तो इनको बोलते हैं- भोग।

उपभोग क्या है?



उपभोग क्या कहलाता है? जो बार-बार भोगने में आए। बार-बार क्या भोगने में आता है? अब आपके कपड़े हैं, आपका मकान है, आपके जेवर हैं, ये सब क्या हैं? ये सब उपभोग की सामग्री हैं, जो बार-बार भोगने में आएगी। आपकी गाड़ियाँ हैं, घर में रखे हुए तमाम तरह के T.V. Set, fridge set, जितने भी set हैं, वे सब क्या हैं? सब उपभोग की सामग्रियाँ हैं। भगवान के लिए उपभोगान्तराय-कर्म के क्षय से उपभोग की सामग्री भी प्राप्त होगी तो वे भी सामग्री हमें उन्हीं में देखने को मिलेगी, जिसमें तीर्थंकर-नामकर्म और शरीर-नामकर्म का उदय भी साथ में हो। तभी वह उपभोग देखने को मिलता है और उसी तरह से आचार्यों ने बताया है। उनके क्या उपभोग है? जहाँ वे बैठे हैं, सिंहासन लगा हुआ है, यह भी उनका उपभोग है न! सिंहासन पर बैठे उनका यही उपभोग है। भले ही चार अंगुल ऊपर बैठे हैं, भले ही वह देवों ने बनाया है लेकिन है- उनका उपभोग। अब यह कितनी बड़ी बिडम्बना है कि देखो एक तरफ तो हम यह कह रहे हैं कि वे कुछ नहीं भोग रहे हैं, उनका कोई उपभोग नहीं है और एक तरफ हम यह कह रहे हैं कि यह उपभोग की सामग्री उन्हीं की है। नहीं समझ आ रहा है? अब कोई जैन कर्म-सिद्धान्तों को पढ़ा हुआ होगा तो समझ पाएगा और थोड़ा समझा पाएगा। अन्य किसी के लिए तो यह लगेगा, तुम अपने भगवान की बहुत प्रशंसा किए जा रहे हो और बात कुछ भी logically घटित नहीं हो रही। यह भी कहे जा रहे हो कि उनमें कर्म का क्षय होने से राग-द्वेष कुछ नहीं है और यह भी कहे जा रहे हो कि उनके ही कर्म का क्षय हुआ इसलिए यह सामग्री मिली और यह भी कहे जा रहे हो कि इस सामग्री का वे कोई उपभोग नहीं कर रहे हैं। फिर उन्हीं की सामग्री कैसे कहलाई? यह बड़ी विडम्बना है।

कभी आपने विचार किया? कोई भी सामग्री, उनके ऊपर तीन-छत्र लगे हैं। क्या है यह? उनका उपभोग है। दोनों ओर चँवर ढुर रहे है, चौंसठ चँवर ढुलते हैं, क्या है यह? यह भी उनका उपभोग है। पीछे भामण्डल लगा है, वह भी एक उपभोग है। देव-दुन्दुभी बज रही है, वह भी उपभोग है। यहाँ तक कि जो वे अपने कण्ठ से मधुर दिव्यध्वनि निकाल रहे हैं, वह भी उनका उपभोग है। क्यों हैं? क्योंकि वह जो मधुर-स्वर है, उसका बार-बार उनके कण्ठ से वह मधुर-स्वर निकल रहा है...स्निग्ध मधुर स्वर, गम्भीर मधुर स्वर उनके कण्ठ से, मुख से निकलता है, यह भी स्वर, यह भी उनके लिए उपभोग है, भले ही उनका स्वर उन्हीं को सुनने में नहीं आ रहा। क्या समझ आया? **8 प्रातिहार्यों में से 7 प्रातिहार्य तो उपभोगान्तराय-कर्म के क्षय से होते हैं और एक पुष्पवृष्टि नाम का जो प्रातिहार्य है, यह जो है, भोगान्तराय-कर्म के क्षय से होता है,** यह सिद्ध हो रहा है।

तीर्थंकर के पास क्या रहता है? समवशरण आदि उपभोग या आत्मिक उपलब्धियाँ



अब आप समझे कि यह भोग और उपभोगान्तराय-कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाली जो सामग्री है, ये उनके पास तब तक रहेगी जब तक कि शरीर-नामकर्म का उदय और तीर्थंकर-नामकर्म का उदय है। लेकिन हम यह भी देखें कि अन्त समय में जब वह एक-महीने पहले योग-निरोध करने चले जाते हैं, कोई चौदह-दिन पहले योग निरोध की प्रक्रिया अपना रहे हैं तो उस समय पर तो वह समवशरण छोड़ देते हैं तब तो उनके पास में ये सब चीजें नहीं होती। लेकिन तीर्थंकर-नामकर्म का उदय तो तब भी चल रहा है, शरीर-नामकर्म का उदय तो तब भी चल रहा है, तो उस समय पर इनके लिए इस तरह के भोग-उपभोग की सामग्रियाँ छूट क्यों



जाती हैं? ये अनेक प्रश्न हैं...इस प्रश्न का समाधान कौन देगा? कुछ प्रश्न ऐसे भी करते हैं, विद्वानों के लिए छोड़ दिए जाते हैं। जो भी विद्वान हैं, जहाँ कहीं भी सुनते हैं विद्वान लोग, उनके लिए भी छोड़ दिए जाते हैं। कभी वे विद्वान लोग भी इन प्रश्नों का उत्तर देने की कोशिश करें। इसलिए यह कहा जा रहा है कि ये जो कर्म के क्षय का कार्य है, हमें केवल समझाने के लिए है।

वस्तुतः तो यह आत्मिक उपलब्धियाँ हैं, ये लब्धियाँ तो आत्मा की अनुभूति का ही विषय होना चाहिए। जो भी विद्वान लोग सुने, वे इस चीज को समझने की कोशिश करें। हमें ऐसा लगता है कि आचार्यों ने जो इन कर्मों के हमें फल, इनके कार्य दिखाए हैं, ये हमें केवल एक मोटे तरीके से, ऊपर-ऊपर समझाने के लिए दिखाए हैं। क्योंकि तुम लोग मानोगे नहीं, जब तक यह नहीं समझोगे कि इनके लिए इन कर्मों के क्षय से क्या फल मिल रहा है? बाकी यह कर्मों के क्षय का फल बराबर समझ में नहीं आता। जब तीर्थंकर भी हैं, अगर यूँ ही कहें



कि शरीर-नामकर्म और तीर्थंकर-नामकर्म के उदय होता है, तो जिस समय पर वे समवशरण छोड़ देते हैं तो समवशरण छोड़ कैसे दिया? और छूट गया तो फिर न उनके पास में आस-पास चँवर होते है, न कुछ होता है, तो एक महीने तक ऐसी स्थिति कैसे बन सकती है? अगर कर्म के उदय से यह सब भाव तो कर्म का उदय तो तब भी है। अब उपभोग कैसे छूट गया? यह बात बताती है कि यह केवल हमें समझाने के लिए कहा जा रहा है। जो आचार्यों ने यह बताया है- यह अष्ट-प्रातिहार्य, भोग-उपभोग कर्म के क्षय से हुए हैं, यह केवल हमें एक मोटे तौर पर समझाने के लिए है। **वास्तव में आत्मा में जो क्षायिक-भाव होते हैं,** उन्हें कोई भी समझा

नहीं सकता। क्या समझ में आ रहा है? क्षायिक-भावों को कोई भी समझा नहीं सकता, यही हमारी समझ में आ जाए तो यही समझने की बात है।

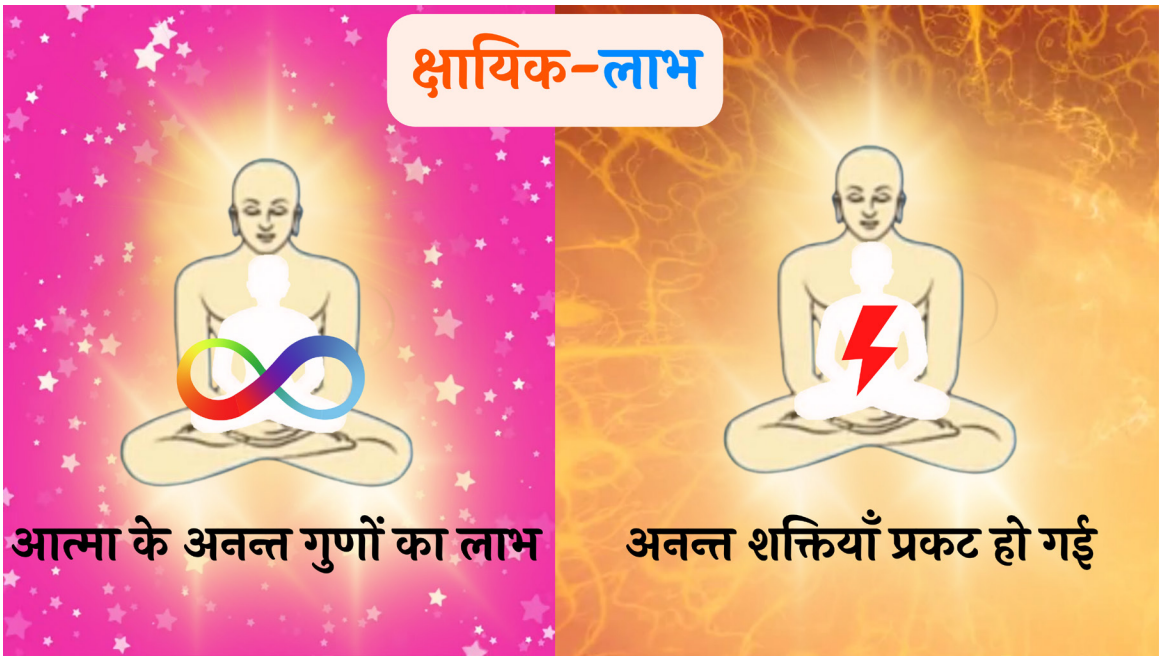
ज्ञान बिना शक्ति के काम नहीं करता है



क्षायिक-वीर्य- अनन्त-शक्ति आत्मा में उत्पन्न हो गई। यह भी समझ में आता है कि अनन्त-शक्ति की जरूरत है क्योंकि अनन्त-ज्ञान को झेलने के लिए अनन्त-शक्ति भी चाहिए, यह तो स्पष्ट है। ज्ञान बिना शक्ति के कभी काम करता ही नहीं है। ज्ञान के पास में अगर शक्ति होगी तो ही ज्ञान पर-पदार्थों को जान पायेगा, देख पाएगा। अगर शक्ति नहीं है, तो वह ज्ञान और दर्शन अपना काम नहीं कर पाएँगे। ज्ञान, दर्शन और शक्तियाँ, ये जो तीन चीजें हैं, ये तो आत्मा के अपने आत्मिक अणुजीवी-गुण हैं और ये सभी आत्मा के लिए अनुभव में आ रहे हैं, इनकी तो हमें कोई व्यवस्था समझ में आती है। लेकिन ये जो पाँच-लब्धियों की व्याख्याएँ हमें जो आचार्यों के द्वारा मिलती हैं, इनको भी हम आत्मा में ही घटित करना सीखें। आचार्यों ने भले ही इनके कार्य हमें प्रातिहार्य आदि के रूप में तीर्थंकरों के भोग-उपभोग के रूप में हमें दिखाए हैं, ये उनके द्वारा किया गया हमारे ऊपर एक उपकार है, जो हमें कुछ सिखाने की कोशिश की जा रही है। लेकिन हम यह भी जाने **कि क्षायिक-भाव आत्मा के भाव हैं।** अगर आत्मा में जैसे क्षायिक-दान होने के बाद में अभयदान सबके लिए हो जाता है, वैसे ही क्षायिक-लाभ, क्षायिक-भोग, क्षायिक-उपभोग भी हर आत्मा में उनके आत्मिक गुणों की ही जो उन्हें उपलब्धियाँ हो गई, उसी में घटित करना चाहिए। **क्षायिक-लाभ** क्या हो गया? **आत्मा के लिए अनन्त-काल के लिए जो अनन्त-गुणों का लाभ हो गया,** इसे हमें क्षायिक-लाभ कहना चाहिए। यह मैं आपको नई परिभाषा में बता रहा हूँ, जो कहीं भी ग्रन्थों में लिखी नहीं

मिलती हैं। क्षायिक-लाभ क्या कहलाएगा?

क्षायिक लाभ क्या है?



जो आत्मा में अनन्त गुणों का लाभ हो गया, उन अनन्त गुणों की अनन्त जो शक्तियाँ थी, वह सब प्रकट हो गई। उनके जो अविभागी-प्रतिच्छेद, जो उसकी शक्तियाँ कहलाती हैं, वे सारे के सारे प्रकट हो गये, इसको क्षायिक-लाभ कहना चाहिए।

क्षायिक भोग

SCAN TO WATCH

भोग क्या? मेरे अनुसार भोग की परिभाषा ऐसे लगाना चाहिए, इसे मेरा ही अभिप्राय समझना...हर एक समय में जो भोगने में आ रहा है, वह भोग है और अनेक समयों की अपेक्षा से देखें तो उसी को कहना चाहिए- उपभोग। **हर समय जो हमारे अन्दर क्षायिक-ज्ञान का, आत्मा का, शुद्ध-भाव का, परम-पारिणामिक शुद्ध-चैतन्य परिणाम का, जो रस उत्पन्न हो रहा है, उसका नाम है- क्षायिक-भोग।** यह सबके लिए होगा। सामान्य-अरिहन्तों में भी होगा, तीर्थंकर-केवली बन रहे हैं उनमें भी होगा। तीर्थंकरों में भी जब वे समवशरण छोड़ कर चले जाएँगे, उसके बाद भी होगा। सिद्ध बन जाएँगे तब भी होगा, कभी नहीं रुकेगा। बात पसन्द आए तो रख लेना, दूसरों से share कर लेना। नहीं आये तो कह देना, यह बस महाराज का चिन्तन है। इससे ज्यादा अपने को इसमें कुछ सोचना नहीं है, उनका अपना अभिप्राय होगा।

वह मेरे ही ऊपर छोड़ देना आप, इससे ज्यादा मत बढ़ाना। अगर आपको समझ न आये तो कोई दिक्कत की बात नहीं। माल है दिखाया जा रहा है, पसन्द आए तो ले लेना।

आत्मा का भोग और उपभोग



क्षायिक-भोग क्या कहलाया? हमें तो यही लगता है कि **आत्मा का जो रस है, जिसे हम कह रहे हैं...आत्मा का सुख, आत्मा का आनन्द, वह जो उनको प्रति समय मिल रहा है, उसका नाम है- भोग। वह हर समय यह भोग करने के बावजूद भी उसी को ही बार-बार भोग रहे हैं, यह हो गया उनका उपभोग।** एक-समय की अपेक्षा से देखा जाए तो वह रस अलग है। एक-समय की अपेक्षा से देखेंगे तो हर-समय उसका आनन्द अलग है, इसलिए वह कहलाया- भोग। जब हम गुणों की अपेक्षा से देखें तो रस वही है लेकिन वही रस बार-बार जब भोगने में आ रहा है, तो वह कहलाएगा- उपभोग। ऐसे इसको घटित करना चाहिए। लाभ तो समझ में आ गया, भोग-उपभोग समझ में आया कि नहीं आया? रस उन्हीं गुणों का है इसलिए वह उपभोग है लेकिन हर समय नया-नया है, इसलिए वह भोग है, यह समझना।

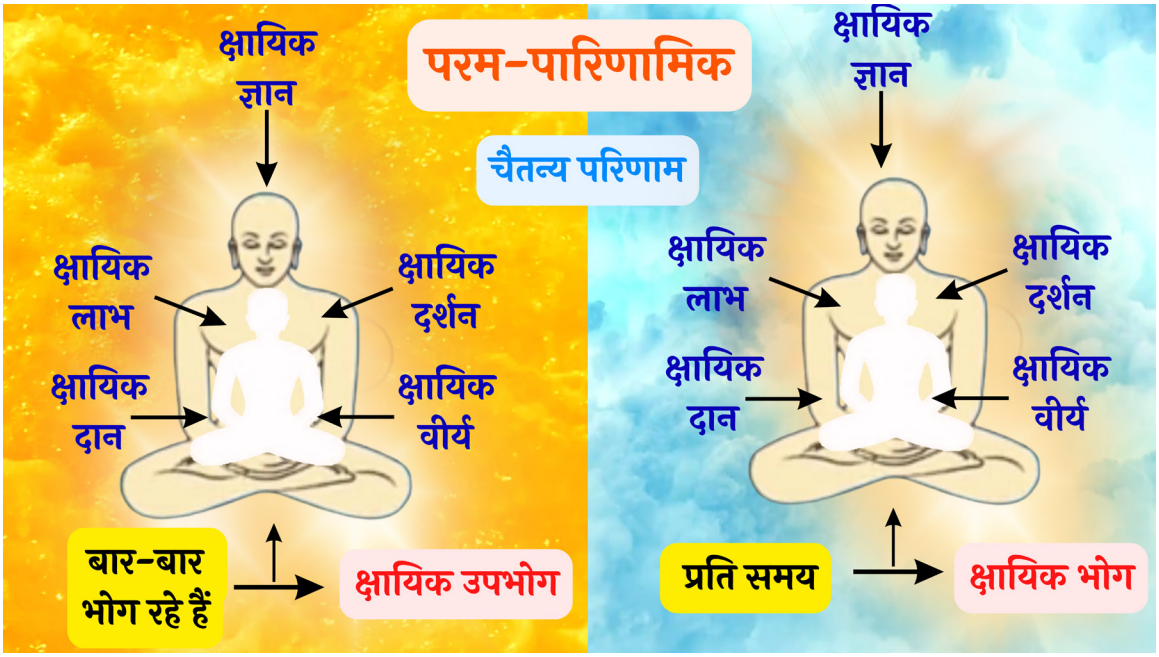
रस तो पीते हो न! एक गिलास अनार का रस आप पीने के लिए तैयार हुए। क्या किया आपने? अनार का रस तो वही है न! जो एक घूँट में पिया, दूसरे घूँट में पिया, तीसरे घूँट में पिया, अनार का रस तो वही है। जब हम बार-बार उसको पी रहे हैं तो वह कहलाएगा- उपभोग। जो हमने एक बार में पी करके, जो उस समय आनन्द लिया, वह कहलाया हमारा भोग। बारीकी से भोग और उपभोग की यह परिभाषा लगानी चाहिए। अब यह मत पूछना महाराज यह किस ग्रन्थ में लिखी है? इतनी क्षमा करना। आपको वह नहीं दिखा पाएँगे। यह बस एक मन का चिन्तन है कि आत्मा के अन्दर इस तरह से भोग और उपभोग और वीर्य तो प्रकट है ही, आत्म-शक्ति प्रकट हो गई। यह तो सब के लिए अनुभव में आ ही रहा है, तो इसमें कहीं कोई दिक्कत नहीं है।

भोग, उपभोग, वीर्य ये क्षायिक गुण हैं, ये सिद्धों में भी घटित होते हैं

इस तरह से यह आत्मा के क्षायिक जो गुण हैं, इन्हें हमें इस तरह से सब में यानि सद्धिों में भी घटित करके देख लेना चाहिए और कोई आपत्ति की बात नहीं है। ये सिद्धों में भी घटित हो जाएँगे क्योंकि क्षायिक-गुण हैं, ये सिद्धों में भी हैं। अब सद्धिों में कैसे घटित करे? कैसे उनको हम व्याख्यायित करे? इस तरीके से करने का एक प्रयास किया गया है। अगर इसमें और भी modification कोई कर सके तो उसके लिए भी स्वागत है, मैंने कोई patent नहीं कर दिया है, यह भी बता देना किसी को भी।

- **दान तो अभयदान हो ही गया** उसमें भी कोई दिक्कत नहीं।
- **लाभ आत्मिक गुणों का लाभ हो गया,**
- **भोग जो प्रति समय नया-नया रस आ रहा है** वह,

- **उपभोग, है उन्हीं गुणों का रस** इसलिए वह उपभोग,
- **वीर्य उस शक्ति का नाम है, जिसके कारण से वह अपने अनन्त-गुणों का उपभोग कर रहे हैं** या अनन्त-गुणों के माध्यम से, अपने केवलज्ञान आदि के माध्यम से वह जो अनन्त-पदार्थों को जान रहे हैं, वह शक्ति आत्मा की है। जो आत्मा की शक्ति के साथ में ही इन सब ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग का काम चलता है।

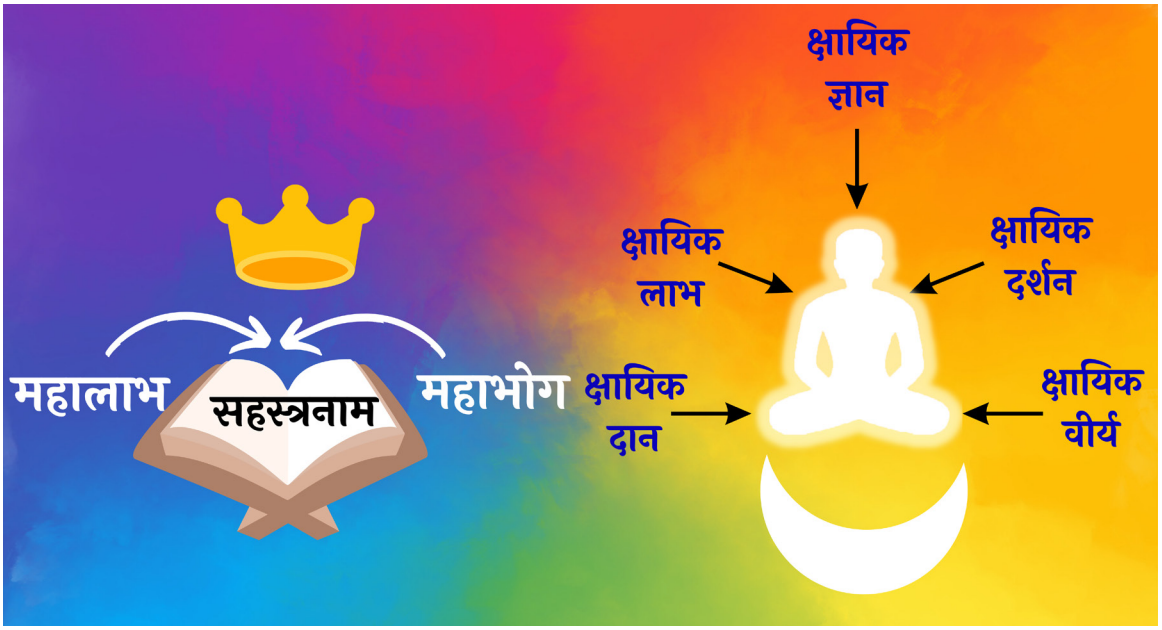


शक्ति तो सब में ही चाहिए। भोग के लिए भी शक्ति चाहिए, उपभोग के लिए भी शक्ति चाहिए, सब के लिए शक्ति चाहिए। अतः शक्ति तो एक common factor हो गया। यह व्याख्या पहली-बार आप लोगों को सुना रहा हूँ। इससे पहले न चिन्तन में आई और न इससे पहले कभी सुनी गई और न सुनाई गई। ऐसा विचार आज ही आया है, तो आप लोग इसको समझें कि **अनन्त-गुणों का जो लाभ, अनन्त-आत्माओं को हो चुका है, वह जो सिद्ध आत्माएँ हैं, वह आज तक भी इन्हीं अनन्त-गुणों का आनन्द ले रही हैं।**

सहस्त्रनाम नामों में से महाभोग, महालाभ भी उनके नाम है

सबसे-बड़े भोगी-उपभोगी तो ये सिद्ध भगवान ही होते हैं। महाभोगः, महालाभः, सहस्त्रनाम में भी एक जगह आता है। एक नामों में, भगवान के नाम में एक नाम क्या आता है? महाभोग-महाभोगी। सबसे महान भोग-भोगने वाले। कौन-सा भोग? वे बाहर का तो कुछ भोग ही नहीं रहे हैं, हम जबरदस्ती उनके ऊपर भोग का और आरोप कर रहे हैं। कोई पढ़ा-लिखा नहीं होगा, जैन नहीं होगा, सम्यग्दृष्टि नहीं होगा तो उसका दिमाग और खराब होगा। नहीं समझ आ रहा

है?



सबसे बड़े भोगी उपभोगी तो सिद्ध भगवान ही होते हैं बात fit ही नहीं बैठती है, अगर हम इन आत्मिक-गुणों की व्याख्या उनकी आत्मा में न करें और बाहर हम उनके कोई भी काम दिखाए तो एक तरफ हम यह भी कह रहे हैं कि उनका इससे कोई सम्बन्ध नहीं, उनका कुछ है नहीं तो फिर उनका भोग कैसे हो गया ये? उनके ही कर्म के क्षय से हो रहा है, तो उस कर्म के क्षय से, भोग तो उन्हीं को भोगने में आना चाहिए न! कोई भोग वे भोग नहीं रहे है, जो भी बाहर का हम दिखा रहे हैं। न पुष्पवृष्टि का भोग वे भोग रहे हैं, न सिंहासन का उपभोग वे भोग रहे हैं तो आखिर यह क्या है? समझ में आ रहा है? जो लोग चिन्तनशील हैं, स्वाध्यायी हैं, उन लोगों के पास तक यह चिन्तन पहुँचाना, प्रेषित करना और जो लोग सुन रहे हो, वह अपने-अपने विचार भी आगे प्रस्तुत कर सकते हैं। यह क्षायिक जो भाव हैं, उनके विषय में आपको जो समझाया गया, यह एक विशेष बात है और आगे के जो दो-भाव बचे हैं, वे तो clear हैं ही...एक क्षायिक-सम्यक्त्व है और एक क्षायिक-चारित्र है।

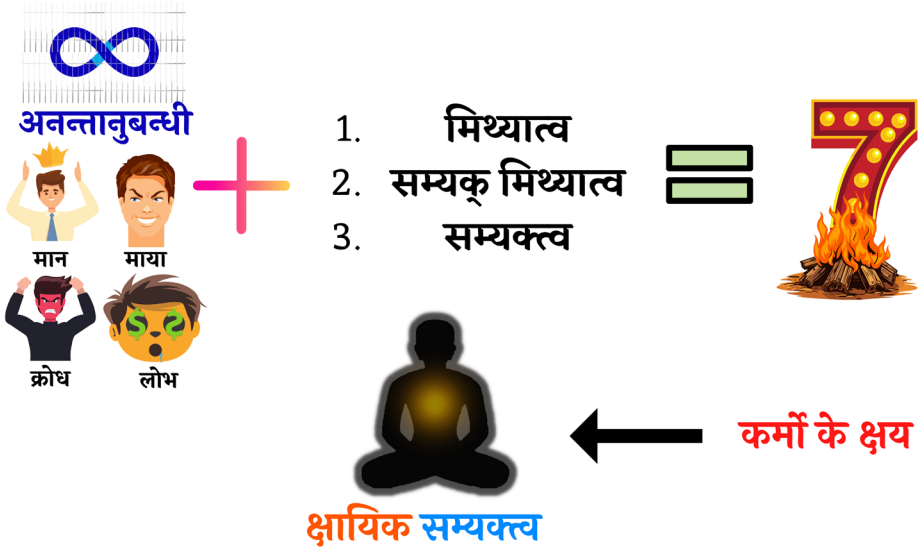
कौन से कर्म सम्यक्त्व विरोधी हैं

क्षायिक-सम्यक्त्व तो आत्मा में सम्यक्त्व की विरोधी जो भी कर्म प्रकृतियाँ हैं, उनके क्षय से होता है। आपको पता है कौन से कर्म, सम्यक्त्व के विरोधी हैं? आप ने केवल एक मिथ्यात्व का नाम, दर्शन-मोहनीय का नाम सुना। अब आपको थोड़ा-सा और भी जानना है।

दर्शन मोहनीय कर्म के भेद

SCAN TO WATCH

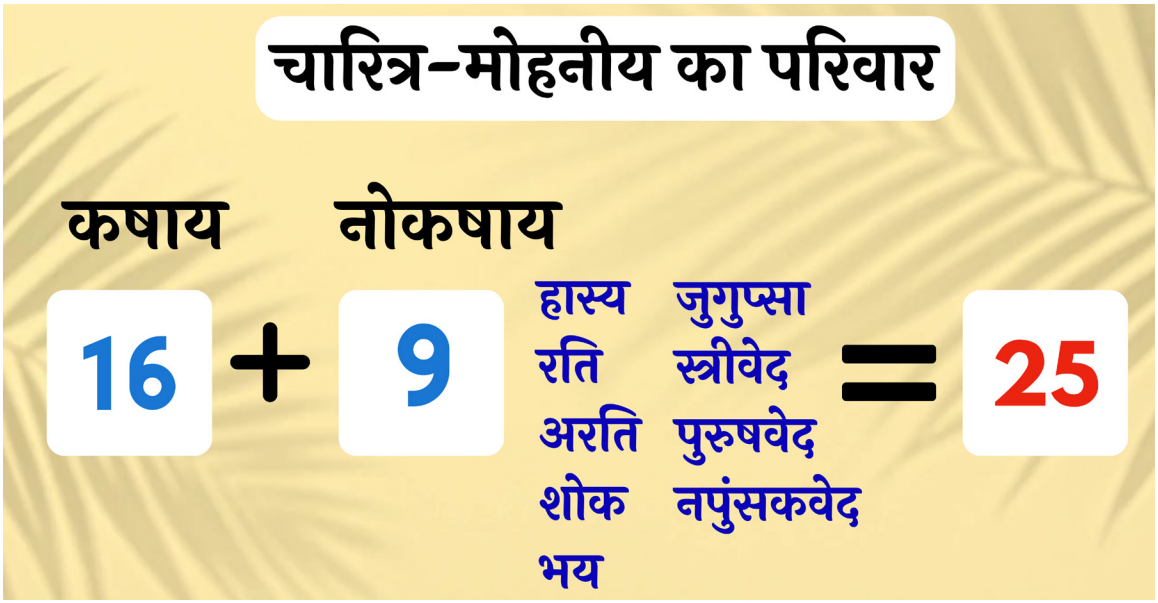
दर्शन-मोहनीय कर्म के 3 भेद होते हैं। कितने? 3 भेद। उसका एक भेद कहलाता है- **मिथ्यात्व**, दूसरा कहलाता है- **सम्यक् मिथ्यात्व** और तीसरा कहलाता है- **सम्यक्त्व।** सम्यक्त्व! वही सम्यग्दर्शन जिससे होता है, वही सम्यक्त्व कर्म। ये 3 कर्म इस दर्शन-मोहनीय कर्म के ही भेद हैं- मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति। ये तीन, यह पूरा दर्शन-मोहनीय का वंश है। इन तीनों कर्मों के साथ-साथ **अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, ये 4 कषायें,** ये भी इसी के साथ में है। 4 और 3 सात, **इन 7 कर्मों का जब आत्मा के अन्दर से सत्ता-नाश होगा,** तब क्या होगा? सत्ता-नाश समझ रहे हो? इनकी सत्ता का नाश हो जाना, अस्तित्व ही नहीं बचना, यह तो समझ चुके हैं न आप! पहले से समझाता आ रहा हूँ। **इनके सत्ता-नाश होने पर ही आत्मा के अन्दर क्षायिक-सम्यग्दर्शन का लाभ होता है।**



सम्यक्त्व प्रकृति भी एक कर्म है

कितने कर्मों के क्षय से? 7 कर्मों के क्षय से यानि सम्यक्त्व-प्रकृति भी एक कर्म है। जिस कर्म के उदय के कारण से हमें क्षयोपशम-सम्यग्दर्शन होता है, उसकी चर्चा हम आगे करेंगे। उसका भी क्षय होने पर आत्मा में जो आत्मा का गुण है, हमें कर्म का अनुभव नहीं करना है, हमें किसका अनुभव करना? आत्मा के गुण का। आत्मा का जो गुण है, वह सम्यक्त्व-गुण है। वह सम्यक्त्व-गुण कर्म के ऊपर depend नहीं है। इसलिए इन तीनों प्रकार के कर्म के नाश के साथ में, चारों कषायों का जब अभाव होता है तब जाकर के सात-कर्मों के क्षय से आत्मा में क्षायिक-सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

चारित्र मोहनीय का परिवार



अब क्षायिक-चारित्र, यह कहाँ होता है? जो चारित्र-मोहनीय कर्म का परिवार है। कितना परिवार है चारित्र मोहनीय कर्म का? यह जो **अनन्तानुबन्धी कषाय** थी, इसको **अप्रत्याख्यानावरणी कषाय, प्रत्याख्यानावरणी कषाय, संज्वलन कषाय और नौ नोकषाय**...इन सबको जब हम मिलाते हैं तो **4 प्रकार की कषाय हो गयी। चारों कषाय क्रोध, मान, माया, लोभ के भेद से 4 प्रकार की तो (4x4)16 हो गई और 9 नोकषाय होती है, (16 +9=25) पच्चीस। ये 25 का जो परिवार है, यह कहलाता है- चारित्र-मोहनीय का परिवार।** लेकिन इनमें से अनन्तानुबन्धी की संगति मिथ्यात्व के साथ रहती है, तो अनन्तानुबन्धी का क्षय तो मिथ्यात्व के क्षय होने पर हो गया, उसके साथ ही हो गया तो बचती हैं...कितनी? इक्कीस। 25 में से कितनी बचेंगी चारित्र-मोहनीय की? 21 प्रकृतियाँ।

क्षायिक चारित्र कब प्रकट होता है

उन **21 प्रकृतियों के क्षय होने पर जो आत्मा में चारित्र उत्पन्न होगा उसका नाम है- क्षायिक-चारित्र।** यह भी कब होगा? जब आत्मा में मोहनीय-कर्म का क्षय हो गया। मतलब यह **क्षायिक-चारित्र बारहवें गुणस्थान में ही प्रकट हो जाता है,** यूँ समझ लेना चाहिए। **क्षीणमोह गुणस्थान** जिसका नाम है, वहाँ मोह के क्षय होने पर यह क्षायिक-चारित्र आ गया। लेकिन वह थोड़ी देर **अन्तर्मुहूर्त में रहने के बाद, जब तेरहवें गुणस्थान में पहुँच जाता है वही जीव, तब उसके लिए यह क्षायिक-चारित्र के साथ में यह अनन्त-ज्ञान आदि गुणों का भी लाभ हो जाता है।** इस तरह से यह क्षायिक-भाव नौ प्रकार के बताए गए हैं, इनको हमें जानना

है।



क्षायिक सम्यक्त्व ही ऐसा है जो अरिहन्त के बिना निचले गुणस्थानों में होता है

इन क्षायिक-भावों में केवल एक क्षायिक-सम्यक्त्व ही ऐसा है, जो अरिहन्त के बिना निचले गुणस्थानों में होता है। थोड़ा-सा क्षायिक-चारित्र को भी हम बारहवें गुणस्थान में कह सकते हैं, बाकी के सभी भाव अरिहन्त भगवान के साथ ही क्षायिक रूप में रहते हैं। आ गया समझ में? कौन-से कर्म के क्षय से कौन-कौन से आत्मा में क्षायिक-भाव होते हैं? इस बात की जानकारी पूर्ण हो जाने के बाद ही आपको आगे का सूत्र पढ़ाया जाएगा। आज कोई नया सूत्र नहीं पढ़ा आपने। कल जो आपने क्षायिक-भावों को बताने वाला, नौ भावों को बताने वाला, जो आपने सूत्र पढ़ा था, उसी का और यह व्याख्यान हुआ, आज के लिए इतना ही पर्याप्त है।

बोलो महावीर भगवान की जय!

सारांश

1. हमने सीखा कि -
    - पारिणामकि-भाव कर्म की अपेक्षा नहीं रखते
    - अन्य भाव कर्म के कारण होते हैं
    - जैसे औदयिक-भाव - कर्म के उदय से
    - और औपशमिक-भाव कर्म के उपशमन से
2. क्षायिक-भाव **कर्मों** के क्षय से होते हैं
3. हमने इसके 9 प्रकारों को जाना
4. ज्ञान का क्षायिक-भाव **क्षायिक-ज्ञान** है
    - यह **केवलज्ञानावरण कर्म** के क्षय से होगा
    - इसे **अनन्त-ज्ञान** भी कहते हैं और इससे **अनन्त-ज्ञेयों** को उनको अनंत गुणों और पर्यायों के साथ जानते हैं
    - यह केवलज्ञान का स्वरूप है
    - यह **अरिहन्त-दशा में तेरहवें गुणस्थान** में होगा
5. वहीं **क्षायिक सम्यक्त्व** चौथे गुणस्थान में भी हो सकता है
6. दूसरा क्षायिक-भाव **क्षायिक दर्शन** है
7. यह **दर्शनावरणीय कर्म** के क्षय से होगा
8. ज्ञान से वस्तु को जानते हैं और दर्शन से उसके सामान्य स्वरूप को देखते हैं
9. छद्मस्थ अवस्था में दर्शन के बाद ज्ञान होता है
10. लेकिन केवली भगवान में क्षायिक-ज्ञान और क्षायिक-दर्शन दोनों ही एक साथ काम करते हैं
    - वे वस्तु का एक साथ ही सामान्य अवलोकन करते हैं और उसे जानते हैं
11. हमने जाना कि अन्तराय कर्म पाँच प्रकार के होते हैं - दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य
12. इन अंतराय कर्मों का क्षय **अरिहन्तों** के ही होता है और इनके क्षय से उनको पाँच लब्धियाँ प्राप्त होती हैं
13. तीसरा क्षायिक भाव है क्षायिक दान
14. यह दानान्तराय कर्म के क्षय से होगा
15. **छद्मस्थ जीव** अपने दानान्तराय-कर्म के क्षयोपशम के अनुसार ही दान कर पाएँगे
16. क्षायिक दान में अनन्त-दान की उपलब्धि हो गई
17. हमने जाना क्षायिक दान होने के पश्चात् **अरिहन्त भगवान** अभय का दान करते हैं
    - अभय अर्थात दूसरे से भय नहीं लगना
    - अरिहन्त, तीर्थंकर जहाँ होते हैं, वहाँ अभय का वातावरण होता है
    - समवशरण में हिंसक पशु भी बैठे रहते हैं पर कोई भी वहाँ पर उपद्रव नहीं करता

18. सिद्धों अशरीरी हैं परन्तु उनकी आत्मा में **यह क्षायिक-दान** का भाव निरंतर रहता है
19. सिद्ध हमारे सामने नहीं है मगर जब हम उनके स्वरुप का ध्यान करेंगे, उन्हें अपने सामने लायेंगे तो अभय को प्राप्त होंगे, निर्भीक होंगे
    - यही उनका अभयदान है
20. चौथा क्षायिक भाव है **क्षायिक-लाभ**
21. यह लाभान्तराय कर्म के क्षय से होगा
22. इसके कारण अरिहन्तों का शरीर **बिना कवलाहार** के भी बिना मुरझाये, ढीला पड़े **करोंड़ों वर्षों** तक बना रह सकता है
23. यह आत्मा की शक्ति है लेकिन फल शरीर में दिखाई देता है
24. हमने जाना कि शरीर के लिए हमें भोजन की आवश्यकता **उसके योग्य पुद्गल-** वर्गणाओं को ग्रहण करने के लिए होती है
25. क्षायिक-लाभ होने के पश्चात् **अरिहंत** सूक्ष्म, शुभ, मधुर, स्निग्ध **पुद्गल वर्गणाओं** को बिना भोजन के ग्रहण करते रहते हैं
26. भोग अन्तराय कर्म के क्षयोपशम से हमें अपने भोग की वस्तुयें उपयोग के लिए, भोगने के लिए मिलती हैं
27. अरिहन्त भगवान में इसके क्षय होने से
    - जहाँ वे बैठते हैं, वहाँ पुष्पवृष्टि होगी
    - गन्धोदक-वृष्टि होगी
    - सुगन्धित पवन बहेगी
28. वे भले ही इन सब पुष्पवृष्टि आदि का भोग नहीं कर रहे हैं लेकिन उनका क्षायिक भोग दूसरों के काम आ रहा है
29. तीर्थंकरों के चरणों के नीचे हर कदम पर 225 कमलों की रचना होती है
    - जैसे जैसे वे आगे बढ़ते हैं कमल आगे आगे बनते हैं और पीछे पीछे मिट जाते हैं
    - यह भोग अन्तराय कर्म के क्षय के साथ तीर्थंकर-नामकर्म और शरीर-नामकर्म के उदय से होता है
    - इस कारण कमल की रचना सिर्फ तीर्थंकर भगवान के चरणों के नीचे होती है सामान्य केवली के नहीं
30. **सामान्य-केवली,** जिनके तीर्थंकर-नामकर्म का उदय नहीं है उनके पास भी क्षायिक-लब्धियाँ तो हैं लेकिन उनके लिए ये लब्धियाँ आत्मा में ही बार-बार घटित होने वाली अनुभूति की प्रक्रिया होंगी
    - बाहर इनका किसी भी पुद्गल से सम्बन्ध नहीं होगा
31. हमने **भोग और उपभोग** में अन्तर को जाना
32. भोग की वस्तु केवल एकबार उपयोग में आती हैं जैसे भोजन, पुष्पों की माला, पुष्पवृष्टि, गन्धोदक-वृष्टि

33. उपभोग की वस्तु बार-बार भोगने में आती है जैसे कपड़े, मकान, जेवर
34. उपभोगान्तराय-कर्म के क्षय से **उपभोग की सामग्री** भी सिर्फ उन्हीं केवली को मिलेगी जिनके तीर्थंकर-नामकर्म और शरीर-नामकर्म का उदय भी साथ में हो
    - जैसे जहाँ वे बैठे हैं, सिंहासन लगा हुआ है
    - 8 प्रातिहार्यों में से 7 प्रातिहार्य तो उपभोगान्तराय-कर्म के क्षय से होते हैं
    - और पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य भोगान्तराय-कर्म के क्षय से होता है
35. यहाँ भी उपभोग सामग्री **भगवान्** की है पर वे भोग नहीं रहे हैं
36. कुछ प्रश्न अनसुलझे हैं जैसे जब तीर्थंकर योग-निरोध करने चले जाते हैं तो उस समय पर वह समवसरण आदि सभी भोग उपभोग की सामिग्री छोड़ देते हैं लेकिन तीर्थंकर-नामकर्म और शरीर-नामकर्म का उदय तो तब भी चल रहा होता है
    - फिर भोग-उपभोग की सामग्रियाँ छूट क्यों जाती हैं?
37. आचार्यों ने बताया है कर्म के क्षय का जो कार्य है जैसे अष्ट-प्रातिहार्य प्रकट होना; वो केवल हमें समझाने के लिए है
    - वस्तुतः ये आत्मिक उपलब्धियाँ हैं, आत्मा के क्षायिक-भाव हैं
    - और आत्मा की अनुभूति का ही विषय हैं
    - इन्हें कोई भी समझा नहीं सकता
38. क्षायिक वीर्य अर्थात आत्मा में उत्पन्न अनंत शक्ति है
39. ज्ञान, दर्शन और शक्तियाँ ये आत्मा के आत्मिक अनुजीवी-गुण हैं
40. बिना शक्ति के ज्ञान और दर्शन अपना काम नहीं कर पाएंगे
41. क्षायिक लब्धियाँ आत्मा के भाव हैं
42. मगर आचार्यों ने हमें समझाने के लिए इसे प्रातिहार्य आदि पर घटित किया है
43. मुनि श्री ने **अपने चिंतन से** इन लाब्धियों को आत्मा पर ही घटित किया है
    - आत्मा के लिए अनन्त-काल के लिए जो अनन्त-गुणों का लाभ हुआ, यह **क्षायिक-लाभ** है
    - हर समय जो आत्मा के अन्दर क्षायिक-ज्ञान का, सुख का, शुद्ध-भाव का, परम-पारिणामिक शुद्ध-चैतन्य परिणाम का, रस उत्पन्न हो रहा है, यह **क्षायिक-भोग** है
    - हर समय यह भोग करने के बावजूद भी उसी को ही बार-बार भोग रहे हैं, यह **क्षायिक-उपभोग** है

i. जैसे अनार के रस को पीते समय उसकी प्रत्येक घूँट तो भोग है मगर गिलास की अपेक्षा एक जैसी ही घूँट बार-बार भोग रहे हैं तो यह उपभोग है

    - अभय का दान **क्षायिक-दान** है
    - **क्षायिक-वीर्य** के कारण से वह अनन्त-गुणों का उपभोग कर रहे हैं

i. शक्ति के साथ में ही ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग का काम चलता है

44. मुनि श्री का यह चिंतन सामान्य केवली, तीर्थंकर, योग-निरोध कर रहे तीर्थंकर और सिद्ध सभी में घटित होता है
45. सिद्ध भगवान वस्तुतः सबसे-बड़े भोगी-उपभोगी होते हैं
46. सहस्त्रनाम में भगवान के नाम महाभोग, महालाभ भी आते हैं
47. क्षायिक-सम्यक्त्व **आत्मा में** सम्यक्त्व विरोधी कर्म प्रकृतियाँ के क्षय से होता है
48. **दर्शन-मोहनीय कर्म** 3 प्रकार का होता है - मिथ्यात्व, सम्यक्-मिथ्यात्व और सम्यक्त्व
49. सम्यक्त्व प्रकृति भी एक कर्म है जिसके उदय से हमें **क्षयोपशम-सम्यग्दर्शन** होता है
50. मिथ्यात्व, सम्यक्-मिथ्यात्व और सम्यक्त्व के साथ **अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ**; इन सात कर्मों के क्षय से **क्षायिक-सम्यग्दर्शन** होता है
51. चारित्र मोहनीय कर्म के 25 प्रकार हैं
    - चार अनन्तानुबन्धी कषाय - अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ
    - इसी तरह चार अप्रत्याख्यानावरणी कषाय,
    - चार प्रत्याख्यानावरणी कषाय,
    - चार संज्वलन कषाय
    - और नौ नोकषाय
52. इनमे अनन्तानुबन्धी कषायों का क्षय **क्षायिक-सम्यग्दर्शन** की उत्पत्ति के समय हो जाता है
53. शेष इक्कीस के क्षय से आत्मा में **क्षायिक-चारित्र** होता है
54. यह बारहवें क्षीण मोह गुणस्थान में ही प्रकट होता है
55. इन सभी क्षायिक-भावों में **क्षायिक-सम्यक्त्व** ही चतुर्थ गुणस्थान में हो सकता है और एक **क्षायिक-चारित्र** बारहवें गुणस्थान में, बाकी के सभी भाव अरिहन्त भगवान के साथ ही क्षायिक रूप में रहते हैं

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1.किस कर्म के नाश से क्षायिक ज्ञान होता है ?
1. दर्शनावरण
2. ज्ञानावरण
3. अंतराय
4. उपरोक्त सभी के नाश से

Q2.किस कर्म के नाश से क्षायिक दर्शन होता है ?
1. दर्शनावरण
2. ज्ञानावरण
3. अंतराय
4. उपरोक्त सभी के नाश से

Q3.छद्मस्थ अवस्था में क्या होता है ?
1. पहले वस्तु का ज्ञान और फिर वस्तु का अवलोकन
2. पहले वस्तु का अवलोकन और फिर वस्तु का ज्ञान
3. वस्तु का अवलोकन और ज्ञान साथ साथ होते हैं

Q4.किस कर्म के क्षय के कारण अरिहंत भगवान कवलाहार नहीं लेते हैं ?
1. दानंतराय कर्म
2. लाभान्तराय कर्म
3. भोगान्तराय कर्म
4. वीर्यन्तराय कर्म

Q5.किस कर्म के क्षय से तीर्थंकर भगवान के समवशरण में सभी जीवों को अभय प्राप्त होता है?
1. दानंतराय कर्म
2. लाभान्तराय कर्म
3. भोगान्तराय कर्म
4. वीर्यन्तराय कर्म

Q6.पांच प्रकार के भावों में कौन सा भाव, कर्म की अपेक्षा नहीं रखता?
1. क्षायिक भाव
2. औदयिक भाव
3. पारिणामिक भाव

Q7.क्षायिक भोग में क्या होता है?
1. भामंडल
2. पुष्पवृष्टि
3. देव दुंदुभी
4. दिव्यध्वनि

Q8.तीर्थंकर भगवान के चरणों के नीचे कितने कमलो की रचना होती है?
1. 625
2. 225
3. 125

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q9.सामान्य केवली के चरणों के नीचे कितने कमल की रचना होती है?
1. एक भी नहीं
2. 25
3. 225

Q10.सामान्य केवली के लिए पुष्प वृष्टि कब होगी?
1. कभी-कभी ज्ञान कल्याणक के समय
2. विहार करते समय
3. गंधकुटी में बैठते समय

Q11.भगवान पर हुई गंधोदक वृष्टि क्या है?
1. उपभोग
2. भोग
3. कोई भी नहीं

Q12.कितने कर्मों के नाश से क्षायिक समयक्त्व की प्राप्ति होती है?
1. 4
2. 2
3. 7
4. 3

Q13.चारित्र मोहनीय की कितनी प्रकृतियों का क्षय होने पर क्षायिक चारित्र प्रकट होता है?
1. 7
2. 3
3. 24
4. 21

Q14.कौन से गुण स्थान में चारित्र मोहनीय कर्म का नाश होता है ?
1. चौथे
2. ग्यारहवें
3. छटे
4. बारहवें

Q15.तीर्थंकर भगवान को भोग और उपभोग अंतराय कर्म के क्षय होने पर मिलने वाली सामग्री का क्या कारण है?
1. केवल शरीर नाम कर्म का उदय
2. केवल तीर्थंकर नाम कर्म का उदय
3. आत्मिक उपलब्धि

Q16.आत्मा में अनंत काल के लिए अनंत गुणों का लाभ क्या कहलाता है?
1. क्षायिक लाभ
2. क्षायिक भोग
3. क्षायिक उपभोग

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

SCAN TO WATCH

अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1. पारिणामिक भाव जीव में अनादि से है क्योंकि कर्म का उदय भी अनादि से है ।यह कथन सत्य है कि असत्य ?
2. क्षायिक सम्यक्त्व तथा क्षायिक चारित्र के गुणस्थान बताइये।
3. दर्शनावरणी कर्म के क्षय से कौनसा गुण उत्पन्न होता है?
4. क्षायिक लब्धियाँ कैसे प्राप्त होती है?
5. क्षायिक दान का स्वरूप समझाइए ।
6. तीर्थंकर के चरणों के नीचे कितने कमलों की रचना होती है ?
7. कौनसे प्रातिहार्य उपभोगान्तराय कर्म के क्षय से प्राप्त होते हैं और कौनसे भोगान्तराय कर्म के क्षय से ?
8. महाभोग और महालाभ किसके नाम है?
9. नौ नोकषाय किस कर्म प्रकृति के भेद है?
10. क्षायिक चारित्र कब प्रकट होता है?

प्रवचन 04

क्षायोपशमिक भावों की विवेचना

ज्ञाना-ज्ञान-दर्शन-लबध्यश्चतुस्त्रि-त्रि-पञ्चभेदा:-सम्यक्त्व-चारित्र-संयमासंयमाश्च ॥2.5॥

ज्ञान+अज्ञान-दर्शन-लब्ध्य: चतु: + त्रि-त्रि+ पंचभेदा: सम्यक्त्व-चारित्र-संयम + असंयमा: + च

चार ज्ञान अज्ञान त्रय, - दर्श लब्धि हैं पाँच ।
सम्यक, चारित, देशव्रत-, छयोपशम से जाँच॥2.5॥

इस सूत्र में क्षायोपशमिक भावों का कथन किया गया है। बताया जा चुका है कि क्षायोपशमिक भाव अट्ठारह प्रकार के होते हैं।

द्वि-नवाष्टा-दशैक-विंशति-त्रि-भेदा यथा-क्रमम् ॥2.2॥

द्वि-नव+अष्टादश+एकविंशति-त्रि-भेदा यथाक्रमम्

:- दो, नव, अठदश, बीस इक, तथा तीन परकार।
क्रम से मिल त्रेपन बनें, निज में नेक निहार॥2.2॥

इस सूत्र में अट्ठारह प्रकार के क्षायोपशमिक भाव बताए गए हैं।

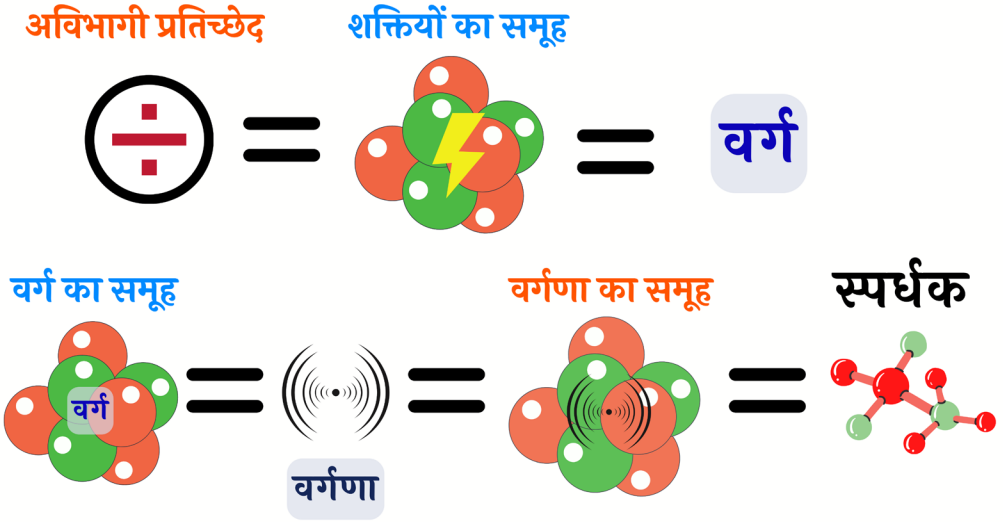
क्षायोपशमिक भाव क्या होता है?

हम थोड़ा-सा यह जानने की पहले कोशिश करें कि क्षायोपशमिक भाव का मतलब क्या होता है? थोड़ी-सी सैद्धान्तिक परिभाषा को हमें समझना जरूरी है। क्षायोपशमिक भाव जानने के लिए मुख्य रूप से जो परिभाषा है, वह परिभाषा समझ में आनी भी चाहिए और थोड़ी-सी सैद्धान्तिक विवेचना जब हम सुनेंगे तभी हम उस परिभाषा के अनुसार इन भावों को घटित कर पाएँगे। कर्मों में अनुभाग की शक्तियाँ होती हैं और उन अनुभाग शक्तियों में दो प्रकार की अनुभाग शक्तियों का वर्णन किया जाता है- एक **देशघाती स्पर्धक** के रूप में और एक **सर्वघाती स्पर्धक** के रूप में। यह '**स्पर्धक**' आपके लिए एक नया शब्द आ गया। यह समझकर चलो कि जो भी हम कर्मों का फल, अनुभाग बन्ध का, हम भोगते हैं या कर्म के बन्ध के समय पर जो अनुभाग बन्ध होता है, उस **अनुभाग बन्ध में हीनाधिकता जानने के लिए स्पर्धक को समझना जरूरी होता है।**

स्पर्धक क्या होता है और कैसे बनते है?

SCAN TO WATCH

यह स्पर्धक क्या होता है? आप इतना-सा समझ सकते हैं कि कोई भी परमाणु होता है, तो उस परमाणु का अपना प्रदेश होता है और उस प्रदेश के अन्दर अविभागी प्रतिच्छेदों की शक्तियाँ होती हैं। एक simple तरीके से जानने के लिए इतना सा समझना है कि **अविभागी प्रतिच्छेद जो कि शक्तियों का समूह है उस समूह से बनते हैं- वर्ग और वर्गों के समूह से बनती हैं- वर्गणा और वर्गणाओं के समूह से बनते हैं- स्पर्धक।**

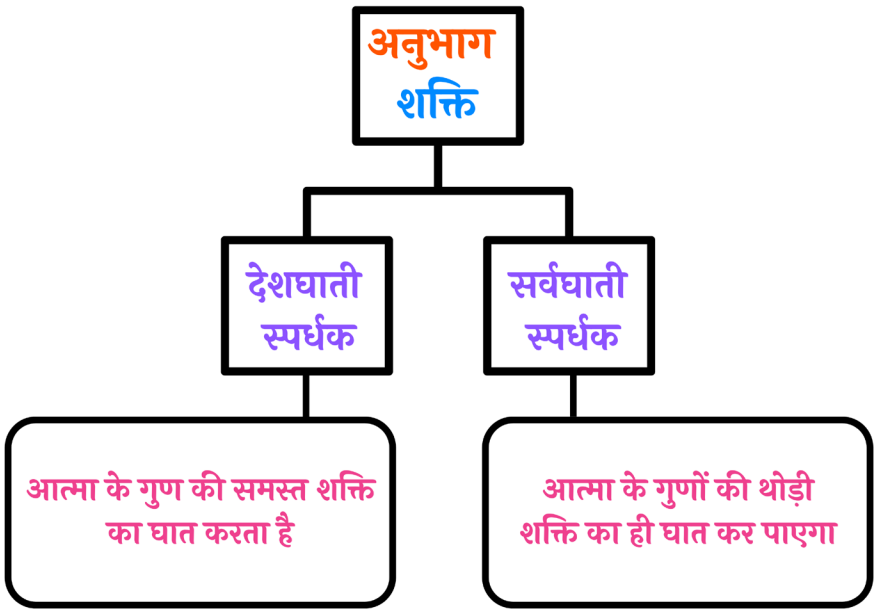


मतलब स्पर्धक एक ऐसी मोटी चीज हो गई, शक्ति का एक ऐसा बन्ध हो गया, जिसके माध्यम से हम उस कर्म की शक्ति का अनुभव कर सकते हैं। किसी भी चीज पर जब कोई दूसरी चीज जम जाती है, तो उसकी शक्ति देखी जाती है। जैसे कहीं काई लग गई है या लोहे पर जंग लग गई है, तो यह देखा जाता है कि यह जंग कितनी पुरानी है, कितनी मोटी है? उसके ऊपर एक पपड़ी-सी पड़ जाती है। आप simple सा इतना ही समझ लो कि **स्पर्धक का मतलब एक पपड़ी type की है, जो हमारी आत्मा के ऊपर कर्मों के अनुभाग की पड़ गई है।**

स्पर्धकों के प्रकार

अब यह स्पर्धक दो प्रकार के होते हैं- एक **देशघाती** होते हैं और एक **सर्वघाती** होते हैं। यह देशघाती और सर्वघाती की व्यवस्था को समझना जरूरी है। सर्वघाती जो शक्ति होगी, सर्वघाती जो स्पर्धक होंगे वह जब तक हमारे उदय में रहेंगे, कर्मफल के माध्यम से उनका उदय हमें महसूस होगा। उसके उदय में आत्मा का कोई भी गुण प्रकट नहीं होगा या वह सर्वघाती स्पर्धक

आत्मा के जिस गुण के ऊपर होगा, जिस गुण को घात करेगा तो **आत्मा का वह गुण अपनी किसी भी प्रकार की शक्ति को प्रकट नहीं कर पाएगा, जब तक कि सर्वघाती स्पर्धक का उदय है।** नाम भी ऐसा ही है... **'सर्वघाती'** मतलब सबका घात करने वाला मतलब आत्मा के समस्त गुणों की जो शक्ति है उसको वह घात करता है। इसलिए उसका नाम क्या है? सर्वघाती! और स्पर्धक मतलब हो गया एक अनुभाग की शक्ति। जो कर्म में फल देने की अनुभाग शक्ति है वह दो रूपों में जानी जाती है- एक सर्वघाती स्पर्धक और एक देशघाती स्पर्धक।



देशघाती स्पर्धक का अर्थ

देशघाती का मतलब अनुभाग का जब उदय होगा तो उसमें **उसकी पूरी की पूरी शक्ति उस गुण की नाश करने की क्षमता नहीं होगी, वह उसकी थोड़ी शक्ति का ही घात कर पाएगा।** उसको क्या बोलेंगे? **देशघाती स्पर्धक।** कोई भी कर्म होता है, तो उस कर्म में यह देखा जाता है कि इसमें सर्वघाती स्पर्धक हैं या देशघाती स्पर्धक हैं। कोई-कोई कर्म की प्रकृतियाँ ऐसी होती हैं, उनमें सर्वघाती ही होते हैं और कोई-कोई ऐसे होते हैं जिनमें देशघाती ही होते हैं और कोई-कोई ऐसे भी होते हैं, जिनमें कुछ सर्वघाती शक्तियाँ भी होती है, कुछ देशघाती शक्तियाँ भी होती हैं। इस तरह से इन पहले देशघाती और सर्वघाती की जब हम व्यवस्था को थोड़ा-सा समझने लगेंगे तब हमें क्षयोपशम भाव समझ में आने लगेगा। अब इसमें तो कोई ज्यादा दिक्कत की बात नहीं है कि एक देशघाती शक्ति है, जिसके कारण से आत्मा का कुछ गुण प्रकट हो जाएगा। एक सर्वघाती शक्ति है जो आत्मा का गुण पूरा का पूरा दबा देगी, उसको प्रकट नहीं करने देगी, यह वह शक्ति है।

केवल ज्ञानावरणीय कर्म में सर्वघाती स्पर्धक है

समझने के लिए जैसे केवल ज्ञानावरणीय कर्म है, कौन-सा कर्म? केवल ज्ञानावरणीय कर्म। यह केवल ज्ञानावरणीय कर्म क्या है? इसमें जो अनुभाग शक्ति है यह सर्वघाती शक्ति है। इसमें जो स्पर्धक होंगे वे सब सर्वघाती होंगे। क्यों होंगे? क्योंकि जब भी कभी केवल ज्ञानावरणीय कर्म का उदय होगा तो उसके सर्वघाती स्पर्धकों के उदय के कारण से उस केवलज्ञान का पूरा का पूरा घात होगा। ऐसा नहीं है कि केवलज्ञान का थोड़ा-सा अंश प्रकट हो जाएगा। इसलिए यह प्रकृति भी सर्वघाती कहलाती है और इसके अन्दर जो स्पर्धक होंगे वे भी सर्वघाती होंगे... समझने के लिए एक उदाहरण दिया जा रहा है। अतः ये **सर्वघाती स्पर्धक हुए जिसके कारण से हमारे अन्दर केवलज्ञान का कोई अंश प्रकट नहीं हो सकता।**

क्षयोपशम ज्ञान में कुछ स्पर्धक देशघाती और कुछ सर्वघाती

अब **मतिज्ञान है, श्रुतज्ञान है, यह क्षयोपशम ज्ञान कहलाते हैं** तो इनमें इस तरह के स्पर्धक भी होते हैं कि कुछ स्पर्धक देशघाती हो, कुछ स्पर्धक सर्वघाती हो। जब सर्वघाती स्पर्धकों का उदय रहेगा तो उस शक्ति का कुछ भी हमें ग्रहण करने में नहीं आएगा और जब देशघाती का उदय होगा तो ही हमें कुछ ग्रहण करने में आएगा। थोड़ी-सी सैद्धान्तिक बात है, अति सूक्ष्म विवरण है क्योंकि कर्म विज्ञान अपने आप में बहुत बड़ा विज्ञान है।

क्षयोपशम- एक क्षय और एक उपशम

कर्मों को, जो हमारी आत्मा में बन्ध को प्राप्त होते हैं उनमें चार प्रकार के बन्ध होते हैं और उनमें एक अनुभाग बन्ध होता है। उस अनुभाग बन्ध से ही यह क्षयोपशम भाव निर्भर करता है। यहाँ पर हम देखें कि उस क्षयोपशम भाव में क्या होता है? आचार्य कहते हैं- क्षयोपशम भाव में दो शब्द हैं- एक क्षय और एक उपशम। कितने शब्द हैं? दो! एक क्षय और एक उपशम। इन दोनों शब्दों से मिलकर के क्या बना? क्षयोपशम।

क्षयोपशम भाव क्या है?

क्षय + उपशम = क्षयोपशम

यहाँ क्षय का मतलब वह नहीं जो हमने पढ़ाया था। कर्मों का अत्यन्त क्षय हो जाना, वह यहाँ पर नहीं लिया जाएगा। अब यहाँ पर सत्तानाश नहीं है। यहाँ पर कर्म के क्षय का और उपशम का मिला-जुला भाव आएगा। जिसका नाम है- **एक भाव- क्षयोपशम भाव।** होता क्या है? जब भी कोई सर्वघाती कर्म का उदय चल रहा हो तो हमें उस सर्वघाती कर्म को इस तरह से उसकी स्थिति मतलब उसकी दशा बनानी पड़ती है कि उसके सर्वघाती स्पर्धकों को हम उदय में न आने दे। इतनी हमें अपनी आत्मा के विशुद्ध परिणामों की शक्ति लगानी पड़ती है कि उस कर्म को हम क्या कर दे? दबा दे।

उदयाभावी क्षय का मतलब क्या है?

दबा देंगे तो दबाने के बाद में वह कुछ time तक वह हमारे लिए फल न दे पाए, उदय में न आने का मतलब क्या है? फल न दे पाए। उसकी शक्ति हमारे लिए कोई प्रभाव न डाले। इसी प्रक्रिया में दो चीजें हो जाती हैं...क्षय का मतलब हो जाता है- उस सर्वघाती स्पर्धक के उदय का अभाव। इसको बोलते हैं- **उदयाभावी क्षय।** उदय के अभाव रूप क्षय मतलब वह कर्म उदय को नहीं प्राप्त होगा, उदय का अभाव कर दिया, यही उसके लिए क्षय हो रहा है। वह दूसरे रास्ते से गुजर कर जाएगा, पर-प्रकृति में संक्रमित होकर के निकलेगा लेकिन **वह स्व-उदय, स्व-मुख के माध्यम से उसका उदय नहीं होगा तो उसको बोलेंगे- उदयाभावी क्षय। यह एक process हुआ कि उदय में नहीं आने देना।**



क्षयोपशम भाव कैसे बनेगा?

दूसरा- उसका **सद्वस्था रूप उपशम** मतलब वह जैसा है, उसका उसी अवस्था में उसको दबाकर रखना, बनाए रखना, सत्ता में से उखड़ न जाए। इसको क्या बोलते हैं? उपशम। कर्म का हमने उपशम भी कर रखा और जितने time तक उसका उपशम है, उतने time तक उसके उदय का अभाव रहेगा। इसलिए उन दोनों के मिलने से क्या बनेगा? यह क्षयोपशम भाव बनेगा। समझ आ रहा है? मतलब कि एक तरह का हमने उसका थोड़े time के लिए gap कर दिया और जब उसका gap होगा तब कोई दूसरे कर्म का, जो देशघाती कर्म होगा, उसका जब उदय आएगा तो उसका फल तब हम महसूस कर पाएँगे। उसके कारण से आत्मा की कुछ शक्ति प्रकट हो जाएगी और इस शक्ति को हम दबा पाएँगे। कुछ समझ आया? अब हम आगे पढ़ते हैं।

कौन-कौन से क्षयोपशम भाव हैं?

ज्ञाना-ज्ञान-दर्शन-लबध्यश्चतुस्त्रि-त्रि-पञ्चभेदा:-सम्यक्त्व-चारित्र-संयमासंयमाश्च ॥2.5॥

ज्ञान+अज्ञान-दर्शन-लब्ध्य: चतु: + त्रि-त्रि+ पंचभेदा: सम्यक्त्व-चारित्र-संयम + असंयमा: + च

चार ज्ञान अज्ञान त्रय, - दर्श लब्धि हैं पाँच।
सम्यक, चारित, देशव्रत-, छयोपशम से जाँच ॥2.5॥

चार चीजें बताई जा रही है यहाँ पर पहले ज्ञान, अज्ञान, दर्शन और लब्धि। कितनी-कितनी संख्या में होते हैं? वह संख्या भी आगे लिखी हुई है। पहले लिखा है **'चतु:'** - चतु: मतलब चार तो ज्ञान के चार भाव क्षायोपशमिक भाव हैं मतलब चार ज्ञान क्षायोपशमिक हैं। कौन-कौन से? मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान। ये ज्ञान कैसे हैं? ये क्षायोपशमिक ज्ञान हैं। क्या मतलब हुआ? जब भी ये ज्ञान प्रकट होंगे तो इनमें से क्षयोपशम भाव के कारण से, जितना हमने सर्वघाती कर्म का अभाव कर दिया, उतनी तो शक्ति हमारे लिए प्रकट हो जायेगी और जितना देशघाती कर्म का उदय होगा, उसके अनुसार हमें उस ज्ञान का फल मिलेगा। मतलब सर्वघाती स्पर्धक का सद्वस्था रूप उपशम और उदयाभावी क्षय यह बना कर रखना है और जो देशघाती स्पर्धक होगा, उसके उदय में वह ज्ञान क्या करेगा? जितना अंश है, उसका कुछ अंश तो हमारे ज्ञान में प्रकट होने लग जाएगा।



"कितनी ही विशुद्धि कर लो आपके अन्दर उतनी विशुद्धि नहीं आ सकेगी कि आप अवधि ज्ञानावरण का क्षयोपशम कर पाएँ"

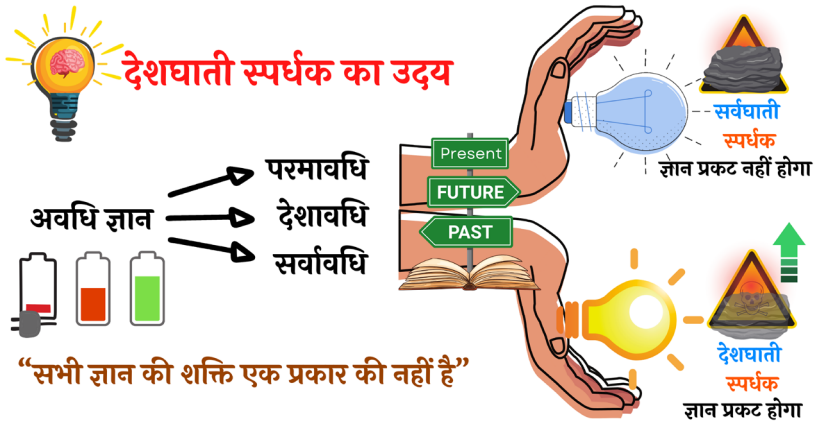
अवधि-ज्ञानावरणीय के सर्वघाती स्पर्धकों के उदय से क्षयोपशम नहीं हो सकेगा

अब जैसे अवधि ज्ञान है, तो अभी हमारे अन्दर अवधि ज्ञान का कोई क्षयोपशम नहीं है। यानि क्या हो रहा है? अवधि ज्ञान के सर्वघाती स्पर्धकों का हमारे ऊपर प्रभाव पड़ रहा है। किसी को अवधिज्ञान नहीं होगा। इसका अर्थ क्या है? उस अवधि ज्ञानावरणीय के सर्वघाती स्पर्धकों का उदय चल रहा है। उन सर्वघाती स्पर्धकों की इतनी शक्ति है कि आप कितनी ही विशुद्धि कर लो आपके अन्दर उतनी विशुद्धि नहीं आ सकेगी कि आप अवधि ज्ञानावरण का क्षयोपशम करवा पाएँ, उसका क्षयोपशम नहीं हो सकेगा। मान लो अवधि ज्ञानावरण कर्म का कभी क्षयोपशम हुआ तो क्षयोपशम में क्या होगा?

देशघाती स्पर्धकों के उदय से कुछ ज्ञान प्रकट हो रहा है

SCAN TO WATCH

कुछ सर्वघाती स्पर्धकों का जो हमने अभाव कर दिया तो उसके कारण से जो शक्ति पूरी की पूरी दबी थी, वह अब कुछ प्रकट होने लग जाएगी और देशघाती कर्म, उसके साथ में देशघाती स्पर्धकों का उदय रहेगा। वह क्या करेंगे? देशघाती स्पर्धकों के कारण से उस ज्ञान की शक्ति एक प्रकार की तो है नहीं, अब अवधि ज्ञान में भी देशावधि ज्ञान है, परमावधि ज्ञान है, सर्वावधि ज्ञान है, तो कुछ ज्ञान प्रकट हो रहा है और कुछ प्रकट नहीं हो रहा है। जो प्रकट नहीं हो रहा है, तो **सर्वघाती स्पर्धकों का अभी भी उदय चल रहा है उसके कारण से नहीं प्रकट हो रहा है और जो प्रकट हो रहा है वह सर्वघाती स्पर्धक जो दब गए और जितना देशघाती स्पर्धकों का उदय है, उसके कारण से वह ज्ञान प्रकट हो रहा है।** देशघाती स्पर्धक क्या करते हैं? वे हमारे लिए पूरी की पूरी शक्ति का घात नहीं करते, उनके उदय होने पर कुछ ज्ञान का अंश प्रकट होगा लेकिन पूरा का पूरा प्रकट नहीं हो पाएगा। इसलिए जब भी कभी अवधि ज्ञान का क्षयोपशम होगा तो उसमें भी क्षयोपशम होने पर सबका अवधि ज्ञान एक जैसा नहीं हो जाएगा। अवधि ज्ञान सबका अलग-अलग रहेगा।



अवधिज्ञान के क्षयोपशम में अन्तर किससे आता है?

सबके अवधिज्ञान के क्षयोपशम में अन्तर आता है तो कैसे आएगा? जो देशघाती स्पर्धकों का उदय चल रहा है, उनका जो रस होगा वह जब धीरे-धीरे कम होगा तो अवधिज्ञान का क्षयोपशम बढ़ता चला जाएगा। ऐसे ही मतिज्ञान में होता है, ऐसे ही श्रुतज्ञान में होता है यानि कभी भी ज्ञान का क्षयोपशम प्रकट हुआ तो उसमें सर्वघाती स्पर्धकों का तो पहले अभाव होना चाहिए तत्सम्बन्धी, जो भी ज्ञान प्रकट हो रहा है और उसमें देशघाती जो स्पर्धक हैं उनका उदय होना चाहिए और उस उदय को भी जब हम उस देशघाती स्पर्धक के भी उस रस को (ये क्या है? रस है, कर्मों का फल है, कर्मों का रस है) उस देशघाती रस की भी शक्ति को जैसे-जैसे हम कम करते जाएँगे तो हमारे ज्ञान में वृद्धि होती चली जाएगी। इतना समझते हुए हम थोड़ी-सी आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं।

सम्यग्ज्ञान का अर्थ

अतः ज्ञान का अर्थ यहाँ पर क्या है? ज्ञान का अर्थ है- सम्यग्ज्ञान। सम्यग्ज्ञान का मतलब सम्यग्दर्शन के साथ होने वाला ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है। उस सम्यग्ज्ञान को यहाँ पर क्षायोपशमिक ज्ञान कहा गया, जिसे हम मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्यय ज्ञान इन चार नामों से जानेंगे क्योंकि केवलज्ञान का भाव क्षायोपशमिक नहीं होता। केवलज्ञान तो क्षायिक भाव में आ चुका (पहले आ चुका, बता चुके) ये जो है- क्षयोपशम भाव। ज्ञान हो गया, ज्ञान के बाद में अज्ञान का क्रम आया।

मिथ्यात्व के उदय के कारण विपरीत ज्ञान को ही अज्ञान की संज्ञा मिल जाती है

'ज्ञानाज्ञान' अज्ञान कितने प्रकार का? क्रम- क्रम से लगाते जाओ। **'चतुस्त्रि'** अज्ञान तीन प्रकार का। वह तीन प्रकार कौन से? मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान इन तीनों को हम जब मिथ्यादर्शन के साथ जानते हैं तो यही ज्ञान मिथ्याज्ञान कहलाते हैं।

मति-श्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥1.31॥

मति श्रुत + अवधिय: + विपर्यय: + च

मिथ्यादर्शन उदय में, होता मिथ्याज्ञान।
मति श्रुत अवधि ज्ञान को, मिथ्या भी पहिचान ॥1.31॥

इस सूत्र में जो पहले अध्याय में बताया गया था कि ये तीन ज्ञान विपरीत भी होते हैं। उन्हीं तीन विपरीत ज्ञानों को यहाँ पर अज्ञान के रूप में लिया गया। यह जो मतिज्ञान है अब इसी में जब विपरीतपना आ जाएगा तो यह कहलाएगा- कुमति ज्ञान। श्रुतज्ञान है- इसमें विपरीतपना आ जाएगा तो क्या बोलेंगे? कुश्रुतज्ञान। इसमें क्या लग जाएगा? **'कु'** कुश्रुतज्ञान और जो

अवधि ज्ञान है- इसमें विपरीतपना आएगा तो उसको बोलेंगे- विभङ्ग ज्ञान। क्या बोलेंगे? विभङ्ग ज्ञान या कुअवधि ज्ञान भी बोलते हैं। ये तीन हुए अज्ञान, ये तीनों भी क्षयोपशम भाव हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि **ज्ञान में सम्यग्दर्शन का सद्भाव** रहता है और **अज्ञान में मिथ्यादर्शन का सद्भाव** रहता है। मिथ्यात्व का उदय रहेगा तो मिथ्यात्व के उदय के कारण से, इन ज्ञानों को ही अज्ञान संज्ञा मिल जाती है। ये ज्ञान हुए चार, अज्ञान हुए तीन।

क्षयोपशम दर्शन के प्रकार

फिर उसके बाद में आएगा- दर्शन। '**ज्ञानाज्ञान दर्शन**', दर्शन कितने? वह भी आप संख्या आगे देखे तो '**चतुस्त्रि**' **चतुः** फिर आया न चार? दर्शन कितने होंगे? चार। दर्शन तो चार हैं लेकिन क्षयोपशम जो दर्शन है, वे कितने हैं? सूत्र में क्या लिखा है?'**चतुस्त्रि-त्रि**' चार नहीं लिखा। क्या लिखा है? **त्रि-त्रि** दो बार लिखा है न? तीन दर्शन यहाँ पर लेना आपको- चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन और अवधि दर्शन। केवलदर्शन तो क्षायिक भाव में चला गया। आगे लिखा है- '**चतुस्त्रि-त्रि-पञ्च भेदाः**' क्रम-क्रम से सबके साथ एक-एक जोड़ते चले जाओ। अतः तीन प्रकार के दर्शन हुए। कौन-कौन से? चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन। ये भी कौन से भाव में आएँगे? क्षयोपशम भाव में आएँगे। मतलब **चक्षु दर्शनावरणीय कर्म का जब क्षयोपशम होगा तब हमें चक्षुदर्शन होगा।** उस चक्षुदर्शन में, अचक्षुदर्शन में, अवधिदर्शन में भी क्षयोपशम भाव रहता है क्योंकि क्षयोपशम भाव का अर्थ हो गया कुछ तो हमें दिखने लगा और सब कुछ नहीं दिख रहा लेकिन कुछ तो दिखने लगा। ऐसे ही जो कुछ जानने में आने लगा, सब कुछ जानने में नहीं आ रहा। यह क्या हो गया? क्षयोपशम भाव। क्षयोपशम भाव में हमें कुछ जानने में आने लग जाता है, कुछ दिखने लग जाता है, इसी को हम क्षयोपशम भाव कहते हैं।

लब्धि को अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग प्रसङ्ग में और विवक्षा से जानना चाहिए



ऐसे ही लब्धियाँ हैं- ये भी पाँच हैं। जो लब्धियाँ पहले आपको बताई थी, वह क्षायिक लब्धियाँ थी। आज जो बताई जा रही हैं- वह क्षायोपशमिक लब्धियाँ हैं। किन्हीं-किन्हीं लोगों को तो यही समझ नहीं आ रहा। एक दिन आपने हमको पंच लब्धि बताईं, फिर आपने क्षायिक लब्धि बता दी, आज आप क्षयोपशम लब्धि बता रहे हैं। ये लब्धियाँ कितनी होती हैं? किसका नाम लब्धि है? 'लब्धि' जो एक शब्द है, यह शब्द अपने आप में अनेक अर्थों में अनेक जगह पर प्रयुक्त होता है। **लब्धि मतलब होता है- प्राप्ति।** अब यह 'लब्धि' शब्द का अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग तरह से उपयोग किया जाता है। **पाँच लब्धियाँ** बताई थी, वह अलग चीज है। वह **सम्यग्दर्शन होने से पहले आपके पास में पाँच तरह के यह achievement चाहिए** तब आप सम्यग्दर्शन प्राप्त कर पाएँगे। आपके पास में ये पाँच तरह की प्राप्तियाँ होनी चाहिए।

इसलिए उनका नाम पंच लब्धि है, वह अलग है। क्षायिक लब्धि बताई थी...कर्म के क्षय होने पर जो **आत्मा में गुणों की प्राप्ति** होती है, उसका नाम लब्धि कहा गया, वह **क्षायिक लब्धि के रूप में कहा** गया। वे लब्धियाँ अलग हैं और जो अभी बताया जाना है...क्षयोपशम लब्धि!

क्षयोपशम लब्धि का अर्थ

कर्म का क्षयोपशम होने पर जो **आत्मा में कुछ उपलब्धि होगी,** उसका नाम कहलाएगा... **क्षयोपशम लब्धि।** लब्धि का मतलब उपलब्धि, प्राप्ति। अब ये प्राप्ति अलग-अलग प्रसंग पर अलग-अलग तरह की होती है। अतः इन्हें अलग-अलग जानना। जो पाँच लब्धियाँ थी, वे अलग हैं, क्षयोपशम लब्धि अलग है, क्षायिक लब्धि अलग हैं और फिर जब आप और आगे पढ़ोगे तब आपको और भी तरह की लब्धियाँ मिलेंगी। संयम लब्धि कहलाती है, संयमासंयम की लब्धियाँ कहलाती हैं मतलब कि संयमासंयम या संयम भी एक प्रकार का नहीं होता तो वह जितने प्रकार का उसमें वृद्धि होती चली जाती है, वह उतने उसके स्थान बन जाते हैं। उन्हें बोलते हैं- संयम लब्धि स्थान या संयमासंयम के लब्धि स्थान। लब्धि का मतलब हो गया किसी भी चीज की प्राप्ति करना और वह प्राप्ति अलग-अलग जगहों पर, अलग-अलग प्रसंग में, अलग-अलग विवक्षा से जानना चाहिए।

क्षयोपशम लब्धि और उसके प्रकार



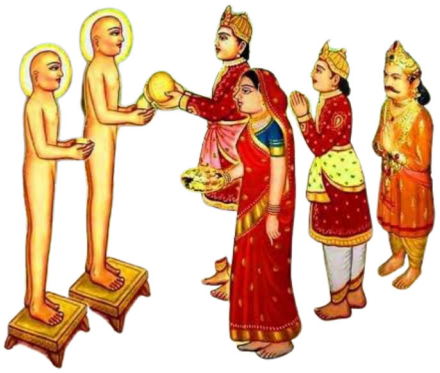
क्षयोपशम लब्धि का अर्थ क्या हो गया? **हमारे अन्दर अन्तराय कर्म का क्षयोपशम होने पर जो हमें उपलब्धियाँ हो रही हैं, उसका नाम यहाँ पर क्षयोपशम लब्धि है।** मान लो हमको किसी भी तरीके की उपलब्धियाँ हैं। यहाँ पर लब्धियों का सम्बन्ध अन्तराय कर्म के साथ जोड़ा

जाएगा। अन्तराय कर्म पाँच प्रकार के- दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य। इन पाँच अन्तराय कर्मों का क्षयोपशम होने पर जो कुछ प्रकट हो रहा है...जो हमारे अन्दर कुछ दान की शक्ति आ गई, कुछ हमें लाभ लेने की शक्ति आ गई, कुछ भोग करने की शक्ति आ गई, उपभोग करने की शक्ति आ गई और वीर्य का अर्थ जो हमारे अन्दर उत्साह आ गया, ये हमारे अन्दर की पाँच लब्धियाँ हैं। जिनसे कि हम अपना कुछ काम कर पाते हैं, इन्हें बोलते हैं- क्षयोपशम लब्धि। क्षयोपशम इसलिए क्योंकि किसी में ये सब चीजें कम हैं, किसी में ज्यादा हैं तो जितना हमारे अन्दर क्षयोपशम हो गया, उतना तो हमारे अन्दर यह आत्मा के गुण प्रकट हो गए और जिसमें नहीं हुआ तो उसमें वह प्रकट नहीं हो रहे है। समझ आया? यह सब क्षयोपशम से ही चलता है।

कैसे जाने कि दानान्तराय आदि कर्मों का क्षयोपशम है या नहीं?

दानन्तराय कर्म के क्षयोपशम होने पर ही आप दान दे सकोगे अन्यथा आप सोचते तो रहोगे लेकिन दे नहीं पाओगे। आप सोचो! नहीं! यह तो कभी हो ही नहीं सकता। दानान्तराय कर्म का तो हमारे लिए कभी उदय होता ही नहीं, देकर देख लो। अगर आप मुनि महाराज को दान देने के लिए तत्पर हुए तो आप सोच रहे हो कि हम उनको दे पा रहे हैं। यह तब दे पा रहे हैं, जब आपके दानान्तराय कर्म का क्षयोपशम है और अगर दानान्तराय कर्म का क्षयोपशम आपके आत्मा में नहीं होगा तो आप दे नहीं पाओगे। देते समय ही आपके लिए कोई न कोई बीच में व्यवधान आ जाएगा, अन्तराय आ जाएगा। जब हमें कोई चीज आसानी से मिलती है, तो हमें पता ही नहीं होता है। हम तो समझते हैं...नहीं! हमारे पास तो सब कुछ है। हम तो दे देते हैं, जब मन आए तब दे लेते हैं, जब नहीं मन आता तो नहीं देते हैं। समझ आ रहा है? यह देखो कि आपका जब मन आता है और आप उस प्रक्रिया को पूरा कर लेते हो तो अब आपके दिमाग में यह ज्ञान आ जाना चाहिए कि हमारे दानान्तराय कर्म के क्षयोपशम के कारण से यह प्रक्रिया पूरी हो पाई। अगर दानान्तराय कर्म का क्षयोपशम कम होगा तो आपके लिए दान देने का भाव भी कम होगा और तीव्र उदय होगा या उस क्षयोपशम में और ज्यादा कमी आ जाएगी तो आप बिलकुल भी देने का भाव नहीं करोगे। आप देख लो! अलग-अलग लोगों में दान देने के अलग-अलग तरह के भाव होते हैं। यह उनके अपने अन्तराय कर्म के इस क्षयोपशम की कम-अधिकता के कारण से होते हैं।

"दानान्तराय कर्म के क्षयोपशम होने पर ही आप दान दे सकोगे"



लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम



लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम होना चाहिए तब आपको किसी चीज का लाभ मिलता है। लाभ का मतलब? कोई भी चीज का अगर हम लाभ ले रहे हैं, लाभ मिल रहा है, तो यह हमारे लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम है। अगर यह अन्तराय कर्म का क्षयोपशम न हो तो सामने वाली कोई भी वस्तु जिसका हम लाभ लेना चाहते हैं, वह हमारे लिए सामने होकर के भी हमारे लिए नहीं आ पाएगी, अगर उस कर्म का क्षयोपशम नहीं है। अगर आप मन में विकल्प कर लो, संकल्प ले लो कि आज हम अन्तराय का पालन करते हुए भोजन करेंगे। क्या करते हुए? आपको तो मालूम नहीं, आपकी कटोरी में तो कभी अन्तराय आता ही नहीं। वह आता इसलिए नहीं क्योंकि आपको करना ही नहीं।

नियम का प्रभाव

आप नियम ले लो कि आज हम जीव का अन्तराय आएगा तो हम आहार नहीं करेंगे या बाल का अन्तराय आएगा तो हम आहार नहीं करेंगे। आता ही नहीं है, तो नियम ले लो। फिर देखो आप! समझ आ रहा है? जब आपके अन्दर इस तरह का नियम होगा तभी उस कर्म का उदय आपकी परीक्षा के लिए आएगा और जब नियम नहीं होगा तो फिर आपके लिए कुछ भी नहीं है। वह फिर एक साथ कभी लाभ का अभाव तब होगा जब आप किसी चीज का लाभ लेने के फिर योग्य ही न रहे तब लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम बिलकुल मन्द हो जाएगा। हम चाह रहे हैं कि यह वस्तु खा ले लेकिन नहीं खा सकते क्योंकि डॉक्टर ने मना किया है। डॉक्टर तो मना करने वाला बाद में, पहले आपका लाभान्तराय कर्म का तीव्र उदय आ गया, क्षयोपशम कम हो गया इसलिए अब आप उसको लेने के योग्य न रहे तब डॉक्टर ने मना किया। वह डॉक्टर तो बाद में है।

क्षयोपशम के महत्व जाने और समझे

ऐसे इन कर्मों के फल से ही हमें सब कुछ मिलता है। कोई भी तरीके का लाभ...आप उपदेश का लाभ ले पाते हैं, सानिध्य का लाभ ले पाते हैं, आहार दान में भी आप जैसा चाहे वैसा अपने लिए लाभ ले पाते हैं। ये सभी लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम अगर आपके अन्दर है, तो लाभ मिलता जाएगा और क्षयोपशम नहीं होगा तो क्या हो जाता है? एकदम से कुछ भी हो जाता है देखो! वह दादाजी यहाँ मंच संचालन करते थे और एक दिन अपने आप कहीं कुछ हुआ उनको और वे आज तक नहीं दिखे और उससे पहले आ रहे थे। किसी को पता था क्या कि ऐसा कुछ हो जाएगा? ऐसा होता है। वह तो ऐसा है जैसे मान लो हमारे पास पैसा है, तो कभी हम यह सोचते हैं कि इस पैसे से भोजन हमारे लिए आ रहा है? एक छोटी-सी thinking वाली बात है। कभी हम यह सोचते हैं कि पैसे के कारण से ही भोजन हमारे लिए आ रहा है? हमें तो कभी

लगता ही नहीं। पैसा है, भोजन-पानी यह तो सब चलता ही रहता है लेकिन कोई भी भोजन-पानी बिना पैसे के तो नहीं होता है। ऐसे ही हमारे भीतर हमारे पुण्य से कर्मों की जो लब्धियाँ, उपलब्धियाँ हमको मिली है, उनसे वे चीजें मिलती जाती हैं तो हमें लगता ही नहीं है कि इन चीजों का कोई महत्व इसलिए है कि यह हमारे कर्म के क्षयोपशम के कारण से हम इनको ले पा रहे हैं। जबकि कर्म के क्षयोपशम के हुए बिना आपको कुछ भी लाभ नहीं मिलने वाला, आपका कुछ भी दान नहीं होने वाला, भोग-उपभोग कुछ नहीं होने वाला। ये सब जो हम कर पा रहे हैं, ये सब हमारे भीतर कर्मों के फल के कारण से है।

ऐसा कोई जीव नहीं जिसमें ज्ञान का कुछ अंश प्रकट न हो

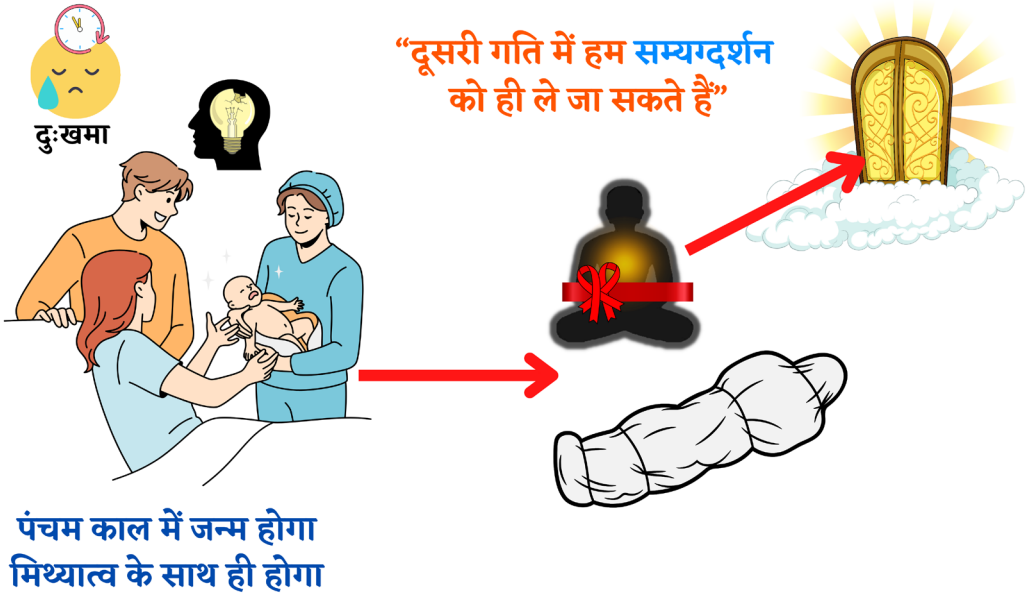


ये सब क्षयोपशम लब्धियाँ हैं, यह हर जीवों में होती हैं। एक इन्द्रिय जीव भी होगा तो उसमें भी होंगी। **अन्तराय कर्म का क्षयोपशम थोड़ा-सा हर जीव में रहेगा और ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम भी थोड़ा-सा हर जीव में रहेगा।** ये ऐसी चीजें हैं, इनका अगर पूर्ण उदय हो जाए तो जीव का अस्तित्व ही समाप्त हो जाए। कोई भी ऐसा जीव नहीं जिसमें ज्ञान का कुछ अंश प्रकट न हो। इसलिए वह ज्ञान, क्षयोपशम ज्ञान, बिल्कुल last stage पर भी होगा तो भी वह कुछ थोड़ा-सा रहेगा जो एक इन्द्रिय जीव में दिखाई देगा। इसी तरीके से अन्तराय कर्म के साथ होता है, तो ये लब्धियाँ कही गई हैं। अब लब्धियों को अर्थ समझ में आ गया? देखा जाए तो यही हमारी भीतरी उपलब्धियाँ हैं जिनसे हम भोग-उपभोग कुछ कर पा रहे हैं। वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम होने पर ही किसी काम को करने का उत्साह पैदा होता है। नहीं तो क्या होता है? हम ऐसा करेंगे, हम ऐसा करेंगे, हम ऐसा करेंगे और बस! जैसे ही करने के लिए तैयार हुए...अरे! हमसे नहीं होगा, हमसे नहीं होगा। यह क्या हो गया? वीर्यान्तराय कर्म

का क्षयोपशम नहीं था इसलिए उत्साह तो हुआ लेकिन उत्साहित हो नहीं पाए। कोई भी काम करने के लिए उत्साह चाहिए, शक्ति चाहिए, वह वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से आती है। आप तत्त्वार्थ सूत्र जैसा कठिन विषय सुन रहे हो, इसको भी सुनने में, जानने में शक्ति लगानी पड़ती है। देशघाती स्पर्धक, सर्वघाती स्पर्धक थोड़ी देर और चलाता रहता न तो आप कहते जय जिनेन्द्र! इसलिए थोड़ा-सा हमें change करना पड़ा। अब आगे चलते हैं-

'ज्ञानज्ञान-दर्शन-लब्धयश्चतुस्त्रि-त्रि-पंचभेदाः' - यहाँ तक यह सूत्र complete हो गया, पाँच भेद हो गए। अब देखो आगे-

क्षयोपशम सम्यग्दर्शन अगले जन्म में भी हमारे साथ जाता है

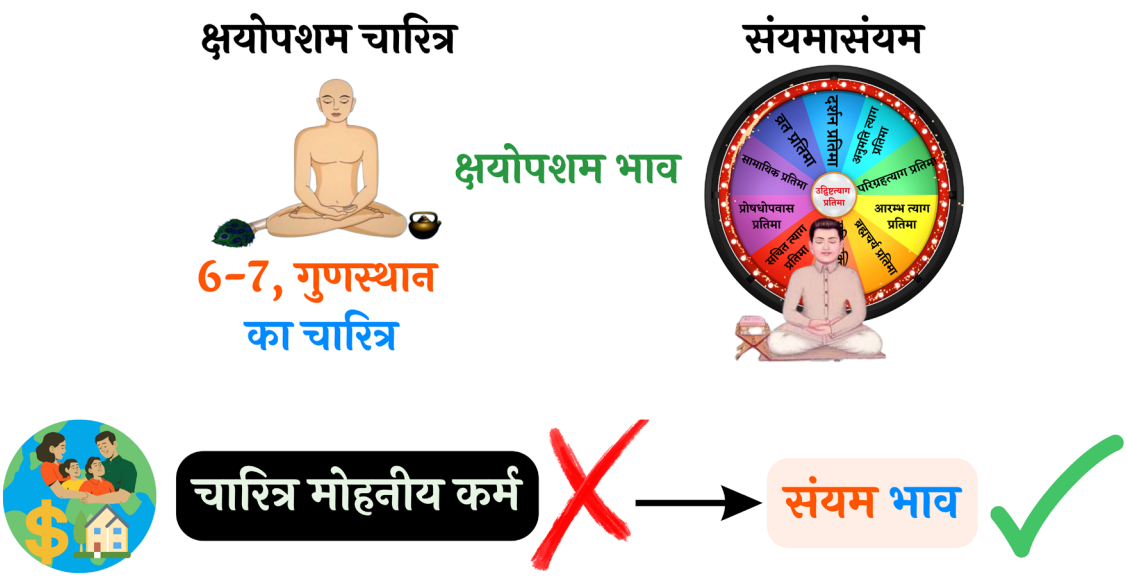


SCAN TO WATCH

'सम्यक्त्व-चारित्र-संयमासंयमाश्च' ये तीन चीजें और अलग से लिखी हुई हैं। सम्यक्त्व का अर्थ? क्षायोपशमिक सम्यक्त्व। उपशम सम्यक्त्व था वह **'सम्यक्त्व चारित्रे'** इस सूत्र में बताया था...उपशम सम्यक्त्व। यहाँ कौन-सा सम्यक्त्व बताया जा रहा है? क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और जो क्षायिक सम्यक्त्व था वह कहाँ बताया गया? वह उससे पहले क्षायिक भाव वाले सूत्र में बताया गया। हर चीज क्रम से जब आएगी तभी आपके लिए जानने को मिलेगी। यह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व जो है, यह कौन-सा भाव है? यह क्षयोपशम भाव है। वर्तमान में यह क्षयोपशम सम्यक्त्व आपके लिए रह सकता है, हो सकता है और यह क्षयोपशम भाव किसी को भी हो सकता है और यही वह सम्यग्दर्शन है जो लम्बे समय तक जीवन पर्यन्त तक भी रह सकता है। अगले जन्म में भी हमारे

साथ जाता है, इसका नाम है- क्षयोपशम सम्यग्दर्शन। देखो! कितनी बड़ी चीज है कि जन्म तो हम सबका मिथ्यात्व के साथ हुआ लेकिन मरण के समय पर हम सम्यग्दर्शन को अपने साथ लेकर के दूसरी गति में जा सकते हैं। सम्यग्दर्शन हमारे लिए to carry on in other गति। दूसरी गति में सम्यग्दर्शन को हम ले जा सकते हैं और कोई चीज नहीं ले जा सकते हैं। यह देखा जाए तो कितनी बड़ी उपलब्धि है। लेकर तो हम कुछ नहीं आए थे, मिथ्यात्व के साथ ही आए थे। यह confirm है कि जिसका भी पंचम काल में जन्म होगा, मिथ्यात्व के साथ ही होगा। अब यह हमारा पुरुषार्थ है कि हमने उस मिथ्यात्व को छोड़ा और अब हम यहाँ से अगली गति में जब जाएँगे तो सम्यग्दर्शन को लेकर के जाएँगे। यह कितनी बड़ी चीज है, बस! यही चीज जाएगी साथ में और कुछ नहीं जाएगा, बाकी सब यहीं पर रहेगा। आपका शरीर भी यहीं छूट जाएगा, कुछ नहीं जाएगा। सम्यग्दर्शन आपके साथ जाएगा, सम्यग्चारित्र भी नहीं जाएगा। चारित्र साथ में नहीं जाता, कुछ नहीं जाएगा। जितना पढ़-लिख रहे हो ज्ञान आदि कुछ नहीं साथ में जाएगा। क्या जाएगा? केवल सम्यग्दर्शन साथ में जाएगा। यह कौन-सा सम्यग्दर्शन है? क्षयोपशम सम्यग्दर्शन।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र के संयमासंयम के भाव, क्षयोपशम भाव है





ऐसे ही आगे कहा जा रहा है। सम्यग्चारित्र का अर्थ होता है - क्षयोपशम चारित्र। जो भी संयम लिया जाता है, जिसको हम बोलते हैं छठवें-सातवें गुणस्थान का चारित्र, जो सामायिक आदि चारित्र के भेद से पाँच प्रकार का आगे बताया जाएगा, वह चारित्र जो मुनि महाराज के पास होता है उसको भी क्षयोपशम भाव कहा गया है। वह भी क्षयोपशम चारित्र होता है। फिर होता

है- संयमासंयम। मतलब ये देशव्रत हो गए, जो गृहस्थ सम्यग्दर्शन के साथ बारह व्रतों का या उससे भी अधिक प्रतिमाओं का पालन करते हैं तो उन्हें संयमासंयमी कहा जाता है। उनका वह चारित्र भी क्षयोपशम भाव ही है। समझ में आया? ये कौन से भाव हैं? सम्यग्दर्शन के, चारित्र के, संयमासंयम के, ये सब भाव क्षयोपशम भाव कहलाते हैं। उपशम चारित्र तो अभी नहीं होना है, क्षायिक चारित्र भी नहीं होना, अभी क्या होगा? अगर आप पुरुषार्थ करेंगे तो आपके लिए संयमासंयम होगा या संयम होगा, वह भी क्षयोपशम भाव में ही आएगा। क्योंकि वह चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से आपके अन्दर उत्पन्न होगा। नहीं हो रहा है, तो चारित्र मोहनीय कर्म का तीव्र उदय चल रहा है। इसलिए वह क्या हो रहा है? संयम भाव नहीं आ रहा है और जब आएगा तो क्या होगा? आत्मा के अन्दर उन चारित्र मोहनीय कर्मों का अभाव होगा, जो हमें संयम उत्पन्न नहीं करने दे रहे हैं या संयमासंयम नहीं होने दे रहे हैं या सम्यग्दर्शन नहीं होने दे रहे हैं।

क्षयोपशम सम्यक्त्व के उदय की प्रक्रिया

सम्यग्दर्शन क्षयोपशम भाव

सम्यक् प्रकृति



अब इसकी थोड़ी-सी हम detail सैद्धान्तिक रूप से और थोड़ा समझने की कोशिश करते हैं। एक सम्यक्त्व को समझने की कोशिश करते हैं। क्षयोपशम सम्यक्त्व में क्या होता है? पहले यह जान लो कि जो दर्शन मोहनीय कर्म था, उसके तीन भेद बताए थे- मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति और चार कषायें- अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ। इन सात कर्मों का उपशमन हुआ था तो क्या हो गया? **उपशम सम्यग्दर्शन।** इन सात कर्मों का क्षय हो गया तो हो गया- **क्षायिक सम्यग्दर्शन।** अब क्षयोपशम में क्या होगा? सात कर्मों में से एक मात्र सम्यक्त्व प्रकृति जो कर्म है, सम्यक्त्व नाम का जो कर्म है, बस! उसका तो उदय

रहे और बाकी के जो छह हैं, इन सबको दबाकर रखना है। इनका बिलकुल भी सिर नहीं उठना चाहिए। अगर इनका सिर उठने लगा? ये सात बड़े-बड़े राक्षस हैं, उनमें से एक तो अपने लिए ठीक है। एक तो देवता स्वरूप है- सम्यक् प्रकृति और ये जो छह राक्षस हैं...मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ, ये छह राक्षसों में से एक का भी सिर उठ गया तो फिर आपका सम्यग्दर्शन गया, ये सम्यग्दर्शन के दुश्मन हैं तो इसी को बोलते हैं- **क्षयोपशम।**

क्षयोपशम सम्यग्दर्शन की सैद्धान्तिक परिभाषा



अब देखो! कैसे क्षयोपशम बना? छह जो कर्म हैं...अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ चार ये और मिथ्यात्व और सम्यक् मिथ्यात्व दो ये, इन छहों को क्या करना? इनको ऐसे दबाकर रखना, इतना pressure उनके ऊपर डालना, अपनी आत्मा की विशुद्धि का कि इनकी जो शक्ति है, वह बिलकुल हमारे लिए फल न दे पाए मतलब उदय में न आ पाए। इनके उदय का हमने अभाव किया तो यह कहलाया- क्षय और इनको हमने, सद्वस्था तो उनकी है ही, सद्वस्था मतलब ये नीचे दबे बैठे हैं तो यह कहलाया **सद्वस्था रूप उपशम।** जब ये दोनों कार्य हुए, उसके बीच में ही उदय में सम्यक् प्रकृति आ गई तो वह सम्यक् प्रकृति के फल से क्या होगा? सम्यग्दर्शन का भाव बना रहेगा और वह सम्यक् प्रकृति का फल इन दोनों, यह छह कर्मों को बिलकुल जब तक दबाए रखेगा और तब तक यह क्षयोपशम भाव बना रहेगा। इसका नाम है- क्षयोपशम भाव। **उदयाभावी क्षय हो गया और सद्वस्था रूप उपशम हो गया, यह क्षयोपशम हो गया** और फिर सम्यक् प्रकृति का उसके साथ में उदय आ गया तो यह सम्यक् प्रकृति के उदय से जब तक इस प्रकृति का उदय रहेगा, इस कर्म का उदय रहेगा तब तक सम्यग्दर्शन बना रहेगा। इसको बोलेंगे- **क्षयोपशम सम्यग्दर्शन।**

क्षयोपशम सम्यग्दर्शन का काल

यह क्षयोपशम सम्यग्दर्शन में क्षयोपशम भाव होने के कारण से इसे **छियासठ सागर काल** तक भी इसका ऐसा का ऐसा ही समय चल सकता है। कितना? छियासठ सागर काल। ज्ञान का क्षयोपशम अलग वस्तु है और सम्यग्दर्शन के इन कर्मों के क्षयोपशम भाव का होना अलग वस्तु है। जब क्षयोपशम भाव बताया गया तो लोगों को ऐसा लगता है कि क्षयोपशम भाव हमने सुन लिया, क्षयोपशम सम्यग्दर्शन छियासठ सागर तक होता है, तो क्या हमारा ज्ञान भी छियासठ सागर तक रहेगा? **ज्ञान का क्षयोपशम भाव अलग है।** यह क्षयोपशम भाव की अवधि केवल सम्यग्दर्शन के साथ है, इसलिए क्षयोपशम सम्यग्दर्शन की जो एक maximum limit बताई गई है, वह छियासठ सागर तक की है और उपशम सम्यग्दर्शन अन्तर्मुहूर्त में ही छूट जाता है, इसलिए इस सम्यग्दर्शन के सहारे ही जिया जाता है। इसी के बाद में यही क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव ही क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है। आपने आज क्षयोपशम सम्यग्दर्शन तक की बात सुनी। थोड़ा-सा संयमा-संयम और संयम में भी क्षयोपशम भाव कैसे घटित होते हैं? इसको आपको आगे बताएँगे।

बोलो महावीर भगवान की जय!

सारांश

1. औपशमिक और क्षायिक भावों के भेदों के बाद **सूत्र पांच** में हमने - 18 प्रकार के **क्षायोपशमिक भाव** का वर्णन सुना
2. हमारी आत्मा में कर्म बन्ध ४ प्रकार से होता है
- प्रकृति यानि किस तरह का कर्म
- स्थिति यानि उदय आने से पहले कितने समय तक रहेगा
- प्रदेश और
- अनुभाग यानि उसकी फल देने की शक्ति या potency
3. अनुभाग बन्ध में कम-ज्यादापन स्पर्धकों से होता है
4. स्पर्धक को हम एक पपड़ी type की समझ सकते हैं जो आत्मा के ऊपर कर्मों के अनुभाग की पड़ गई है
5. सैद्धांतिक रूप में देखें तो
- परमाणु के प्रदेश के अन्दर **अविभागीय प्रतिच्छेदों की शक्तियाँ** होती हैं
- vh अविभागीय प्रतिच्छेद शक्तियों के समूह से **वर्ग** बनता है
- वर्गों के समूह से **वर्गणा** बनती है
- और वर्गणाओं के समूह से **स्पर्धक** बनता है
6. स्पर्धक के माध्यम से हम उस कर्म की शक्ति का अनुभव कर सकते हैं
7. ये दो प्रकार के होते हैं
- सर्वघाती स्पर्धक जो आत्मा के गुण का **पूर्ण रूप से घात** करते हैं और
- देशघाती स्पर्धक जोमें आत्मा के गुण का **थोड़ा घात** करते हैं
8. सर्वघाती स्पर्धकों के उदय में आत्मा का कोई भी गुण, शक्ति प्रकट नहीं होगी
9. वहीं देशघाती स्पर्धक के उदय में आत्मा का कुछ गुण प्रकट होगा
10. केवलज्ञानावरणीय कर्म की अनुभाग शक्ति सर्वघाती है
11. इसलिए इसके उदय में केवलज्ञान का पूरा का पूरा घात होगा, अंश भी प्रकट नहीं होगा
12. शेष चार ज्ञान क्षायोपशमिक हैं यानि इनमें कुछ स्पर्धक देशघाती होते हैं और कुछ सर्वघाती
13. क्षयोपशम अर्थात क्षय और उपशम
14. यहाँ क्षय का अर्थ सत्तानाश नहीं है
- अपितु सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय है यानि उनके उदय का अभाव हो गया
- उनका उदय में न आना ही क्षय है
- यह आत्मा के विशुद्ध परिणामों की शक्ति से होता है
- वह पर-प्रकृति में संक्रमित होकर के निकलेगा लेकिन वह स्व उदय में नहीं आएगा
15. क्षयोपशम में उपशम का अर्थ है **सद्वस्था रूप उपशम**

- यानि कर्म जिस अवस्था में है उसको दबाकर रखना, बनाए रखना, सत्ता में से उखड़ न जाए

16. कर्म का जितने time तक उपशम है उतने time तक उसके उदय का अभाव रहेगा
17. सर्वघाती कर्म के थोड़े time के इस gap में जब देशघाती कर्म का जब उदय होगा तो उसका फल हम महसूस कर पाएँगे
- उसके कारण से आत्मा की कुछ शक्ति प्रकट हो जाएगी

18. क्षयोपशम भाव के कारण चार ज्ञानों में जितना सर्वघाती कर्म का अभाव होगा उतनी तो शक्ति हमारे लिए प्रकट हो जायेगी और जितना देशघाती कर्म का उदय होगा उसके अनुसार हमें उस ज्ञान का फल मिलेगा
19. क्षायोपशमिक ज्ञान जैसे अवधिज्ञान आदि में जबतक सर्वघाती स्पर्धकों का उदय चलेगा तब तक वह ज्ञान काम नहीं करेगा
20. उसके अभाव में ज्ञान की शक्ति देशघाती कर्म के रस के अनुसार काम करेगी
- जैसे जैसे देशघाती रस की शक्ति कम होगी, हमारे ज्ञान में वृद्धि होगी

21. ज्ञान में सम्यग्दर्शन का सद्भाव होता है और अज्ञान में मिथ्यादर्शन का सद्भाव
22. कुमति ज्ञान, कुश्रुतज्ञान,विभङ्ग ज्ञान या कुअवधि ज्ञान **अज्ञान हैं**
23. चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन और अवधि दर्शन भी **क्षायोपशमिक** भाव हैं
24. केवलदर्शन क्षायिक भाव है
25. क्षायोपशमिक भावों के भेदों में **हमने** जाना कि
- चार प्रकार के ज्ञान - मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय **क्षयोपशम भाव हैं**
- चक्षु, अचक्षु और अवधि तीनों दर्शन भी **क्षयोपशम भाव हैं**
- और पाँच क्षयोपशम लब्धियाँ भी **क्षयोपशम भाव हैं**

26. लब्धि का मतलब होता है उपलब्धि या प्राप्ति
27. ये अलग अलग सन्दर्भ में अलग अलग होती हैं जैसे
- सम्यग्दर्शन होने से पहले पंच लब्धि **योग्यता रूप** में होनी चाहिए
- कर्मों के पूर्ण क्षय से क्षायिक लब्धियाँ **आत्मा में गुणों के रूप में** प्राप्त होती हैं
- **पांच प्रकार के अन्तराय कर्म** के क्षयोपशम से जो आत्मा में कुछ उपलब्धि होगी उसे **क्षयोपशम लब्धि** कहते हैं जैसे
  - i. दानांतराय के क्षयोपशम से दान करने की शक्ति आना
  - ii. लाभांतराय के क्षयोपशम से लाभ लेने की शक्ति आना
  - iii. भोगांतराय के क्षयोपशम से भोग करने की शक्ति आना
  - iv. उपभोगांतराय के क्षयोपशम से उपभोग करने की शक्ति आना
  - v. और वीर्यांतराय के क्षयोपशम से हमारे अन्दर उत्साह आना

28. इसी प्रकार संयम और संयमासंयम की वृद्धि को नापने के लिए उनके स्थान होते हैं, जिन्हे संयम लब्धि स्थान या संयमासंयम-लब्धि स्थान कहते हैं

29. कर्म के क्षयोपशम के बिना न हमें कुछ लाभ मिलेगा, न दान दे सकेंगे, न भोग-उपभोग कर सकेंगे
- ये सब कर्मों के फल के कारण से हैं
- हम कर्मों के क्षयोपशम से मिली उपलब्धियों का महत्व नहीं समझ पाते

30. क्षयोपशम लब्धियाँ सभी जीवों में होती हैं
31. एक इन्द्रिय जीव में भी थोड़ा-सा अन्तराय कर्म और ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है; इसके आभाव में जीव का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा
32. हमने जाना कि औपशमिक और क्षायिक के अलावा सम्यग्दर्शन **क्षयोपशम भाव का** भी होता है - क्षायोपशमिक सम्यक्त्व
- यह वर्तमान काल में भी रह सकता है
- यह छियासठ सागर काल तक बना रह सकता है और
- अगली गति में ही साथ जा सकता है

33. हम सबका जन्म तो मिथ्यात्व के साथ हुआ है लेकिन हम इस सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर उसके साथ दूसरी गति में जा सकते हैं
34. सम्यग्चारित्र दूसरी गति में साथ नहीं जाता
35. दर्शन मोहनीय की तीन (मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक्) और अनन्तानुबन्धी कषायों की चार प्रकृति क्रोध, मान, माया, लोभ **के उपशमन से उपशम सम्यग्दर्शन** होता है
- और इनके क्षय से क्षायिक सम्यग्दर्शन
- **क्षयोपशम सम्यग्दर्शन** में छः प्रकृति तो दबी रहती हैं मगर सम्यक प्रकृति का उदय रहता है

36. छठवें-सातवें गुणस्थान में मुनि महाराज के पास जो संयम, चारित्र होता है वह भी क्षयोपशम भाव है
37. बारह व्रतों या अधिक प्रतिमाओं का पालन करने वाले गृहस्थ सम्यग्दृष्टि को संयमासंयमी कहते हैं
- उनका यह चारित्र भी क्षयोपशम भाव ही है

38. वर्तमान में उपशम और क्षायिक चारित्र नहीं हो सकता

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1.क्षायोपशमिक भाव कितने प्रकार के होते हैं?
1. 25
2. 18
3. 20
4. 17

Q2.वर्ग और वर्गों के समूह से क्या बनती है?
1. वर्गणा
2. भाव
3. देश
4. अनुभाग

Q3.स्पर्धक किसके समूह से बनते हैं?
1. वर्गणा
2. स्थिति
3. भाव

Q4.स्पर्धक को समझाने के लिए महाराज जी ने किसका उदाहरण दिया है?
1. लोहे का
2. लोहे के ऊपर पपड़ी का
3. अनुभाग की शक्तियो का
4. आत्मा का

Q5.स्पर्धक का मतलब?
1. आत्मा के ऊपर कर्मों का अनुभाग होना
2. कर्मों के ऊपर अनुभाग की शक्तियाँ
3. दोनों सही
4. इनमें से कोई नहीं

Q6.स्पर्धक कितने प्रकार के होते हैं?
1. 4
2. 8
3. 2
4. 6

Q7.स्पर्धक के प्रकार कौन से है?
1. सर्वघाती
2. देशघाती
3. दोनों
4. इनमें से कोई नहीं

Q8.किसके उदय में आत्मा का कोई भी गुण प्रकट नहीं होगा?
1. सर्वघाती स्पर्धक
2. देश घाती स्पर्धक
3. दोनों

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q9.लब्धि मतलब क्या है?
1. प्राप्ति
2. अप्रप्ति
3. प्रोति
4. प्रगति

Q10. कर्म का क्षयोपशम होने पर जो आत्मा में कुछ उपलब्धि होगी उसका नाम क्या है?
1. क्षयोपशम लब्धि
2. उपशम लब्धि
3. दोनों
4. इनमें से कोई नहीं

Q11.अंतराय कर्म कितने प्रकार के होते है?
1. 4
2. 5
3. 2
4. 6

Q12.दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य किसके भेद है?
1. मोहनीय कर्म
2. अंतराय कर्म
3. वेदनीय कर्म
4. भाव कर्म

Q13.उपदेश का लाभ ले पाते हैं, सानिध्य का लाभ ले पाते हैं, आहार दान का लाभ लेना ये कौन से कर्म के क्षयोपशम से है?
1. लाभान्तराय कर्म
2. मोहनीय कर्म
3. वेदनीय कर्म
4. भोग अंतराय कर्म

Q14.ऐसा कोई जीव बताओ जिसमें ज्ञान का कुछ अंश प्रकट न हो
1. एक इंद्रिय जीव
2. मुक्त जीव
3. ऐसा कोई जीव नहीं है
4. तीन इंद्रिय जीव

Q15.कौन सा सम्यग्दर्शन अगले जन्म में भी हमारे साथ जाता है?
1. क्षयोपशम सम्यग्दर्शन
2. उपशम सम्यग्दर्शन
3. दोनों
4. इनमें से कोई नहीं

Q16.कौन सा सम्यग्दर्शन लम्बे समय तक जीवन पर्यन्त तक भी रह सकता है?
1. क्षयोपशम सम्यग्दर्शन
2. उपशम सम्यग्दर्शन
3. दोनों
4. दोनों नहीं

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

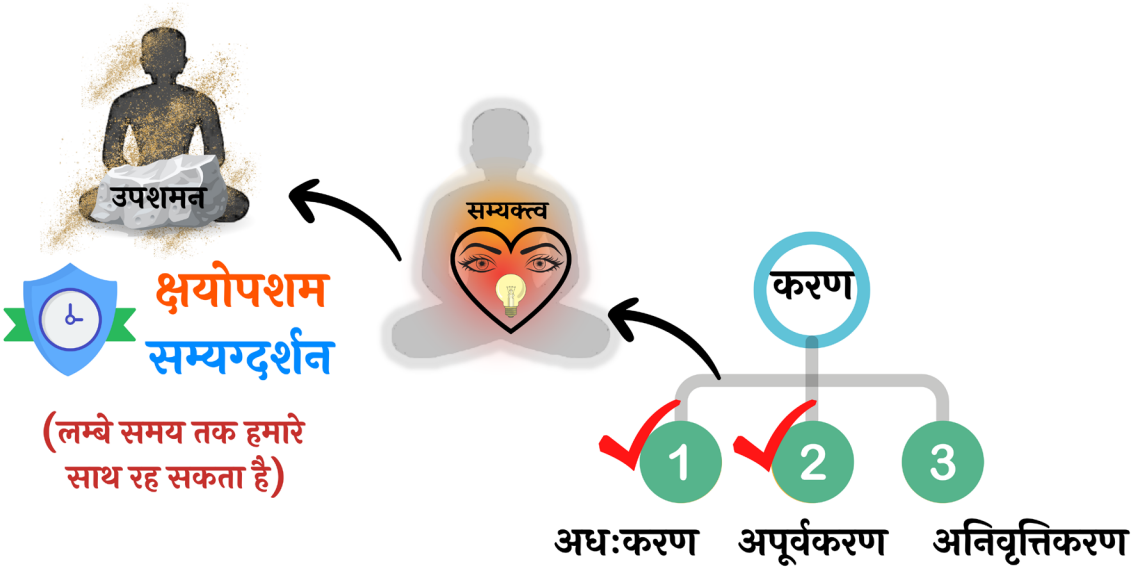
1. स्पर्द्धक किसे कहते हैं?
2. सर्वघाती प्रकृति और देशघाती प्रकृति में अंतर बताइये।
3. क्षयोपशम ज्ञान में कौनसे स्पर्द्धक होते हैं?
4. कर्मों की किस व्यवस्था के कारण अवधिज्ञान प्रकट नहीं होता ?
5. क्षयोपशम भाव में कर्मों की क्या व्यवस्था होती है?
6. क्षयोपशम दर्शन कितने प्रकार के होते है?
7. दान देने में विघ्न कौनसा कर्म डालता है ?
8. क्या वृक्ष में भी दानान्तराय कर्म का क्षयोपशम होता है?
9. अगले भव में क्या साथ जायेगा?
   क्षयोपशम सम्यक्त्व अथवा क्षयोपशम चारित्र अथवा दोनों ?
10. 66 सागर का उत्कृष्ट काल कौनसे सम्यग्दर्शन का होता है?

प्रवचन 05

प्रत्येक प्राणी के लिए यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि हमारी आत्मा में कर्मों के कारण से कौन-कौन से भाव उत्पन्न होते रहते हैं और हमें जो कुछ इस संसार में मिला है, वह किन-किन कर्मों के क्षयोपशम और किन-किन कर्मों के उदय आदि से मिला है। औपशमिक, क्षायिक और क्षयोपशम भावों को जानने के बाद संयमासंयम को भी समझना जरूरी है।

कर्म के उदय से ही सम्यक्त्व उत्पन्न होता है

क्षयोपशम सम्यग्दर्शन को थोड़ा-सा और समझने की एक चेष्टा करते हैं कि यही वह सम्यग्दर्शन है, जो लम्बे समय तक हमारे साथ रह सकता है और इस सम्यक्त्व में भी देखा जाए तो कर्म के उदय से ही यह सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। सम्यक्त्व भी एक कर्म का नाम है, सम्यक् प्रकृति एक कर्म का नाम है, उस कर्म के उदय में जो सम्यग्दर्शन का परिणाम बना रहेगा, श्रद्धा हमारी सही तत्त्व पर बनी रहेगी तो वह क्षयोपशम सम्यग्दर्शन कहलाएगा। अब यह क्षयोपशम सम्यग्दर्शन एक तरह से देखा जाए तो उपशम सम्यक्त्व की तरह तीन प्रकार के जो करण परिणाम होते हैं- अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, उनसे नहीं होता किन्तु दो करणों से भी सम्भव है। अधःकरण और अपूर्वकरण परिणामों से भी हो जाता है।



क्षयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति में अन्य की अपेक्षा उतने पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं होती

दूसरी बात क्षयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए हमें बहुत ज्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ती। मेहनत से मतलब उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए तो आत्मा को बहुत पुरुषार्थ करना होता है, बहुत मेहनत करनी होती है। पाँच लब्धियों के रूप में जब तक हमारे परिणामों का ढलना सम्भव नहीं होता तब तक उपशम सम्यक्त्व होता नहीं। किन्तु उपशम सम्यक्त्व होने के बाद जब सम्यग्दर्शन के परिणामों से मिथ्यात्व के तीन टुकड़े हो जाते हैं तो उन्हीं में एक सम्यक्त्व कर्म भी बन जाता है। उसी सम्यक्त्व प्रकृति के उदय होने पर, कर्म का उदय होने पर, आत्मा में क्षयोपशम सम्यक्त्व का भाव प्रकट होता है। पहले आपको यह भी बताया था कि वह क्षयोपशम सम्यग्दर्शन सात प्रकृतियों में से छह प्रकृतियों के उपशमन से और एक सम्यक् प्रकृति के उदय से हमारी आत्मा में उत्पन्न होता है।

परिणामों की निर्मलता क्षयोपशम सम्यग्दर्शन में सबसे कम होती है

अब इस क्षयोपशम सम्यग्दर्शन में इतनी निर्मलता नहीं रहती जितनी कि उपशम सम्यग्दर्शन में रहती है। क्यों नहीं रहती? क्योंकि उपशम सम्यग्दर्शन में तो सभी प्रकार के कर्म का उपशमन हो गया। केवल आत्मा का जो परिणाम है वह निर्मल होकर के प्रकट हो गया, इसलिए उसमें तो निर्मलता है। क्षायिक सम्यक्त्व में उससे भी ज्यादा निर्मलता हो गई क्योंकि उसमें तो सभी प्रकार के सातों ही कर्मों का अभाव हो गया किन्तु इस क्षयोपशम सम्यग्दर्शन में निर्मलता बिगड़ती रहती है, इसमें दोष लगते रहते हैं...जिसे बोलते हैं- **चल-मल-अगाढ़ दोष।** क्या बोलते हैं? तीन प्रकार के दोष भी लगते रहते हैं और सम्यग्दर्शन भी बना रहता है। एक समझने की चीज है।

चल दोष



चल दोष का मतलब क्या होता है? आचार्यों ने कहा है कि सम्यग्दृष्टि जीव वैसे तो वीतराग देव, शास्त्र, गुरु सब पर श्रद्धा रखता है, तत्त्व पर श्रद्धा रखता है लेकिन उसके परिणामों में कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि वह विचार करता है कि यह मन्दिर मैंने बनवाया तो यह मेरा मन्दिर है। यह वेदी मैंने बनवाई, यह मेरी वेदी है। यह भगवान मैंने स्थापित किए, यह मेरे भगवान हैं। समझ आ रहा है? इस क्षेत्र पर जाते हैं तो यह क्षेत्र एक तरह से हमारे पूर्वजों का है, तो यह मेरा क्षेत्र है। इस तरीके की उसके अन्दर परिणाम उत्पन्न होते हैं। यद्यपि इन परिणामों से उसका सम्यग्दर्शन नष्ट नहीं होता लेकिन सम्यग्दर्शन में एक चलन आ जाता है। चलन मतलब स्थिरता नहीं रहना, चलायमान हो जाना। वह सम्यग्दर्शन के परिणामों में उसके अन्दर एक चलायमानपना आ जाता है, उसका दृढ़ निश्चय नहीं रहता। इसको आचार्यों ने कहा यह भी एक दोष है, इसको **चल दोष** कहा गया। अपने मन्दिर आदि को अपना मानना और दूसरे के मन्दिर

आदि को दूसरे का मानना। अब! हैं तो सभी मन्दिर, जिनेन्द्र भगवान के मन्दिर हैं और मन्दिर बनाने के बाद में भी सब लोगों को यही समझ में आने लग जाता है कि मन्दिर तो हमने बना दिया लेकिन यह सबके लिए है, सबका मन्दिर है, कह तो देता है लेकिन भीतर से उसके जो परिणाम है, वे जाते नहीं है। उस परिणाम के कारण से वह यह मानता है कि यह भगवान मैंने रखे हैं तो वह उन्हीं को अपना भगवान मानेगा। मान लो वेदी जी में उसने कोई एक भगवान विराजमान किए तो वह ज्यादातर उन्हीं भगवान को अपना मानेगा और भी रहेंगे तो उनका निरादर तो नहीं करेगा। लेकिन उसकी दृष्टि में बार-बार यह आएगा, यह भगवान मेरे हैं, यह भगवान मेरे हैं। जबकि सभी भगवान वहाँ जिनेन्द्र भगवान हैं और कोई भगवान किसी के भी नहीं होते लेकिन फिर भी उसके मन में यह मेरा है और यह उसने स्थापित किए, यह उसके भगवान है, यह उनकी वेदी में उसके भगवान हैं। इस तरह का विचार उसमें जो चलता है, इसको चल दोष कहा गया। **अब यह जो सम्यक्त्व कर्म है, इस कर्म प्रकृति के उदय के कारण से यह चल दोष आत्मा में बना रहता है।** सम्यग्दर्शन बना रहता है लेकिन यह चल दोष के साथ बना रहता है। इसको इतना बुरा भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इससे बस सम्यक्त्व में थोड़ा-सा दोष ही लगता है लेकिन इससे सम्यक्त्व बना रहता है, सम्यग्दर्शन नष्ट नहीं होता।



मल दोष



ऐसे ही मल दोष भी होता है, सम्यग्दर्शन में मलिनता आ गई। कैसे आ गई? सम्यग्दर्शन को मलिन करने वाले कोई भी जो भाव हैं... जैसे निःशंकित, निःकांक्षित आदि जो भाव थे इनके विपरीत कोई भी भाव अगर कुचित-कदाचित उत्पन्न हो जाते हैं तो उसके लिए थोड़ी देर के लिए सम्यग्दर्शन में मलिनता भी आ जाती है अथवा अनायतनों की सेवा इत्यादि करने का भाव या कभी सम्पर्क में आने के कारण से जो अनायतन में मिथ्या अनायतन हैं, उनके आश्रित रहने वाले जो पुरुष हैं, ऐसे जीवों के सम्पर्क में भी आने से जो दोष लग जाते हैं उसके कारण से उसमें कुछ मलिनता भी आ जाती है, तो भी सम्यग्दर्शन बना रहता है। यह कहलाता है- मलिन दोष।

अगाढ़ दोष

तीसरा होता है- अगाढ़ दोष। गाढ़पना नहीं रहना। उसमें क्या होता है? उसमें भी इसी तरीके का भाव रहता है कि जैसे तीर्थंकर भगवान हैं तो सभी उसको पता तो है चौबीस तीर्थंकर भगवान हैं। लेकिन शान्तिनाथ भगवान के पास जाएँगे तो वहाँ शान्ति मिलेगी। पारसनाथ भगवान की आराधना करेंगे तो विघ्न दूर होंगे, मुनिसुव्रत भगवान की आराधना करेंगे, सब व्यापार अच्छे चलेंगे, पुत्र होंगे। ऐसे करके उसके अन्दर भाव पैदा होते हैं। यह जो भाव हैं यह भाव भी उसको भगवान के प्रति आराधना में जोड़ देते हैं। यद्यपि **वह कभी सरागी देवी-**

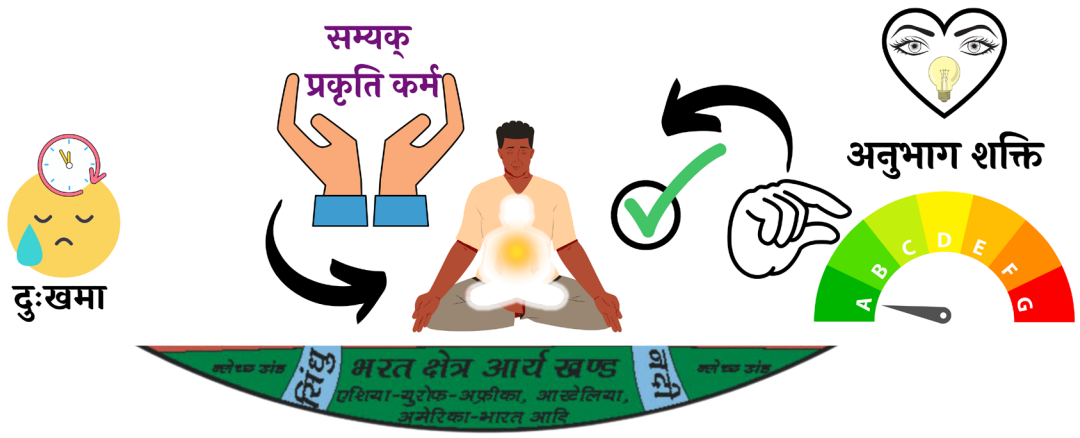
देवताओं की पूजा आराधना नहीं करेगा लेकिन वह अगर तीर्थंकरों में भी किसी-किसी तीर्थंकर को किसी निमित्त से देखता है तो उसके लिए यह अगाढ़ दोष माना गया। गाढ़ता नहीं उसके परिणामों में, सम्यक्त्व में दृढ़ता नहीं इसलिए उसका यह सम्यक्त्व प्रकृति के कारण से दोष लगता रहता है।



SCAN TO WATCH

जैसे दादाजी-बूढ़े दादा जी होते हैं न, उनके हाथ में लठिया होती है। क्या करती है लठिया? चलते तो अपने पैरों से ही हैं लेकिन उस लाठी के सहारे चलते हैं और वह लाठी अगर देखा जाए तो चलती भी रहती है। समझ आ रहा है? जहाँ रखी जाएगी वहाँ मैली भी होती रहती है और जहाँ पर वह टिकाते हैं वहाँ बहुत ज्यादा टिकती भी नहीं, गाढ़ता भी नहीं आती है। तीनों ही दोष दिखाई देते हैं...चल भी रही है फिर भी गढ़ी भी रहती है, एक जगह टिकी भी रहती है, हिलती भी रहती है। जहाँ पर लग जाती है वहाँ पर मलिनता भी आ जाएगी। इसी तरीके से सम्यक्त्व प्रकृति के कारण से आत्मा में सम्यग्दर्शन तो बना रहता है लेकिन ये चल, मल, अगाढ़ दोषों के कारण से वह सम्यग्दर्शन बिल्कुल जो निर्दोष होना चाहिए वैसा नहीं रहता है। फिर भी यह बहुत अच्छी बात है कि कर्म भी हमारे ऊपर बहुत बड़ा उपकार कर रहा है। आप तो बड़े जल्दी बोल देते हो...ये आठ कर्म हमारे लिए बड़ा अहित करने वाले हैं। दुष्ट अष्ट कर्म का नाश हो जाये लेकिन इसमें भी देखो कौन-कौन से कर्म हमारे ऊपर उपकार कर रहे हैं?

सम्यक्त्व कर्म प्रकृति पंचम काल में बहुत उपकारी है



आज भी अगर इस भरत क्षेत्र में पंचम काल में अगर किसी को सम्यग्दर्शन रहता है, तो यह सम्यक्त्व नाम का जो कर्म है इसी का उपकार है। क्योंकि इस कर्म का अगर उदय रहेगा तो ही आपके अन्दर सम्यग्दर्शन बना रहेगा। यद्यपि यह कर्म दर्शन मोहनीय वंश का है। कौन-से वंश का है? उसी वंश में तीन सन्तानें हुई...एक का नाम मिथ्यात्व, एक का नाम सम्यक् मिथ्यात्व और एक का नाम सम्यक् प्रकृति लेकिन कहते हैं कि एक सन्तान तो बहुत अच्छी है। एक सन्तान बिल्कुल राक्षस है, राक्षस का ही कुल है, मोहनीय कर्म तो राक्षस का ही कुल है लेकिन राक्षस के कुल में भी कोई अच्छी सन्तान उत्पन्न हो सकती है। अच्छे कुल में भी कोई राक्षस की सन्तान उत्पन्न हो सकती है, राक्षस जैसी, यह तो कोई बात होती नहीं। इसी तरीके से एक दर्शन मोहनीय के तीन टुकड़े होते हैं। एक में अनुभाग शक्ति इतनी ज्यादा होती है कि **मिथ्यात्व** जैसा ही बना रहता। दूसरे की अनुभाग शक्ति थोड़ी कम हो जाती है, तो **सम्यक् मिथ्यात्व** रहता है और तीसरे की अनुभाग शक्ति उससे भी कम हो जाती तो **सम्यक् प्रकृति** नाम का कर्म कहलाता है। घात करने की उसमें क्षमता है लेकिन उस के कारण से सम्यग्दर्शन का नाश नहीं होता है। यह ध्यान में रहे कि आज अगर हमारे लिए किसी कर्म का विशेष रूप से उपकार हो सकता है, तो वह कौन-सा कर्म है? सम्यक् प्रकृति वाला एक कर्म है। क्योंकि उपशम सम्यग्दर्शन अगर हमने अपने परिणामों से किया भी तो वह अन्तर्मुहूर्त से ज्यादा नहीं रहता। हमेशा सम्यग्दर्शन कौन-सा रहेगा? यही क्षयोपशम सम्यग्दर्शन रहेगा। क्षायिक सम्यग्दर्शन तो वर्तमान में होता नहीं तो इसी कर्म का हमारे ऊपर बहुत बड़ा उपकार है। मानते हो कि नहीं? कर्म का उपकार कैसे मान ले महाराज! **'ये मिल दुष्ट घनेरे, हम किसी को भी एकान्त रूप से दुष्ट न कहे, दुष्ट न समझे'।** कर्म में भी कुछ अच्छे कर्म हैं जिनके कारण से जगत को भी बहुत लाभ मिलता है और हमको भी बहुत लाभ मिलता है।

कुछ कर्म प्रकृतियाँ जीवों के लिए उपकारी है

एक कर्म जो हमें लाभ देने वाला है उसका नाम सम्यक्त्व कर्म और एक कर्म जो जगत को

1.हमें लाभ देने वाला सम्यक्त्व कर्म



उपकारी सम्यक् प्रकृति

घात करने की क्षमता



सम्यग्दर्शन का नाश नहीं





2. तीन लोकों के प्राणियों को लाभ देने वाला कर्म

लाभ देने वाला है, तीन लोकों के प्राणियों को लाभ देने वाला है, उसका नाम जानते हो क्या है? उसका नाम है- तीर्थंकर नामकर्म। कर्मों में भी कुछ कर्म भले हैं। अगर आपके भाव भले हो तो ऐसे भले कर्म भी आपके लिए अच्छा फल देकर आपका हित करते सकते हैं। इन कर्मों के कारण से ही सम्यग्दर्शन लम्बे समय तक टिकता है। अब इस कर्म का देखो! कितना बड़ा उपकार है। **देव गति में हो, चाहे नरक गति में हो, मनुष्य गति में हो, तिर्यंच गति में हो, अगर लम्बे समय तक, सागरोपम काल तक, पल्योपम काल तक, हजारों वर्ष तक कोई सम्यग्दर्शन टिका है,** तो कौन-सा? **यही क्षयोपशम सम्यग्दर्शन।** यह आपके लिए सरलता से भी मिलता है, ज्यादा इसमें मेहनत नहीं करनी पड़ती। उपशम सम्यग्दर्शन होने के बाद अगर सम्यक् प्रकृति का उदय आ गया तो यह लम्बे समय तक आपके परिणामों में सम्यक्त्व के भावों को बनाए रखता है, तो आराम से मिलता है और लम्बे समय तक रहता है। यही फायदे की चीज है, जो चीज हमको कम मेहनत से मिल जाए और उसकी durability long life तक रहे तो वही चीजें तो हम like करते हैं। अतः तीनों सम्यग्दर्शन में अभी आपको किस सम्यक्त्व में ध्यान देना? क्षयोपशम सम्यक्त्व पर।

अनन्तानुबन्धी कषाय सम्यग्दर्शन का घात करती है

संयमा संयम और संयम ये भी क्षयोपशम भाव बताए गए।

"सम्यक्त्व चारित्र, संयमासंयमाश्च"



जो सूत्र के अन्त में लिखा है। चारित्र का मतलब क्या है? जो चारित्र महाव्रतों के साथ होता है उसको यहाँ पर चारित्र कहा गया है। अब हम इस चारित्र के क्षयोपशम भाव को समझने के लिए भी थोड़ी-सी कषायों के बारे में हम जानकारी ले ले।



पहले प्रकार की कषाय कौन-सी बताई थी? अनन्तानुबन्धी कषाय...क्रोध-मान-माया-लोभ। इसके बारे में हम समझे कि यह जो अनन्तानुबन्धी कषाय है, यह क्या काम करती है? यह तो सम्यग्दर्शन का घात करती है। यद्यपि यह कषाय चारित्र मोहनीय के वंश की है लेकिन घात किसका करती है? सम्यग्दर्शन का। इसके नाश होने पर कोई चारित्र प्रकट नहीं होता किन्तु इसके नाश होने पर सम्यग्दर्शन ही रहता है। सम्यग्दर्शन में ही यह सहायक है इसलिए आपको बार-बार बताया जा रहा है कि **सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में अनन्तानुबन्धी कषाय का भी उपशमन होना चाहिए और अगर क्षायिक सम्यग्दर्शन है, तो अनन्तानुबन्धी कषाय का क्षय** होना चाहिए। क्षयोपशम है, तो भी यह दबी रहनी चाहिए अर्थात् अनन्तानुबन्धी कषाय का रोल किसमें हैं? सम्यक्त्व की उपलब्धि में। अनन्तानुबन्धी कषाय किसका घात करती है? सम्यक्त्व का। सम्यग्दर्शन नहीं होने देने का काम किसका? मिथ्यात्व का भी है और अनन्तानुबन्धी कषाय का भी है। हम पहले थोड़ा-सा जानने की कोशिश करें कि जो अनन्तानुबन्धी आदि कषाय हैं, इनके काम क्या हैं? अनन्तानुबन्धी कषाय का कार्य है- सम्यक्त्व का घात करना। यह नोट करके रखना। आपको अच्छी बातें कुछ बताने जा रहा हूँ तभी आपको कुछ कर्म सिद्धान्त की व्यवस्था समझ में आएगी। फिर आगे की कषाय है- अप्रत्याख्यान कषाय? क्या बोलते हैं? अप्रत्याख्यान कषाय। यह भी क्रोध-मान-माया-लोभ के base से चार प्रकार की हो गई। इस कषाय के माध्यम से भी कुछ घात होता है। आत्मा के गुणों का घात होता है।

किंचित त्याग के परिणाम उत्पन्न न होने देना- अप्रत्याख्यान कषाय है

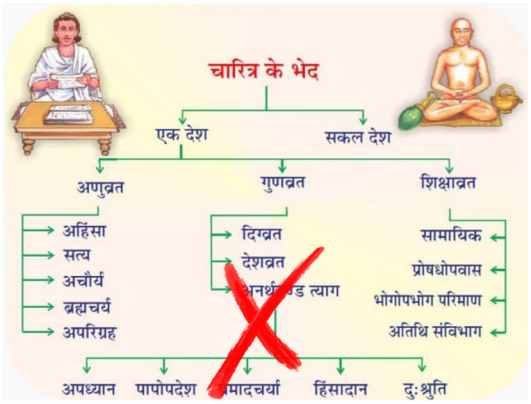


1. अप्रत्याख्यान कषाय
2. अनन्तानुबन्धी कषाय
3. प्रत्याख्यान कषाय

} सर्वघाती स्पर्धक

आत्मा के कौन से गुणों का घात होता है? इसका नाम है अप्रत्याख्यान। **प्रत्याख्यान का अर्थ होता है- त्याग और 'अ' मतलब इषत् अर्थात् थोड़ा त्याग। जो कषाय हमें थोड़ा भी त्याग न करने दे या जिस कषाय के उदय में हमारे अन्दर थोड़े भी त्याग के परिणाम पैदा न हो उसका नाम है- अप्रत्याख्यान कषाय।** ये सभी कषायें हमारी आत्मा के गुणों का घात करने वाली हैं तो अप्रत्याख्यान कषाय ने क्या आत्मा के गुण का घात किया? आत्मा का गुण क्या था? त्याग भाव, संयम भाव लेकिन वह क्यों नहीं आ रहा? हमारे अन्दर यह कषाय है। दो प्रकार की अनुभाग शक्तियाँ हैं- एक सर्वघाती और एक देशघाति। जो सर्वघातीय स्पर्धक हैं, इनके उदय के कारण हम कभी भी उस से विपरीत जो गुण है उसका लाभ नहीं ले सकते। यह अप्रत्याख्यान कषाय भी सर्वघाती है। अनन्तानुबन्धी कषाय भी कैसी है? यह भी सर्वघाती स्पर्धक को रखती है। अप्रत्याख्यान कषाय के भी स्पर्धक सर्वघाती हैं। आगे आने वाली प्रत्याख्यान कषाय उसके स्पर्धक भी सर्वघाती हैं। मतलब इन कषायों के उदय में आत्मा के जिन गुणों का यह घात कर रही है उनका थोड़ा भी प्रकटीकरण नहीं हो सकता। मतलब वह गुण थोड़ा भी प्रकट नहीं हो सकता। **अनन्तानुबन्धी के उदय में सम्यग्दर्शन रह नहीं सकता। अप्रत्याख्यान कषाय के उदय में आत्मा में थोड़ा भी त्याग का भाव आ नहीं सकता।** अगर आप थोड़ा भी त्याग करोगे, थोड़ा भी आप नियम लोगे, थोड़ा-सा भी आप संकल्प लोगे तो आपके अन्दर यह कर्म की शक्ति कमजोर होनी चाहिए, तभी आप ले पाओगे। कौन से कर्म की? अप्रत्याख्यान कषाय की।

अप्रत्याख्यान कषाय मतलब बारह व्रतों को धारण नहीं करने देना



जो कषाय हमें थोड़ा भी त्याग/ व्रत न करने दे



यह कषाय की शक्ति कम होने पर ही व्यक्ति थोड़ा-सा व्रत ले पाता है। यहाँ थोड़े व्रत का मतलब वह नहीं है कि हमने रात में भोजन छोड़ दिया कि पिज्जा, बर्गर छोड़ दिया। नेल पॉलिश लगाना और लिपस्टिक लगाना छोड़ दिया, यह त्याग नहीं है। यहाँ अप्रत्याख्यान कषाय में कौन-सा त्याग आएगा? जो बारह व्रतों के रूप में त्याग होता है, जिसे हम प्रतिमाओं का ग्रहण करना कहते हैं। जो श्रावक के व्रतों का निर्वाह करने के लिए व्रत लिए जाते हैं, उस त्याग को कहा जा रहा है। चूँकि वह त्याग भी थोड़ा ही कहलाता है, पूर्ण त्याग तो किया नहीं है। वह त्याग भी जो सम्यग्दर्शन के बाद होगा, उस त्याग को वह तभी कर सकेगा जब उसके अन्दर अप्रत्याख्यान कषाय के सर्वघाती स्पर्धकों का अभाव होगा। अनन्तानुबन्धी का कार्य क्या? सम्यक्त्व का घात करना और अप्रत्याख्यान कषाय का काम क्या? एकदेश त्याग नहीं होने देना। थोड़ा त्याग जो व्रत के रूप में होता है, देशव्रती के रूप में होता है, उसे नहीं होने देना। यह कौन-सी कषाय काम कर रही है? इसका नाम क्या है? अप्रत्याख्यान कषाय।

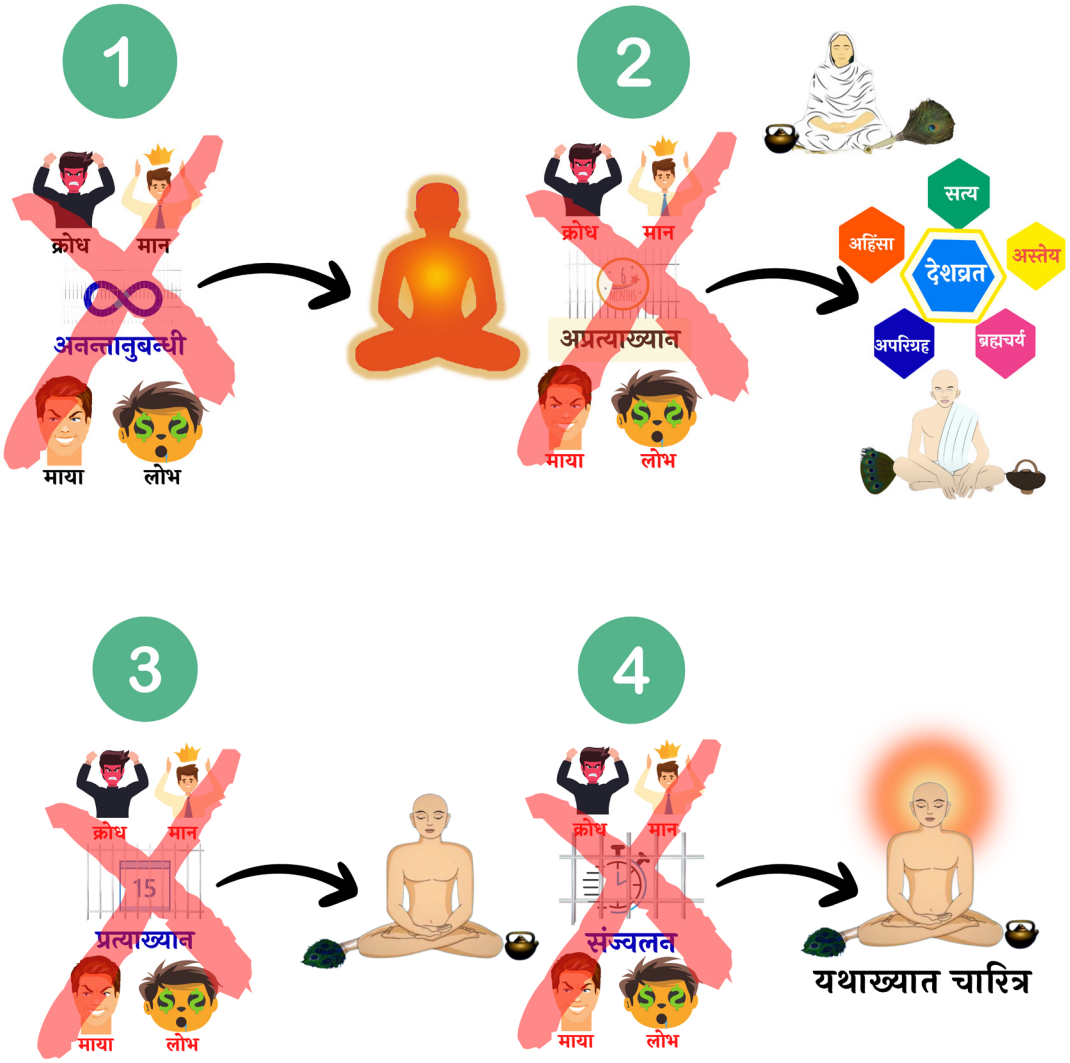
क्रम-क्रम से ही ये चारों कषाय काम करती हैं और क्रम से ही इनका अभाव होता है



ये सब कषायें क्रम-क्रम से ही काम करती हैं। यह भी समझ सकते हो कि इन चार कषायों में, कौन-सी चार कषाय? अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन। ये चार उसकी अलग-अलग variety हैं तो इन चार कषायों में यदि पहली वाली कषाय है, तो समझना कि आगे के तीनों कषाय नियम से हैं। अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय चल रहा है। अप्रत्याख्यान कषाय, प्रत्याख्यान कषाय, संज्वलन कषाय का भी है। अगर अनन्तानुबन्धी का अभाव हो गया तो किसका नम्बर आ गया? अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संज्वलन इन सब कषायो का उदय एक साथ रहेगा। अप्रत्याख्यान का अभाव हो गया तो कितनी बची? प्रत्याख्यान और

संज्वलन। प्रत्याख्यान का अभाव हो गया तो बची संज्वलन कषाय। यह क्रम, क्रम से चलता है।

प्रत्याख्यान कषाय का सद्भाव महाव्रत धारण नहीं करने देता



इसलिए पहले अनन्तानुबन्धी कषाय का अभाव होगा तब सम्यग्दर्शन होगा। फिर अप्रत्याख्यान कषाय का अभाव होगा देशव्रत आएँगे, फिर प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ। तीसरे नम्बर पर ये कषायें आ जाती हैं। इसका काम क्या प्रत्याख्यान मतलब त्याग! पूर्ण त्याग, पूर्ण प्रत्याख्यान। इस कषाय के उदय में वह जीव कभी भी पूर्ण त्याग नहीं कर सकता। किस कषाय के उदय में? प्रत्याख्यान कषाय के फल से, उसके उदय

में। अतः प्रत्याख्यानावरण कषाय का क्या काम है? संयम का घात करना। कौन-सा संयम? सकल संयम। देश संयम का घात करना किसका काम? अप्रत्याख्यान कषाय का। याद कर लो इसलिए बार-बार पूछ रहा हूँ, छोटी-सी चीजें हैं, बार-बार घुमाकर कह रहा हूँ। सकल संयम का घात करना किसका काम? प्रत्याख्यान कषाय का। प्रत्याख्यान कषाय का भी अगर अभाव हो गया, सकल संयम ले लिया। इसका मतलब क्या हो गया? प्रत्याख्यान कषाय का अभाव हुआ। अब कौन-सी बची? संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ। अब यह कषाय संयम के साथ बनी रहती है और यह इस कषाय का काम क्या है? इस कषाय का काम है यथाख्यात चारित्र नहीं होने देना, जो कि ग्यारहवें गुणस्थान में होता है। यह कषाय दसवें गुणस्थान तक चलेगी और वहाँ तक यथाख्यात चारित्र नहीं होगा। उसके लिए यह बाधक बनेगी लेकिन सकल संयम का पालन करने में संज्वलन कषाय कोई बाधा नहीं पहुँचाएगी। इस प्रकार हर कषाय का कार्य समझ में आ गया। चार ही तो बातें थी- अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन। अब देखो! जब परिभाषा बनाई जाती है, तो आप यह सब जानकारी में रखोगे तभी आप एक संयमा संयम की या संयम की जो क्षायोपशमिक भाव के साथ में परिभाषा बनेगी वह आप समझ पाओगे। यह सब मिला करके कषाय कितनी हुई? सोलह! 4x4=16, क्रोध-मान-माया-लोभ के भेद से चार से गुणा करने पर सोलह हो गई।



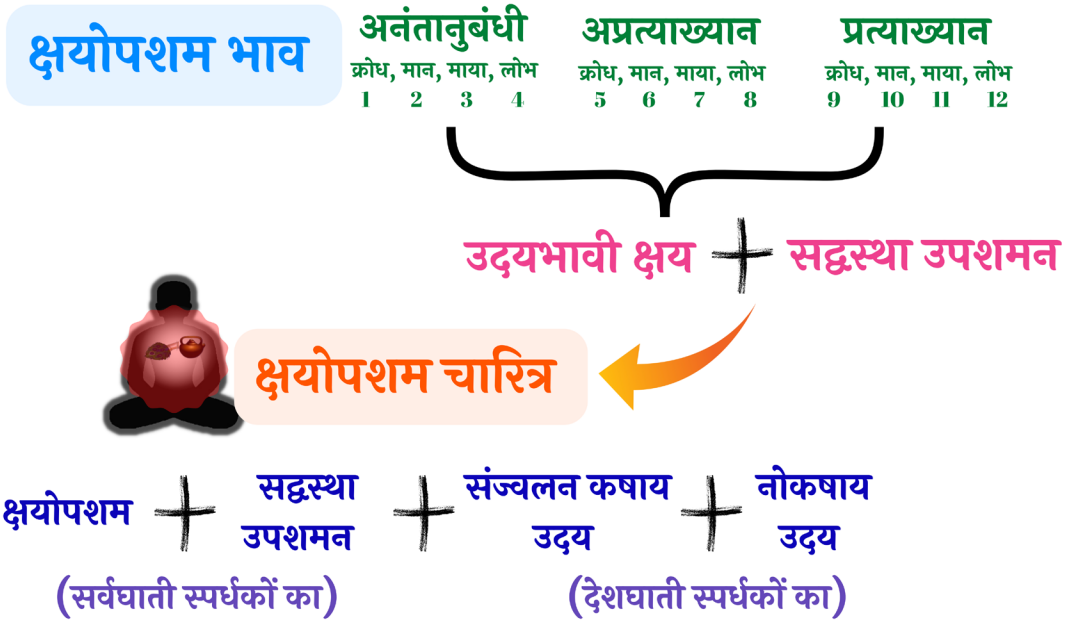
नौ नोकषाय होती हैं जिन्हें हम थोड़ी-थोड़ी कषाय कहते हैं। छोटी कषाय कहते हैं वे नोकषाय नौ होती हैं। कौन-कौन-सी? हास्य-रति, अरति-शोक, भय-जुगुप्सा ये दो-दो के तीन जोड़े हो गए, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक वेद हो गई नौ कषाय, ये नोकषाय होती हैं। अब परिभाषा को अगर आप समझोगे तो क्षयोपशम भाव जैसे हमने सम्यक्त्व की परिभाषा में समझा, ऐसे ही हम संयमा संयम की परिभाषा में भी समझे।

चार कषाय हमारे आत्मा में चार दरवाजे है, जिन्हें क्रम से खोलकर ही संयम की प्राप्ति होगी

SCAN TO WATCH

पहले किसकी समझना? पहले चारित्र आया न तो पहले संयम की परिभाषा समझते हैं। चारित्र! चारित्र भाव कब होगा अब आप खुद भी बता सकते हो। चारित्र भाव कब होगा? चारित्र भाव के लिए किन-किन कषायों का अभाव आवश्यक है? सकल चारित्र। अनन्तानुबन्धी का भी, प्रत्याख्यान तक पहुँचो तो पहले, पहुँचोगे तो क्रम से ही। एकदम से प्रत्याख्यान पकड़ में थोड़ी न आ जाएगी। ये तो चार कषाय ऐसे समझो हमारे आत्मा में चार दरवाजे लगे हैं। एक-एक दरवाजा तोड़कर के, खोल करके आपको अन्दर जाना है तब आपको कुछ संयम मिलेगा, कुछ आपको चारित्र गुण की महक आएगी। समझ आ रहा है? treasury तो अन्दर है और वह कितने दरवाजों में बन्द है? कम से कम तीन दरवाजों के बाद आपको treasury देखने को मिलेगी। खजाना आपको कितने दरवाजों के बाद मिलेगा? तीन दरवाजे पार करो तो एकदम से तीसरे दरवाजे का ताला नहीं तोड़ पाओगे। चारित्र लेना तो क्या करना? प्रत्याख्यान को तोड़ दो। प्रत्याख्यान टूटेगा उससे पहले अप्रत्याख्यान और अनन्तानुबन्धी भी टूट जाएगा। अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान...ये कितनी कषाय हो गई? बारह कषाय हो गई।

आत्मा में क्षयोपशम चारित्र भाव प्रकट होने की विधि



इन बारह कषायों को सैद्धान्तिक भाषा में बोलना सीखो। क्या बोलना है? कल आपको बताया था न। सर्वघाती स्पर्धकों में क्या होता है? क्षयोपशम भाव घटित करना। इन सबके सर्वघाती स्पर्धकों को लेकर के हम क्या करेंगे? इनका क्षयोपशम करेंगे। कैसे करेंगे? इन बारह कषायों के **सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय** मतलब उदय में नहीं आने देना। इनके उदय में आने का इनके लिए अभाव कर देना और इनकी जो अवस्था है, जैसी दबी हुई अवस्था है वैसी **दबी अवस्था बनी रहना, सद्वस्था उपशम** यह कर दिया। **इधर उसका क्षय भी हो रहा है** और **इधर उनका उपशमन भी है,** तो **इसका नाम क्या हो गया? क्षयोपशम।** बहुत कठिन चीज है लेकिन एक बार तो सीखना ही पड़ता है। बारह कषायों के सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय और सद्वस्था रूप उपशम होना, यह तो एक काम हो गया। अब जब इतना काम हो गया तो ये तो दब गए। कुछ उदय में तो रहेगा, फल किसका मिलेगा? जो बची कषाय है, कौन-सी बची? संज्वलन। उस संज्वलन कषाय में सर्वघातीपना नहीं होता, उसमें देशघाती स्पर्धक होते हैं। एक तरीके से स्पर्धक तो उसमें दोनों भी हो सकते हैं- देशघाती, सर्वघाती! क्योंकि देशघाती प्रकृति है। उसके जो देशघाती स्पर्धक है उन देशघाती स्पर्धकों का उदय रहेगा। कषाय का उदय तो रहेगा ही, जो सकल चारित्र ले लेगा, उसमें भी कषाय का उदय है कि नहीं? होता है! कौन-सी कषाय का उदय होता है? संज्वलन का उदय होता है। संज्वलन कषाय का उदय और उसके साथ-साथ जो भी नौ नोकषाय हैं, उनमें से भी किसी भी कषाय का उदय रह सकता है। इतना सब होने पर जो उसके लिए चारित्र भाव प्रकट होगा उसका नाम कहलाएगा- क्षयोपशम चारित्र।

कर्मों की सूक्ष्म व्यवस्थाओं को देखना-जानना केवल सर्वज्ञ के ज्ञान का विषय है

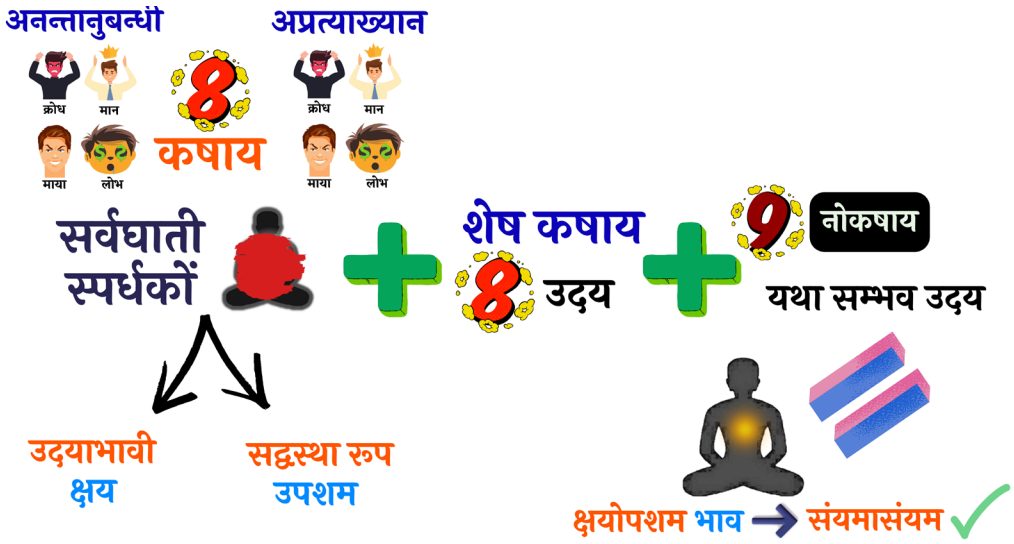




अब आप देखो! कर्म की कितनी गहरी व्यवस्थाएँ, कितनी सूक्ष्म व्यवस्थाएँ और कितनी perfect व्यवस्था है। यह सर्वज्ञ के ज्ञान के अलावा कोई भी बताने के लायक नहीं है। सर्वज्ञ के अलावा न तो कोई कर्मों को देख सकता है, न उन कर्मों की जो क्षयोपशम आदि स्थितियाँ बनती हैं, उनको समझ सकता है। आप समझते हो, हमने कर लिया, हमने कर लिया। आपने क्या कर लिया? आप कभी यह तो कहते नहीं...कर्मों के कारण से हमने कर लिया। अगर आपने चारित्र भी ले लिया, चारित्र भी पाल रखा है मान लो यह क्षयोपशम भाव वाला सकल चारित्र है, मुनि महाराज इस चारित्र को पाल रहे हैं तो उन्हें भी यह ज्ञान में रहता है कि इस चारित्र का पालन मैं कर रहा हूँ, मैं कर रहा हूँ...यह अहंकार भी नहीं कर सकते क्योंकि यह भी कर्म के क्षयोपशम से होता है। यह कर्म का क्षयोपशम ही चारित्र का पालन करा पाएगा। अगर कर्म का क्षयोपशम नहीं होगा तो उसके अन्दर विरक्ति का भाव नहीं होगा। हो सकता है ऊपर-ऊपर से वह ले ले लेकिन भीतर से विरक्ति का भाव इस कर्म के क्षयोपशम के बिना नहीं आएगा **इसलिए इस चारित्र की अनुभूति भीतर से जिसको होती है, तो वह समझता है कि इन कर्मों के क्षयोपशम के कारण से है। यह सबसे बड़ा पुरुषार्थ है।** अपने भीतर के कर्म जिनको कि हम देख नहीं सकते, उनको दबाना, उनका क्षय करना और उन कर्मों के अभाव से अपनी आत्मा के चारित्र को प्रकट करना, यह बड़ा काम है या कोई भी atom bomb उठा कर के किसी जगह पर डाल देना, यह बड़ा काम है? यह कितना बड़ा आत्मा का पुरुषार्थ है कि वह अपने ही कर्म परमाणुओं को जो कर्म के bomb हैं ये बड़े-बड़े अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान इन सब को दबा कर के, सब की शक्ति मिटा करके और केवल संज्वलन का बस उदय रह गया और उसके अन्दर केवल देशघाती स्पर्धकों के उदय के कारण से सकल संयम में कोई बाधा नहीं आती, इसका नाम है- क्षयोपशम चारित्र।

संयमासंयम की परिभाषा

फिर क्या आएगा? संयमासंयम। संयमासंयम की परिभाषा बनाओ। अब संयमासंयम की परिभाषा बनाओगे तो कैसे बनेगी? कैसे होगा संयमासंयम? किन-किन कषायों का क्षयोपशम करना, संयमासंयम के लिए? अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यान कषाय। तभी तो थोड़ा संयम आएगा और उसी का नाम **संयमासंयम** है। देशसंयम कहो या संयमासंयम कहो एक ही बात है और थोड़ा भी संयम आया तो कितनी कषाय का अभाव करना पड़ा? अनन्तानुबन्धी कषाय है और अप्रत्याख्यान कषाय। इन आठ कषायों के सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय और सद्वस्था रूप उपशम और बची हुई जो कषाय है, उनका उदय, उनका क्या है? उदय और जो नौ नोकषाय हैं उनमें से भी जैसे जिसका उदय होगा, उसके अनुसार उसका यथा सम्भव उदय होने पर जो आत्मा में भाव आएगा, उसका नाम क्षयोपशम भाव से सहित संयमासंयम कहलाएगा।



औदयिक भाव बंध का हेतु है और सम्यक्त्व व चारित्र सम्बन्धी क्षयोपशम भाव निर्जरा का कारण है

इस तरह से भीतर कर्मों के क्षयोपशम से ही देशव्रत, महाव्रत आदि ग्रहण किए जाते हैं। ये इतनी बड़ी कर्मों के क्षयोपशम से होने वाली प्रक्रिया है...यह क्षयोपशम भाव कहलाता है, औदयिक भाव नहीं है। अब देखो आप! औदयिक भाव कब था? जब हमने संयम नहीं लिया था या हमने संयमासंयम नहीं लिया था। वह नहीं लिया इसलिए कर्म के उदय में होने वाला जो भाव क्या कहलाया? औदयिक भाव। **औदयिक भाव ही बन्ध करने वाला है** मतलब असंयम से तो बन्ध होगा। संयमासंयम आएगा या **संयम आएगा तो** क्या होगा? **कर्म की निर्जरा** होगी। क्षयोपशम भाव...कर्म की निर्जरा के लिए कारण होता है। कौन-सा क्षयोपशम भाव? **सम्यग्दर्शन सम्बन्धी क्षयोपशम भाव या चारित्र सम्बन्धी क्षयोपशम भाव।**





जब क्षयोपशम सम्यक्त्व हुआ तो भी आपके लिए मिथ्यात्व आदि कर्मों का संवर होगा, निर्जरा होगी और जब क्षयोपशम चारित्र हुआ तो भी आपके लिए इन अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायों की निर्जरा होगी, इनका क्षय होगा और अगर क्षयोपशम देशसंयम हुआ तो भी आपके लिए आठ कषायों का अभाव होगा। उदय में नहीं आने देना, उनका क्षय करते रहना पड़ेगा। चारित्र या देशचारित्र, यह सब कषाय के अभाव से उत्पन्न होने वाली परिणतियाँ कहलाती है। यह इसलिए सुनना जरूरी है कि बाहर से जो व्रत लिए जाते हैं, वे व्रत तो उन कषायों के शमन करने में सर्वघाती स्पर्धकों के क्षयोपशम करने में कारण बनते हैं। लेकिन भीतर से जो चारित्र उत्पन्न होगा, वह चारित्र तो कर्म के क्षयोपशम से ही उत्पन्न होगा। अतः चारित्र या देशसंयम या सम्यग्दर्शन...यह कौन-सा भाव हुआ? क्षयोपशम भाव हुआ और मिथ्यात्व का उदय, असंयम भाव...यह कौन-सा भाव हुआ? यह औदयिक भाव हुआ। इतना जान लो। जो कर्म के उदय में हो रहे हैं यह औदयिक भाव हैं और जो कर्म के क्षयोपशम से हो रहे हैं वे क्षयोपशम भाव हैं। औदयिक भाव तो हमारे लिए बन्ध के कारण हैं लेकिन क्षयोपशम भाव, सभी हमारे लिए बन्ध के कारण नहीं हैं। सम्यक्त्व और चारित्र सम्बन्धी क्षयोपशम भाव कर्म की निर्जरा के कारण हैं।

संयमी के लिए अपने संयम की रक्षा करना सर्वोपरि है

अब आप यह बात बोलते हो, कभी-कभी सुनने में आता है...महाराज! जो लोग चारित्र ले लेते हैं, देश संयमी हो जाते हैं या थोड़े से भी व्रती, प्रतिमाधारी हो जाते हैं उनमें ज्यादा कषाय-सी दिखती है, ज्यादा अकड़-सी दिखती है। ऐसा बोलते हो न आप लोग कभी। आप ही क्या, सभी लोग बोलते हैं। ऐसा क्यों होता है? कषाय मतलब पहले से ज्यादा दिखती है या पहले से कम दिखती है। अब इसकी अनुभूति तो आपको कैसे होगी? या तो आपको यह पता हो कि वे पहले घर में कितनी कषाय करता था। आप पहले से उसके पहले घर से परिचित रहे हो, तब जान पाओगे कि पहले ज्यादा करता था कि अब कम करता है या वह व्यक्ति खुद समझे कि मैं पहले ज्यादा करता था, अब कम करता हूँ या कभी-कभी करता हूँ और पहले कितनी करता था या उसको खुद को समझ में आए। अगर खुद को भी समझ में आए तो जरूरी नहीं कि दूसरे को भी समझा पाए, दूसरे की भी समझ में आ जाए। इसलिए हम किसी भी दूसरे पर आक्षेप तब तक नहीं लगा सकते जब तक कि हमें कुछ उसके पहले के स्वभाव का भी पता न हो। क्योंकि अगर उसने कोई व्रत लिया, कोई भी संयम लिया तो उसके अन्दर जो कमी आई, वह तो उसी को महसूस होगी न! आप तो मान लो किसी प्रसंग विशेष पर देख सकते हो लेकिन उस प्रसंग पर देखकर के भी आप यह नहीं कह सकते कि इसके अन्दर यह कषाय हमेशा रहती है। वह केवल उसी प्रसंग के लिए भी हो सकती है। मान लो आपने कोई बात कही और सामने वाले ने बात नहीं मानी तो वह बात केवल उसी प्रसंग के लिए होगी। ऐसा तो नहीं कि वह हमेशा कोई कषाय बांध के रखता हो। बात न मानना इसलिए भी हो सकता है

कि वह उसके व्रत के अनुकूल न हो। नहीं समझ आ रहा? आप तो असंयमी ठहरे, आप अपनी बात असंयम के तरीके से ही मनवाओगे। सामने वाला अगर संयमी है, तो वह आपकी बात तभी तो मानेगा जब वह बात उसके संयम के अनुकूल होगी। हर बात कैसे मान ली जाएगी।

व्रत लेने पर कषाय की परिणति कम होती है?





आप अगर कहोगे कि हमारी हर बात नहीं मानते तो यह बहुत जिद्दी है, बहुत कषाय करते हैं, इसका नाम तो कषाय नहीं है कि सबकी बात मान लेने का नाम बहुत निर्मलता हो जाती हो। कषाय की जो परिणति है, वह अलग है। वह कषाय की परिणति इतनी भी नहीं होनी चाहिए कि सामने वाले को देखकर के लगे कि यह व्रती के लिए शोभा नहीं दे रहा है। इतना भी नहीं होना चाहिए, यह तो मैं भी कहूँगा। मान लो कोई व्रती है, वह बहुत ज्यादा तमतमा रहा हो, बहुत ज्यादा जल्दी से एकदम से गर्म हो जाता है, बिल्कुल लाल पड़ जाता है, तो ऐसा किसी भी प्रसंग के लिए होना ठीक नहीं है। लेकिन अगर उसके इस कषाय में कमी आई है, तो वह कषाय की कमी उसको खुद अनुभव में आती है और हो सकता है कि पहले बहुत गुस्सा करता हो और जब से उसने व्रत-संयम ले लिया हो तब से उसका गुस्सा थोड़ा-सा रह गया हो और वह उतना ही रह गया हो जितनी देर आप उनके साथ रहते हो। नहीं समझे! जब कुछ साथ होगा तभी तो गुस्सा समझ में आएगा। जब कोई है ही नहीं तो अकेले में क्या गुस्सा करेगा? कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है। इसलिए हम कभी भी किसी भी व्रती, संयमी के लिए ऐसा न समझे कि व्रत, संयम लेने से कषाय और बढ़ती है। कषाय बढ़ती नहीं है, घटती है, घटने का क्रम उसको पता होता है और वह कषाय की intensity पर depend करता है कि पहले कितनी time के लिए उसकी वह कषाय रहती थी, उसकी intensity कितनी होती थी?

अब कुछ होता है, तो वह कितने time के लिए होता है? बस! जितने time के लिए होता है, उतने time के लिए ही होता है, उसके बाद तो कुछ नहीं होता है। इस तरह की कषाय का नाम क्या है? **आत्मा की निर्मल परिणति ही है, वह व्रत के साथ में चलती है।** संज्वलन कषाय भी रहती है, व्रत के साथ में, संयम के साथ में भी लेकिन वह कैसी होती है? आचार्य कहते हैं कि वह कषाय बहुत मामूली-सी होती है, अन्तर्मुहूर्त में ही उत्पन्न होकर के नष्ट हो जाती है। ऐसा नहीं कि दिनभर रहे या महीने भर तक रहे। ऐसा नहीं अन्तर्मुहूर्त तक ही रहती है। अन्तर्मुहूर्त मतलब कुछ सेकेंडों में ही बस उत्पन्न होगी और शान्त हो जाएगी। अड़तालीस मिनट तो बहुत हो जाती है। इतना भी नहीं रखते कोई, जो मुनि हैं उनके लिए और जो व्रती गृहस्थ वाले देशव्रती हैं उनके लिए, अगर बहुत-बहुत होगी, बहुत-बहुत होगी तो कब तक चलेगी? पन्द्रह दिन से ज्यादा नहीं चलेगी।

लोग चाहते हैं कि व्रती को बिल्कुल भी गुस्सा न आए!

अनन्तानुबन्धी तो भव-भव तक चलती है, अप्रत्याख्यान का छह महीने। प्रत्याख्यान कषाय पन्द्रह दिन से ज्यादा नहीं चलती। इस तरीके की परिणतियाँ भीतर रहते हुए भी व्रतों का पालन होने में कोई दोष नहीं होता। कई बार आप लोग यह चाहते हो कि व्रती को बिल्कुल भी गुस्सा न आए या व्रती में कोई भी कषाय न दिखे। किन्तु यह कषाय एक सामान्य से कोई व्यवहार में आने वाली हो सकती है लेकिन भीतर उसके चारित्र परिणाम के लिए सहायक है कि नहीं, यह आपको जानने में नहीं आ सकता है। किसी की बाहरी प्रवृत्तियों से हम उसके भीतर के चारित्र का कोई अन्दाजा बहुत ज्यादा नहीं लगा सकते। अगर कोई बिल्कुल ही अनर्गल प्रवृत्तियाँ, बहुत ज्यादा ही कषाय हैं तो वह एक अलग बात है। लेकिन जब कभी कहीं कुछ होता है, तो उसको हम मुद्दा न बनाया करे और उसको हम court case बनाने की कोशिश न करें।

बोलो महावीर भगवान की जय।

सारांश

1. औपशमिक, क्षायिक भावों के बाद हम **क्षायोपशमिक भावों** के बारे में जान रहे हैं
2. जहाँ **औपशमिक सम्यग्दर्शन** दर्शन मोहनीय की तीन और अनंतानुबंधी कषाय की चार प्रकृति के **उपशमन** से होता है और
3. **क्षायिक सम्यग्दर्शन** इनके क्षय से होता है
4. **क्षयोपशम सम्यग्दर्शन** दर्शन मोहनीय की सम्यक्-प्रकृति के उदय से और शेष छः प्रकृतियों के उपशमन से होता है
5. सम्यक्-प्रकृति के उदय में सम्यग्दर्शन का परिणाम बना रहता है
6. यह **सरलता से** उत्पन्न हो जाता है
7. लम्बे समय तक, सागरों तक टिकता है
8. **और** सभी गतियों में साथ जाता है
9. **पर** इसके परिणामों में **निर्मलता** उपशम और क्षायिक सम्यग्दर्शन से कम होती है
10. उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए
    - पाँच लब्धियों का होना
    - अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण **तीनों परिणामों** का होना आवश्यक है
    - और इसमें आत्मा के पुरुषार्थ से सात प्रकार की कर्म प्रकृति का उपशमन होता है
11. **क्षयोपशम सम्यग्दर्शन** केवल अधःकरण और अपूर्वकरण परिणामों से भी हो जाता है
12. **चल, मल, अगाढ़** दोषों के कारण इसमें निर्मलता बिगड़ती रहती है
- मगर **सम्यक्त्व कर्म** के उदय के कारण से सम्यग्दर्शन भी बना रहता है

13. **चल दोष** में जीव के सम्यग्दर्शन में एक चलन आ जाता है, उसका दृढ़ निश्चय नहीं रहता
- वह अपने या पूर्वजों द्वारा स्थापित मन्दिर आदि को अपना मानता है और दूसरों के मन्दिर आदि को दूसरे का

14. **मल दोष** मतलब सम्यग्दर्शन में मलिनता आ गई
15. जैसे निःशंकित, निःकांक्षित आदि भावों के विपरीत भावों का थोड़ी देर के लिए उत्पन्न होना
16. जैसे मिथ्या अनायतनों की सेवा करने का भाव
17. **अगाढ़ दोष** अर्थात गाढ़पना नहीं रहना
18. जैसे किसी-किसी तीर्थंकर को किसी निमित्त से देखना
19. जैसे शान्तिनाथ भगवान से शांति और मुनिसुव्रत भगवान से समृद्धि मिलेगी
20. मिथ्यात्व, सम्यक-मिथ्यात्व और सम्यक ये **दर्शन मोहनीय** के वंशज हैं
21. **मिथ्यात्व** की अनुभाग शक्ति ज्यादा होती है और यह मिथ्यात्व जैसा ही बना रहता है

22. **सम्यक-मिथ्यात्व** की अनुभाग शक्ति थोड़ी कम हो जाती है और
23. **सम्यक** की अनुभाग शक्ति इतनी कम हो जाती है कि वह घात करने की क्षमता तो रखता है मगर सम्यग्दर्शन का नाश नहीं करता
    - यह इस **पंचम काल** में सम्यक प्रकृति के कर्म का हम पर विशेष उपकार है
    - जहां उपशम सम्यग्दर्शन अन्तर्मुहूर्त से ज्यादा नहीं रहता और क्षायिक सम्यग्दर्शन वर्तमान में होता नहीं है
    - इस कर्म के कारण क्षयोपशम सम्यग्दर्शन लम्बे समय तक टिकता है
24. अतः तीनों सम्यग्दर्शन में अभी हमें क्षयोपशम सम्यक्त्व पर ध्यान देना चाहिए
25. हमने जाना कि तीन लोकों के जीवों को लाभ देने वाला कर्म है **तीर्थंकर नामकर्म**
26. हमने कर्म-सिद्धान्त के अनुसार कषाय की व्यवस्था को समझा
27. **अनन्तानुबन्धी कषाय:** क्रोध, मान, माया, लोभ **सम्यग्दर्शन** का घात करती है
28. सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में अनन्तानुबन्धी कषाय का भी उपशमन या क्षय होना चाहिए
29. मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय सम्यग्दर्शन होने नहीं देते
30. **प्रत्याख्यान** का अर्थ होता है त्याग और **अ** मतलब इषत् जिसका अर्थ थोड़ा त्याग
    - अतः **अप्रत्याख्यान कषाय** हमें किंचित त्याग के परिणाम उत्पन्न नहीं होने देती
    - यह देश संयम का घात करती है
    - और बारह व्रतों को धारण नहीं करने देती यानि प्रतिमाओं को ग्रहण नहीं करने देती
31. **प्रत्याख्यान कषाय** का सद्भाव महाव्रत धारण नहीं करने देता
    - इससे सकल संयम का घात होता है
32. ये तीनों प्रकार की कषायें हमारी आत्मा में त्याग भाव, संयम भाव का घात करती हैं
33. और इनके **स्पर्धक सर्वघाती** हैं
34. अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन कषायें क्रम-क्रम से ही काम करती हैं और क्रम से ही इनका अभाव होता है
35. यदि अनन्तानुबन्धी का उदय है तो अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन कषाय का भी होगा
    - अनन्तानुबन्धी का अभाव होगा तब **सम्यग्दर्शन** होगा
    - अप्रत्याख्यान का अभाव होगा **देशव्रत** आएँगे
    - और प्रत्याख्यान का अभाव हो गया तो **सकल संयम** होगा
36. यदि अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान तीनों का अभाव हो गया तो संज्वलन कषाय बचेगी
37. यह कषाय संयम के साथ बनी रहती है और **यथाख्यात चारित्र** नहीं होने देती
38. यह कषाय **दसवें गुणस्थान** तक रहती है और वहाँ तक यथाख्यात चारित्र नहीं होता
39. चार कषाय हमारे आत्मा में चार दरवाजे है, जिन्हें क्रम से खोलकर ही संयम की प्राप्ति

होगी

40. सैद्धान्तिक भाषा में **बारह कषायों यानि** अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान के चार चार भेद क्रोध, मान, माया और लोभ **के सर्वघाती स्पर्धकों** में क्षयोपशम भाव घटित होगा
41. इन बारह कषायों के सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय होने से और उपशमन भी होने से **क्षयोपशम चारित्र** होता है
42. बची हुई **संज्वलन कषाय** देशघाती प्रकृति की है
    - इसमें दोनों देशघाती और सर्वघाती स्पर्धक हो सकते हैं
43. सकल चारित्र लेने के पश्चात् **संज्वलन कषाय** का उदय रहेगा
44. और उसके साथ-साथ जो भी नौ नोकषाय हैं उनमें से भी किसी भी कषाय का उदय रह सकता है
45. क्षयोपशम भावों में हम संयम और संयमासंयम भावों को और कषायों की व्यवस्था को समझ रहे हैं
46. कर्मों की सूक्ष्म व्यवस्थाओं को देखना-जानना **केवल** सर्वज्ञ के ज्ञान का विषय है
47. जो मुनि महाराज क्षयोपशम चारित्र पाल रहे हैं वे चारित्र को ही कर्मों के क्षयोपशम का फल मानते हैं
    - और उस पर अहम् नहीं करते
48. आत्मा के पुरुषार्थ से अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान को दबा कर, मात्र संज्वलन के उदय में **सकल संयम** में कोई बाधा नहीं आती
49. इसे प्रकट करना ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है
50. सम्यक्त्व व चारित्र सम्बन्धी क्षयोपशम भाव **निर्जरा का कारण** हैं
51. हमें देखा कि **असंयम** के साथ और मिथ्यात्व के उदय में, कर्म के उदय से होने वाले औदयिक भाव के कारण बन्ध होगा
    - वहीं **क्षयोपशम सम्यक्त्व** के साथ मिथ्यात्व आदि कर्मों का संवर होगा, निर्जरा होगी
    - **क्षयोपशम देशसंयम** में मिथ्यात्व के अलावा अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान आदि **आठ कषायों** की निर्जरा होगी
    - और **क्षयोपशम चारित्र** में मिथ्यात्व के अलावा अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान आदि **बारह कषायों** की निर्जरा होगी
52. चारित्र या देशचारित्र **कषाय** के अभाव से उत्पन्न होने वाली परिणतियाँ हैं
53. श्रावक के बाहर व्रत भी उन कषायों के सर्वघाती स्पर्धकों के क्षयोपशम करने में **कारण बनते** हैं
54. लेकिन भीतर से चारित्र तो कर्म के क्षयोपशम से ही उत्पन्न होती है
55. हमने समझा कि संयमी के लिए अपने संयम की रक्षा करना सर्वोपरि है

56. सबकी बात न मानना कषाय नहीं है, कषाय की परिणति अलग है
57. किसी की बाहरी प्रवृत्तियों से हम उसके भीतर के चारित्र का अन्दाजा नहीं लगा सकते
58. इसलिए हमें कभी भी किसी भी व्रती, संयमी को देखकर ऐसा नहीं समझना चाहिए कि व्रत, संयम लेने से कषाय और बढ़ती है
59. व्रत लेने पर कषाय कम होती है
60. घटने का क्रम कषाय की intensity पर, पहले कितनी time समय के लिए आती थी आदि पर निर्भर करती हैं
61. सकल संयमी मुनि महाराज के संज्वलन कषाय रहती है और यह अन्तर्मुहूर्त में नष्ट हो जाती है
    - व्रती गृहस्थ के प्रत्याख्यान कषाय रहती है और यह पन्द्रह दिन तक रहती है
    - सम्यग्दृष्टि गृहस्थ के अप्रत्याख्यान कषाय रहती है और यह छः महीने तक रहती है
    - मिथ्यादृष्टि जीव के अनन्तानुबन्धी कषाय रहती है और यह भव-भव तक चलती है
    - इस तरीके की परिणतियाँ भीतर रहते हुए भी व्रतों का पालन होने में कोई दोष नहीं होता

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1. किसके बिना क्षयोपशम सम्यकदर्शन हो सकता है ?
1. अध:करण
2. अपूर्वकरण
3. अनिवृत्तिकरण

Q2. किस कर्म के उदय में क्षयोपशम सम्यकदर्शन का भाव बनता है?
1. सम्यक् मिथ्यात्व
2. सम्यक् प्रकृति
3. मिथ्यात्व

Q3. आत्मा के परिणामों की निर्मलता का बढ़ता क्रम कौन सा है ?
1. क्षायिक, औपशमिक,क्षयोपशमिक
2. क्षयोपशमिक, औपशमिक, क्षायिक
3. क्षयोपशमिक, क्षायिक, औपशमिक

Q4. "यह भगवान की प्रतिमा मैंने स्थापित की है, यह मेरे हैं" | ऐसा भाव समयकदर्शन का कौन सा दोष है?
1. मल
2. चल
3. अगाढ़

Q5. श्री जी की पूजन से भौतिक सुखो की आशा करना समयक्त्व का कौन सा दोष है?
1. मल
2. अगाढ़
3. चल

Q6. पार्श्वनाथ भगवान की आराधना करने से सभी विघ्न दूर होंगे, ऐसा भाव आना कौन सा दोष है?
1. चल
2. मल
3. अगाढ़

Q7. सम्यक दर्शन की घातक कषाय कौन सी है ?
1. अनंतानुबंधी
2. अप्रत्याख्यान
3. प्रत्याख्यान

Q8. कषाय का सही क्रम चुनिए
1. अनंतानुबंधी,प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान, संजवलन
2. अप्रत्याख्यान,प्रत्याख्यान, अनंतानुबंधी, संजवलन
3. अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान,प्रत्याख्यान, संजवलन

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q9. कौन सी कषाय सकल चारित्र का घात करती है?
1. संज्जवलन
2. प्रत्याख्यान
3. अप्रत्याख्यान

Q10. प्रत्याख्यान कषाय के उदय में जीव क्या कर सकता है?
1. पूर्ण त्याग
2. महाव्रतों को ग्रहण
3. सकल संयम धारण
4. उपयुक्त में से कुछ भी नहीं

Q11. यथाख्यात चारित्र कौन से गुणस्थान में प्रकट होता है?
1. 11वे
2. 12वे
3. 10वे

Q12. मिथ्यात्व का उदय कौन सा भाव है?
1. औदयिक भाव
2. पारिणामिक भाव
3. क्षायोपशमिक भाव
4. क्षायिक भाव

Q13. संयमासंयम में कौन सी कषाय का उदय नहीं रहेगा?
1. अनंतानुबंधी
2. अप्रत्याख्यान
3. दोनों सही

Q14. सकल चारित्र का पर्यायवाची क्या है?
1. क्षयोपशमिक चारित्र
2. क्षायिक चारित्र
3. औपशमिक चारित्र
4. इनमें से कोई नहीं

Q15. अनंतानुबंधी कषाय किस वंश की है ?
1. दर्शन मोहनीय
2. चारित्र मोहनीय
3. मिथ्यात्व
4. उपरोक्त सभी

Q16. सम्यग्दर्शन का घात कौन सी कषाय करती है?
1. अनंतानुबंधी कषाय
2. अप्रत्याख्यान कषाय
3. प्रत्याख्यान कषाय
4. संजवलन कषाय

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

SCAN TO WATCH

अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1. परिणामों की निर्मलता कौनसे सम्यग्दर्शन में सबसे अधिक होती है?
2. क्षयोपशम सम्यक्त्व में कौनसे दोष लगते हैं?
3. पार्श्वनाथ भगवान विघ्नों को दूर करने वाले है , ऐसा मानना सम्यक्त्व का कौनसा दोष है?
4. मिथ्यात्व , सम्यक् मिथ्यात्व तथा सम्यक् प्रकृति के अनुभाग को बढ़ते क्रम में बताइये।
5. प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए कौनसी प्रकृतियों का उपशमन आवश्यक है?
6. कौनसी कषाय के उदय के कारण किंचित् भी व्रत लेने के भाव नहीं होते?
7. अनंतानुबंधी , अप्रत्याख्यान , प्रत्याख्यान तथा संज्वलन कषाय में किस तरह के स्पर्द्धक होते हैं ?
8. प्रत्याख्यान कषाय के उदय के कारण क्या होता है?
9. बाहरी प्रवृत्ति को देखकर भीतर के चारित्र का पता लगाया जा सकता है या नहीं?
10. संयमासंयम नामक क्षयोपशम भाव कैसे बनता है?

प्रवचन 06

आगे का सूत्र जिसमें औदयिक भाव कौन-कौन से होते हैं, उनका वर्णन किया जा रहा है...

गति-कषाय-लिंग-मिथ्यादर्शना-ज्ञाना-संयता-सिद्ध-लेश्याश्-चतुश्-चतुस्त्र्ये-कैकैकैक-षड्भेदा: ॥ 2.6॥

गति-कषाय-लिंग-मिथ्यादर्शन+अज्ञान+असंयत+असिद्ध -लेश्या: - चतु: + चतु: + त्रि + एक + एक + एक + एक - षड्भेदा:

गति-कषाय-चौ लिंग त्रय, षट्-लेश्या अज्ञान।
मिथ्यादर्शन, अविरती, असद्धित्व भी जान॥ 2.6॥

औदयिक भाव किसे कहते हैं?

यहाँ औदयिक भावों का वर्णन किया जा रहा है जिसमें कि आत्मा में कर्म के उदय से क्या-क्या भाव उत्पन्न होते हैं? वे भाव यहाँ बताए जा रहे हैं। सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि औदयिक भाव कर्म के उदय मात्र की अपेक्षा रखते हैं; कर्म का केवल उदय चाहिए। न उपशम चाहिए, न क्षयोपशम चाहिए, न क्षय चाहिए। जिसमें केवल कर्म के उदय की अपेक्षा हो, उससे जो उत्पन्न होने वाला आत्मा में जो भाव होगा, उसको **औदयिक भाव** कहते है।

गति नाम का औदयिक भाव



1.गति औदयिक भाव

औदयिक भाव कर्म के उदय मात्र की अपेक्षा रखते हैं

देव गति
देव का भाव





मनुष्य गति
मनुष्य का भाव

नरक गति
नारक भाव





तिर्यंच गति
तिर्यंच का भाव

सबसे पहले यहाँ पर लिया गति नाम का औदयिक भाव। गति का मतलब- हम जो एक गति से दूसरी गति में गमन करते हैं, वह गति नाम कर्म के उदय से होता है और उस गति में गमन करने के बाद जो हमारे अन्दर उस गति सम्बन्धी भाव उत्पन्न होता है वह भी उस गति नाम कर्म के उदय के चलने के कारण से ही होता है। चार प्रकार की गतियाँ हैं- नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देव गति। जिस गति के उदय से नारक भाव पैदा हो- उसे नरक गति कहा जाता है। जिस गति नाम कर्म के उदय से तिर्यंच का भाव पैदा हो, तिर्यक योनि का भाव पैदा हो- वह तिर्यंच गति कहा जाता है। जिस गति नाम कर्म के उदय से मनुष्य का भाव पैदा हो- वह मनुष्य गति कहा जाता है और जिस गति नाम कर्म के उदय से देव का भाव पैदा हो कि मैं देव हूँ, ऐसा भाव पैदा हो- उसका नाम देव गति कहा जाता है। इन औदयिक भावों के ही कारण आत्मा जिस शरीर को, जिस गति को धारण कर लेता है, वह उसी मय अपने को मानता है, जानता है।

जीव विपाकी कर्म और पुद्गल विपाकी कर्म क्या हैं?

जीव विपाकी कर्म



EXAMPLE

गति, जाति,संहनन,कषाय

पुद्गल विपाकी कर्म



EXAMPLE

शरीर, अंगोपाङ्ग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण आदि

SCAN TO WATCH

यह गति नाम कर्म आदि जो यहाँ पर औदयिक भावों में गिने गए हैं, इनमें से वह औदयिक भाव के रूप में यहाँ मुख्य रूप से ग्रहण किए जाते हैं, जो जीव को फल देते हैं। कुछ कर्म ऐसे होते हैं, जो जीव को फल देते हैं, जीव के अन्दर भाव पैदा करते हैं। कर्म के कारण से भाव जीव में पैदा होंगे, उन्हें बोलते हैं- **जीव विपाकी कर्म।** क्या बोलते हैं? जीव विपाकी और कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो पुद्गल में अपना फल देते हैं, शरीर में अपना फल देंगे, उनको बोलेंगे- **पुद्गल विपाकी कर्म।**

कर्म तो औदयिक भाव के रूप में बहुत सारे होते हैं। आगे जब आप आठवाँ अध्याय पढ़ेंगे तो उसमें गति, जाति, शरीर, अंगोपाङ्ग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण आदि तमाम ये नाम कर्म के विषय में बताया गया है और नाम कर्म के उदय से होने वाले ये भाव अनेक प्रकार के हो जाते हैं। लेकिन यहाँ पर जो भाव ग्रहण किए जाएँगे, वह जीव विपाकी भाव ही ग्रहण किये जाएँगे। जीव विपाकी भाव में, जो जीव को फल दे रहे हो तो गति एक ऐसा जीव विपाकी भाव है कि इसी के कारण से वह आत्मा नरक गति में गया तो अपने को नारकीय, मनुष्य गति में है, तो मनुष्य, इस तरह से वह मनुष्य रूप में, नारकी रूप में या तिर्यंच रूप में या देव रूप में मानता है। यह जीव का औदयिक भाव है। **गति नाम कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाला यह औदयिक भाव कहलाता है।** इसी औदयिक भाव में अगर हम देखें तो अन्य भी जाति आदि जो नाम कर्म के भेद हैं उनमें जो-जो जीव विपाकी कर्म होंगे वे सब इसी में गर्भित हो जाएँगे। सब को अलग से नहीं कहा गया, गति नाम के इस औदयिक भाव में ही अन्य भावों का अन्तर्भाव कर लिया जाता है। जो भी औदयिक भाव जीव विपाकी हैं, वह सब इसी गति नाम कर्म में ही अन्तर्भूत हो जाएँगे तो इस तरह से यह औदयिक भावों का कथन करते हुए, गति चार प्रकार के औदयिक भावों के साथ बताई।

कषाय औदयिक भाव



फिर कषाय! कषाय क्या है? मुख्य रूप से क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय हैं और हर एक कषाय को उत्पन्न करने वाला जो कर्म है, उस कर्म के उदय से ही वह कषाय उत्पन्न होती है। मतलब क्रोध को उत्पन्न करने वाले कर्म के कारण से आपके अन्दर क्रोध कषाय पैदा होगी।

मान को उत्पन्न करने वाले कर्म के कारण से आपके अन्दर मान कषाय पैदा होगी। माया को उत्पन्न करने वाले कर्म के कारण से आपके अन्दर माया कषाय पैदा होगी और लोभ को उत्पन्न करने वाले कर्म के उदय से आपके अन्दर लोभ कषाय पैदा होगी। यह कषाय भाव कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाला भाव है और इस कषाय भाव में आप जानते ही हैं कि कषाय का मतलब ही होता है- जो हमारी आत्मा को कस दे। कसने का मतलब? पीड़ा दे-दे। जैसे जब किसी को कस दिया जाता है, तो पीड़ा उत्पन्न होती है न? आप अगर थोड़ी सी भी tight belt ज्यादा पहन लो तो पीड़ा होने लग जाती है। थोड़ी देर तक ज्यादा mask लगाए रखो तो उससे भी पीड़ा होने लग जाती है। यह कषाय तो आत्मा को कस रही है, तो आत्मा को कसने से आत्मा को दुःख होता है। आत्मा को पीड़ा उत्पन्न होती है। किसके कारण से? कषाय के कारण से। फिर भी आत्मा की इतनी सहनशक्ति हो गई है कि वह अनन्तकाल से कषायें करती भी आ रही है और सहती भी आ रही है। इतनी आत्मा में अनन्त शक्ति उत्पन्न हो चुकी है कि उसने कषाय करने में कभी कमी नहीं छोड़ी।

कषाय का मतलब

ये कषाय आत्मा के लिए औदयिक भाव हैं। इस प्रकरण से अपने को क्या समझ आएगा? अगर कषाय का उदय हुआ तो ये हमारे लिए उस तरह के क्रोध या मान या माया या लोभ नाम का जो कषाय जन्य कर्म है उसका उदय हुआ, उससे हमारी आत्मा बिल्कुल कषायमय हो गई। कषाय कहीं आत्मा में एक जगह नहीं होती, पूरी आत्मा में होती है। गुस्सा केवल दिखता तो चेहरे पर है लेकिन पूरे शरीर में गुस्सा दौड़ता है, blood circulation पूरे शरीर का बदल जाता है। अतः कषाय पूरी आत्मा में उत्पन्न होती है...चाहे वह क्रोध हो, चाहे मान हो, चाहे लोभ-लालच हो। इसलिए इसको क्या समझना? यह कर्म का उदय है, यह मेरी आत्मा का स्वभाव नहीं है। लेकिन कर्म के उदय से यह कषाय हमारे अन्दर उत्पन्न हो कर के हमको कस देती है, हमें पीड़ा दे देती है, यह कषाय औदयिक भाव है।

औदयिक भाव बन्ध के कारण क्यों हैं?





एक और चीज अच्छी है जानने के लिए... आचार्यों ने एक सिद्धान्त के रूप में बताया कि औदयिक भाव बन्ध के कारण हैं। **'औदयिया बन्धयरा'** ऐसा एक सूत्र वाक्य है। **'औदयिया बन्धयरा'** क्या मतलब हुआ? औदयिक भाव बन्ध के लिए कारण हैं। **'उवसमखयखोवसमिया' या 'मोक्खयरा'** जो औपशमिक भाव हैं, क्षायिक भाव हैं, क्षायोपशमिक भाव हैं ये मोक्ष के कारण हैं। समझ आ रहा है? और जो पारिणामिक भाव है, वह न बन्ध का कारण है, न मोक्ष का कारण है। **'उभयकरणवज्जिओ पारणामिओभाओ'** ऐसे एक गाथा सूत्र आते हैं सिद्धान्त ग्रन्थों में तो उससे भी हमें यह जान लेना चाहिए कि औदयिक भाव हमारे लिए कर्म बन्ध के कारण होते हैं। अब उनमें से जिन औदयिक भावों से बचना सम्भव हो, उन्हीं से बचा जा सकेगा। अब मनुष्य गति का औदयिक भाव तो रहेगा ही, मनुष्य-पने की भावना तो रहेगी, अगर हम मनुष्य गति में उत्पन्न हुए हैं। लेकिन कषाय जन्य जो औदयिक भाव है, इसको नियंत्रित किया जाना सम्भव है इसलिए इस कषाय को औदयिक भाव जानना।

द्रव्य लिंग और भाव लिंग



अगला **औदयिक भाव** लिंग। इनकी जो संख्या है वह भी सूत्र में दे रखी है- **'चतुश्चतुस्त्रे कैकैकैक'** तो चार-चार भेद किसके हो गए? गति के चार भेद हो गए, कषाय के चार भेद हो गए, फिर उसके बाद में 'त्रि' आ गया तो 'त्रि' का मतलब हो गया लिंग तीन प्रकार का होता है। अब ये लिंग दो तरह से बताया जाता है - एक तो द्रव्य लिंग और एक भाव लिंग। जो द्रव्य लिंग होता है वह तो शरीर की रचना का नाम है, जो शरीर नाम कर्म के कारण से होगा। जो भाव लिंग है, वह हमारे अन्तरंग में जो स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद इनमें से किसी एक वेद का उदय हर जीव में रहता है, कोई भी संसार का जीव इन वेदों के उदय से रहित नहीं होता। इन तीन वेदों का ही यहाँ पर प्रकरण है क्योंकि भाव का यहाँ पर प्रकरण चल रहा है, तो हमें भाव लिंग को ही यहाँ पर औदयिक भाव के रूप में ग्रहण करना है, द्रव्य लिंग का नहीं। भाव

में जो स्त्री, पुरुष, नपुंसक इन वेदों के उदय से जो भाव उत्पन्न होते हैं, जो अभिलाषाएँ उत्पन्न होती हैं, उसको यहाँ औदयिक भाव जानना। मतलब यह भी कर्म का औदयिक भाव है, कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाला ये नोकषाय का परिणाम है। नोकषाय में तीव्रता अगर आती है, तो वह कषाय के कारण से आती है...मन्दता आएगी तो कषाय की मन्दता से आएगी। जैसी हमारी कषाय की तीव्रता होगी वैसी नोकषाय की भी तीव्रता बन जाती है। इसलिए यहाँ पर नोकषायों में इस लिंग को ही केवल ग्रहण किया है।

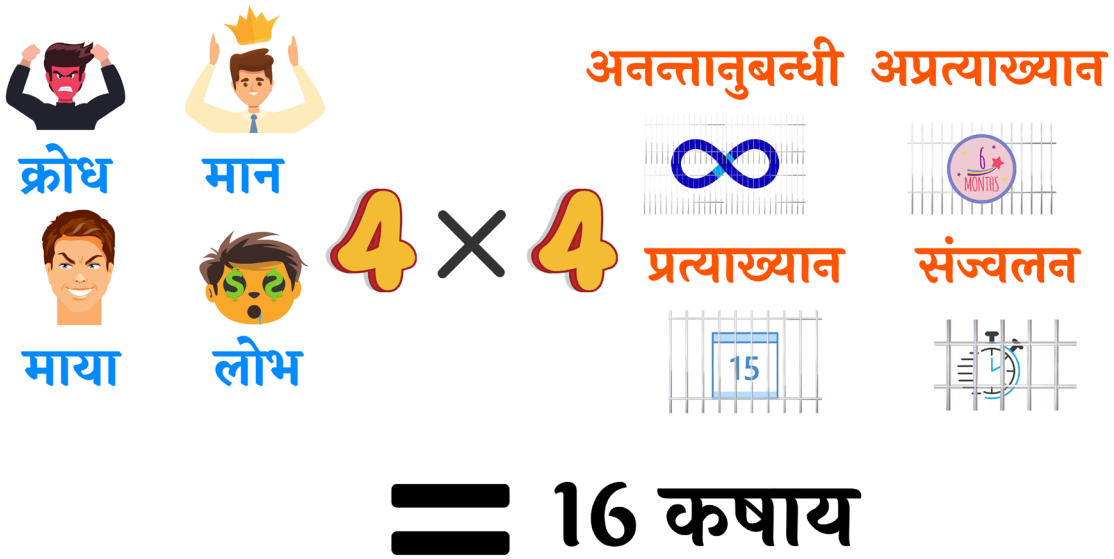
छह नोकषाय हर एक अपने अपने कर्म हैं

इसी के साथ में अन्य भी जो छह कषाय बची हैं, उनको भी ग्रहण कर लेना चाहिए। छह नोकषाय हैं- हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा। क्योंकि ये भी जो छह नोकषाय हर एक अपने-अपने कर्म हैं। इसी कर्म के, एक-एक कर्म के उदय से, ये एक-एक कषाय के भाव उत्पन्न होते हैं। हास्य भी एक नोकषाय है, रति भी एक नोकषाय है, अरति भी एक नोकषाय भाव है और शोक भी एक नोकषाय भाव है, जुगुप्सा और भय यह भी नोकषाय जन्य भाव है।

नोकषाय किसे कहते हैं

नोकषाय का मतलब? ईषत् कषाय इसको बोलते हैं। थोड़ी कषाय है, हल्की कषाय है। किसी निमित्त को पाकर के उत्पन्न होती है और वह निमित्त छूट जाता है, तो छूट भी जाती है। इन नोकषायों के कारण से भी औदयिक भाव आत्मा में उत्पन्न होते रहते हैं।

कषायों के ४ मुख्य भेद हैं और सोलह कषाय इसी में अन्तर्भूत हो जाती हैं





जो आपको बताया गया था कि **मोहनीय कर्म के दो भेद हैं- एक दर्शन मोहनीय और एक चारित्र मोहनीय,** देखा जाये तो चारित्र मोहनीय में कषाय और नोकषाय आ जाती हैं। कषाय में मुख्य भेद तो क्रोध, मान, माया, लोभ ये पहले होते हैं। फिर इसी क्रोध की variety है- अनन्तानुबन्धी जन्य क्रोध, अप्रत्याख्यान का क्रोध, प्रत्याख्यान सम्बन्धी क्रोध, संज्वलन सम्बन्धी क्रोध है। इसी तरीके से मान भी चार प्रकार का- अनन्तानुबन्धी मान, अप्रत्याख्यान मान, प्रत्याख्यानावरण का मान और संज्वलन का मान। इसी तरीके से माया भी चार प्रकार की- अनन्तानुबन्धी माया, अनन्तानुबन्धी कषाय जन्य माया, अप्रत्याख्यान कषाय जन्य माया, प्रत्याख्यान कषाय जन्य माया और संज्वलन कषाय जन्य माया। ऐसे ही लोभ भी चार प्रकार का है- अनन्तानुबन्धी कषाय जन्य लोभ, अप्रत्याख्यान कषाय जन्य लोभ, प्रत्याख्यान कषाय जन्य लोभ और संज्वलन कषाय से उत्पन्न होने वाला लोभ। इस तरह से ये कषायों के ही सब भेद, चार कषायों के ही ये सोलह रूप में भेद हो जाते हैं। ये सोलह कषाय, इनको कषाय के औदयिक भाव में ले लेंगे। जितनी भी कषायों सम्बन्धी औदयिक भाव हैं, ये कषाय में ही गर्भित हो गए। यद्यपि यहाँ पर केवल कषाय में चार भेद लिए हैं, चार तो मूल हैं- क्रोध, मान, माय, लोभ लेकिन जब हम हर एक क्रोध के भी भेद करेंगे अनन्तानुबन्धी आदि के भेद से तो ये सब सोलह कषाय इसी में अन्तर्भूत हो जाएँगी। अलग से कुछ नहीं है क्योंकि इन्हीं क्रोध, मान, माया, लोभ के ही चार-चार तरह की अलग-अलग variety हैं, जिनके बारे में आपको पहले बता दिया गया है। यह हो गया कि चारित्र मोहनीय के दो भेद हो जाते हैं- एक कषाय वेदनीय चारित्र मोहनीय कर्म और एक नोकषाय, वेदनीय शब्द भी जोड़ता है इनके आगे चारित्र मोहनीय कर्म। ये जो सभी नोकषाय हैं वे लिंग में गर्भित हो गई और जो सोलह कषायें हैं वे इस कषाय में ही गर्भित हो जाती हैं लेकिन सूत्र के अनुसार इनके भेद चार और तीन ही जानना। उपलक्षण से इनमें अन्य भी भेदों का अन्तर्भाव कर लिया जाता है।

मिथ्यादर्शन नाम का औदयिक भाव

फिर आगे मिथ्यादर्शन नाम का यह भाव औदयिक भाव है। कौन-सा भाव मिथ्यादर्शन? अब देखो! मिथ्यादर्शन तो आप जानते ही हैं, दर्शन मोहनीय के दो भेद किए थे, उनमें पहला भेद कौन सा है? मिथ्यादर्शन, दर्शन मोहनीय और दूसरा है चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय में फिर तीन भेद हो जाते हैं- मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति। उसी मिथ्यात्व को मिथ्यादर्शन कहा जाता है। यह किस के वंश का है? दर्शन मोहनीय के वंश का।

श्रद्धा की विपरीतता ही मिथ्यादर्शन है

इस मिथ्यात्व के उदय से क्या होता है? मिथ्यात्व के उदय से तत्त्व का श्रद्धान नहीं बनता है। तत्त्व का विपरीत श्रद्धान होना, यह किसका काम है? मिथ्यात्व का काम है या मिथ्यादर्शन का कार्य है। यह मिथ्यादर्शन का कार्य हमारी आत्मा में कौन सा भाव है? औदयिक भाव है।

क्योंकि यह मिथ्यात्व नाम का जो कर्म है, उसी कर्म के उदय से आत्मा में उत्पन्न होता है। अब देखो! यह कितना बड़ा भाव है कि यही एक कर्म है जो हमारी श्रद्धा को विपरीत बनाए रखता है। अनन्तकाल से हम जो भी आत्माएँ यहाँ पर रहे हैं, अनन्तकाल से हमारी श्रद्धा विपरीत ही रही है। चाहे वह देव-शास्त्र-गुरु के प्रति हो, चाहे वह जीवादि सात तत्त्वों के प्रति हो। श्रद्धा की विपरीतता का नाम ही मिथ्यादर्शन है और इसको उत्पन्न करने वाला कर्म जो मिथ्यादर्शन ही नाम का कर्म है, वह औदयिक भाव के रूप में आत्मा में इस तरह छाया रहता है कि वह आत्मा को समीचीन श्रद्धा उत्पन्न नहीं होने देता, इतनी इसकी शक्ति रहती है। यूँ समझना चाहिए कि उस अनुभाग शक्ति के कारण से आत्मा उस कर्म के भाव की चपेट में बना ही रहता है। अतः यह मिथ्यादर्शन कर्म तो क्या हुआ? औदयिक भाव।



सम्यग्दर्शन का भाव उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक तीनों रूप है

इसी मिथ्यादर्शन को जब हमने बदल दिया, श्रद्धा उल्टी को हमने सीधी कर ली तो क्या बन गया? वह बन गया सम्यग्दर्शन। अब आप विचार करके हमें बताएँ कि सम्यग्दर्शन कौन-सा भाव है? **सम्यग्दर्शन के तीन भाव** हैं- उपशम भी सम्यग्दर्शन का भाव है। क्षयोपशम रूप भी सम्यग्दर्शन का भाव होता है और क्षायिक रूप भी होता है। उपशम और क्षायिक तो चलो आपको समझ में आ गया होगा। अब आप यह सोचो, विचार करते रहो कि क्षयोपशम सम्यग्दर्शन क्या औदयिक भाव नहीं है? क्या बोलोगे? नहीं है। क्यों नहीं है? क्योंकि औदयिक भावों में उनको नहीं गिना गया। पहले तो सिद्धान्त से ही बोलो! यहाँ तो नहीं गिना गया? यहाँ क्या लिया गया? मिथ्यादर्शन लिया गया। आगे भी कहीं नहीं है, तो औदयिक भाव में सम्यग्दर्शन नहीं है।

क्षयोपशम सम्यग्दर्शन में किस कर्म का उदय होता है?

SCAN TO WATCH

अब आप विचार करो! अपने मन में प्रश्न उत्पन्न करो! क्या सम्यग्दर्शन के लिए किसी कर्म का उदय नहीं होता? कर्म के उदय से सम्यग्दर्शन नहीं होता? क्षयोपशम होता है, तो कुछ तो होता है। उपशम में तो सब कर्मों का उपशमन हो गया, क्षय में तो सब का क्षय हो गया, उनमें तो कर्म की बात ही नहीं है कहीं से कहीं तक। अब क्षयोपशम सम्यग्दर्शन में किसी कर्म का उदय बताया था कि नहीं? कौन से कर्म का? **सम्यक्त्व प्रकृति रूप** जो कर्म था इसके ही उदय से तो क्षयोपशम सम्यग्दर्शन बन रहा है। सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से इसमें चल-मल-अगाढ़ दोष लगते हैं। वहाँ कर्म का उदय है कि नहीं? यह भी बताया था कि जब क्षयोपशम सम्यग्दर्शन होता है, तो छह कर्मों का तो उपशमन रहेगा और क्या होगा? एक कर्म जो सम्यक्त्व प्रकृति है उसका उदय रहेगा तभी क्षयोपशम सम्यग्दर्शन रहेगा। अब आपके अन्दर प्रश्न आना चाहिए, महाराज! आपने ही तो बताया था सम्यक् प्रकृति के उदय होने पर क्षयोपशम सम्यग्दर्शन होता है, तो वह भी औदयिक भाव होना चाहिए, यहाँ उसकी गिनती क्यों नहीं की?



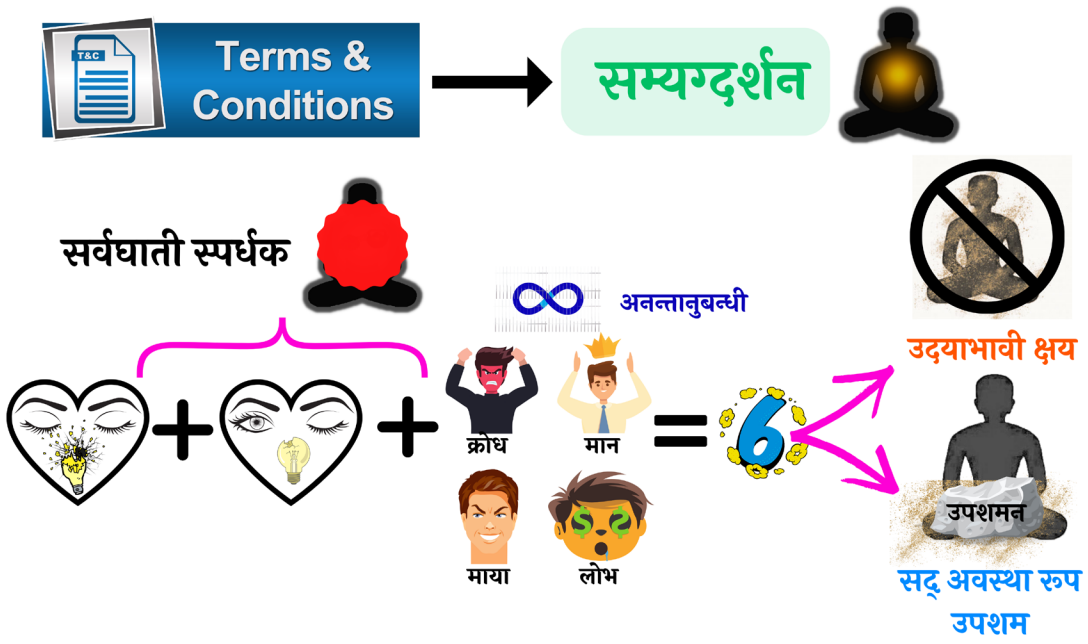
अब प्रश्न भी करना सीखो धीरे-धीरे, थोड़ा-थोड़ा सा। मैंने quotation बताई थी न? "An unquestioned mind is a world of suffering" क्या समझ में आया? जिस दिमाग में प्रश्न पैदा नहीं होते, उसमें सिर्फ कष्ट ही पैदा होते हैं। समझे! तो क्या करना है? आगे-पीछे का भी ध्यान में रखते हुए चिन्तन तो करना है। यह प्रश्न अपने मन में आना चाहिए कि इस सम्यक् प्रकृति का उदय तो सम्यग्दर्शन के लिए भी है और मिथ्यात्व प्रकृति का उदय मिथ्यादर्शन के लिए है। मिथ्यात्व को तो हम औदयिक भाव कह रहे हैं और सम्यग्दर्शन को हम औदयिक भाव कह नहीं रहे हैं, उसको हमने क्षयोपशम भाव में रखा है। ऐसा क्यों? ऐसा

क्यों! ऐसा क्यों! बोलना सीखो तो आपको उत्तर क्या मिलेगा?

क्षयोपशम जो हुआ वह किसका हुआ?

अब आप विचार करो तो विचार में क्या आएगा? जो क्षयोपशम सम्यग्दर्शन हुआ है, वह क्षयोपशम सम्यग्दर्शन केवल सम्यक् प्रकृति के उदय से ही नहीं हो रहा है। क्षयोपशम जो हुआ है, वह किसका हुआ है? देखा जाए तो जो छह कर्म हैं- **मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन छह का ही क्षयोपशम है।** इन्हीं के सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय और सद् अवस्था रूप उपशम जब होता है तब सम्यक् प्रकृति का तब उदय होगा तो **सम्यग्दर्शन**, क्षयोपशम सम्यग्दर्शन होगा। सम्यक् प्रकृति का उदय होते हुए भी उसको औदयिक भाव नहीं कहा जाएगा क्योंकि केवल सम्यक् प्रकृति के उदय से नहीं है। उसमें सर्वघातीय स्पर्धक जो अन्य मिथ्यात्व आदि कर्म हैं, इनका क्षयोपशम भी आवश्यक है, इसलिए मुख्य भाव तो क्षयोपशम भाव है। सम्यक् प्रकृति का उदय होना मुख्य भाव नहीं है।

सम्यग्दर्शन औदयिक भाव क्यों नहीं है



वह सम्यक् प्रकृति के उदय का काम तो अलग है। वह क्या काम करेगी? वह चल-मल-अगाढ़ दोष लगाएगी अथवा सम्यक्त्व में विशुद्धि और बढ़ना या सम्यक्त्व की विशुद्धि घटना, यह सम्यक् प्रकृति के उदय से होगा। लेकिन सम्यग्दर्शन जो बनाए रखने का काम है, वह तब तक बना रहेगा जब तक इन छह प्रकृतियों के सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय और सद्

अवस्था रूप उपशम यह कार्य बना रहेगा तब तक ही सम्यग्दर्शन रहेगा। इनमें से एक भी उखड़ गई तो गुणस्थान गिर जाएगा, दूसरा बदल जाएगा। इसलिए सम्यग्दर्शन को क्षयोपशम भाव में कहा है। सम्यग्दर्शन औदयिक भाव नहीं है, भले ही सम्यक् प्रकृति के उदय में क्षयोपशम सम्यग्दर्शन होता है। लेकिन केवल उदय की वहाँ विवक्षा नहीं है, उदय के साथ साथ क्या होना चाहिए? छह कर्मों का क्षयोपशम होना चाहिए तभी सम्यक् प्रकृति के उदय में सम्यक् क्षयोपशम सम्यक्त्व बनता है। यह ऐसा मिथ्यादर्शन हो गया। यह क्या हो गया? औदयिक भाव हो गया।

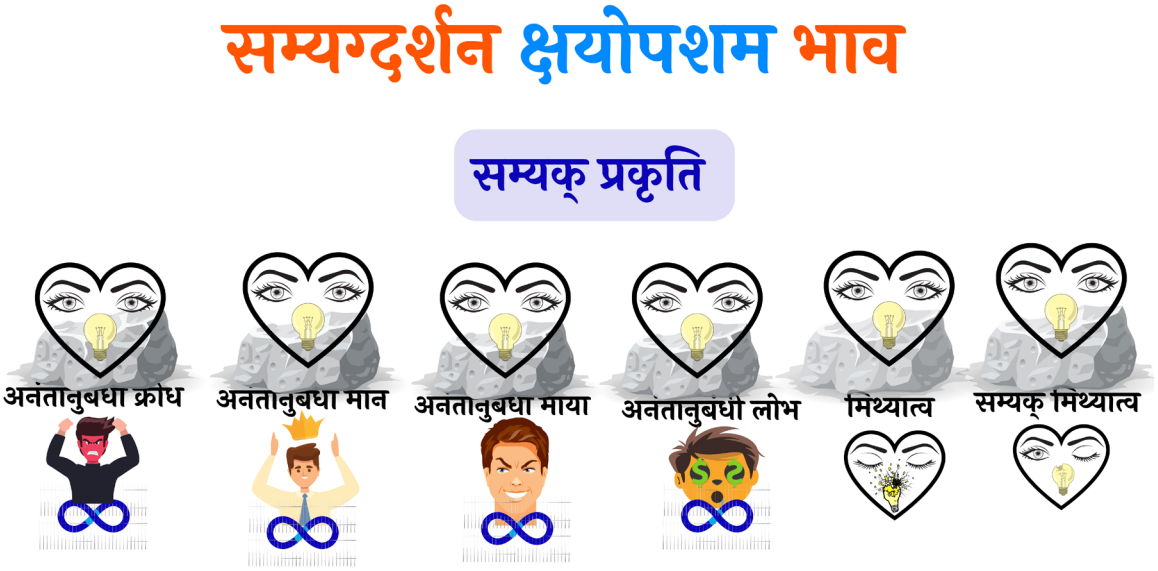
मिथ्यादर्शन का एक ही प्रकार है

SCAN TO WATCH

अज्ञान! यह मिथ्यादर्शन एक प्रकार का है। 'त्र्येक' इसलिए इसकी संख्या एक लिखी है। मिथ्यादर्शन कितने प्रकार का है? इसके भेद नहीं है, यह एक ही प्रकार का है। **औदयिक भाव मिथ्यात्व का उदय हुआ तो मिथ्यादृष्टि नाम का पहला गुणस्थान ही हो जाता है।**

क्षयोपशम की प्रकिया बहुत सशक्त है

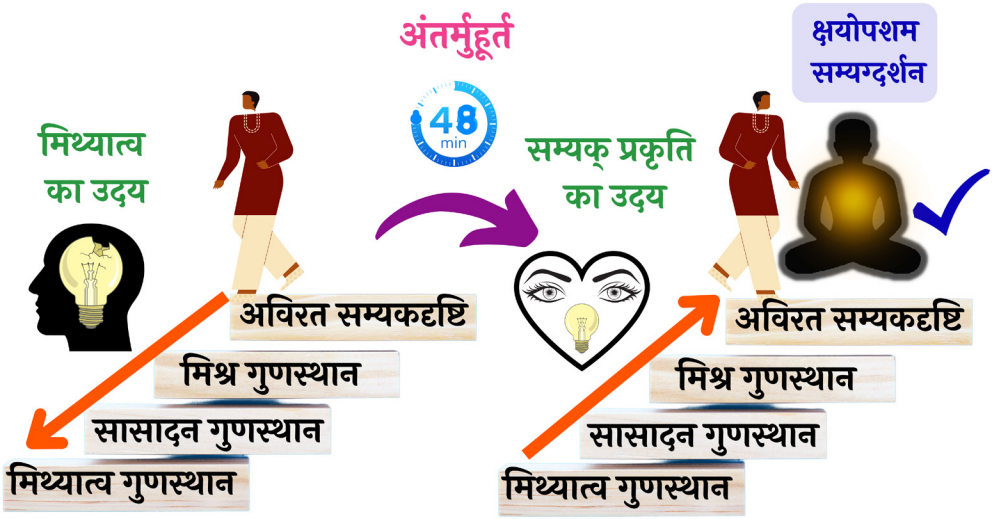
अब साथ-साथ में आप यह भी जान लो. थोडा-सा और बता देते हैं कि जैसे क्षयोपशम



सम्यग्दर्शन चल रहा है, छह प्रकृतियाँ हैं, जो आपने क्या कर रखी है? उनके सर्वघातीय स्पर्धकों का हमने क्या कर रखा है? दबा कर रखा है, उन्हें उदय में नहीं आने दे रहे, यही उसका क्षय है। यह प्रक्रिया इतनी सशक्त है कि यदि यह प्रक्रिया थोड़ी-सी भी डामाडोल हो गई मतलब

जैसे ही हमारा भाव बिगड़ा, हमारी श्रद्धा की परिणति बिगड़ी तो क्या होगा? तुरन्त जो हमने दबा कर रखा है, उसमें से कुछ भी उदय में आ सकता है।

मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति कर्म के उदय में आने से क्या-क्या होता है?



मिथ्यात्व कर्म उदय में आ गया तो तुरन्त चौथे से पहला गुणस्थान हो जायेगा, पता भी नहीं पड़ेगा। समझ आ रहा है? हो सकता है फिर एक अन्तर्मुहूर्त बाद फिर आपकी श्रद्धा फिर सही हो जाए फिर क्षयोपशम हो सकता है, यह भी जान लो। इस तरीके का क्षयोपशम कई बार हो सकता है। चौथा गुणस्थान आपकी श्रद्धा बन गई, फिर आपने देखा कुछ मिथ्यात्व की प्रभावना देखी, मिथ्यात्व के चमत्कार देखे, आपकी श्रद्धा बिगड़ गई, पहला हो गया। फिर आपके मन में आया...नहीं! नहीं! यह तो सब नाटक है, यह तो सब थोड़े समय का है, सही ज्ञान तो वही है जो हमें पहले मिला था। फिर आपकी श्रद्धा बन गई, एक अन्तर्मुहूर्त में आपको फिर से क्या हो जाएगा? सम्यक् प्रकृति का उदय आ जाएगा तो पुनः यह क्षयोपशम सम्यग्दर्शन फिर बन जाएगा। इसलिए कहा था कि यह क्षयोपशम सम्यग्दर्शन कई बार बनता-बिगड़ता रहता है इसलिए यह सस्ता है, सरल है, जब चाहो तब खरीद लो। लेकिन यह भी उन्हीं के खरीदने में आएगा जिन्होंने एक बार उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया हो, पहली बार तो आपको पैसा लगाना पड़ेगा।

सम्यक् प्रकृति के अस्तित्व के बिना क्षयोपशम सम्यग्दर्शन नहीं होगा

उपशम सम्यक्त्व महंगा है, उसके बिना मिथ्यात्व के तीन टुकड़े नहीं होंगे तो सम्यक् प्रकृति का सद्भाव ही नहीं होगा। जब तक सम्यक् प्रकृति का अस्तित्व नहीं बनेगा तब तक यह क्षयोपशम सम्यग्दर्शन नहीं होगा। पहले आपको मेहनत जो करनी है, वह उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति में करनी है। कई लोग पूछते रहते हैं...कैसे पता पड़ेगा कि किसका उपशम है, किसका क्षयोपशम है? पता किसी को कुछ नहीं पड़ता है, अपनी श्रद्धा देखते रहो। उपशम भाव में जो विशुद्धि होगी वह अलग होगी और क्षयोपशम भाव की विशुद्धि होगी वह अलग होगी। लेकिन उपशम भाव तो थोड़ी देर के लिए हो जाता है, छूट जाता है। क्षयोपशम भाव लगातार बहुत समय के लिए रह जाता है। इसलिए कहा था कि जो भी आज अगर सम्यक् दृष्टि दिखाई देंगे तो वह क्षयोपशम सम्यक् दृष्टि ही हो सकेंगे क्योंकि उपशम सम्यक्त्व तो कभी भी हो जाएगा और वह अन्तर्मुहूर्त में उस का काल समाप्त हो जाता है। जो बहुत देर तक सामने बैठेगा, दिखाई देगा, वह तो क्षयोपशम सम्यक्त्व के साथ ही होगा। छोटी-छोटी बातें हैं, जो हम सुनते हैं, उनका अर्थ भी सही ढंग से समझते रहना।

औदयिक अज्ञान भाव और क्षयोपशम अज्ञान भाव में अन्तर

आगे बढ़ते हैं...अज्ञान! अज्ञान नाम का यह औदयिक भाव है। कौन-से नाम का? अज्ञान! अज्ञान क्या होता है? अब देखो! आत्मा ज्ञान स्वभावी है। **'यत् स्वभावी आत्मा'** आत्मा कैसा है? ज्ञान स्वभाव वाला है। जब तक इस आत्मा का ज्ञान स्वभाव प्रकट न हो जाए तब तक इस आत्मा के लिए अज्ञान नाम का औदयिक भाव बना ही रहता है। यहाँ वह वाला अज्ञान नहीं है, जो ऊपर लिखा था। देखो! एक अज्ञान ऊपर लिखा था न? **ज्ञानाज्ञान।** क्षयोपशम भाव में भी अज्ञान आया था? देखते रहा करो, आगे-पीछे भी। लिखा है न! ज्ञानाज्ञान! क्षयोपशम भाव में भी एक अज्ञान आया था और एक अज्ञान यहाँ आ गया, औदयिक भाव में तो इसमें क्या अन्तर हो गया? क्षयोपशम भाव में जो अज्ञान था, वह अज्ञान था मिथ्यात्व के उदय से होने वाला अज्ञान...मिथ्याज्ञान इसलिए वह तीन प्रकार का बताया था- कुमति, कुश्रुत और विभंग ज्ञान यह बताया था। यहाँ जो अज्ञान बताया जा रहा है वह कब तक चलेगा? जब तक कि ज्ञान स्वभावी आत्मा का ज्ञान प्रकट न हो जाए... **'यत् स्वभावी आत्मा'** अपना ज्ञान पूरा का पूरा प्रकट न कर ले।

अज्ञान औदयिक भाव बना रहेगा



मतलब इस अज्ञान में औदयिक भाव रूप जो अनुभव है, वह मिथ्या दृष्टियों को भी रहेगा और सम्यग्दृष्टियों को भी रहेगा। औदयिक वाला अज्ञान भाव मिथ्यादृष्टियों में भी सर्वत्र मिलेगा और सम्यग्दृष्टियों में भी सर्वत्र मिलेगा। कब तक? जब तक कि ज्ञान स्वभावी आत्मा, ज्ञान स्वभावी न बन जाए...तब

तक। क्या सुन रहे हो? समयसार पढ़-पढ़ कर तो हमने यह समझ रखा है...आत्मा तो ज्ञान स्वभावी है, वह तो देखो प्रकट दिख रहा है। आत्मा ज्ञान स्वभावी प्रकट अनुभव में आ रहा है, प्रत्यक्ष अनुभव में आ रहा है और यहाँ क्या अनुभव में आ रहा है? **जब तक आप के अन्दर केवल ज्ञानावरण कर्म का उदय है तब तक आपके अन्दर अज्ञान नाम का औदयिक भाव बना रहेगा।** इसका मतलब क्या हुआ? पहले गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक यह अज्ञान भाव रहता है। इसको बोलते हैं- औदयिक भाव। **तेरहवें गुणस्थान में ही आत्मा 'यत् स्वभावी' होता है।** उससे पहले तो कहते रहो, होता कुछ नहीं है और जो होता है वह तो होता ही है। वह तो जो नहीं भी कहते हैं उसके लिए भी होता है।

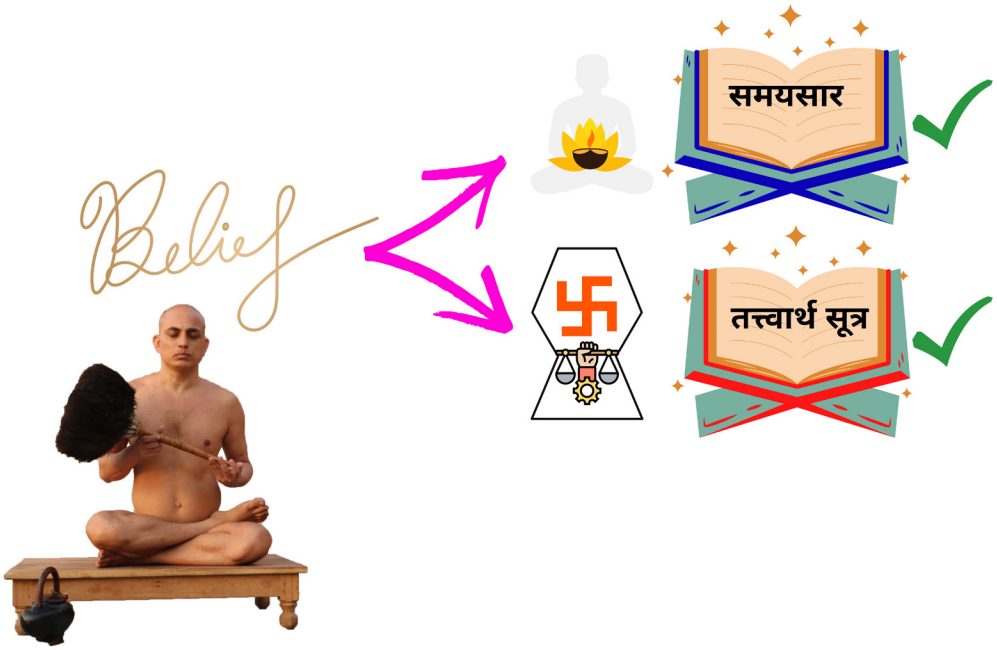
बारहवें गुणस्थान तक तो औदयिक भाव है, अज्ञान है



मान लो एक इन्द्रिय हैं, कुछ कह तो नहीं रहे कि मैं **यत् स्वभावी** आत्मा हूँ, ज्ञान स्वभावी आत्मा हूँ। वह भी है, तो ज्ञान स्वभावी ही, नहीं कह पा रहे हैं तो क्या है? बस इतना है! तुमको थोड़ी सी बोलने की अक्ल आ गई है, तुम ज्यादा बोलने लग गए हो। हुआ तो कुछ नहीं न? हाँ! समझ लेना चाहिए, अन्तर तो समझो। जो लोग ज्यादा समयसार-समयसार पढ़ते रहते हैं, बस! उन्हें ऐसा लगता है, बस! आत्मा **यत् स्वभावी।** आत्मा तो कुछ करता नहीं, आत्मा कुछ भोक्ता नहीं, आत्मा तो ज्ञान स्वभावी है। वह तो अनादि काल से ही था। तुम्हें आज पता पड़ा कि वह तो अनादि काल से है। जिनको यह ज्ञान नहीं है उनका भी है और तुम्हें आज पता पड़ गया तो तुम्हारा भी है लेकिन हो उससे क्या गया? कोई ज्ञान स्वभाव प्रकट हो गया क्या?

या समयसार में लिख दिया कि ज्ञान स्वभाव प्रकट हो गया है, ज्ञान स्वभाव प्रत्यक्ष दिख रहा है, इसलिए ज्ञान स्वभावी आत्मा का अनुभव करना ही सम्यग्दर्शन है। कहाँ तुम्हें ज्ञान स्वभावी आत्मा का अनुभव हो जाएगा? बारहवें गुणस्थान तक तो औदयिक भाव है, अज्ञान है।

सैद्धान्तिक और आध्यात्मिक दृष्टि में अन्तर



यह सिद्धान्त तो कोई भी छोड़ नहीं सकता। इस अज्ञान भाव का ही तुम्हें अनुभव होगा, ज्ञान स्वभाव का अनुभव तो हो ही नहीं सकता। यह क्या कह दिया महाराज आपने? समयसार तो आपने बिल्कुल ही धो दिया। अब या तो आप समयसार की बात सुन लो या फिर आप तत्त्वार्थ सूत्र की बात मान लो। यह सिद्धान्त है, वह अध्यात्म है। फिर क्या करें महाराज! एक माने या दोनों मान ले? अगर दोनों मानना है, तो दोनों भी मान सकते हो। जैसे हम मानते हैं और एक मानना है, तो फिर आप choice कर लो किसको मानना है? सिद्धान्त को मानना है कि अध्यात्म को? अगर आप सिद्धान्त को समझेंगे तभी आप अध्यात्म को समझ पाएँगे। **अध्यात्म कोई भी चीज को सिर्फ भावना के रूप में कहता है, सिद्धान्त वस्तु स्थिति को बताता है।** अध्यात्म में तो आपसे कह दिया, आप राजा बेटा हो। कितने अच्छे बेटा हो गए, आप तो सम्यग्ज्ञानी हो तो आपको लगता है, हाँ! देखो! मुझे राजा बेटा कह दिया तो मैं राजा बेटा हो गया। जैसे बेटा माँ के कहने से चुप हो जाता है राजा बेटा! तो क्या राजा बेटा हो गया वह? ऐसे ही अध्यात्म है, ज्ञान स्वभावी आत्मा, ज्ञान स्वभावी आत्मा। माँ जिनवाणी आप बच्चों को केवल क्या कर रही है? पुचकार रही है, समझा रही है कि तुम ज्ञान स्वभावी आत्मा

हो। इसका मतलब यह नहीं हो गया कि तुम ज्ञान स्वभावी आत्मा हो गए हो। **ज्ञान स्वभाव तो प्रकट तब होगा जब अज्ञान का एक अंश भी न बचे।** अतः सिद्धान्त जो होता है वह मुख्यतः हमें बताता है कि हम कहाँ हैं और कहाँ जाकर के हमें क्या मिलेगा? अध्यात्म में तो सब यहीं पर बैठे मिल जाता है। सिद्धान्त से यह मान करके चलो, जान करके चलो कि अज्ञान भाव यह औदयिक भाव का सद्भाव, इस अज्ञान नाम के औदयिक भाव की अनुभूति कहाँ तक होगी? जो शुक्ल ध्यान में लीन मुनि महाराज हैं, उनको भी ज्ञान स्वभाव की अनुभूति तब तक नहीं होती है जब तक यह अज्ञान नाम का औदयिक भाव रहता है।

सिद्धान्त हमें हर चीज स्पष्ट बताता है

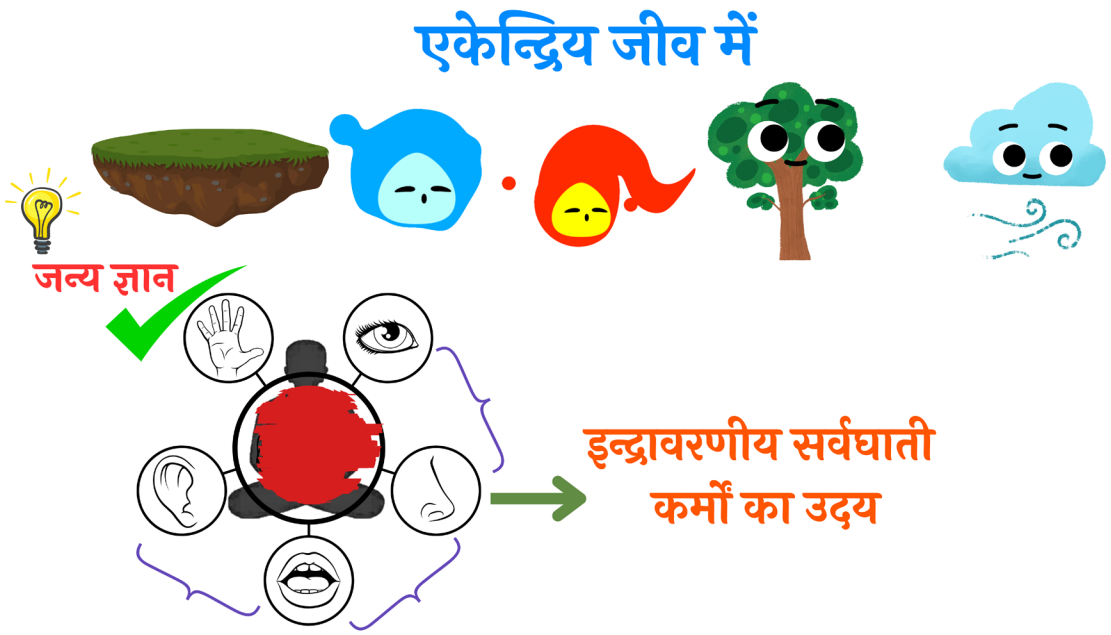


इसलिए कभी-कभी मैं थोड़ा तेजी में बोलता हूँ तो कई लोगों को लगता होगा...महाराज हमारे विरुद्ध बोलते हैं, हमारी काट करते हैं, ऐसा करते हैं, वैसा करते हैं तो ऐसा इसलिए कि तुमको सिद्धान्तों की कुछ भी a-b-c-d पता नहीं और केवल एक ही चीज की रट लगाए रखते हो। कभी-कभी तेजी में कुछ कहना पड़ता है। जब बच्चा मानता नहीं है, तो माँ को भी थोड़ा-सा तेज आवाज में बोलना पड़ता है। कभी-कभी तो वह जो रोटी बना रही होती है, बेलन भी हाथ में ले लेती है...नहीं मानेगा तो वह उसको बेलन भी दिखा देती है। ऐसे बच्चे जब जिद करने बैठ जाते हैं कि मेरा तो ज्ञान स्वभाव प्रकट हो गया, मैं तो ज्ञान स्वभाव का आनन्द ले रहा हूँ तो ऐसे बच्चों की जिद्द देख करके, कभी-कभी ऐसा भाव आता है कि बच्चे और ज्यादा अज्ञान में पड़ते चले जा रहे हैं। आप इस बात को ध्यान में रखें। **सिद्धान्त** देखो कितना स्पष्ट हमें हर चीज बताता है। यह **हमारी आँखों पर पड़े हुए पर्दे हटाता है।** अज्ञान अगर हमारे अन्दर ज्ञान के कारण से ही पड़ रहा है, तो उस अज्ञान को भी हम हटाने की कोशिश करे।

ज्ञान और अज्ञान दो में से कोई एक ही रहेगा

यह जो अज्ञान भाव है, यह पहले से लेकर के बारहवें गुणस्थान तक है और जो ऊपर क्षयोपशम नाम का अज्ञान था, वह केवल पहले से तीसरे गुणस्थान तक है। चौथे गुणस्थान में वह अज्ञान, ज्ञान में परिवर्तित हो जाएगा। ऊपर ज्ञान और अज्ञान दो चीजें लिखी हैं, एक आत्मा में एक ही चीज रहेगी। क्षयोपशम भाव या तो ज्ञान भाव रहेगा या तो अज्ञान भाव रहेगा या तो वह आत्मा सम्यक्त्व के साथ रहेगी तो सम्यग्दर्शन के साथ में ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाएगा तो ज्ञान भाव क्षायोपशमिक कहलायेगा और अगर अज्ञान भाव में आई आत्मा तो वहाँ मिथ्यात्व के साथ में जब आत्मा होगा तो वह अज्ञान के साथ में अज्ञान नाम का क्षयोपशम भाव होगा। लेकिन यह जो औदयिक भाव है...यह तो मिथ्यादृष्टि में भी है और सम्यग्दृष्टि में भी है।

एकेन्द्रिय जीवों को अन्य इन्द्रियों का ज्ञान क्यों नहीं होता?



अब देखो! मान लो जैसे एक एकेन्द्रिय जीव है। एकेन्द्रिय जीव में एकमात्र स्पर्शन इन्द्रिय जन्य ज्ञान है। कुछ उसके लिए मतिज्ञान का क्षयोपशम है, कुछ श्रुतज्ञान का भी है और वीर्यन्तराय कर्म का क्षयोपशम है। इतना मात्र से उसके ज्ञान की परिणति चलती है। अब अन्य जो उसको रस का ज्ञान नहीं हो रहा, गन्ध का ज्ञान नहीं हो रहा, रूप का ज्ञान नहीं हो रहा, शब्द का ज्ञान नहीं हो रहा...यह क्यों नहीं हो रहा है? क्यों नहीं हो रहा है? अब यहाँ याद करो! **सर्वघाती स्पर्धक! इनकी शक्ति...इसके कारण से उस आत्मा के अन्दर अन्य कोई भी इन्द्रिय का ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता।** मतलब इन सब आवरणीय सर्वघाती कर्मों का उदय है मतलब स्पर्शन इन्द्रिय को छोड़ करके रसना इन्द्रिय सम्बन्धी मतिज्ञान, घ्राण इन्द्रिय सम्बन्धी मतिज्ञान, चक्षु इन्द्रिय सम्बन्धी मतिज्ञान, कर्ण इन्द्रिय सम्बन्धी मतिज्ञान के सर्वघाती स्पर्धकों का उदय होने के कारण से उसके अन्दर उस इन्द्रिय का कोई भी ज्ञान नहीं हो सकता। यह बताया था न आपको? सर्वघाती मतलब सबका घात करने वाले मतलब एक इन्द्रिय जीव को रस का कोई ज्ञान क्यों नहीं होगा? क्योंकि उसके अन्दर रसना इन्द्रिय आवरण कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों का इतना उदय है कि उसे रसना इन्द्रिय की उपलब्धि नहीं हुई और इसलिए उसको कोई भी रस का भान नहीं होगा। इतना उसके अन्दर अज्ञान पड़ा है। जितना क्षयोपशम है, वह तो उसका ज्ञान है, वह प्रकट है और जितना उसके लिए अभी सर्वघाती स्पर्धकों का उदय है, वह सब क्या है? अज्ञान है। आ गई बात समझ में?

ऐसे ही दो इन्द्रिय आदि में लगाना चाहिए

ऐसे ही दो इन्द्रिय में लगाना। अब दो इन्द्रिय में स्पर्शन और रसना इन्द्रिय के तो क्षयोपशम हो गए। बाकी के गन्ध सम्बन्धी, वर्ण सम्बन्धी, शब्द सम्बन्धी और मन सम्बन्धी, मन भी नहीं है, तो इन सम्बन्धी सर्वघाती स्पर्धकों का उदय है। इसलिए उस दो इन्द्रिय के लिए, इतने औदयिक भावों का उसके अन्दर उदय चल रहा है। इतना अज्ञान जन्य उसके अन्दर इतना अज्ञान का उदय चल रहा है, इनका बिल्कुल भी ज्ञान नहीं है, इनका बिल्कुल भी क्षयोपशम नहीं। ऐसे ही तीन इन्द्रिय में लगाना, चार इन्द्रिय में लगाना, असंज्ञी पंचेन्द्रिय में लगाना। अब असंज्ञी पंचेन्द्रिय में पाँच इन्द्रियों का तो क्षयोपशम हो गया लेकिन जो मन को उत्पन्न करने वाला नौ-इन्द्रिय ज्ञानावरण का क्षयोपशम होता है वह नहीं हुआ, नौ-इन्द्रिय आवरण कर्म का क्षयोपशम। उस क्षयोपशम के नहीं होने के कारण से उसे मन की प्राप्ति नहीं हुई। इसलिए वह कुछ भी हित-अहित का विचार नहीं कर सकता, उपदेश नहीं सुन सकता।

अक्षर श्रुतज्ञान भी दुर्लभ होता है

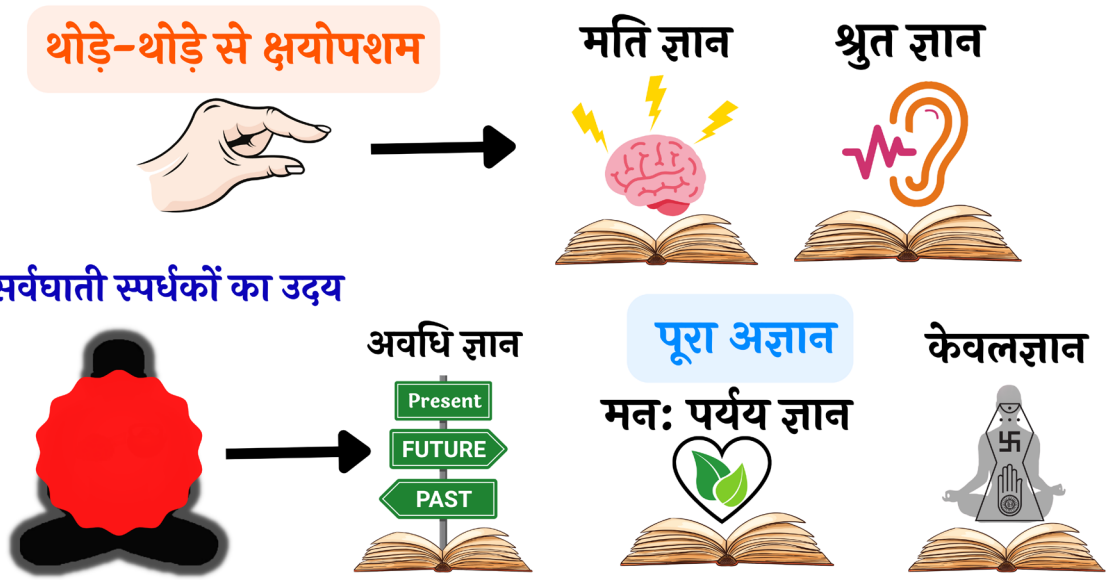
SCAN TO WATCH

ऐसे जब उसको यह भी मिलेगा तब उसके लिए यह भी अज्ञान हट गया लेकिन यह अज्ञान हटने के बावजूद भी मतिज्ञान तो हो गया। श्रुतज्ञान में जो अक्षर श्रुतज्ञान होता है, वह अक्षर श्रुतज्ञान भी दुर्लभ होता है। पंचेन्द्रिय ऐसे पशु-पक्षी भी होते हैं, जिन्हें किसी-किसी कोई अक्षर श्रुतज्ञान होता है। जैसे तोता-मैना के बारे में सुना है न? इनको तो हम पढ़ा देंगे तो यह तो पढ़ भी लेते है, बोल भी लेते हैं। सब नहीं बोल पाते, सब नहीं अक्षरों के ज्ञान समझ पाते। जो अक्षर ज्ञान को समझ पायेगा, शब्द ज्ञान को सुनकर के समझ पायेगा, उसको अक्षर श्रुत ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से अक्षर ज्ञान होगा तभी समझ में आएगा। इतना अगर नहीं हुआ तो उस सम्बन्धी आवरण पड़ा हुआ है, वह हमारे लिए अज्ञान हो गया।

अभी हमारे अन्दर क्या अज्ञान है?

चलो! मान लो, आपने सब प्राप्त कर लिया। आप बैठे हो, हम बैठे हैं। अब हमारे अन्दर क्या अज्ञान है? बताऊँ खोल कर अपना अज्ञान? देखो! मति ज्ञानावरण कर्म की भी अभी बहुत क्षमतायें हैं। **उत्कृष्ट मतिज्ञान** स्पर्शन इन्द्रिय के माध्यम से नौ योजन का स्पर्श कर सकता है, रसना इन्द्रिय के माध्यम से नौ योजन तक का रस चख सकता है। यह सब कुछ भी नहीं है, उस सम्बन्धी अज्ञान यह आज भी बैठा है। श्रुतज्ञान में अक्षर श्रुतज्ञान तो है लेकिन अक्षर श्रुतज्ञान में भी जितना भी द्वादशांग के अक्षर हैं उन सब का ज्ञान नहीं होता। पूरा द्वादशांग का ज्ञान नहीं है, तो **सकल श्रुतज्ञान** का अज्ञान अपने अन्दर बैठा है। पूरा श्रुतज्ञान नहीं है, थोड़ा-थोड़ा क्षयोपशम है, पूरा तो नहीं है न? जो नहीं है, वह क्यों नहीं है? वही अज्ञान के कारण, वह यह अज्ञान है।

अवधि, मनःपर्यय और केवल ज्ञानावरण का पूरा-पूरा उदय है



अवधि ज्ञानावरण कर्म का पूरा उदय चल रहा है, उसके सर्वघाती स्पर्धकों का उदय है। इसी कारण से अवधिज्ञान का तो थोड़ा भी क्षयोपशम नहीं है। चलो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान के तो थोड़े-थोड़े से क्षयोपशम भी है, अवधिज्ञान तो पूरा ही उदय में है। सर्वघाती स्पर्धक मतिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान के भी पूरे सर्वघाती स्पर्धकों का उदय है, तो वह भी पूरा अज्ञान के साथ चल रहा है और केवल ज्ञानावरण का तो उदय है ही, इसलिए ये तीनों ज्ञानावरणीय कर्मों की full उदय अपनी पूरी strength के साथ आत्मा में अपना फल दिखा रहे हैं इसलिए ये अज्ञान का भार ज्यादा है, ज्ञान थोड़ा है। सुन रहे हो? हमें तो ऐसे ही लगता है, आपको कुछ लगता हो तो अलग बात है। अब देखो जो अवधिज्ञानी हैं, उनके ऊपर भी अगर मनःपर्यय ज्ञान का उन्हें ज्ञान नहीं हुआ तो उस सम्बन्धी अज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान हो गया केवलज्ञान नहीं हुआ तब तक उस सम्बन्धी अज्ञान तो यह अज्ञान इसलिए कहा, जब तक केवलज्ञानावरण कर्म का उदय रहेगा तब तक यह अज्ञान चलता रहेगा...यह औदयिक भाव है। जो ऋद्धिधारी मुनि महाराज भी हैं, श्रुतकेवली भी हैं, गणधर आदि भी हैं, वे भी जब तक केवलज्ञान को प्राप्त नहीं कर लेते या जब तक वे ध्यान में भी बैठे हुए हैं तब तक भी उनके अन्दर यह अज्ञान नाम का औदयिक भाव चल रहा है।

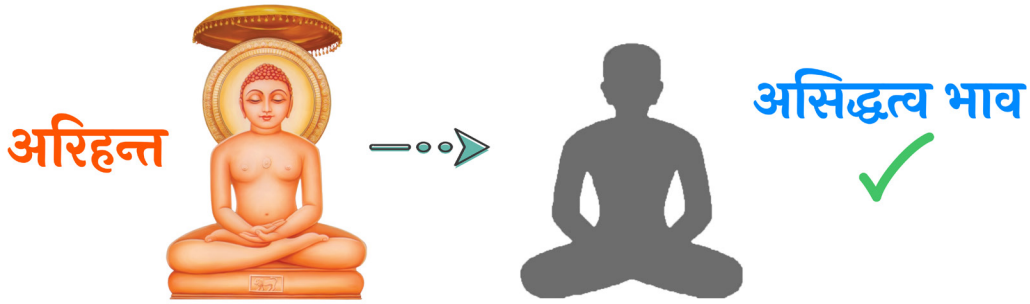
सिद्धान्त किसी के साथ पक्षपात नहीं करता

सिद्धान्त तो सबके लिए है...चाहे हम हो, चाहे आप हो या कोई भी हो। सिद्धान्त किसी के साथ में पक्षपात नहीं करता। क्या सुन रहे हो? लिख लो! सिद्धान्त किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। अध्यात्म हमको पक्षपाती बना सकता है क्योंकि उसकी तो कोई पहचान ही नहीं है। अध्यात्म की तो कोई पहचान ही नहीं है। हमने कह दिया ज्ञान स्वभावी आत्मा प्रकट है, आपने मान लिया। बोले प्रकट है, तो प्रकट है। अब न हमें प्रकट है, न तुम्हें प्रकट है लेकिन हमने कह दिया, तुमने भी कह दिया, हो गया प्रकट, हो गया। फिर क्या समझना है? आज हमारे पास में ज्ञान अगर क्षयोपशम भाव के साथ रहेगा तो सम्यग्ज्ञान तो हो सकता है लेकिन अज्ञान का पूरा नाश हो करके हमारा ज्ञान स्वभाव आत्मा, अभी प्रकट नहीं हो सकता। यह अज्ञान नाम के औदयिक भाव से अच्छे ढंग से समझ लेना और यही बात आचार्य अकलंक देव आदि बड़े-बड़े आचार्यों ने अपनी टीका ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से लिखी है।

असंयत औदयिक भाव

SCAN TO WATCH

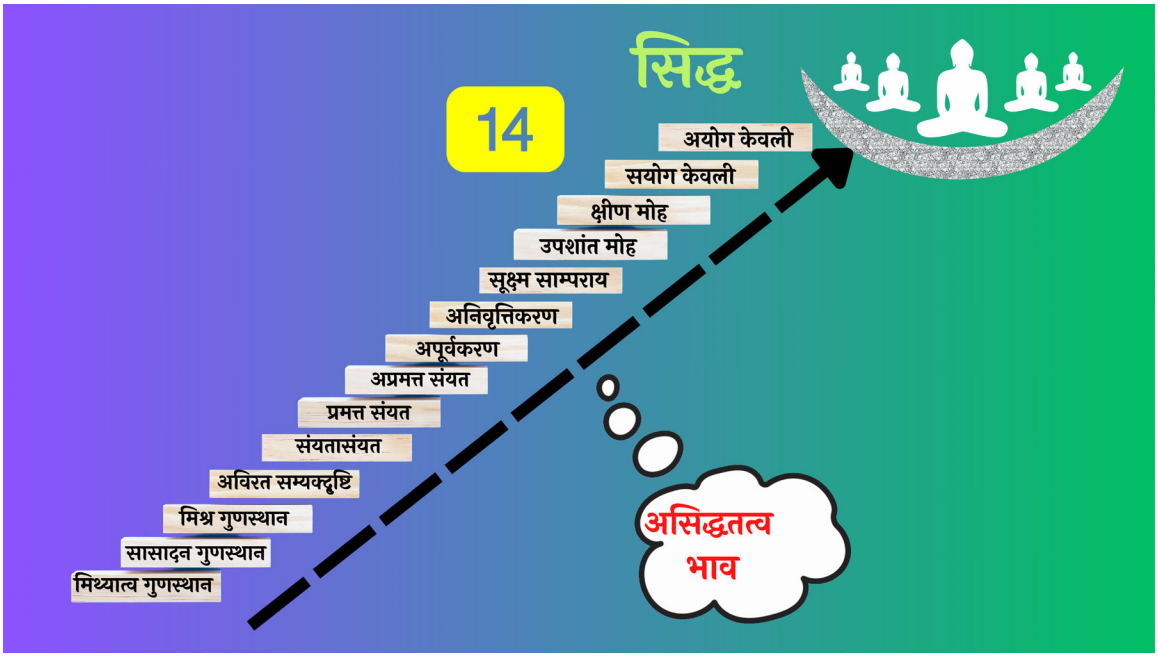
आगे पढ़े... **'मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयता'** असंयत क्या आ रहा है आगे? असंयत। असंयत भी क्या है? असंयत क्या है? यह भी औदयिक भाव है। असंयत का मतलब? जब तक आपके लिए चारित्र मोहनीय कर्म का उदय है... महाराज! चारित्र मोहनीय कर्म का उदय है...महाराज! जब तक ऐसे गीत गाते रहोगे तब तक असंयत रहोगे। असंयत रहने का मतलब है आप औदयिक भावों का अनुभव कर रहे हो और औदयिक भाव जिसके लिए अनुभव में आ रहे हैं वह कर्म का बन्ध करते हैं। क्या कर रहा है? कर्म का बन्ध कर रहा है। जैसे औदयिक भाव के कारण से मिथ्यादर्शन कर्म बन्ध का कारण है वैसे ही असंयत भाव भी औदयिक भाव के कारण से कर्म बन्ध का कारण है।



असिद्धत्व नाम का भी एक औदयिक भाव है

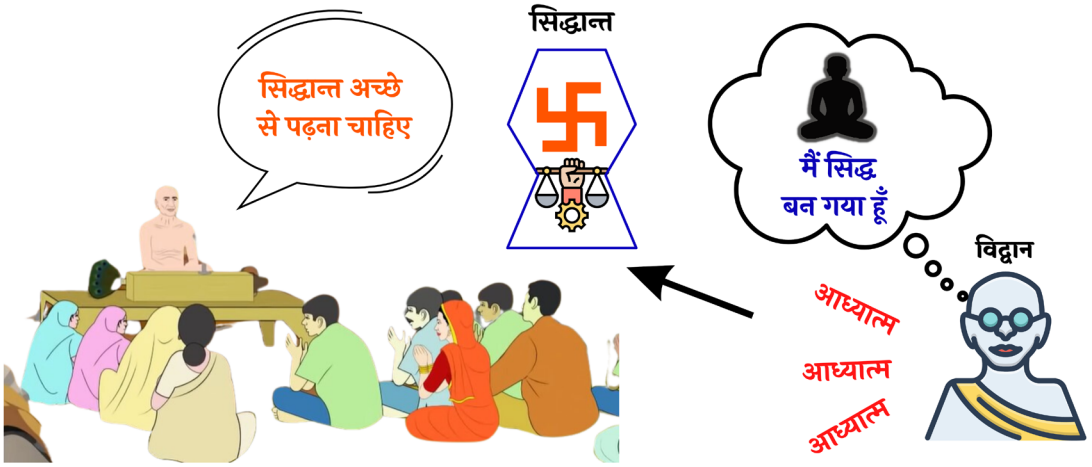
इसी तरीके से असिद्धत्व नाम का भी एक औदयिक भाव है। जिसका मतलब है, जब तक आप सिद्ध नहीं बनेंगे तब तक आपके अन्दर यह भाव रहेगा कि मैं सिद्ध नहीं हूँ, इसी का नाम असिद्धत्व भाव है। अब लो, यह तो अज्ञान का भी बाबा है। इसने तो केवलज्ञान को भी नहीं छोड़ा क्योंकि केवल ज्ञानी भी अभी सिद्ध नहीं हुए है, अरिहन्त हुए। जब तक वे अरिहन्त भी सिद्ध नहीं हो जाएँगे तब तक उनके अन्दर भी यह असिद्धत्व भाव चलेगा, सिद्धान्त किसी को नहीं छोड़ेगा। सुन रहे हो? सिद्धान्त तो सिद्धान्त है, संविधान! चाहे उसमें जज आ जाए तो भी वही उसके लिए धारा लगेगी जो दूसरे हैं और चाहे जो संविधान बनाने वाले हैं, उसने भी अगर कोई अपराध किया तो उनके लिए भी वही संविधान लगेगा। संविधान तो उसी का नाम है, तो सिद्धान्त ही संविधान होता है। समझ आ रहा है?

चौदहवें गुणस्थान तक कोई भी जीव सिद्ध नहीं होता



इसलिए जो अरिहन्त हमें उपदेश दे रहे हैं, वे अरिहन्त भी, नहीं! मैं तो सिद्ध जैसा हो गया, अब तो सिद्ध हो गया। अभी नहीं हो गए, वे खुद कह रहे हैं। यह असिद्धत्व भाव कहाँ तक? जब तक सिद्ध नहीं हो। अब सिद्ध कब तक नहीं होंगे? चौदहवें गुणस्थान तक कोई भी सिद्ध नहीं होता और चौदहवें गुणस्थान के बाद ही जीव सिद्ध होता है। चौदह गुणस्थान तक यह असिद्धत्व भाव आपके साथ रहने वाला है। अब आप सोचो! हम तो आज तक यही समझ रहे थे...मैं

सिद्ध हूँ, मैं सिद्धस्वरूपी हूँ, मैं सिद्ध बन गया हूँ तो इस सिद्ध स्वरूपी हूँ...ऐसा मानने में और सिद्ध होने में अभी कितना अन्तर है? जमीन और आसमान भी छोटा कहना है। सिद्धान्त पढ़ने से पता पड़ता है कि बेटा! तुम कहाँ खड़े हो? इसलिए जो अध्यात्म-अध्यात्म ज्यादा चिल्लाते हैं, उन्हें थोड़ा सिद्धान्त अच्छे से पढ़ना चाहिए तभी उनके लिए कोई बात गले उतरेगी तभी उन्हें कुछ अच्छा समझ में आएगा। बुरा तो नहीं मान रहे? अध्यात्म पढ़ने वाले बुरा न माने। थोड़ा यह देखें कि सिद्धान्त ही हमें बताता है कि हम कहाँ खड़े हैं? हमारे नीचे जमीन है कि नहीं है?



बोलो महावीर भगवान की जय।।

सारांश

1. आज हमने सूत्र 6 में **जीव में** कर्मों के उदय से उत्पन्न होने वाले **औदयिक भावों** के बारे में जाना
2. इनमें केवल कर्म के उदय की अपेक्षा होती है; उपशमन, क्षय और क्षयोपशमन की नहीं
3. जो कर्म उदय में आकर जीव में भाव पैदा करते हैं उन्हें **जीव विपाकी कर्म** कहते हैं जैसे गति नामकर्म, कषाय चारित्र-मोहनीय कर्म
4. और जो पुद्गल में यानि शरीर आदि में अपना फल देते हैं उन्हें **पुद्गल विपाकी कर्म** कहते हैं जैसे शरीर, अंगोपाङ्ग नामकर्म
5. हमने जाना कि गति औदयिक भाव में **गति नाम कर्म** के उदय से जीव जिस गति में होता है उसमें उस गति सम्बन्धी भाव उत्पन्न होते हैं
    - वह अपने को गति मय मनाता है
    - जैसे नरकगति में नारकीय, मनुष्य गति में मनुष्य, तिर्यंच गति में तिर्यंच और देव गति में देव
6. नाम कर्म के सभी **जीव विपाकी** औदयिक भाव गति नामकर्म में गर्भित हो जाते हैं
7. अन्य कर्म विपाकी औदयिक भावों का वर्णन अध्याय 8 में आएगा
8. कषाय कर्म के उदय से आत्मा में होने वाले **क्रोध, मान, माया, लोभ** के भाव को कषाय औदायिक भाव कहते हैं
    - यह आत्मा को कसता है या दुःख देता है
    - और इसमें पूरी आत्मा कषायमय हो जाती है
9. सिद्धान्त के अनुसार औदयिक भाव बन्ध के लिए कारण है
    - औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव मोक्ष के कारण हैं
    - और पारिणामिक भाव न बन्ध का कारण हैं और न मोक्ष का
10. हम **कषाय औदयिक भाव** जैसे कुछ औदयिक भाव को तो **नियंत्रित कर सकते** हैं
11. मगर **गति के कारण मनुष्यपने के भाव** जैसे औदयिक भावों को नहीं
12. हमने जाना कि **लिंग औदयिक भाव** तीन प्रकार का होता है और इसे दो तरह से बताया जाता है

- शरीर नाम कर्म के कारण शरीर की रचना को **द्रव्य लिंग** कहते हैं
- स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद नोकषाय के उदय में जीव के अन्तरंग भाव, अभिलाषाओं को **भाव लिंग** कहते हैं
    i. किसी एक वेद का उदय हर जीव में होता है
- यहाँ लिंग से तात्पर्य भाव लिंग ही है

13. नोकषाय का मतलब ईषत् कषाय; यानि थोड़ी या हल्की कषाय

- यह किसी निमित्त को पाकर के उत्पन्न होती है और उसके छूटने पर छूट जाती है

14. अन्य छह नोकषायों को भी हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा **लिंग** के साथ ग्रहण कर लेना चाहिए

15. कषाय में चार मुख्य भेद हैं क्रोध, मान, माया और लोभ

- अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन के भेद से ये सोलह प्रकार के हो जाती हैं
- यह कषाय औदयिक भाव में ही गर्भित हो जाते हैं

16. इस तरह चारित्र मोहनीय के दोनों भेद - **16 कषाय वेदनीय** और **9 नोकषाय वेदनीय,** कषाय और लिंग औदयिक भाव में गर्भित हो जाते हैं

17. सूत्र 6 में हम औदयिक भावों का समझ रहे हैं

18. हमने जाना कि **मिथ्यात्व कर्म**, जो कि दर्शन मोहनीय का एक भेद है, के उदय में **मिथ्यादर्शन औदयिक भाव** उत्पन्न होता है
    - इसमें तत्त्व पर सच्चा श्रद्धान नहीं बनता, विपरीत रहता है
    - **फिर चाहे** वो देव-शास्त्र-गुरु के प्रति हो या जीवादि सात तत्त्वों के प्रति
    - यह एक ही प्रकार का होता है
    - और इसके उदय में मिथ्यादृष्टि नाम का पहला गुणस्थान होता है

19. मिथ्यादर्शन की विपरीत श्रद्धा को उल्टी करने से सम्यग्दर्शन होता है

20. हमने सम्यग्दर्शन और कर्म उदय के बारे में कुछ **गूढ़ सैद्धांतिक** बातें समझी

- मिथ्यादर्शन एक औदयिक भाव है

    i. **वहीं** सम्यग्दर्शन उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक तीनों रूप है; लेकिन औदयिक नहीं है

- क्षयोपशम सम्यग्दर्शन में **सम्यक्त्व प्रकृति का उदय** होता **है मगर फिर भी** उसे औदयिक भाव नहीं कहते

    i. क्योंकि यहाँ मुख्यता **शेष छः प्रकृति** यानि मिथ्यात्व, सम्यक-मिथ्यात्व और चार अनंतानुबंधी कषाय के क्षयोपशम की है

    ii. **सम्यक्त्व के उदय** की अपेक्षा

- सम्यक्त्व के उदय से इसमें **सिर्फ** चल-मल-अगाढ़ दोष लगते हैं

    i. वहीं शेष किसी प्रकृति के क्षयोपशम हटने से सम्यग्दर्शन का भाव ही समाप्त हो जाता है

    ii. जबतक इन छह प्रकृतियों के सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय और सद् अवस्था रूप उपशम रहेगा तब तक ही सम्यग्दर्शन रहेगा

    iii. यदि इनमें से एक भी प्रकृति उखड़ गई तो गुणस्थान गिर जाएगा

21. क्षयोपशम की प्रकिया बहुत सशक्त है

- क्योंकि यदि यह प्रक्रिया थोड़ी-सी भी डामाडोल हुई यानि हमारा भाव या श्रद्धा बिगड़ी तो दबाये हुए कर्मों से कुछ भी उदय में आ सकता है

- मिथ्यात्व कर्म उदय में आ गया तो तुरन्त चौथे से पहला गुणस्थान हो जायेगा
- फिर यदि एक अन्तर्मुहूर्त बाद, **श्रद्धा फिर सही हुई** तो फिर क्षयोपशम हो सकता है
- और सम्यक्त्व के उदय होने पर फिर क्षयोपशम सम्यग्दर्शन हो सकता है
- इस तरह सम्यग्दर्शन का क्षयोपशम कई बार हो सकता है

22. उपशम भाव की विशुद्धि क्षयोपशम भाव की विशुद्धि से अधिक होती है
    - परन्तु यह भाव अन्तर्मुहूर्त के लिए ही रहता है
    - वहीं क्षयोपशम भाव लगातार बहुत समय के लिए रह सकता है
    - **इसलिए** आज हमें सिर्फ क्षयोपशम सम्यक् दृष्टि ही दिखाई देंगे
23. हमने जाना कि जब तक ज्ञानस्वभावी आत्मा का ज्ञान प्रकट न हो जाए तब तक आत्मा में **अज्ञान औदयिक** भाव रहता है
24. यह **अज्ञान** क्षयोपशम भाव में **मिथ्यात्व के उदय होने वाले अज्ञान** से भिन्न है
    - उसमें कुमति, कुश्रुति और विहंग ज्ञान के क्षयोपशम भाव आते हैं
    - और वह तीसरे गुणस्थान तक होता है
25. यह **अज्ञान औदयिक भाव** मिथ्यादृष्टियों और सम्यग्दृष्टियों दोनों में होगा
26. यह केवल ज्ञानावरण कर्म के उदय से होता है
27. और पहले से बारहवें गुणस्थान तक रहता है
28. तेरहवें गुणस्थान में आत्मा यत् स्वभावी होता है
29. और इस अज्ञान भाव से रहित होता है
30. आज हमने **सैद्धान्तिक** और **आध्यात्मिक दृष्टि** में अन्तर को समझा
31. हम सिद्धान्त को समझने से ही **अध्यात्म ठीक से** समझ सकते हैं

- जहाँ सिद्धान्त चीज की वस्तुस्थिति बताता है, अध्यात्म उसे सिर्फ भावना रूप में बताता है
- जहाँ सिद्धान्त किसी के साथ पक्षपात नहीं करता और अरिहंत भगवान् पर भी लगता है वहीं अध्यात्म हमको पक्षपाती बना सकता है
- सिद्धान्त हर चीज स्पष्ट बताता है और हमारी आँखों पर पड़े हुए पर्दे हटाता है

32. तत्त्वार्थ सूत्र जी सिद्धान्त है और समयसार जी अध्यात्म
33. आत्मा यत्-स्वभावी है

- तत्त्वार्थ सूत्र के अनुसार आत्मा तेरहवें गुणस्थान में **अज्ञान औदयिक भाव** को छोड़ कर यत्-स्वभावी बनता है
- समयसार जी पढ़कर **भटकाने वाले लोगों** को लगता है
    i. आत्मा सदा से यत्-स्वभावी है
    ii. वह न भोक्ता है और न कर्ता
    iii. अतः उन्हें वर्तमान में प्रकट आत्मा की अनुभूति होती है
- सिद्धान्त के अनुसार अज्ञान औदयिक भाव के कारण बारहवें गुणस्थान से पहले ज्ञान

स्वभावी आत्मा का अनुभव हो ही नहीं सकता

i. शुक्ल ध्यानी मुनि महाराज को भी नहीं

- सिर्फ कहने मात्र से कोई ज्ञान स्वभावी नहीं हो जाता
- सिद्धांत हमें बताता है कि हम कहाँ हैं और कहाँ जाकर हमें क्या मिलेगा? अध्यात्म मान लेता है

34. हमने **अज्ञान क्षयोपशम** भाव और **अज्ञान औदयिक** भाव के अंतर को समझा
    - पहला भाव सिर्फ मिथ्यादृष्टि के होता है तो दूसरा सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों के
    - पहला भाव सिर्फ तीसरे गुणस्थान तक रहता है तो दूसरा एक से बारहवें गुणस्थान तक रहता है
    - सम्यग्दर्शन प्राप्ति के बाद, तीसरे गुणस्थान में अज्ञान क्षयोपशम भाव **ज्ञान भाव** बन जाता है
35. ज्ञान और अज्ञान में से एक आत्मा में एक ही चीज रहती है
36. **अज्ञान क्षयोपशम भाव** को समझते हुए हमने जाना कि
    - एकेन्द्रिय जीव में एकमात्र स्पर्शन इन्द्रिय का ज्ञान है और शेष का अज्ञान
    - इसी तरह दो, तीन, चार, असंज्ञी जीव के क्रमशः क्षयोपशम बढ़ता है और अज्ञान कम होता है
    - इसी क्रम में मतिज्ञान होने पर भी **अक्षर श्रुतज्ञान न होने** से उस सम्बन्धी अज्ञान रहता है
37. हमने जाना कि मन आदि प्राप्त करने के बाद भी हमारे अन्दर अभी भी बहुत अज्ञान है जैसे
    - उत्कृष्ट स्पर्शन, रसना इन्द्रिय मतिज्ञान न होने से हम नौ योजन दूर स्तिथ वस्तु को विषय नहीं बना सकते
    - सकल श्रुतज्ञान का हमें ज्ञान नहीं है
    - अवधि, मनःपर्यय आदि हमारे पास बिलकुल नहीं हैं
38. चारित्र मोहनीय कर्म के उदय में असंयत औदायिक भाव होता है
- औदयिक भाव होने के कारण, यह कर्म का बन्ध कारण है

39. जब तक जीव सिद्ध नहीं बनेगा तब तक उसमें असिद्धत्व औदयिक भाव रहेगा
    - यह अरिहन्त भगवान् के भी होता है
    - और चौदह गुणस्थान में भी रहता है

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1. केवल कर्म के उदय की अपेक्षा सहित कौन से भाव हैं?
1. औदयिक भाव
2. क्षायोपशमिक भाव
3. क्षायिक भाव
4. उपरोक्त तीनों

Q2. देव पर्याय में देव होने की अनुभूति होना कौन से भाव के कारण है?
1. क्षायोपशमिक
2. पारिणामिक
3. औदयिक
4. औपशमिक

Q3. किस कर्म के उदय से दूसरी गति में गमन होता है?
1. आयु कर्म
2. नाम कर्म
3. उपरोक्त दोनों
4. इनमें से कोई नहीं

Q4. गति-कषाय——मिथ्यादर्शनाज्ञाना| रिक्त स्थान भरें |
1. लेश्या
2. असंयत
3. लिंग
4. असिद्धत्व

Q5. औदयिक भाव विपाकी की अपेक्षा कितने प्रकार के है?
1. 3
2. 2
3. 4
4. 6

Q6. जीव विपाकी कर्म किस औदयिक भाव में अंतर्भूत होता है?
1. कषाय
2. गति
3. लेश्या
4. मिथ्यादर्शन

Q7. क्षयोपशम सम्यग्दर्शन में किस कर्म का उदय होता है?
1. मिथ्यात्व
2. सम्यग्मिथ्यात्व
3. सम्यक्त्व प्रकृति
4. तीनों का

Q8. दर्शन मोहनीय के कितने भेद हैं?
1. 2
2. 3
3. 4
4. 6

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q9. किस कर्म के उदय से क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन में चल, मल, अगाढ़ दोष लगते हैं?
1. मिथ्यात्व
2. सम्यग्मिथ्यात्व
3. सम्यक्त्व प्रकृति
4. उपरोक्त तीनों

Q10. क्षयोपशम सम्यग्दर्शन में 6 प्रकृतियों के सर्वघाती स्पर्धकों के उदयाभावी क्षय एवं सद्अवस्था रूप उपशमन से क्या होता है?
1. सम्यक्त्व की विशुद्धि बढ़ती है
2. सम्यक्त्व की विशुद्धि कम होती है
3. सम्यग्दर्शन बना रहता है

Q11. किस सम्यग्दर्शन के बिना मिथ्यात्व के तीन टुकड़े नहीं होते ?
1. क्षयोपशम
2. उपशम
3. क्षायिक
4. उपरोक्त सभी

Q12. अध्यात्म किसी भी चीज को किस रूप मे मानता है?
1. वस्तु
2. भावना
3. स्थिति
4. काल

Q13. सिद्धान्त किस चीज को बताता है?
1. भावना
2. वस्तुस्थिति
3. सिर्फ स्थिति

Q14. अज्ञान भाव मे शुक्ल ध्यान में लीन मुनि महाराज हैं उनको ज्ञान स्वभाव की अनुभूति हो जाती है यह कथन कैसा है?
1. सही
2. गलत

Q15. कौन हमें हर चीज ज्यादा स्पष्ट बताता है?
1. सिद्धांत
2. अध्यात्म
3. दोनों

Q16. असिद्धत्व भाव किस गुणस्थान तक रहता है?
1. 12 वे
2. 14 वे
3. 13 वे
4. 11 वे

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें



अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1. गति नामकर्म के उदय से क्या होता है?
2. जीव विपाकी और पुद्गल विपाकी कर्म में क्या अंतर है?
3. इन जीव विपाकी कर्म उदाहरण के साथ समझाइए ।
   गति, जाति , वर्ण , बंधन , स्पर्श , संहनन
4. पांच भावों में से मोक्ष के कारण भाव कौनसे हैऔर कौनसे बंध के?
5. नोकषाय की परिभाषा बताइये।
6. सम्यक् प्रकृति के उदय से क्या होता है?
7. अज्ञान भाव कौन -कौन से होते हैं और उनमें क्या अंतर है?
8. दो इंद्रिय जीव को गंध का ज्ञान क्यों नहीं होता?
9. वर्तमान में ज्ञानावरण की पांच प्रकृतियों में से किन-किन प्रकृतियों का पूर्ण उदय है?
10. असिद्धत्व कौनसा भाव है?

प्रवचन 07

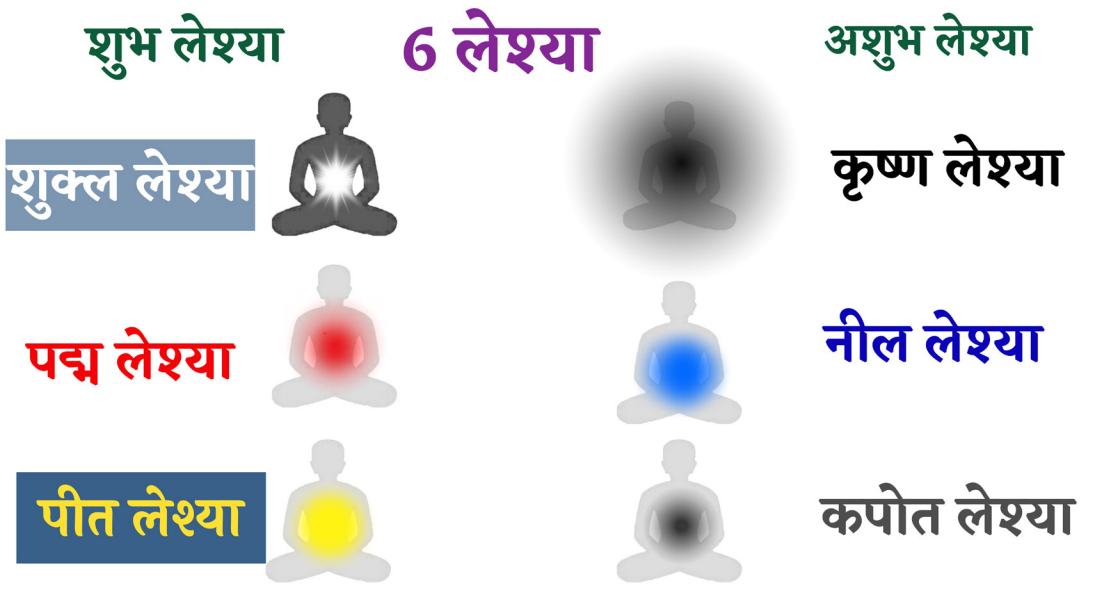
पाँच भावों में क्रम से औपशमिक-भाव, क्षायिक-भाव, क्षायोपशमिक-भाव, औदयिक-भावों का वर्णन और कितने-भावों के कौन-कौन से भेद होते हैं और वे भेद किस तरह से बनते हैं, यह भी ज्ञान में आ चुका है।

आगे औदयिक भावों में लेश्या का वर्णन है, जो पहले रह गया था...

लेश्या

असंयतपना, असिद्धत्वपना और लेश्या! लेश्या भी औदयिक-भाव के रूप में कही जाती है। वैसे देखा जाए तो **कषाय में और लेश्या में अन्तर होता है क्योंकि यहाँ पर कषाय को औदयिक-भाव के रूप में अलग लिया और लेश्या को औदयिक-भाव के रूप में अलग लिया।**

रंगों के माध्यम से लेश्या



कषाय से रंजित जो योगों की, मन-वचन-कायों की प्रवृत्ति होती है, उसको लेश्या कहते हैं। लेश्या किसे कहते हैं? मतलब अन्तरंग में तो कषाय हो और हमारे मन-वचन-काय उन कषायों से रंगे हुए हो तो उस तरह की जो मन-वचन-काय की जो प्रवृत्ति होगी, वह लेश्या के रूप में जानी जाती है। यह **लेश्या एक तरह से रंगों के माध्यम से समझाई जाती है क्योंकि**

रंगों का जिस तरह से स्वभाव होता है, उसी तरह से हमारे परिणामों का स्वभाव बताया गया है।

1. **काला-रंग** अत्यन्त **नि:कृष्ट माना जाता है** इसलिए उसको **कृष्ण-लेश्या** कहा गया, **काले परिणाम।**
2. जब यह परिणाम थोड़ा-सा down होता है, **अशुभ-लेश्या में थोड़ी कमी आती है, तो वह नील-लेश्या का परिणाम कहलाता है।** जिसमें **नीले रंग की उपमा** दे कर के हमें नील-लेश्या के परिणाम-भावों के बारे में बताया जाता है।
3. **नील-लेश्या में भी जब और अशुभता कम होती है, तो वह कापोत-लेश्या कहलाती है।** जो **कबूतर का रंग** होता है **grey, भूरे रंग** का, उस तरह की लेश्या को कापोत लेश्या कहा गया।

यह **३ प्रकार की अशुभ लेश्याएँ** हैं जो **अशुभतम कृष्ण-लेश्या, अशुभतर नील-लेश्या और अशुभ कापोत-लेश्या।**

अब शुभ लेश्या भी तीन हैं...

1. **एक शुभ के रूप में हैं...सबसे पहले तेजो-लेश्या** कहते हैं, **इसी को पीत-लेश्या भी कहा जाता है और** इसे **पीले रंग** के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस तरह के परिणाम शुभ होना प्रारम्भ हो जाते हैं।
2. फिर **शुभ परिणाम में और बढ़ोतरी होती है, तो शुभतर कहलाता है, जो कि पद्म-लेश्या** के है, जिसके परिणाम **लाल कमल की उपमा** के समान **लाल रंग** के दिए जाते हैं।
3. फिर अत्यन्त **शुभतम जो परिणाम होते हैं, वे शुक्ल-लेश्या के परिणाम होते हैं,** जो कि **सफेद रंग** के नाम से या सफेद रंग के द्वारा समझाया जाता है।

इस तरह से, इन लेश्याओं को भी औदयिक-भावों में ही रखा है क्योंकि ये लेश्याएँ मुख्य-रूप से कषाय के ही उदय से हो रही हैं लेकिन **कषाय में और लेश्या में यह अन्तर** है कि कषाय में **केवल कषायों का उदय है** और **लेश्या में कषायों के साथ मन-वचन-काय की प्रवृत्ति भी जुड़ी होती है।** इतना अन्तर समझ करके इन औदयिक-भावों की पूर्ति कर लेना।

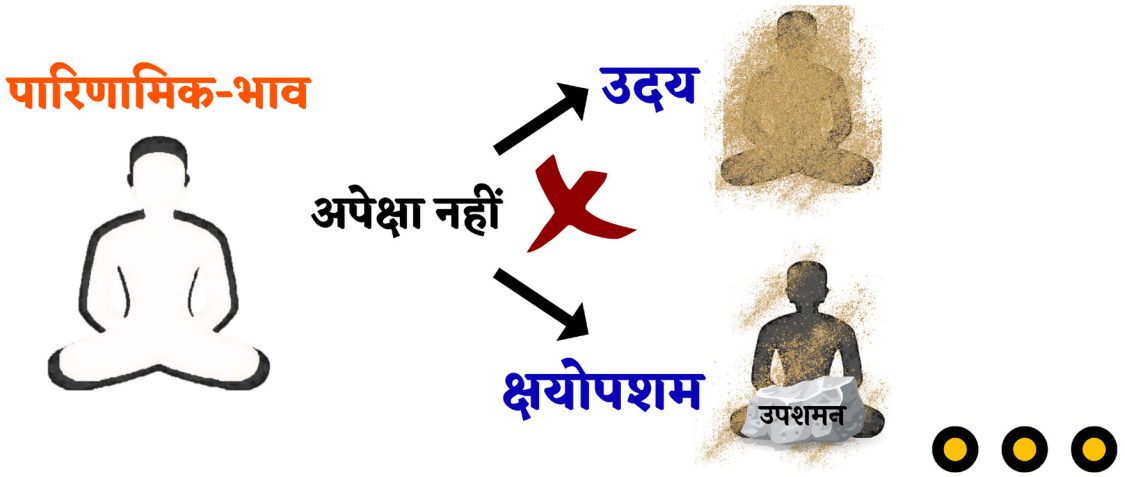
आगे के सूत्र में पाँचवाँ जो भाव बचा है, उसका वर्णन है...जिसे हम पारिणामिक-भाव कहते हैं। सूत्र है...

पारिणामिक भाव आत्मा के अनादि स्वभाव हैं

जीव-भव्या-भव्यत्वानि च ॥2.7 ॥

जीव-भव्य-अभव्यत्वानि-च

जीवपना भव्यत्व वा, अभव्यत्व त्रय भाव।
पारिणामिकी हैं कहे, अन्य और भी भाव॥2.7॥



SCAN TO WATCH

यह सूत्र पारिणामिक-भावों का ज्ञान कराने के लिए है। 3 प्रकार के यहाँ पारिणामिक-भाव बताए गए हैं। सूत्र में भी, जब संख्या वाला दूसरा सूत्र आया था तब भी वहाँ पर **3 प्रकार के पारिणामिक-भाव** बताये थे। पहला जीव, भव्य, अभव्य। अब इसमें जो "त्व" शब्द लगा हुआ है, उस "त्व" शब्द को सबके साथ जोड़ना,

1. **जीवत्व,**
2. **भव्यत्व,**
3. **अभव्यत्व,**

ये तीनों ही पारिणामिक-भाव हैं। पारिणामिक-भाव का मतलब होता है- जो जीव का या किसी भी द्रव्य का जो परिणाम होता है, जिस तरह का उसका परिणमन हमेशा बना रहता है, उस **परिणमन को बताने वाला जो भाव है...वह पारिणामिक-भाव है।** परिणाम शब्द से पारिणामिक शब्द बनता है। जैसे उदय से औदयिक बनता है, क्षय से क्षायिक बनता है, वैसे ही जो परिणमन-स्वभाव वाला भाव है उसी परिणाम शब्द से पारिणामिक-भाव बनता है। पारिणामिक-भाव की विशेषता है कि **इस भाव में किसी भी तरह के कर्म की कोई अपेक्षा नहीं है। कर्म के उदय से भी नहीं होता और कर्म के विनाश से भी नहीं होता। यह**

पारिणामिक-भाव हमेशा अनादि स्वभाव से आत्मा के अन्दर बने रहते हैं। जैसे- जीवत्व नाम का पारिणामिक-भाव।

जीवत्व पारिणामिक भाव और जीवत्व स्वभाव में अन्तर है

जीवत्व नाम के इस पारिणामिक-भाव से हम क्या जाने? जीवत्व किसको बोले? अगर हम यह माने कि जो जीता है, जीता था, जीता रहेगा, उसका नाम जीव है और वही जीव का स्वभाव है। अतः जीना था, जीना है और जीता रहेगा, यह जो जीवन का उसका स्वभाव है, यह स्वभाव तो उसका हमेशा हमें बदलता हुआ दिखाई देता है। जीव का जो जीवत्व-स्वभाव है, वह जीवत्व-स्वभाव हमेशा गति से गत्यन्तर होने पर, कर्मों के जो उदय चल रहे हैं, उनका जब नाश हो गया, दूसरा जन्म हो गया तो फिर दूसरा जीव का जीवत्व शुरू हो गया, इस तरह से इसमें हमें परिवर्तन दिखाई देता है। कभी जीव एक इन्द्रिय के साथ जी रहा है, कभी जीव पाँच इन्द्रियों के साथ जी रहा है। दस प्रकार के प्राण बताए गए हैं। उन प्राणों से जीवन होता है, उन प्राणों से जीव जीता है, तो उनमें भी चार प्राण से भी जी सकता है, दस प्राण से भी जी सकता है। प्राणों से जीवन जी रहा है, यह इसका जीवत्व-स्वभाव है या इसका जीवत्व-स्वभाव कुछ और है? यह जो जीवत्व-स्वभाव है, यह तो बदल रहा है। चार प्राण हैं तो अलग तरह का जीवत्व हो गया। दस प्राण हो गए तो अलग तरह का जीवत्व हो गया। नौ प्राण रह गए, आठ प्राण रह गए तो जीवत्व अलग तरीके का हो गया। इसका यह जीवत्व तो बदलने वाला है। यहाँ पर इस जीवत्व-स्वभाव को नहीं लेना, यहाँ पर **उस स्वभाव को लेना जो कर्म के उदय से रहित हो, यह तो कर्म के सहित हो गया।**

चैतन्य-रूप-पारिणामिक-भाव हमेशा रहेगा





एकेन्द्रियपना मिला, पंचेन्द्रिय प्राण के साथ जी रहा है। 10 प्राण जिसको मिले वह पंचेन्द्रिय संज्ञी जीव होगा, जब उसके लिए संज्ञी से असंज्ञी हो गए तो प्राण छूट गए, दस के नौ रह गए। एकेन्द्रिय से दो इन्द्रिय हुआ, चार के छह हो गए तो यह सब जो बदल रहा है, यह कर्म के कारण से हो रहा है। अगर हम इसको ही यहाँ पर जीव मानेंगे तब तो फिर यह पारिणामिक-भाव बैठेगा ही नहीं। क्योंकि पारिणामिक-भाव किसको कहा गया? जो कभी कर्म के उदय, क्षयोपशम आदि की कोई अपेक्षा नहीं रखता। ऐसा 'जीव का स्वभाव लेना, ऐसा जीव का भाव लेना, जिसमें कि वह हमेशा-हमेशा एक जैसा रहे।' वह जीवत्व का पारिणामिक-भाव कहलायेगा- **चैतन्य-पारिणामिक-भाव।** क्या बोलेंगे उसको? दस प्राणों से जी रहा है, जीता था, यह वाला यहाँ पर fit नहीं बैठेगा। कौन सा fit बैठेगा? जो चैतन्य-रूप-पारिणामिक-भाव है, यह हमेशा रहेगा। समझ आ रहा है? जिसे हम बोलते हैं... (द्रव्यसंग्रह तो पढ़ चुके हैं न अब आप लोग)

"णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स"

निश्चय-नय से तो उसके चेतना ही प्राण हैं। बाकी के दस प्राण हैं, वे तो **'ववहारादो'**, वे तो व्यवहार से है। निश्चय से जो प्राण हैं- चैतन्य-प्राण, वही **चैतन्य-प्राण ही यहाँ पर जीवत्व स्वभाव है क्योंकि जीव में हमेशा वह चैतन्य भाव बना ही रहता है। चाहे वह किसी भी इन्द्रिय से सम्बन्धित हो या किसी भी गति से उसका सम्बन्ध हो।** यहाँ पर पारिणामिक-भाव से, जीवत्व से, क्या लेना? चैतन्य मात्र पारिणामिक-भाव लेना। यह पारिणामिक जो चैतन्य-स्वभाव है, इसमें किसी कर्म की अपेक्षा नहीं है। यह उसका अनादि-अनिधन पारिणामिक-स्वभाव है। **जीव हमेशा से चैतन्य था, है और रहेगा।** प्राण तो छूटेंगे भी, नए भी बनेंगे, कभी कम भी होंगे, कभी ज्यादा भी होंगे और जब सिद्ध बन जाएगा तो वहाँ तो कोई प्राण होते ही नहीं। जो बचेगा वह कौन-सा प्राण होगा? बस यह चैतन्य-प्राण रहेगा। अतः जो प्राण, जो जीवत्व-स्वभाव, किसी कर्म के उदय की अपेक्षा न रखता हो, वह चैतन्य-स्वभाव है, उसी को यहाँ पारिणामिक-भाव कहा गया है। यह तो पहला हो गया। दूसरा क्या है?

भव्यत्व, अभव्यत्व पारिणामिक-भाव



भव्यत्व ↓ भव्यपना

अभव्यत्व ↓ अभव्यत्वपना

पारिणामिक-भाव

"त्व"- पना = रस / गुण

भव्यत्व नाम का पारिणामिक-भाव। इसमें क्या होता है? भव्यपना और अभव्यत्व मतलब अभव्यत्वपना। 'त्व' शब्द जो लगता है, वह पना के लिए लगता है। पना जानते हो? पना नहीं जानते हो? आम का पना! आम का पना क्या होता है? आम जो दिख रहा है, वह अलग है और आम का पना जो आ गया, वह अलग है। पना मतलब क्या हो गया? उसका रस, उसका भाव तो वही यहाँ पर है। भव्य कहने से तो भव्य एक जो है, उसका कोई एक तरीके का गुण हो गया लेकिन उस गुण का जो रस है.. **'त्व' लग जाने से क्या हो जाता है? उसका भाव आ जाता है,** उसमें उसका juice निकल कर आ जाता है। **भव्यत्व! मतलब भव्यपना और अभव्यत्व मतलब अभव्यपना।** भव्यपने का मतलब हो गया कि भव्यता का जो उसके अन्दर रस है, वह यहाँ पर भव्यत्व के भाव से जाना जाता है। अब अभव्यत्व का मतलब हो गया अभव्यपना यानि जिसका स्वभाव या रस अभव्य ही है उसका नाम अभव्यत्वपना हो गया, अभव्यत्व-भाव हो गया।

भव्यत्व, अभव्यत्व पारिणामिक-भाव एक दूसरे के विरोधी हैं



अब आप देखो! कई बार लोग पूछते रहते हैं- भव्य-अभव्य के बारे में, तरह-तरह की शंका रखा करते हैं। एक-बार आपको अच्छे ढंग से इन चीजों को समझ लेना चाहिए। यह क्या बताया जा रहा है? पारिणामिक-भाव बताया जा रहा है। यह पारिणामिक-भाव भव्यत्व और अभव्यत्व में से दोनों पारिणामिक-भाव जीव में होंगे या एक जीव में एक ही यह वाला पारिणामिक-भाव होगा? जीवत्व-पारिणामिक-भाव तो सभी जीवों में हैं लेकिन भव्यत्व सभी जीवों में हैं या कुछ जीवों में होगा? यह समझना है। जो भव्यत्व पारिणामिक-भाव है, उसके जीव अलग होंगे और अभव्यत्व-पारिणामिक-भाव को लिए हुए जीव जो होंगे, वे अलग होंगे। ये दोनों भाव एक-दूसरे के विरोधी हैं। कैसे हैं? हाँ! दो भाव एक साथ नहीं रह सकते। इसको

बोलते हैं- **सह-अनवस्था विरोध। एक साथ दो चीजों का रहना सम्भव न हो उसे सह-अनवस्था-विरोध कहा जाता है, सहानवस्था-विरोध!** दो चीजें एक साथ नहीं रह सकती, कौन-कौन-सी? भव्यपना और अभव्यपना।

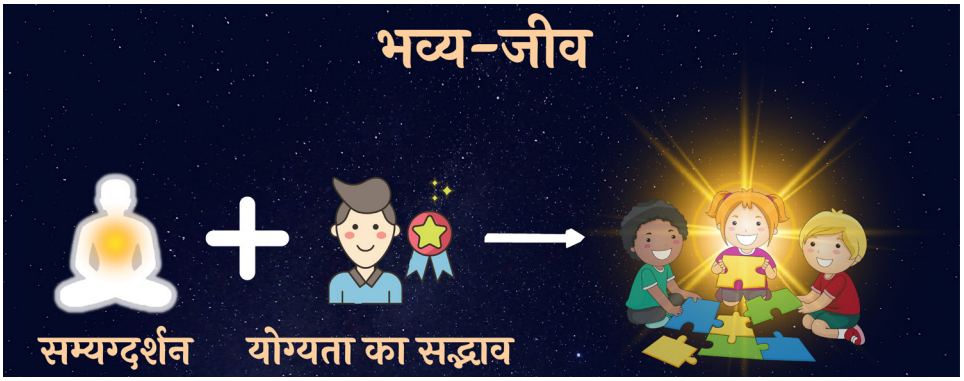
सह-अनवस्था-विरोध के उदाहरण

SCAN TO WATCH

जैसे कि **अग्नि में शीतलता।** क्या? अग्नि में शीतलता। अग्नि में शीतलता नहीं हो सकती, उष्णपने के साथ में शीतल-गुण नहीं रह सकता, यह विरोधी है। कालेपन के साथ में सफेदपना तो वह नहीं रह सकता है, दोनों पर्याय एक साथ नहीं रह सकते। इसी तरीके से भव्यपना-अभव्यपना ये एक साथ नहीं रह सकते। अगर और समझना हो तो जैसे-कुत्ता और बिल्ली, दोनों एक साथ बैठ नहीं सकते। चूहा और बिल्ली, सर्प और नेवला, इनमें सह-अनवस्था-विरोध है। ऐसे ही जिन जीवों में भव्यत्व नाम का भाव पाया जाएगा, उनमें अभव्यत्व नहीं होगा और जिनमें अभव्यत्व नाम का भाव पाया जाएगा उनमें भव्यत्व नहीं होगा **क्योंकि यह द्रव्य का स्वभाव है।** किसका स्वभाव है? द्रव्य का। पारिणामिक-भाव होने के कारण से द्रव्य का वह स्वभाव, किसी भी कर्म की अपेक्षा से नहीं है। मतलब भव्य-जीव **भव्य ही रहेगा, अभव्य-जीव अभव्य ही रहेगा।**

भव्य, अभव्य की परिभाषा

भव्य क्या कहलाता है? आचार्य कहते हैं- **जिसमें सम्यग्दर्शन आदि प्राप्त करने की योग्यता का सद्भाव हो, उसे भव्य-जीव कहते हैं।** क्या हो? जिसमें सम्यग्दर्शन आदि प्राप्त करने की योग्यता तो हो, योग्यता का सद्भाव होने का नाम भव्यपना है। **जिसमें सम्यग्दर्शन आदि प्राप्त करने की योग्यता ही न हो, वह कहलाएगा- अभव्य।** यानि भव्य-जीव तो कभी-न-कभी भविष्य में, सम्यग्दर्शन आदि प्राप्त कर सकता है। यदि उसको निमित्त मिलेंगे तो वह भव्य-जीव सम्यग्दर्शन आदि को कभी-न-कभी प्राप्त कर सकेगा। लेकिन अभव्य-जीव कभी भी सम्यग्दर्शन आदि को किसी भी तरह के निमित्त मिलने पर भी प्राप्त नहीं कर पाएगा, यह अभव्यपना कहलाता है।





अब यह शब्द तो बड़े common से हैं, आप लोग सुनते ही रहते होंगे। कभी-कभी हम भी बोल देते हैं...'भव्य-आत्माओं'। यह समझ करके कि जितने भी सामने बैठे हैं, सब भव्य ही बैठे हैं। अभव्यों को उपदेश देने का मतलब भी कुछ नहीं है क्योंकि उपदेश तो उसी को दिया जाता है, जिसमें कुछ बनने की सम्भावनाएँ हो। इसलिए यह सोचकर के उपदेश दिया जाता है। हे! भव्य-आत्माओं! मतलब सभी भव्य-आत्माएँ हैं, इनमें भी परिवर्तन होने की योग्यता है। इसलिए यह सभी भव्य-जीव कभी-न-कभी सम्यग्दर्शन आदि को प्राप्त कर लेंगे, ऐसे जीवों को ही भव्य-जीव कहा जाता है।

SCAN TO WATCH

अब जिन्होंने अभी तक प्राप्त नहीं किया, अभी भी प्राप्त नहीं किया और आगे भी जिन्हें अभी प्राप्त नहीं हो रहा है लेकिन फिर भी जिनको प्राप्त होने की योग्यता है, तो वे सब जीव अभी-भी क्या कहलाएँगे? **भव्य कहलाएँगे।** लेकिन अभव्य कैसे हो गए? जिनमें उस सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने की योग्यता ही नहीं है। सम्यग्दर्शन का मतलब सम्यग्दर्शन होने पर ही ज्ञान, चारित्र, रत्नत्रय सब होता है, तो **रत्नत्रय को प्राप्त करने की जिनमें योग्यता ही नहीं, कर ही नहीं सकेंगे, इस तरह की उनके अन्दर की वह शक्ति कभी प्रकट होगी ही नहीं तो उसका नाम है- अभव्यपना।** कैसे समझे? मूंग की दाल तो सब खाते ही हो और उस मूंग की दाल में कभी एक क्या आ जाती है, क्या बोलते हैं उसको? उसको बोलते हैं- ठर्रा मूंग। क्या बोलते हैं? ठर्रा नहीं बोलते हैं! मूंग की दाल में जो दाल के जैसा ही उसका shape रहता है लेकिन हम कितनी भी अग्नि पर उसको रख दें, वह दाना नहीं सीझता। एक ही तरीके से वह मूंग की दाल के साथ उत्पन्न हुआ लेकिन वह दाना नहीं सीझेगा। बाकि सब दाने सीझ जायेंगे और वह दाना जैसे ही मुँह में जायेगा कटक की आवाज आ जाएगी। आपके दाँत हिलने का भी डर हो जायेगा। अभव्यपना में ऐसा होता है मतलब उस जीव को कितना भी त्याग-तपस्या उसको करा दे, कितना ही समझा दे, जो अभव्य होगा उसको कभी भी सिद्धत्व की प्राप्ति नहीं होगी। सीझने का मतलब वह कभी भी सीझेगा नहीं, सिद्ध नहीं बनेगा। उसके अन्दर उस अग्नि का कोई महत्व ही नहीं जाएगा। किसमें महत्व आएगा? उसमें जो भव्य होगा।

द्रव्य का अनादि स्वभाव कभी परिवर्तित नहीं हो सकता

यह द्रव्य की अपनी योग्यता है, इसी को बोलते हैं- उपादान। क्या बोलते हैं? एक शब्द सुनते हो न! उपादान की योग्यता! तो **उपादान मतलब द्रव्य की अपनी वह योग्यता, जिसके कारण से वह द्रव्य भव्य कहा जा रहा है या भव्य है और जिसके कारण से वह अभव्य हैं तो वह द्रव्य ही उस रूप का है, उस तरह का है।** अब कहो कि ठर्रा मूंग को किसी ने बना दिया या ठर्रा मूंग क्यों नहीं सीझ रही। दाल के साथ ही थी लेकिन वह भी दाल के साथ रह करके दाल क्यों नहीं बनी तो इसका कोई जवाब नहीं है, इसको बोलते हैं- स्व-भाव। कुछ चीजें, कुछ परिणमन, कुछ कार्य प्रकृति में by nature भी होते हैं, इन्हीं को पारिणामिक-भाव कहा जाता है। ये उसके अपने natural भाव हैं। जो जीव भव्य होगा, वह कभी अभव्य नहीं बन सकेगा और जो जीव अभव्य होगा, वह कभी भी भव्य नहीं बन सकेगा। मुक्ति किसकी होती है? भव्य-जीव की। सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति किसको होती है? भव्य-जीव की। गुणस्थान किसके बदलेंगे? भव्य-जीव के।



अभव्य-जीव का हमेशा एक ही पहला मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहेगा। अनादिकाल से था और अनन्त-काल तक रहेगा। यह उस अभव्य-जीव का परिणमन मिथ्यात्व में ही रहेगा, चाहे वह कितना ही कुछ भी कर ले, वह सब उसका किया हुआ बाहर से होगा, भीतर से कुछ भी नहीं हो सकेगा। समझ आ रहा है? बाहर से कुछ भी हो सकता है, व्रती भी हो सकता है, महाव्रती भी हो सकता है। बाहर से सब कुछ हो सकता है लेकिन वह भीतर से नहीं सीझेगा क्योंकि उसकी योग्यता ही ऐसी बनी हुई है। अब आप कहो कि ऐसा क्यों? ऐसा क्यों? there is no answer for this. इसके लिए कोई answer नहीं और answer यदि है, तो बस एक ही है..It is the nature of that soul. यह उसका nature है,

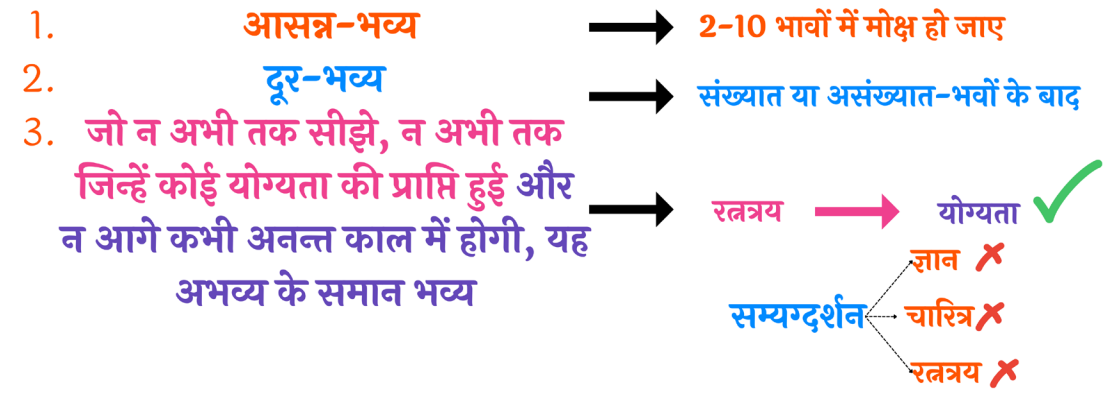
nature में जो चीजें होती हैं- natural, वे किसी भी प्रश्न के योग्य नहीं होती है। अब आप कहो कि हवा बहती क्यों? जल शीतल क्यों? अग्नि उष्ण क्यों? हर चीज में क्यों लगाने के बावजूद भी आपको उत्तर एक ही मिलेगा। क्या मिलेगा? यह उसका स्वभाव है। इसमें क्यों का कोई उत्तर नहीं है। उसी तरह से **भव्य-जीव के अन्दर यह जो योग्यता है, उसका नाम ही उसकी भव्यत्व-शक्ति है और यह भव्यत्व-शक्ति किसी के द्वारा रखी नहीं गई। द्रव्य का अपना स्वभाव है, अनादि-स्वभाव है, इसको कोई भी परिवर्तित नहीं कर सकता। कोई भी ब्रह्मा-विष्णु-महेश, इसमें कुछ भी हाथ नहीं लगा सकते, किसी के बस की यह चीजें नहीं है।** इसलिए कोई भी भगवान, कोई भी ईश्वर, आपका कुछ भी नहीं कर सकता, आपका जैसा स्वभाव है, वह आपको उसी स्वभाव के अनुरूप आपको चीजें मिलेंगी और उसी तरह का परिणमन आपका होगा। उतनी जितनी योग्यता होगी, उतना ही आप ले पाओगे, यह भव्यत्व-स्वभाव है।

भव्यों के प्रकार

अब देखो! भव्य भी कई तरह के होते हैं-



- एक भव्य होते हैं- आसन्न-भव्य, जिन्हें निकट-भव्य भी कहते हैं। आसन्न मतलब क्या होता है? निकट-भव्य। निकट-भव्य का मतलब अगर हम आज ही देखें तो **आज की अपेक्षा से या इस समय की अपेक्षा से, जिन जीवों का दो-चार-दस भवों में भी कल्याण हो जाए, मोक्ष हो जाए, वे जीव कहलाएँगे- आसन्न-भव्य या निकट-भव्य-जीव।** निकट मतलब निकटता में जिन भव्यों का कल्याण हो जाए। ऐसे जीवों को हम क्या बोलेंगे? निकट-भव्य-जीव।
- फिर **ऐसे जीव जिनका मोक्ष कई-संख्यात-भवों के बाद हो या असंख्यात-भवों के बाद हो तो वे कहलाएँगे- दूर-भव्य-जीव।** बहुत देर लगेगी, बहुत दूर है, उनकी अभी भव्यता प्रकट होना तो वह कहलाएगा- दूर-भव्य।
- एक ऐसे भी जीव बताए गए हैं कि **जो न अभी तक सीझे, न अभी तक जिन्हें कोई योग्यता की प्राप्ति हुई और न आगे कभी अनन्त काल में होगी, यह अभव्य के समान भव्य** कहे गए हैं। कैसे जीव? ऐसे भी जीव हैं जिनका अनन्त past हो चुका है और वह भी निकल जाने के बावजूद भी आगे भी, आगामी काल तो बहुत सारा है, future के अनन्त-काल में भी इनके लिए कभी भी रत्नत्रय को प्राप्त करने की योग्यता इनमें नहीं आएगी। योग्यता आने का मतलब यह रत्नत्रय को प्राप्त नहीं करेंगे, योग्यता होने पर भी में रत्नत्रय को प्राप्त नहीं कर पाएँगे, सम्यग्दर्शन आदि को प्राप्त नहीं कर पाएँगे। इसको क्या बोला गया? अभव्य के समान भव्य है।



फिर प्रश्न उठाया गया कि इन्हें अभव्य ही कह दो, भव्य क्यों कह रहे हो? आचार्य कहते हैं- नहीं! भव्य तो इसलिए हैं क्योंकि इनमें अभव्यों की तरह योग्यता नहीं है। इनमें भव्यों की तरह की योग्यता है कि इन्हें सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति हो सकती है लेकिन नहीं होगी तो नहीं होगी। क्यों नहीं होगी? उस तरह का उन्हें कभी निमित्त मिलेगा ही नहीं, वह कभी इस तरह की पर्यायों को प्राप्त होंगे ही नहीं। ऐसे जीव न पिछले अनन्त काल में हुए और न आगामी काल में होंगे। क्योंकि अगर हम काल को ही देखे जैसे काल चल रहा है...अनन्त तो अनन्त-काल जो आगामी काल है, वह भी अनन्त-काल है, तो काल का तो कभी अन्त होगा नहीं। जब तुम अनन्त-काल के बाद भी खड़े होंगे तब भी क्या कहा जाएगा? आगामी अनन्त है। फिर अनन्त-काल बाद भी कहीं खड़े होंगे तब भी क्या कहा जायेगा? आगामी अनन्त है। अनन्त **का कोई अन्त नहीं, काल का कोई अन्त नहीं।** इसी तरीके से जो जीव हैं, उन जीवों में ऐसे भी भव्य-जीव हैं, जो अनन्त-आगामी-काल में भी कभी-भी नहीं सीझेंगे तभी उनके लिए यह कहा जाएगा कि यह अभव्य के समान भव्य है। जीव का भी कोई अन्त नहीं और जीव के अन्दर जो भव्यत्व है या अभव्यत्व है, इसका भी कोई अन्त नहीं है। अभव्यत्व का तो अन्त होता ही नहीं लेकिन भव्यत्व का भी अन्त नहीं होता इसलिए ऐसे अनन्त भव्य-जीव हमेशा संसार में रहेंगे, जिनको कि रत्नत्रय की योग्यता होकर के भी सम्यग्दर्शन की भी प्राप्ति नहीं होगी। उन्हें क्या बोलते हैं?

उपादान की भीतरी योग्यता पर ही सब कुछ निर्भर होता है



एक कनक-पाषाण होता है, एक अंध-पाषाण होता है। आप लोगों को पता तो होना ही चाहिए, होगा भी कि स्वर्ण जो निकलता है वह पत्थर के अन्दर से पाषाण से निकलता है। सोना कहाँ से निकलता है? process करके। कुछ ऐसे भी अंध-पाषाण होते हैं, जिनमें पाषाण तो है लेकिन वह कभी-भी उसकी process सम्भव नहीं है और कभी कुछ निकलेगा नहीं। कुछ ऐसे स्वर्ण-पाषाण होते हैं, जिनमें अगर कुछ process की जाए उसी के अनुसार तो स्वर्णता की प्राप्ति

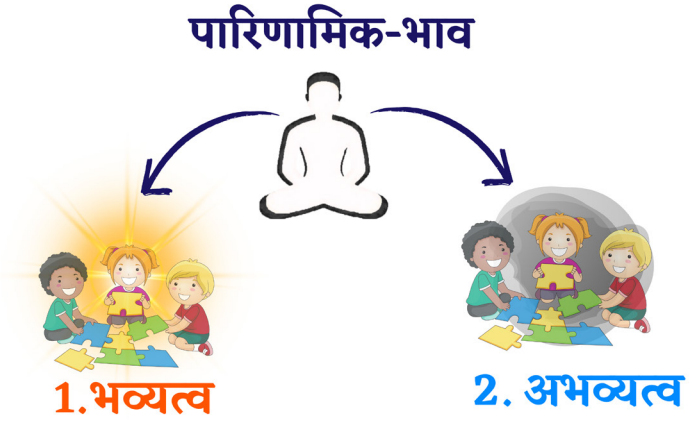
हो जाती है। **इसी तरह अभव्य के समान जो भव्य-जीव हैं, ये हैं तो पाषाण में स्वर्ण की तरह, स्वर्ण तो है लेकिन वह स्वर्ण कभी निकलेगा नहीं, स्वर्ण कभी हाथ नहीं लगेगा, वह अंध-पाषाण कहलाता है।** भव्य-जीव होकर के भी ऐसे जीवों के लिए जो जहाँ कहीं पर भी होते हैं, उनका एकेन्द्रिय-पर्याय से कभी दूसरी पर्याय में आना भी नहीं होता। ऐसी यह विकट, स्वभाव से बनी हुई स्थिति है। वह सब निगोद में ही समझ लेना चाहिए मतलब कि अभव्य-जीव भी होते हैं, भव्य-जीव भी होते हैं तो इनकी भी संख्या **अभव्यों से अनन्त गुणे भव्य होते हैं। अभव्यों की संख्या कम होगी, भव्यों की संख्या अधिक होगी लेकिन उन भव्यों में भी अनन्त जीव ऐसे भी हैं, जिन्हें कभी-भी इस तरह की सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति नहीं होगी।** यह उनकी योग्यता होने पर भी, उन्हें निमित्त न मिलने से इस तरह की परिणति बनती है। इधर अभव्य-जीव है, वह निमित्त भी प्राप्त कर लेता है। वह पंचेन्द्रिय भी बन जाएगा, महाव्रती भी बन जाएगा तो भी उसके लिए कोई योग्यता की प्राप्ति नहीं होगी। वह किसी भी तरह का कोई भी सम्यग्दर्शन भी प्राप्त नहीं कर पाएगा। क्या समझ में आया? हमारे करने से क्या होता है? जीव अपनी शक्ति से ही सब कुछ प्राप्त करता है। निमित्त तो मिलते हैं लेकिन निमित्त उन्हीं में काम करते हैं, जिनके उपादान में भी योग्यता होती है और इस तरह की योग्यता होने पर ही निमित्त काम करते हैं अन्यथा निमित्त कभी बलात्, जबरदस्ती किसी के साथ नहीं करते। यह सिद्धान्त भी हमेशा ध्यान में रखना चाहिए।



आदमी के अन्दर अगर योग्यता होती है, तो बाहरी निमित्त मिलने पर उसे उस योग्यता का लाभ मिल जाता है। अगर योग्यता ही नहीं है, तो बाहरी निमित्त उसके लिए कुछ काम अत्यधिक नहीं कर पाता क्योंकि उसका स्वभाव ही ऐसा है। इसलिए हमेशा अपने भीतरी योग्यता पर ही सब कुछ निर्भर होता है। संसार में भी सब कुछ जो देखने को मिलता है... हर आदमी की progress, success किसी भी तरीके की होती है, वह सब उसकी अपनी योग्यता से ही होती है। पढ़ने-लिखने को तो सब एक जगह ही पढ़ते हैं, सभी IIM में पढ़ लेते हैं लेकिन कोई-भी, हर कोई बहुत अच्छा management करने लग जाए, कोई जरूरी नहीं

है। सब के अन्दर की योग्यता अपने-अपने तरह से उस चीज को ग्रहण करके अपनी योग्यता को निखारती है। इसलिए यह ध्यान रखना चाहिए कि भव्य को कभी-भी अभव्य नहीं बनाया जा सकेगा। भव्य-जीव जो योग्य है, वह तो कभी-न-कभी सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति कर ही लेगा लेकिन अभव्यों को तो कभी भी सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति होगी ही नहीं।

भव्य और अभव्यपना कर्म निरपेक्ष हैं



SCAN TO WATCH

अब आप फिर कहोगे सब सुनने के बाद में, महाराज! कौन से कर्म का उदय है कि भव्य को अभव्य नहीं बनाया जा सकता है? और अभव्य तो भव्य भी बन सकता है? फिर बात वही हो गई, पूरी रामायण हो गई और फिर वही आप पूछने लगे कि सीता कौन थी? सीता को कौन ले गया था महाराज! यह वहीं से बात शुरू की थी और अगर आप फिर वही पर आ गए तो इसका मतलब यह है कि हमारा दिमाग कोई चीज को स्वीकार नहीं कर रहा है। हमने जिस तरीके का अपना mind-set कर रखा है, सामने वही question बार-बार आ जाता है। अब यह बताओ, यह प्रश्न सही है कि गलत है? महाराज! ऐसा कौन-सा कर्म का उदय है कि अभव्य-जीव कभी-भी मोक्ष नहीं मिलेगा, कभी-भी उसको सम्यग्दर्शन नहीं मिलेगा? अब आपका प्रश्न ही बता रहा है कि आपको न कर्म के बारे में कुछ मालूम, न अभव्य के बारे में कुछ मालूम, बस आपने कहीं सुन लिया कि अभव्य-जीव को मोक्ष नहीं होता। इसलिए आप पूछने लग गये...महाराज! ऐसे कौन से कर्म का उदय है? उसमें कोई कर्म का उदय है ही नहीं है, कोई कर्म का उदय है! कर्म का उदय होता तो इक्कीस प्रकार के औदयिक-भावों में उसका कहीं-न-कहीं वर्णन होता, यह तो कर्म से निरपेक्ष भाव है। इसमें कर्म के उदय की कोई जरूरत नहीं, किसी-भी तरह के कर्म के क्षय, क्षयोपशम से उसका कोई लेना-देना ही नहीं है, यह तो स्वभाव है। ठर्रा मूंग, ठर्रा ही रहेगी और जो गलने वाली मूंग है, वह गलेगी। जो जैसे स्वभाव को उपलब्ध है, वह वैसा ही रहेगा। ऐसा भी कहना उचित ही है कि **जीव के ही दो भेद हो गये, जीवत्व-परिणामिक-भाव में ही...एक भव्यत्व और एक अभव्यत्व।**

अनन्त गुण अभव्य के भी पास है

चैतन्य-आत्माएँ सभी है, **चैतन्यता में कोई कमी नहीं, अनन्त गुण सबके पास है, अभव्य के भी पास है अनन्त-गुण।** अभव्य की भी आत्मा में अनन्त-शक्ति है, अभव्य की भी आत्मा में केवलज्ञान छिपा हुआ है। अभव्य की भी आत्मा में अवधिज्ञान, मन:पर्यय ज्ञान, क्षायिक सम्यग्दर्शन सब है लेकिन कुछ-भी उसके अन्दर से प्रकट नहीं होगा। क्यों नहीं होगा? क्योंकि वह कभी-भी उन कर्मों का उपशमन क्षय, क्षयोपशम कुछ कभी कर ही नहीं पाएगा। यह उसका अपना पारिणामिक-भाव है, सीझेगा नहीं।

एक बार सम्यक्त्व हो गया तो मोक्ष मिलता ही है

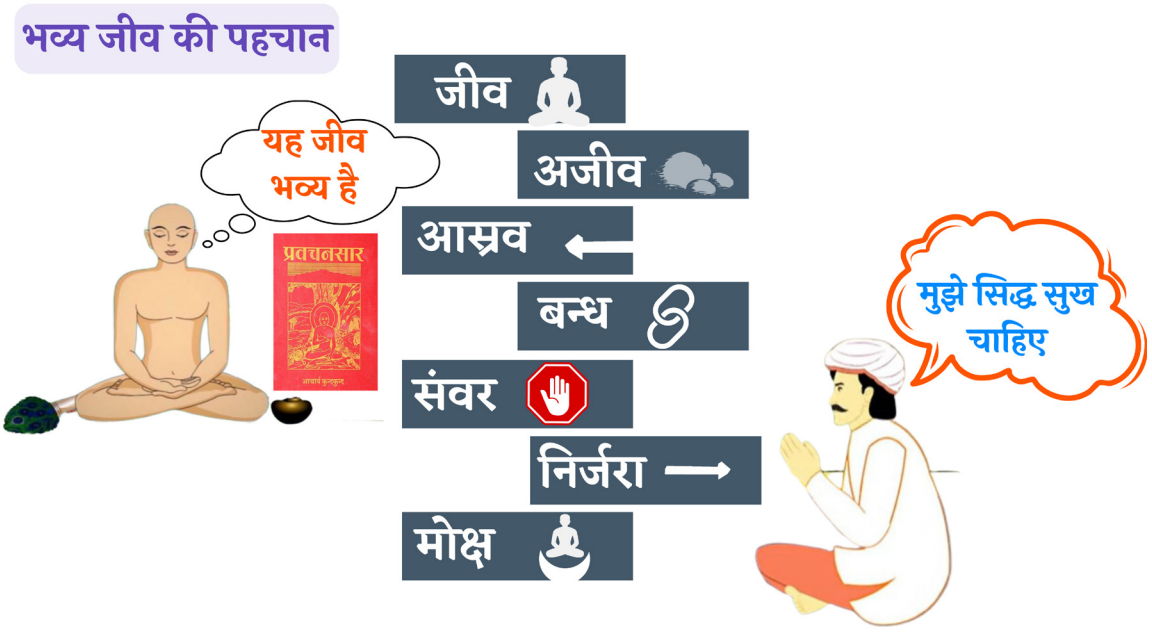
जो जीव एक-बार भी मिथ्यात्व से सम्यक्त्व को प्राप्त हो जाते हैं, आप समझ लो, जो भव्य जीव होगा, उन्हीं को वह सम्यग्दर्शन होगा और जो एक बार सम्यक्त्व को प्राप्त हो जाता है, वह भले ही सम्यग्दर्शन छोड़ दे लेकिन कभी-न-कभी अर्ध-पुद्गल-परिवर्तन काल उसकी एक limit बन जाती है, वह भले ही काल बहुत-बड़ा हो लेकिन कम-से-कम इतना तो definite हो गया कि उस जीव का इतने काल में तो नियम से मोक्ष होगा ही। यह सम्यग्दर्शन की महिमा है। इसलिए **जो भी जीव सम्यक्त्व को एक-बार उपलब्ध हो जाता है, तो वह अनन्त-काल को अर्ध-पुद्गल-परिवर्तन काल में परिवर्तित कर देता है,** अब उसका संसार अनन्त-काल नहीं चलेगा।



बस! एक time है...अर्ध-पुद्गल-परावर्तन काल, बस! उतने ही काल तक वह इस संसार में रहेगा। नियम से उतने काल के अन्त तक उसे कोई-न-कोई निमित्त मिल जाएगा, उसको मोक्ष होगा, यह नियम है। इस तरह के भव्यत्व-भाव की जानकारी होने पर ही आपको यह भीतर से

अनुभूति में आएगा कि यह भव्यत्व-भाव ही सम्यग्दर्शन आदि प्राप्ति की हमारे लिए, एक तरह से मोक्ष की योग्यता है। बाहर की चीजों की योग्यता अलग है और भीतर की यह आत्मा की परिणति, आत्मा की योग्यता यह अलग है। यह योग्यता है तब तो कल्याण है और यह योग्यता नहीं है, तो आत्मा का कल्याण भी असम्भव है। कोई करा तो कुछ नहीं सकता, तीर्थंकर भी कुछ नहीं कर सकते। भव्य-जीव के लिए भी कभी भी, कोई-भी जीव के लिए जबरदस्ती नहीं की जा सकती, वह अपनी योग्यता से ही होगा। इस तरह की जो परिणति है, वह परिणति अपने अन्तरंग में अपने ही उपादान से आई है, इसलिए कभी-भी हम जब देखें तो यह न सोचे कि हमारे अन्दर क्या उत्पन्न हो गया है? सम्यग्दर्शन हो गया कि नहीं हो गया? चिन्ता **तो इस बात की करनी चाहिए कि हम भव्य हैं कि अभव्य हैं।** भव्य होगे तो सम्यग्दर्शन तो हो जाएगा क्योंकि जो पंचेन्द्रिय पर्याय को प्राप्त कर लिया है, संज्ञी है, जिसने इतना निमित्त प्राप्त कर लिया है और जिसको यह सब पढ़ने-लिखने में आ रहा है, ज्ञान का संस्कार पड़ रहा है, उसके लिए भव्यता कभी-न-कभी उजागर हो ही जाएगी। लेकिन कोई-भी जीव भव्यपने की चिन्ता नहीं करता, भव्यपने का विचार नहीं करता, सबको सम्यग्दर्शन का विचार आता है।

सिद्ध सुख पर श्रद्धा करने वाला ही भव्य है



भव्यपने का विचार केवल आदिनाथ भगवान के दस भव पूर्व में एक महाबल नाम का जीव जो हुआ था, उसके मंत्री ने किया था। वही महाबल नाम का जीव दस भव बाद में भगवान आदिनाथ बने। उस मंत्री ने जाकर के एक मुनि महाराज से पूछा था...बताओ महाराज! मेरा राजा भव्य है कि अभव्य हैं? मंत्री ने जब यह पूछा तो मुनि महाराज ने अपने अवधिज्ञान-

मन:पर्यय ज्ञान से देख करके बताया कि तुम्हारा राजा तो दस भव में मोक्ष जाएगा, यह नियम से भव्य-जीव ही है। इस तरह की भी विचारधारा होती है। भव्यपने का विचार करो। भव्य मतलब मैं हो जाऊँगा, मैं मुक्त हो जाऊँगा, मुझे सुख मिलेगा, मैं अनन्त सुख को प्राप्त कर लूँगा। इस तरह की अगर अपने अन्दर परिणति होगी, विचार होंगे तो यही विचार आपको सम्यग्दर्शन भी दिला देंगे और यही विचार आपकी भव्यता को भी प्रकट कर देंगे। इसलिए अभव्यत्व की अपेक्षा न रखते हुए, अपने अन्दर हमेशा भव्यपने का विचार करते हुए, यह जानना कि हमारे अन्दर इस तरह की योग्यता है कि नहीं और अगर योग्यता है, तो हमारे भाव कैसे? हमारे विचार कैसे? वह जानना। जिसमें सिद्ध बनने का विचार आएगा, **सिद्ध सुख की जो इच्छा करेगा, वह जीव नियम से भव्य-जीव ही होगा।**

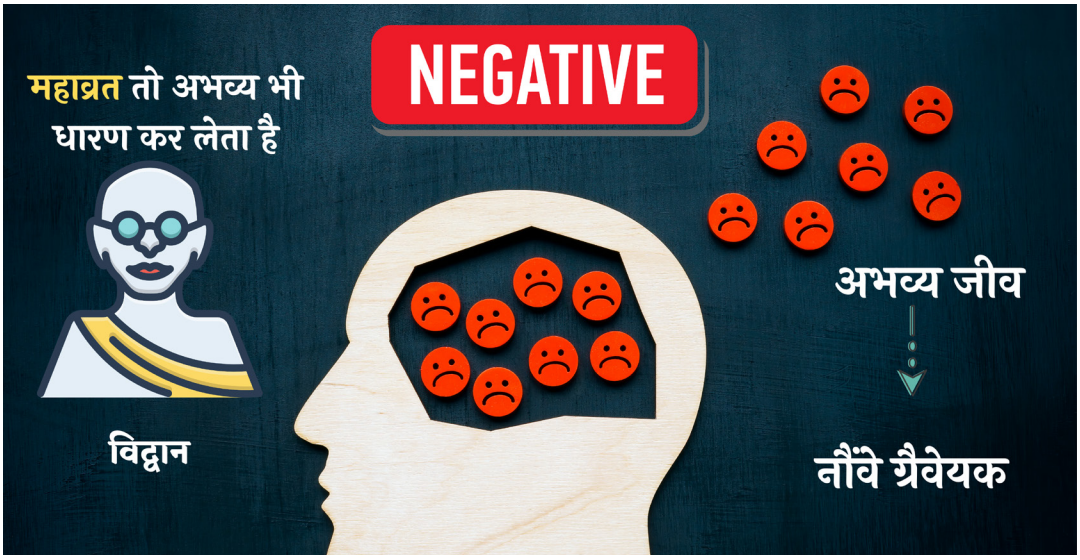


यह पहचान बता रहा हूँ। पंचम-काल में भी कोई अवधिज्ञानी नहीं हैं लेकिन आचार्य कुन्द-कुन्द देव ने प्रवचनसार में भव्य जीव की यह पहचान बताई है। क्या पहचान बताई? **जो यह तत्त्व को सुन करके या सिद्धों के सुख के बारे में सुन करके, उसका श्रद्धान कर लेता है... हाँ! ऐसा ही सिद्धों का सुख है और यही सुख वास्तव में सुख है, तो आचार्य कहते हैं- यह जीव भव्य है और जो श्रद्धान नहीं करता वह जीव अभव्य है।** आप तो अभी वर्तमान में अपने अन्दर के सम्यग्दर्शन आदि भावों का विचार करे। अभव्य-जीव महाव्रती कैसे बन जाते हैं? महाव्रती बनने में दिक्कत क्या है? अभव्यता तो उसका पारिणामिक-भाव है। अब आप ठण्डे दिल से विचार करेंगे तो आपको सब समझ में आएगा। अभव्यता तो उसका पारिणामिक-भाव है। अपना आत्म कल्याण हो, हमारे लिए भी कुछ मिले, इस तरह का विचार करना यह मन का विचार है। इस विचार के साथ में कोई-भी संज्ञी-पंचेन्द्रिय-मनुष्य है, तो वह अपनी शक्ति लगाकर के महाव्रतों का पालन भी करता है, समिति-गुप्ति का भी पालन करता है, सब कर सकता है लेकिन बात वही है कि आग में तो हम पहुँच गए, आग तो लगा दी लेकिन आग से सीझ नहीं रहा। बस! सीझेगा नहीं। फिर दिक्कत क्या हो गई?

अभव्यों का उदाहरण देकर पण्डित चारित्र की परम्परा को ही नष्ट कर रहे हैं

जितने भी पण्डित हुए हैं, उन सबने बस! यही अभव्यों का उदाहरण पकड़ करके अपनी बात कही है। अभव्य जीव तो नौवें ग्रैवेयक तक चला जाता है। तुमको सम्यग्दर्शन नहीं हुआ, इसलिए नहीं हुआ क्योंकि तुमने कभी तत्त्व का ज्ञान नहीं किया, स्वाध्याय नहीं किया। बस! वह कहानी लम्बी है, उसे मैं बीच-बीच में बोलता रहता हूँ, बाद में उसको सुनना। यह सब तो पण्डितों की पण्डिताई है। यह इसलिए नहीं है कि हम हर जगह पर अभव्य का उदाहरण डाल करके, गृहस्थों में ही सब कोई मोक्षमार्ग बना ले। यह भी एक पण्डितों ने चाल चली है, जो उनके ग्रन्थों में पढ़ने-देखने को मिलती है। हर जगह पर अभव्य का उदाहरण डाल कर के... अरे! महाव्रतों से क्या होता है? देखो! महाव्रत तो अभव्य भी धारण कर लेता है और इस तरह से करके उन्होंने चारित्र की परम्परा को ही नष्ट कर दिया। न कभी खुद लिया और न कभी

किसी को लेने दिया। ऐसे पण्डितों के favour में तो हम नहीं है और जो ग्रन्थ इस तरीके की भाषा बार-बार बोलते हैं, उन ग्रन्थों के भी हम स्वाध्याय न करते हैं, न कराने की कभी प्रेरणा देते हैं, यह भी ध्यान रखना।



यह तो आपका एक negative thought है। उसके कारण से आप अपनी negativity किसी चीज की पकड़ लिए और उसके कारण से आप जो है, हमेशा हर बात को घुमा करके आपको बस! चारित्र की अवहेलना करना है और अभव्य का उदाहरण पकड़ लिया। जहाँ जो चीज घटित ही नहीं होनी है उसका उदाहरण देना, उस विषय में भी बेकार ही है। अभव्य में वह चारित्र होगा ही नहीं, अभव्य में सम्यग्दर्शन होगा ही नहीं तो उसका उदाहरण ले करके आप अपनी सिद्धि करें कि इसलिए किसी को चारित्र नहीं लेना। पहले सम्यग्दर्शन करना, सम्यग्दर्शन करना, यह तो आपका एक अपना निजी स्वार्थ का, मोक्षमार्ग का प्रकाशक है। यह आपका निजी स्वार्थ है, यह मोक्षमार्ग का प्रकाशन नहीं है क्योंकि ऐसा कभी होता नहीं है। जो अभव्य हैं वह अभव्य अपना काम कर रहे हैं। जो भव्य हैं वे भव्य अपना काम कर रहे हैं। आप भव्यों का उदाहरण क्यों नहीं देते हो? अभव्यों की चिन्ता में आपको नहीं पड़ना चाहिए। भव्य है, तो भव्यों की चिन्ता में पड़ो।

सिद्ध-भगवान में केवल जीवत्व ही एक पारिणामिक-भाव रह जाता है

SCAN TO WATCH

आप यह समझे कि ये तीनों जो पारिणामिक-भाव हैं, ये भाव जीव में अगर होंगे तो तीन में से दो ही होंगे और उसमें भी **सिद्धत्व नाम का जब भाव पैदा हो जाएगा तो भव्यत्व नाम का यह पारिणामिक-भाव भी छूट जाता है।** क्योंकि जब जीव सिद्ध बन गया तो उसके अन्दर की जो योग्यता थी, उस योग्यता को ही प्रकट करना था, योग्यता प्रकट हो गई, पारिणामिक-भाव का

काम पूरा हो गया। **सिद्ध-भगवान में केवल जीवत्व ही एक पारिणामिक-भाव रह जाता है, उनमें भव्यता भी नहीं रहती क्योंकि अब उन्हें कुछ होना तो है नहीं। इसलिए वहाँ पर भव्यत्व नाम का भी पारिणामिक-भाव नहीं होता।** यह बात जानकर के 'च' शब्द के माध्यम से कुछ और भी जानना। पारिणामिक-भाव, यह तो विशेष पारिणामिक-भाव बताये।



जिन पारिणामिक-भावों के माध्यम से यह जीव अन्य द्रव्यों से पृथक हो जाता है, इसको बोलते हैं- असाधारण-लक्षण। क्या बोलते हैं? द्रव्यों के एक साधारण-लक्षण होते हैं और एक असाधारण-लक्षण होते हैं। साधारण मतलब जो सभी द्रव्यों में पाया जाए। **असाधारण जो केवल विशिष्ट उसी द्रव्य में पाए जाए। जो जीव-द्रव्य में ही पाए जाने वाले असाधारण-पारिणामिक-भाव हैं, वह तो जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व हैं। साधारण तो बहुत सारे हैं...जैसे- अस्तित्व है, वस्तुत्व है, प्रमेयत्व है।** ये सभी क्या हैं? ये सभी असाधारण नहीं हैं, यह साधारण-पारिणामिक-भाव हैं, सभी द्रव्यों में रहते हैं। **अजीव द्रव्य है, तो उसका भी अस्तित्व है। वह भी किसी-न-किसी के ज्ञान में आता है। प्रमेयत्व है, तो ये सब साधारण-भाव जीव के अलावा अन्य-द्रव्यों में भी पाए जाते हैं।** लेकिन **'च'** शब्द से सभी असाधारण और साधारण भावों को भी ग्रहण कर लेना चाहिए। मतलब जो भी और पारिणामिक-भाव हैं, उन सबका भी यहाँ ग्रहण हो जाता है। किस शब्द से? **'च'** शब्द के माध्यम से। इतना ही इस-सूत्र का व्याख्यान आप लोगों के लिए उचित है और इसी के ही आप चिन्तन-मनन में लगे, इतना ही पर्याप्त है।

बोलो महावीर भगवान की जय।।

सारांश

1. आज हमने औदयिक-भावों के वर्णन में लेश्या को जाना
2. जहाँ कषाय में सिर्फ कषाय का उदय होता है
- लेश्या में कषाय से रंजित मन-वचन-काय योगों की प्रवृत्ति होती है
3. इन्हें रंगों के माध्यम से समझते हैं
4. तीन लेश्याएँ अशुभ और तीन शुभ होती हैं
5. अत्यंत निकृष्ट परिणाम वाली काले रंग की कृष्ण लेश्या **अशुभतम**, नीले रंग की नील लेश्या **अशुभतर** और भूरे रंग की कापोत लेश्या **अशुभ** होती है
6. इनमें अशुभता के परिणाम **क्रमशः** कम होते जाते हैं
7. पीले रंग की तेजो लेश्या या पीत लेश्या **शुभरूप**, लाल कमल सामान लाल रंग की पद्म लेश्या **शुभतर** और अत्यन्त शुभ परिणाम वाली सफेद रंग की शुक्ल-लेश्या **शुभतम** होते है
8. इनमें शुभता के परिणाम **क्रमशः** बढ़ते हैं
9. सूत्र-7 में हमने जीव के पारणामिक भावों के बारे में जाना
10. जीव या द्रव्य का जो परिणमन हमेशा बना रहता है, उस परिणमन को बताने वाले भाव को पारिणामिक भाव कहते है
11. यह तीन प्रकार के होते हैं
    - जीवत्व,
    - भव्यत्व,
    - और अभव्यत्व,
12. जीवत्व भाव सभी जीवों में होता है
13. इसमें कर्म की अपेक्षा नहीं होती और यह हमेशा-हमेशा एक जैसा रहता है
14. जीव का गति में जाना, एक इन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय शरीर धारण करना या चार से दस प्राणों के साथ जीना;
    - ये सब परिवर्तनशील हैं
    - कर्मों के उदय पर निर्भर करते हैं
    - अतः जीवत्व, पारिणामिक भाव नहीं हैं
15. द्रव्य संग्रह में अनुसार निश्चय-नय से **जीव का चेतना ही प्राण हैं** बाकी के दस प्राण तो व्यवहार से हैं
16. चैतन्य-प्राण ही जीवत्व भाव है क्योंकि यह चैतन्य भाव जीव में हमेशा बना रहता है
17. यह उसका अनादिनिधन पारिणामिक भाव है
18. सिद्धवस्था में जीव के मात्र चैतन्य-प्राण ही रहेगा
19. भव्यत्व का अर्थ है भव्यपना;

- जीव ke अंदर जो भव्यता का जो रस है उसे भव्यत्व पारिणामिक-भाव कहते हैं

20. इसी तरह जीव ke अंदर जो अभव्यपने का जो रस है उसे अभव्यत्व पारिणामिक-भाव कहते हैं

21. भव्यत्व, अभव्यत्व पारिणामिक-भाव एक दूसरे के विरोधी हैं क्योंकि यही ये एक ही जीव में एक साथ नहीं रह सकते
    - इसे सह-अनवस्था विरोध या सहानवस्था-विरोध कहते हैं
    - जैसे अग्नि में शीतलता और उष्णपने ek साथ नहीं रह सकते या
    - कालेपन के साथ में सफेदपना नहीं रह सकता है
    - कुत्ता और बिल्ली, चूहा और बिल्ली आदि पर्यायों में भी सह-अनवस्था-विरोध है

22. जीव के पारिणामिक भावों में हमने भव्यत्व और अभव्यत्व गुणों को विस्तार से समझा

23. भव्य जीव में सम्यग्दर्शन आदि प्राप्त करने की योग्यता होती है
- अभव्य में ये योग्यता नहीं होती

24. भव्य जीव कभी-न-कभी भविष्य में निमित्त मिलने पर सम्यग्दर्शन आदि को प्राप्त कर सकेगा
- अभव्य जीव निमित्त मिलने पर भी सम्यग्दर्शन, रत्नत्रय आदि प्राप्त नहीं कर पाएगा

25. अभव्य जीव कितनी भी त्याग-तपस्या करले, कोई कितना भी समझा दे या बाहर से वह व्रती हो जाये, महाव्रती हो जाये पर वह कभी भी सिद्धत्व की प्राप्ति नहीं करेगा, सीझेगा नहीं

26. जहाँ भव्य जीव के गुणस्थान बदलते हैं
- अभव्य जीव का हमेशा एक **ही पहला मिथ्यात्व गुणस्थान** रहता है

27. जैसे मूंग की दाल में उसी की shape का ठर्रा मूंग का दाना कभी भी नहीं सीझता ;
- यहाँ मूँग भव्य जीव को
- और ठर्रा मूँग अभव्य जीव को दर्शाती है

28. भव्य जीव कभी अभव्य नहीं बन सकेगा और अभव्य कभी भी भव्य नहीं बन सकेगा

29. द्रव्य की अपनी योग्यता ही उपादान शक्ति होती है
    - जिसके कारण से वह भव्य या अभव्य होता है
    - यह शक्ति किसी के द्वारा rakhi नहीं गयी

30. भव्यत्व और अभव्यत्व द्रव्य का अपना अनादि स्वभाव है, इसको कोई भी परिवर्तित नहीं कर सकता
- जैसे- हवा बहती है, जल शीतल है, अग्नि उष्ण है
- इसके पीछे कोई logic नहीं होता

31. हमने भव्यों के प्रकार को भी जाना
- **आसन्न-भव्य** या निकट-भव्य जीव दो-चार-दस भवों में ही मोक्ष जाएगा

- **दूर-भव्य** जीव कई संख्यात या असंख्यात भवों के बाद मोक्ष जाएगा
- **अभव्य के समान भव्य** जीव न अभी तक सीझा है, न आगे कभी अनन्त काल तक सीझेगा
  i. ऐसे अनंत भव्य जीव हमेशा संसार में ही रहेंगे
  ii. ये अंध-पाषाण के समान हैं जिसमें किसी भी process से कभी कुछ भी स्वर्ण नहीं निकलेगा

32. निगोद में अभव्यों की संख्या से अनन्त गुणे भव्य होते हैं
- लेकिन उन भव्यों में भी अनन्त जीव हैं, जिन्हें कभी भी सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति नहीं होगी

33. सिद्धान्ततः जीव अपनी शक्ति से ही सब कुछ प्राप्त करता है
- निमित्त उन्हीं में काम करते हैं, जिनके उपादान में योग्यता होती है
- बिना योग्यता या शक्ति के बाहरी निमित्त कुछ काम नहीं कर पाते

34. हमने जाना भव्यपना और अभव्यपना **कर्म निरपेक्ष** हैं जिनमें कर्म के उदय, क्षय या क्षयोपशम की जरूरत नहीं है
- ये स्वभाव हैं

35. एक तरह से भव्यत्व और अभव्यत्व जीव के **जीवत्व परिणामिक भाव में ही** दो भेद हैं

36. अभव्य की आत्मा के पास भी अनन्त-गुण, अनन्त-शक्ति, केवलज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, क्षायिक सम्यग्दर्शन आदि होते हैं लेकिन फिर भी उनके अन्दर कुछ प्रकट नहीं होगा

37. एक बार सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् भव्य जीव का अनन्त-काल का संसार सिर्फ अर्ध-पुद्गल-परिवर्तन रह जाता है
- उसे नियम से इस काल के अन्त तक निमित्त मिलकर मोक्ष हो जाएगा

38. हमने जाना कि हमारा focus तो इस बात पर होना चाहिए कि हम भव्य हैं कि अभव्य हैं क्योंकि सम्यग्दर्शन आदि प्राप्त कर मोक्ष जाने की परिणति अन्तरंग में अपने ही उपादान से आती है

39. पंचम-काल में कोई अवधिज्ञानी या मन:पर्यय ज्ञानी नहीं हैं जो हमें भव्यता के विषय में बता सके जैसा कि आदिनाथ भगवान् के दसवें पूर्व भव में महाबल के मंत्री को बताया था
    - लेकिन आचार्य कुन्द-कुन्द देव ने प्रवचनसारजी में भव्य जीव की पहचान के लिए बताया
    - कि जो **तत्त्व को सुन** करके या **सिद्धों के सुख के** बारे में सुन करके, **उसका श्रद्धान** कर लेता है
    - कि ऐसा ही सिद्धों का सुख है और यही सुख वास्तव में सुख है, तो वह जीव भव्य है
    - और जो श्रद्धान नहीं करता वह अभव्य है

40. हमें अभव्यत्व की अपेक्षा न रखते हुए अपने अन्दर हमेशा भव्यपने का विचार करना चाहिए
41. लेकिन कुछ पंडित अपने उदाहरणों को अभव्यों पर केन्द्रित करके **चारित्र की परम्परा को** ही नष्ट कर रहे हैं
    - जैसे वे कहते हैं अभव्य जीव तो नौवें ग्रैवेयक तक चला जाता है या
    - महाव्रत तो अभव्य भी धारण कर लेता है लेकिन तत्त्व ज्ञान के अभाव में सम्यग्दर्शन नहीं होता अतः पहले सम्यग्दर्शन करो
    - हमें इस तरह के negative thought वाले ग्रंथो से बचना चहिये
42. हमने जाना कि सिद्ध-भगवान में केवल एक जीवत्व पारिणामिक-भाव रह जाता है
    - उनमें अब भव्यता भी नहीं रहती
    - वो तो प्रकट हो गयी
43. हमने जाना कि जिन पारिणामिक-भावों के माध्यम से जीव अन्य द्रव्यों से पृथक हो जाता है जैसे जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व उन्हें असाधारण लक्षण कहते हैं
44. वहीं अस्तित्व, वस्तुत्व और प्रमेयत्व जैसे गुण जो सभी द्रव्यों में पाए जाते हैं उन्हें साधारण लक्षण कहते हैं
    - अजीव द्रव्य का भी अस्तित्व है
    - और प्रमेयत्व भी क्योंकि वह किसी के ज्ञान में आता है
45. सूत्र में "च" शब्द से सभी असाधारण और साधारण भावों को भी ग्रहण करना चाहिए

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1. लेश्या कौन सा भाव है?
1. पारिणामिक
2. औदयिक
3. दोनों

Q2. अशुभ से अशुभतम क्रम में लेश्या बताइये।
1. कापोत, कृष्ण, नील
2. कृष्ण ,नील ,कापोत
3. कापोत, नील, कृष्ण

Q3. लेश्या में किसका उदय रहता है?
1. कषाय
2. मन वचन काय की प्रवृत्ति
3. दोनों

Q4. क्या निम्न कारणों से जीवत्व-पारिणामिक भाव बदलता है?
1. प्राण
2. इंद्रियां
3. दोनों गलत

Q5. जीवत्व स्वभाव क्या है?
1. जीव का प्राणों के साथ जीना
2. जीव का इंद्रियों के साथ जीना
3. दोनों सही

Q6. भव्य कौन हो सकता है?
1. जिसने अभी तक सम्यकदर्शन प्राप्त नहीं किया
2. जिसे आगे सम्यक दर्शन प्राप्त होने की संभावना है
3. दोनों सही

Q7. किस को समझाने के लिए ठर्रा मूंग का उदाहरण दिया गया है?
1. भव्यत्व
2. अभव्यत्व
3. जीव त्वं

Q8. द्रव्य का अनादि स्वभाव क्या है?
1. उसकी योग्यता
2. उसकी उपादान शक्ति
3. दोनों सही

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q9. लेश्या किसे कहते हैं ?
1. कषाय के उदय को
2. मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को
3. दोनों को

Q10. अभव्य महाव्रती का कौन सा गुणस्थान होता है?
1. पहला
2. चौथा
3. छठवां

Q11. जीव में भव्यपना/अभव्यपना किस कारण से होता है?
1. कर्म
2. पुरुषार्थ
3. जीव का स्वभाव

Q12. जीव कभी भी किसकी चिंता नहीं करता?
1. भव्यपना
2. सम्यकदर्शन
3. किसी की भी नहीं

Q13. पारिणामिक भाव किस में पाए जाते हैं?
1. केवल जीव द्रव्य में
2. केवल अजीव द्रव्य में
3. सभी द्रव्यों में

Q14. असाधारण परिणामिक भाव कौन से हैं?
1. प्रमेयत्व
2. अस्तित्व
3. जीवत्व
4. उप्युक्त सभी

Q15. भव्यपने का विचार सबसे पहले किसने किया था?
1. महाबल का जीव
2. भगवान आदिनाथ
3. महाबल का मंत्री

Q16. महाबल के मंत्री ने मुनिराज से क्या प्रश्न किया था?
1. मैं भव्य हूं या अभव्य
2. मुझे सम्यक दर्शन की प्राप्ति कब होगी
3. मेरा राजा भव्य है या अभव्य

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

SCAN TO WATCH

अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1. लेश्या की परिभाषा बताइये।
2. शुभ लेश्याओं के नाम बताइये ।
3. पारिणामिक भाव किसे कहते हैं?
4. निश्चय नय तथा व्यवहार नय से कौनसे प्राण होते हैं ?
5. क्या एक ही जीव में तीनों पारिणामिक भावों का सद्भाव हो सकता है?
6. भव्य जीव कितने प्रकार के होते हैं?
7. किस पाप कर्म के कारण जीव अभव्य हो जाता है?
8. क्या अभव्य जीव भी महाव्रतों को धारण कर सकता है?
9. सिद्धों में कौनसे पारिणामिक भाव होते हैं?
10. सबसे निकृष्ट परिणाम कौनसी लेश्या वाले के होते हैं?

प्रवचन 08

जीवत्व-रूप पारिणामिक भाव है इसी को और आगे समझने के लिए आगे का सूत्र आता है-

द्रव्य के विशिष्ट-गुणधर्म को लक्षण कहते हैं

उपयोगो लक्षणम् ॥2.8॥

चेतन का परिणाम ही, उपयोगा कहलाय।

चेतन का परिणाम ही, उपयोगा कहलाय।
लक्षण यह है जीव का, जैन धरम बतलाय॥2.8॥



क्या कहा गया? **यह सूत्र जीव का लक्षण बताने के लिए है।** आत्मा का लक्षण क्या होता है? यह आपको पहले भी बताया है कि **लक्षण वह होता है, जिससे हम बहुत-सारी वस्तुओं के बीच में से उस एक वस्तु को निकाल सके।** एक वस्तु को बहुत-सारी वस्तुओं के बीच में से पृथक कर सके। एक वस्तु को, मिली हुई बहुत-सारी चीजों में से समझ सके, उसको समझने के लिए हमें लक्षण की जरूरत पड़ती है। वह लक्षण उस वस्तु का अपना एक **विशेष-धर्म** होता है। वस्तु का, पदार्थ का, अपना एक **विशेष गुण** होता है, जिसको हम उसकी एक special quality या उसका कोई special attribute, यह भी हम उसके गुणधर्म के रूप में कह सकते हैं। यह जो जीव का लक्षण है, वह अन्य जितने भी द्रव्य है या अन्य जितने भी पदार्थ हैं उनसे पृथक करने के लिए यह जीव का लक्षण जानना जरूरी बताया गया। क्योंकि संसार-अवस्था में तो जीव कर्म के साथ भी मिला हुआ है, पुद्गल-शरीर के साथ भी मिला हुआ है, तो हम जीव की पहचान कैसे करेंगे? जीव को कैसे समझेंगे कि कहाँ जीव है और जीव के अन्दर का लक्षण क्या होना चाहिए? छः द्रव्यों से भरा हुआ यह पूरा लोक है और उस लोक में सर्वत्र अनेक प्रकार की पुद्गल-वर्गणाएँ, पुद्गल-स्कन्धों का समूह भरा पड़ा है। अजीव-पदार्थ तो हमें प्रत्यक्ष दिखाई देते ही हैं, उनके बीच में जीव को जानना और जीव को हम इन सब द्रव्यों से पृथक करके जान सके, इसलिए उसका लक्षण जानना जरूरी है। लक्षण क्या काम करता है? **'अन्य वस्तु व्यतिकीर्ण व्यावृत्ति हेतुः लक्षणं'** जो अन्य वस्तुओं से मिला हुआ अनेक-प्रकार का द्रव्य है, उसमें से अलग कर देना और उसे अलग करने के लिए जो हेतु बनेगा, कारण बनेगा, वही उसका लक्षण कहलाएगा। जब आत्मा का लक्षण किया जाएगा तो वह लक्षण ऐसा होना चाहिए जो अन्य द्रव्यों में न पाया जाए। इसी को कहा जाता है- असाधारण-लक्षण। लक्षण कैसा होता है? साधारण नहीं होता, असाधारण! साधारण तो सभी द्रव्यों में पाए जाने वाले गुणधर्म होते हैं लेकिन जो सभी द्रव्यों में पाए जाएँ, उसके अलावा हर एक द्रव्य का अपना-अपना एक विशिष्ट-गुणधर्म होता है, वह उसकी विशेष-गुणवत्ता होती है, उसी से

उस विशिष्ट द्रव्य को हम अलग कर पाते हैं।

जीव की पहचान उसके लक्षण से होगी



आत्मा का क्या लक्षण है? यह पूछने पर आचार्य कहते हैं... **"उपयोगो लक्षणं"** यह जीवात्मा का लक्षण बताया गया है। इसके ही माध्यम से हम जीव को अन्य दूसरे जीवों से भी अलग कर सकते हैं और इसी के माध्यम से हम जीव को, जो जीव से मिले हुए कर्म आदि हैं, उनसे भी अलग कर सकते हैं। अब जीव भी, आप कहोगे...जीव हमें दिखाई दे रहे हैं वही जीव हैं? ऐसा भी नहीं है; जो नहीं दिखाई देते, वे भी जीव होते हैं। आप केवल पंचेन्द्रिय-जीव को जीव समझेंगे। यह तो आपकी बहुत ही व्यवहारिक-स्थूल दृष्टि होगी। जब आप जीव सिद्धान्त समझने लगेंगे तो आपके अन्दर अनेक तरह के जीवों की पर्यायों का ज्ञान होगा और उसके माध्यम से आप जीव के लक्षण को समझकर के ही जीव को जान पायेंगे। आचार्य कहते हैं... कोई-भी जीव हो, वह जीव हमेशा अपने उपयोग-रूपी-लक्षण को कभी छोड़ता नहीं। यह उपयोग क्या होता है? अब यह उपयोग, आप जिस तरह से उपयोग शब्द का व्याख्यान करते हो, वह उपयोग नहीं है। उपयोग मतलब किताब का उपयोग क्या है? पढ़ना। वस्त्र का उपयोग क्या है? पहनना। सोने-चांदी का उपयोग क्या है? उसके कुण्डल आदि बना लेना, आभूषण बनाना फिर पहनना, यह उपयोग नहीं।

उपयोग का अर्थ



उपयोग का मतलब यहाँ क्या है? **जो उस आत्मा के साथ में निरन्तर रहता हो और उसी आत्मा का जो चैतन्य-परिणाम है,** उसी का वह **हमेशा अनुकरण करता हो, उस चैतन्य-परिणाम को ही हमेशा धारण करता हो** और चैतन्य-परिणाम को छोड़ता नहीं हो। इस तरह की जो क्रिया होगी या उस चेतना का जो व्यापार होगा, **उसका नाम उपयोग कहलाएगा। उपयोग को चैतन्य का अनुविधायी परिणाम कहा जाता है।** क्या बोला जाता है? चैतन्य का अनुविधायी परिणाम। अनुविधायी का मतलब होता है- जो हमेशा उसी के अनुरूप रहे या उसी को धारण किये रहे। उस तरह का जो चेतना का परिणाम है, वही चैतन्य-परिणाम उपयोग कहलाता है। मतलब इस तरह समझे कि जो पहले आपको बताया था जीव का पारिणामिक-भाव क्या है? चैतन्य-स्वभाव है। उसी चैतन्य को और थोड़ा-सा समझने के लिए उपयोग का सहारा लिया गया। चैतन्य में क्या होता है? चैतन्य तो एक सामान्य-भाव हो गया, हर जीव में पाया जाने वाला, अनुभव करने वाला, जो भाव है...वह हो गया चैतन्य। अब यही चैतन्य-स्वभाव हमारे लिए जब वस्तुओं को जानने में काम करता है, तो वह वस्तुओं को जानने का व्यापार है।



वस्तु को जानने का जो व्यापार है वह उपयोग है

व्यापार का मतलब आपका business नहीं। इन शब्दों का एक प्रयोग समझे। व्यापार मतलब क्रिया, प्रक्रिया, आदान-प्रदान। हमने आँखें खोली और आँख खोलकर के हमने अगर किसी पुस्तक को देखा या किसी वस्तु को देखा तो यह कहलाएगा- चक्षु-इन्द्रिय का व्यापार। लोगों के साथ दिक्कत यह होती है कि उन्हें कोई-भी शब्द, जो उनकी अपनी धारणा में पड़े हैं, उसी अर्थ में वे उसको लगाते हैं और कोई अर्थ यहाँ पर दूसरा होता है, तो उन्हें अलग से

समझाना पड़ता है। समझाना इसलिए भी जरूरी है क्योंकि मैं जानता हूँ कि आप जब कुछ नहीं जानते तो आप इसका मतलब यही समझेंगे। इसलिए आपको हर एक शब्द के बारे में बताना पड़ता है। जो क्रिया हो रही है, आदान-प्रदान हो रहा है...मतलब जैसे- आँख का खुलना, वस्तु का देखना-जानना तो आँख का यह व्यापार कहलाएगा, चक्षु-इन्द्रिय का व्यापार कहलाएगा। आँख खोलोगे तो वस्तु दिखेगी, बंद कर लोगे तो नहीं दिखेगी। यह आँख का व्यापार हो गया। दुकान खोलेंगे तो ग्राहक आएगा; नहीं खोलोगे तो नहीं आएगा। यह भी ग्राहक है, यहाँ पर भी ग्राहकी होती है। ग्राहक का मतलब क्या हुआ? आपने उस वस्तु को ग्रहण कर लिया और ग्रहण करने वाला जो ग्राहक है, वह आपका ज्ञान है। ज्ञान कौन है? ग्राहक। उस ग्राहक ने क्या कर लिया? जो वस्तु थी उसको जान लिया। यही उसका ग्रहण करना हो गया तो **आत्मा के अन्दर निरन्तर यह जो जानने-देखने का व्यापार चलता रहता है, जो जानने-देखने की प्रक्रिया चलती रहती है, यही उपयोग कहलाता है।**

उपयोग



संसार के सभी जीवों का उपयोग एक जैसा नहीं होता

इसी उपयोग को समझाने के लिए आचार्य कहते हैं कि संसार में अनेक जीव हैं लेकिन सबका उपयोग एक जैसा नहीं होता। क्यों नहीं होता? सबके जानने-देखने की प्रक्रिया एक जैसी नहीं होती। क्यों नहीं होती? एक और इसके पीछे कारण बताया जाता है कि **यह उपयोग बाह्य और अभ्यंतर हेतुओं के सन्निधान पर उत्पन्न होता है।** क्या कहा? उपयोग कैसे उत्पन्न होगा? बाह्य और अभ्यंतर जो कारण हैं, वह जिसके, जैसे, जितने होंगे, उसी के अनुसार उपयोग होगा। जानने-देखने का जो व्यापार है, यह जिसके पास में जितना अपनी अन्तरंग और बहिरंग, जिसके पास में जितनी सामग्री है, उसी के अनुसार, वह उपयोग की क्रिया होगी। बहिरंग-हेतु भी होना चाहिए और अन्तरंग हेतु भी होना चाहिए। जब हम बहिरंग-हेतु की बात करते हैं तो सामान्य रूप से बहिरंग-हेतु जो है, दो प्रकार के बताए गए- एक आत्मभूत और

अनात्मभूत।

आत्मभूत और अनात्मभूत लक्षण का अर्थ

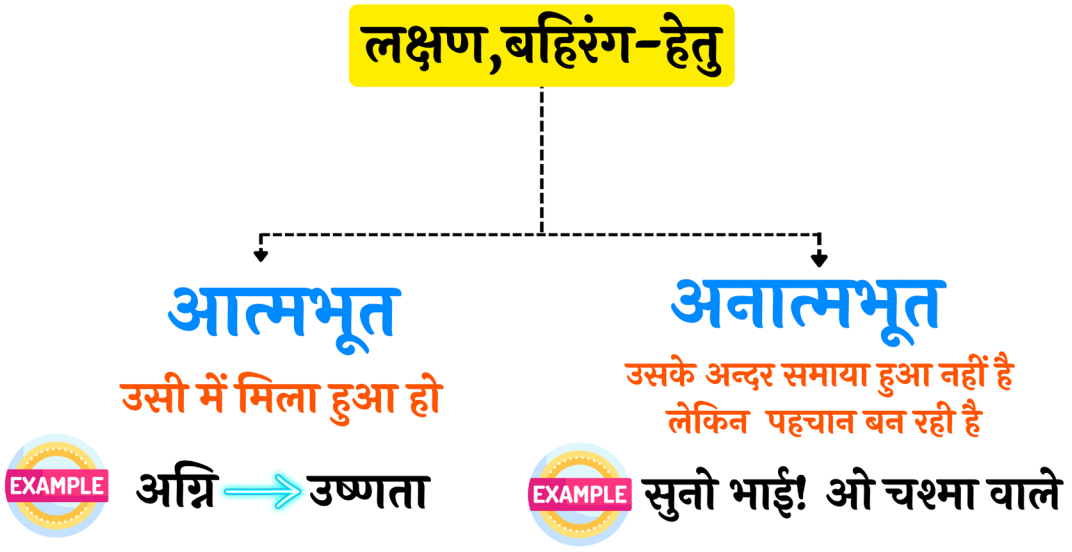


लक्षण हमेशा दो प्रकार के होते हैं...एक आत्मभूत और अनात्मभूत। कोई-भी लक्षण है, वही उसका हेतु बन जाता है। वह हेतु भी दो प्रकार का हमेशा होता है- आत्मभूत और अनात्मभूत। यह क्या होता है? **आत्मभूत का मतलब** जो उसी में मिला हुआ हो, उसी स्वभाव वाला हो, उसको बोलते हैं- आत्मभूत-लक्षण। जैसे- अग्नि की उष्णता। अग्नि और उष्णता...ये दोनों अलग-अलग नहीं है। जो-जो अग्नि है, वह-वह उष्ण है, तो अग्नि का जो उष्णता रूप लक्षण है, यह उसका आत्मभूत-लक्षण है। अगर हम उससे उष्णता अलग कर देंगे तो अग्नि नहीं बचेगी। यह क्या हो गया? यह आत्मभूत लक्षण हो गया। अनात्मभूत क्या हो गया?

अनात्मभूत-लक्षण- वह लक्षण जो उसके अन्दर समाया हुआ नहीं है लेकिन ऊपर से उसने ले लिया है, संयोग के कारण से उसकी वह पहचान बन रही है। वह क्या कहलाएगा? अनात्मभूत-लक्षण।

उदाहरण (i) आपने अपने ऊपर चश्मा लगाया हुआ है। हमने कहा- सुनो भाई! ओ चश्मा वाले सुनो! यह चश्मे वाले क्या हो गया? यह आपका एक लक्षण बन गया तो आपको जैसे ही चश्मा वाला कहा जाएगा तो आप देखोगे मैं चश्मा लगाया हुआ हूँ, महाराज मेरे को बता रहे हैं क्या? अतः यह चश्मा आपके लिए क्या हो गया? आपकी पहचान बन गई लेकिन पहचान होते हुए भी यह आपकी अन्तरंग पहचान नहीं है। यह क्या है? बहिरंग पहचान। इसे बोलेंगे- अनात्मभूत-लक्षण।

(ii) आपका शरीर है, आपके शरीर का जो figure है, जो भी height है, जिस तरीके का आपका face है, उस पर जिस तरीके की आपकी दाढ़ी जो बनी हुई है, यह आपका क्या हो गया? यह एक तरीके से जो आपकी size है, आपकी height है, यह तो आपका आत्मभूत-लक्षण हो गया। अगर किसी के लिए मैं इस तरह से बोलूँ, यह जो लंबा-सा आदमी है, यह सुने मेरी बात! तो अपने आप सुन लेगा लंबा-आदमी कि उसके लिए कहा जा रहा है, तो वह उसका आत्मभूत-लक्षण हो गया। फिर उसने अपने ऊपर कोई लाल colour की शर्ट पहन रखी है, सफेद colour की, कोई उस पर logo लगा हुआ है...अर्हं योग का या कुछ और दूसरा और इसको लेकर के बोला- सुनो भाई यह सफेद शर्ट वाले! यह क्या हो गया? यह उसका अनात्मभूत-लक्षण हो गया। जो चीज जिसमें मिली हुई है, वह उसका आत्मभूत-लक्षण है।



(iii) मान लो यह नारियल रखा हुआ है। यह देखो! यह लाल, पीला, हरा, कैसे colour कर रखे हैं इसमें? अब यह देखो, यह जो नारियल है, इसके अन्दर जो गरी है, वह इस नारियल का क्या है? अन्दर सफेदी है, अन्दर जो गरी है, वह क्या है इसका? यह आत्मभूत लक्षण है और इसके ऊपर यह जो लिख रखा है, तमाम तरह के रंग पोत रखे हैं, यह सब क्या है इसका? अनात्मभूत लक्षण है।

ऐसे ही जीवों के लिए बाहरी लक्षण आत्मभूत भी है और अनात्मभूत भी है

अब देखो! अपने लिए क्या होता है? जीव के लिए शरीर मिला, इन्द्रियाँ मिली। **ये इन्द्रियों का जो समूह है, यह इसका आत्मभूत लक्षण है क्योंकि जीव जहाँ-जहाँ रहेगा, इन इन्द्रियों को लेकर के चलेगा।** यह इसका क्या हो गया? आत्मभूत-लक्षण और अनात्मभूत-लक्षण क्या हो गया? जो इसने अपने ऊपर अलग से डाल रखा है। चाहे वह कपड़े पहन रखा हो, चाहे वह बालों की design बना रखा हो, चाहे वह चश्मा अलग-अलग तरीके का पहन रखा हो, वह सब क्या हो गया? टोपी लगा रखी हो, डण्डा ले रखा हो, यह सब क्या हो गया? यह उसका अनात्मभूत-लक्षण हो गया। उसकी आत्मा के साथ हमेशा रहने वाला नहीं है, जब-तक है तब-तक है। इसी तरीके से **जब हम किसी-भी पदार्थ को जानते हैं तो हमारे लिए उपयोग जो काम करता है, वह हमारी इन्द्रियों के माध्यम से करता है।** अतः इन्द्रियों के माध्यम से हम जानने की प्रक्रिया में लग जाते हैं तो वह इन्द्रियाँ उस उपयोग के लिए क्या हो गई? आत्मभूत-लक्षण हो गई और अनात्मभूत क्या हो गया? जो उस इन्द्रियों के लिए भी जानने में सहायक बन रहा है। क्या सहायक बन रहा है? मान लो! यहाँ पर प्रकाश है, यह प्रकाश भी सहायक है कि नहीं? आप देख पा रहे हो, हम-आपको, आप-हमें, ग्रन्थ को आप देख पा रहे

हो, यह सब प्रकाश क्या है? इन्द्रियों के उस उपयोग की क्रिया में यह अनात्मभूत बाह्य लक्षण हो गया। आपके लिए mike की आवाज आ रही है, तो आप बड़े आसानी से सुन पा रहे हैं। वैसे तो बिना mike के भी सुन सकते थे लेकिन mike से और ज्यादा clear हो जाता है। यह भी इसके लिए क्या हो गया? सुनने में भी सुविधा है और बोलने में भी सुविधा है। गला कम खींचना पड़ता है, तो यह क्या हो गया? यह भी अनात्मभूत बाह्य लक्षण हो गया।



अनात्मभूत-बाह्य-कारणों पर आधारित उपयोग की प्रवृत्ति बदलती रहती है



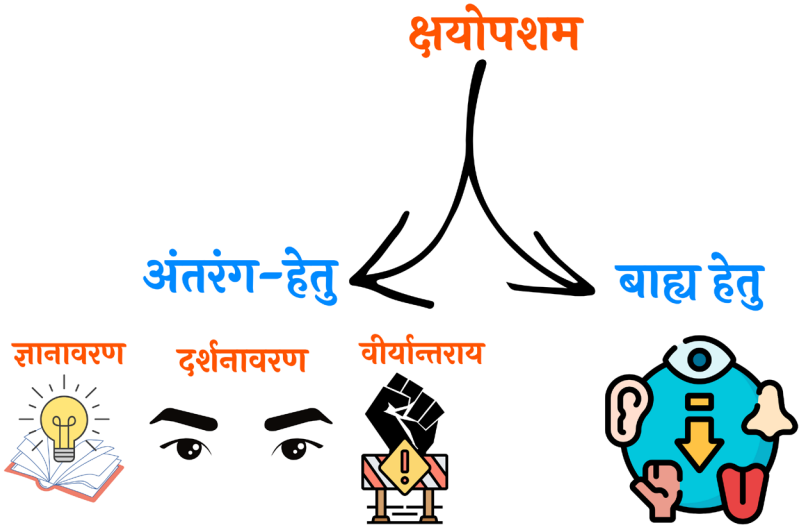
अब आप देखो! अभी हम बाह्य लक्षण की बात कर रहे हैं, बाह्य-हेतु की बात कर रहे हैं... जिस बाह्य-हेतुओं के सन्निधान होने पर और नहीं होने पर उपयोग में फर्क पड़ेगा। फर्क पड़ेगा कि नहीं? मान लो आपके सामने यहाँ एकदम से अंधकार हो जाए, फिर क्या करोगे आप?

आपका जानने-देखने की प्रक्रिया बिल्कुल ही बंद हो जाएगी। एक दम से light-off हो जाए, mike-off हो जाए, आपके लिए सुनने की प्रक्रिया बिल्कुल बंद हो जाएगी। अभी आपका जो उपयोग लग रहा है, वह इन बाह्य-हेतुओं के कारण से आपके उपयोग में एक अलग व्यापार चल रहा है और जब यह बाह्य-उपयोग इस तरीके से अगर कोई बाह्य-कारण है, अनात्मभूत कारण है, उसको हटा देते हैं तो आपके उपयोग में अन्तर आ जाएगा। आ रहा है कि नहीं आ रहा है? कुछ जीव ऐसे भी होते हैं जिन्हें प्रकाश की आवश्यकता नहीं पड़ती, उन्हें अंधकार में भी दिखाई देता है। रात में चलने वाले...बिल्ली, शेर वगैरह, चमगादड़, उल्लू वगैरह, इनको दिन में जरूरत नहीं होती, आँखें इनकी दिन में काम नहीं करती। इनमें वह शक्ति है कि वह रात में ही उड़ेंगे, रात में ही चलेंगे तो इनका उपयोग अंधकार में ही काम करेगा...अपना उपयोग प्रकाश में काम करेगा। यह क्या है? यह उपयोग की जो प्रवृत्ति है, वह बाह्य-लक्षणों पर आधारित भी हो रही है, बाह्य-कारणों पर, लक्षण से मतलब यहाँ हेतु, बाह्य-कारणों पर जो आधारित, अनात्मभूत-बाह्य-कारणों पर आधारित हमारे उपयोग की प्रवृत्ति बदलती रहती है।

इन्द्रियाँ आत्मभूत-बाह्य-लक्षण है

अब चलो हम आत्मभूत-बाह्य-लक्षण पर आते हैं, बाह्य-हेतु पर आते हैं। आत्मभूत-बाह्य-हेतु क्या है? मान लो हमारे पास तो पाँच-इन्द्रियाँ हैं और आप लोगों के पास पाँच-इन्द्रियाँ हैं। अब आप देखो! जिनके पास केवल चार-इन्द्रियाँ है, उन्हें क्या होगा? ज्ञान तो उनमें भी है लेकिन उनका उपयोग पाँच-इन्द्रियों से काम न करके केवल चार-इन्द्रियों सम्बन्धी काम करेगा। असंज्ञी-जीव है, जिनमें मन नहीं है, उनमें उपयोग की प्रवृत्ति देखो कैसे काम करेगी? देखेगा, सुनेगा लेकिन समझ कुछ नहीं आएगा क्योंकि मन नहीं है। तीन-इन्द्रिय होगा, आँख नहीं होगी। केवल स्पर्श, रस, गंध का ज्ञान होगा, उसका उपयोग सिर्फ उतने में काम करेगा। दो-इन्द्रिय हो गया तो उसका उपयोग केवल स्पर्श और रस को जानेगा। एकेन्द्रिय रह गया तो केवल एक स्पर्श को ही जान पाएगा, उसका उपयोग और उतने में काम कर पाएगा। यह उपयोग प्रभावित हो रहा है, यह जानने-देखने की जो प्रक्रिया है, यह प्रभावित हो रही है। यह किसके कारण से हो रही है? इन्द्रियों के कारण से हो रही है। इन्द्रियों की हीनाधिकता होने पर, हमारे उपयोग में भी उसी तरीके की परिणति कमती-बढ़ती रूप में आ जाती है। इसलिए कहा गया कि **बाह्य-हेतुओं के सन्निधान होने पर जो चैतन्य का परिणाम चलता है, उसका नाम उपयोग है।** यह तो बाह्य-हेतु हो गए, ऐसे ही अन्तरंग-हेतु भी होते हैं।

ज्ञानावरण आदि का क्षयोपशम अन्तरंग आत्मभूत हेतु होता है



अन्तरंग-हेतुओं का भी सन्निधान होना चाहिए। सन्निधान मतलब उनका उपस्थित होना।

SCAN TO WATCH

अन्तरंग के जो कारण हैं वे अलग हैं। वे क्या हैं? **अन्तरंग में हमारे अन्दर ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वीर्यान्तराय इन कर्मों का क्षयोपशम होना चाहिए। जब क्षयोपशम होगा तभी वह ज्ञान उस अन्तरंग हेतु के होने पर ही बाह्य हेतुओं के सानिध्य से काम करेगा, अपना कोई व्यापार कर पाएगा।** अब आप देखो! जिनके लिए ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम कम होता है, उन्हें कुछ भी सुनाओ, कुछ भी जानने में नहीं आता, कुछ समझ नहीं आता। अन्तरंग हेतु से उपयोग की प्रवृत्ति हो रही है। जिनके लिए मान लो ज्ञानावरण-कर्म का क्षयोपशम बिल्कुल बहुत ही कम है, ऐसे एकेन्द्रिय, दो-इन्द्रिय या पंचेन्द्रियों में भी कोई जीव हैं तो उनके उपयोग की प्रवृत्ति सिर्फ उतनी होगी जितने उनके ज्ञानावरण-कर्म का क्षयोपशम है, वे उतना ही जानेंगे। अपना चलने-फिरने लायक ही बस चींटे-चींटियों को ज्ञान होता है। चल-फिर रहे हैं और जो इन्द्रिय है, बस! उस इन्द्रिय की कोई-भी वस्तु मिल गई तो बस उसको पकड़ लिया, खींच लिया। बस! इतना ही उनके लिए चलता रहता है। **उपयोग की प्रवृत्ति, अन्तरंग जो कारण हैं, उसे आचार्यों ने कहा...यह जो हमारे ज्ञानावरण आदि का क्षयोपशम है, ये हमारे लिए अन्तरंग-आत्मभूत-हेतु है।**

पुद्गल वर्गणाओं का आलम्बन ही अनात्मभूत-अन्तरंग-हेतु है

इसी के साथ में अनात्मभूत-हेतु भी कहा। वह क्या कहा? **जो अन्तरंग में हम मन-वचन-काय की वर्गणाओं का आलम्बन ले रहे हैं मतलब सभी पुद्गल-वर्गणाएँ होती हैं,** मन को बनाने वाली, वचनों को उत्पन्न करने वाली, काय को बनाए रखने वाली, **इन पुद्गल-वर्गणाओं का जो हम आलम्बन ले रहे हैं, यह आत्मा का स्वभाव नहीं है लेकिन आत्मा इसी से अपना काम कर रही है, इसलिए ये अनात्मभूत-अन्तरंग-हेतु हैं।** बहुत-बड़ा काम चलता रहता है, मशीन भीतर से automatic बहुत बड़े-बड़े काम करती रहती है और आपको पता नहीं रहता है। अन्तरंग में जब-तक आपके अन्दर कर्मों का क्षयोपशम कुछ नहीं होगा तब तक आप बाहर भी किसी भी चीज को जान नहीं पाएँगे, देख नहीं पाएँगे तो अन्तरंग-हेतु का भी सन्निधान होना चाहिए और बाह्य-हेतु का भी सन्निधान होना चाहिए। जब अन्तरंग और बहिरंग ये दोनों कारण मिल जाते हैं तब उपयोग की जो प्रवृत्ति उस ज्ञान और दर्शन के साथ होगी, वही उसकी पहचान होगी, वही उसका कार्य होगा।

उपयोग हमेशा अपने चैतन्य के परिणाम के साथ चला करता है

इसलिए कहा गया है कि उपयोग हमेशा अपने चैतन्य के परिणाम के साथ चला करता है। मान लो सोना है, स्वर्ण, आपने क्या किया? उस सोने का कुछ भी उसमें process करके उसको अलग-अलग तरह की उसके लिए designs दे दी। आपने सोने का कुण्डल भी बना दिया। हो सकता है आप सोने का हार भी बना ले, सोने की आप कोई-भी अंगूठी बना ले, सोना तो सब में ही है। उपयोग उसका जैसे रूप में ढाल दिया जाएगा, उसका वह उपयोग उसी रूप में ढल जाएगा। इसी तरीके से जितनी इन्द्रियाँ मिली, जैसा ज्ञान का क्षयोपशम मिला, चेतना उसी के अनुसार काम करने लग गयी। यह चेतना तो नहीं छूटी, उसके रूप बदल गए। जैसे कुण्डल बना दिया, सोने का हार बना दिया, अंगूठी बना दी, ऐसे ही अलग-अलग चेतना की ये पर्यायें बन गई- पाँच-इन्द्रिय, चार-इन्द्रिय, दो-इन्द्रिय और इसमें जो है वह चेतना, अलग-अलग तरह से अपने ज्ञान के क्षयोपशम के अनुसार अपना ज्ञान आदि लिए हुए है। **चेतना का जो परिणाम है, वह तो कहीं पर किसी भी जीव में छूटता नहीं है। बस अन्तरंग और बहिरंग-कारणों की सन्निधि मिलने पर वह चेतना का उपयोग जैसा काम करना चाहिए, वैसा काम करने लग जाता है।** इसको बोलते हैं- उपयोग-स्वभाव वाला जीव यानि हमेशा जीव, जो उसको क्षयोपशम से मिला है, उसका वह कार्य करता रहता है और उसी के अनुसार उसमें वह कार्य करने की क्षमता आ पाती है। सबके उपयोग अलग-अलग चलते हैं। किसी को सिद्धान्त शास्त्र पढ़ने में उपयोग लगता है, किसी को अध्यात्म-शास्त्र पढ़ने में उपयोग लगता है, किसी को प्रथमानुयोग का भी ग्रन्थ पढ़ने में उपयोग लग सकता है, किसी को करणानुयोग का भी ग्रन्थ पढ़ने में उपयोग लग सकता है। वह भी उसके अपने अन्तरंग में जो क्षयोपशम है, उसी के अनुसार लगेगा, उसकी रुचि के अनुसार लगेगा।

अन्तरंग का क्षयोपशम और बाह्य कारणों के अनुसार भी उपयोग की प्रवृत्ति होगी



अन्तरंग का क्षयोपशम जैसा होगा, वैसे बाह्य-कारण भी अगर उसको मिल जाएँगे तो उपयोग की प्रवृत्ति उसके अनुसार होने लग जाएगी। किसी को संगीत-शास्त्र में अच्छा लगता है, किसी को नाट्य-शास्त्र में अच्छा लगता है। पढ़ाई तो तरह-तरह की है, उसके ज्ञान का क्षयोपशम उसी में काम करेगा। अब किसी को इतना ज्ञान में क्षयोपशम है कि वह संगीत के सब-सुर, सब-राग, सब जानेगा, उसे वह चीज कठिन नहीं लगेगी और यह तत्त्वार्थ सूत्र सुनेगा तो कहेगा- यह तो कुछ समझ ही नहीं आता है। क्या पढ़ाते रहते हैं महाराज! क्या बोलते रहते हैं? बोलते तो रहते हैं तो सुनने में तो आ रहा है लेकिन समझ तो कुछ नहीं आ रहा है। समझने की कोशिश करेगा तो समझ आएगा। जो हम कर रहे हैं, जो हमारी मशीन चल रही है, हमें उसी की knowledge दी जा रही है।

उपयोग के भेद कर्म क्षयोपशम पर आधारित है

उपयोग जीव का लक्षण है। आप अपने जीव के उस लक्षण के उपयोग के साथ ही चल रहे हो। जितना आप में क्षयोपशम है, जितना आप में अन्तराय आदि कर्मों का क्षयोपशम है, उतना ही आप में उत्साह आदि होगा। जितना आपके अन्दर पुण्य आदि है, उसी के अनुसार आपको अनुकूलताएँ मिलेंगी, उसी के अनुसार आपको बाहरी सुख-दुःख आदि की प्राप्ति होगी। इन सब में हमारा जो उपयोग लग रहा है, वह चेतना का ही व्यापार चल रहा है...यह समझना चाहिए। इसलिए **उपयोग का सम्बन्ध मुख्य रूप से ज्ञान और दर्शन के साथ है।** किसके साथ? **ज्ञानोपयोग** और **दर्शनोपयोग**, ये उस उपयोग के दो भेद हैं। बस! वही आगे के सूत्र में बताया जा रहा है-

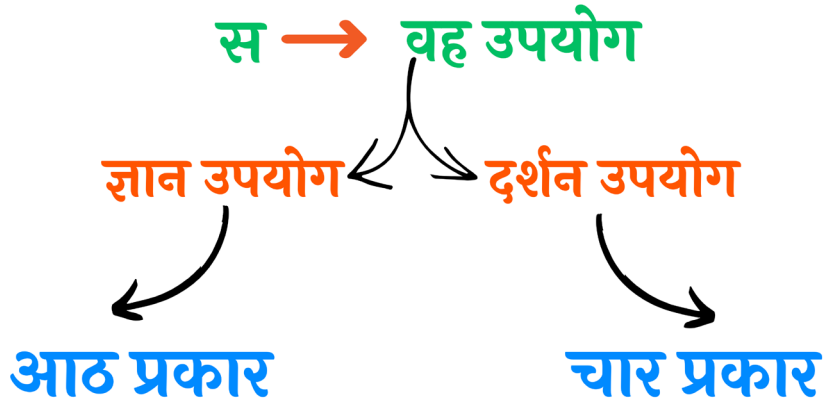
स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः ॥2.9॥

स - द्विविधः + अष्ट- चतुः + भेदः

दरश-ज्ञान उपयोग दो, उपयोगा के भेद।
चार-आठ उपभेद भी, क्रम से हो संवेद॥2.9॥

क्या लिखा है? **'स' मतलब 'वह' उपयोग, 'द्विविधः' दो प्रकार का है।** यहाँ यह नहीं बताया कौन-से दो प्रकार का है? उसके भेद बता दिये कि दो प्रकार में जो पहला प्रकार है, वह आठ प्रकार का है और दूसरा प्रकार है वह चार प्रकार का है। अब आप समझ लेना। समझ आ रहा है? ये सूत्र वचन होते हैं। जहाँ आपके लिए पहले अध्याय में बताया जा चुका है कि पाँच प्रकार के सम्यग्ज्ञान हैं, तीन प्रकार के मिथ्याज्ञान हैं तो अब आप उसी से इसको जोड़ लेना। क्या जोड़ लेना? अब समझ लेना, इतना तो आप ज्ञान चलाओ, हर चीज जो है बिल्कुल बच्चों की तरह लिख करके नहीं दी जाएगी। नहीं तो फिर सूत्र में और टीका में कोई अन्तर नहीं

रह जाएगा। बस! इतना लिख कर छोड़ दिया, अब आपको इसी से समझ लेना है। दो प्रकार का है, तो कौन-से दो प्रकार का है? ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। अब इन दो में भी हम पहले कौन-सा ले?, ज्ञान ले कि दर्शन ले? देखो! आगे जो भेद बताये हैं- आठ प्रकार के किसके भेद बनेंगे? ज्ञान के तो पहले क्या बोलना? ज्ञानोपयोग। चार प्रकार के भेद किसके बनेंगे? दर्शन के तो बाद में लेना दर्शन। ये सूत्रों के अर्थ खुलने के अलग-अलग तरीके के ये आनन्द हैं। दूसरी बात! यह भी होता है कि **सूत्रों में भी उन शब्दों को पहले लिखा जाता है जिनका महत्व अधिक हो, जिनकी पूज्यता अधिक हो,** उनको पहले लिखा जाता है। जो पहले आते हैं अक्षर-शब्द उनकी महत्ता अलग होती है और जो उसके बाद में आते हैं उनकी महत्ता अलग होती है।

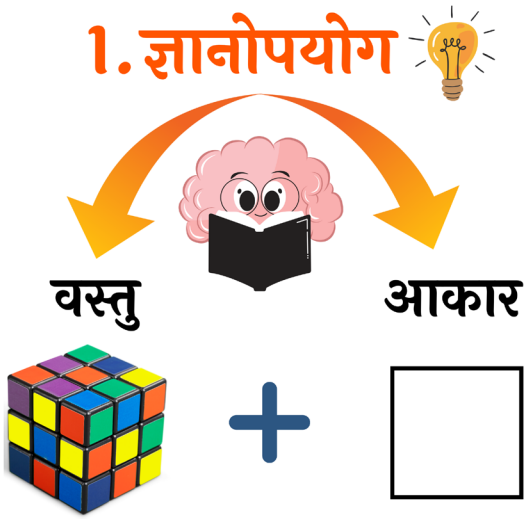


ज्ञान की महत्ता दर्शन से अधिक है

SCAN TO WATCH

ज्ञान और दर्शन में भी महत्ता किसकी है? ज्ञान की है, दर्शन की कम है। क्यों कम है? क्योंकि **ज्ञान जो है वह वस्तु के साकार स्वरूप को ग्रहण करता है मतलब आकार सहित वस्तु को जानता है और दर्शन जो है वह एक सामान्य-से आलोचन करता है।** आलोचन मतलब सामान्य-से सिर्फ देखता है, सामान्य-से वस्तु का ज्ञान करता है। बिना आकार के, बिना आकृति के, बिना रूप-रंग के जो सामान्य से वस्तु का ग्रहण होता है, वह कहलाता है- दर्शन और जो आकृति, रूप-रंग, size आदि के अनुसार जो हम वस्तु को ग्रहण करते है, वह कहलाता है- ज्ञान। एक ज्ञानोपयोग-एक दर्शनोपयोग। सिद्धान्त की दृष्टि से देखा जाए तो पहले दर्शनोपयोग होता है, फिर ज्ञानोपयोग होता है। यहाँ यह भी प्रश्न उठाया जा सकता है कि पहले दर्शनोपयोग होता है, तो पहले दर्शन का कथन करना चाहिए था...बाद में ज्ञान होता है, तो ज्ञान का कथन बाद में करते। सूत्र तो दोनों तरीके से बन सकते थे,सद्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः समझ आ रहा है? "स द्विविधश्चतुरष्ट भेदः" ऐसा सूत्र बन जाता। ऐसा ही क्यों बना दिया आपने सूत्र **"स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः"?** आचार्य कहते हैं पहले और बाद से कुछ मतलब नहीं होता। दर्शनोपयोग

पहले होता है, यह मैं भी जानता हूँ, ज्ञानोपयोग बाद में होता है, यह मैं भी स्वीकार करता हूँ लेकिन यह जानो **दर्शनोपयोग से कोई भी वस्तु को जाना नहीं जाता, निर्णय नहीं होता, संशय का निवारण नहीं होता। यह सब काम किसमें होते हैं? ज्ञान में होते हैं।** ज्ञानोपयोग ही वस्तु को आकार के साथ जानता है यानि जो भी कोई आप वस्तु जानते हो-देखते हो और जैसे ही कहते हो...इसका size यह है, यह काले रंग की है, यह पीले रंग का है। यह जैसे आपको जो कुछ भी उसकी आकृति नजर आती है या उसकी कोई विशेषता नजर आती है, वह समझ लो आपका ज्ञानोपयोग काम कर रहा है।



2. दर्शनोपयोग

- सामान्य से वस्तु का ज्ञान,
- आकार आदि निश्चित नहीं होना
- दर्शनोपयोग पकड़ में नहीं आएगा

ज्ञान पूज्य है उपकारी है

दर्शनोपयोग तो उसके पीछे था वह आपकी पकड़ में नहीं आएगा। दर्शनोपयोग कब हो जाएगा? आपको पकड़ नहीं आएगा। सामान्य वस्तु आपको कभी-भी देखने को नहीं मिलती। जब भी आप देखते हो-जानते हो विशेष को ही जानते हो। सामान्य का जो अवलोकन है, वह दर्शन है और विशेष का जो जानना है, वह ज्ञान है। इसलिए दर्शन पहले होते हुए भी ज्ञान से ज्यादा पूज्य नहीं है। पूज्यता उसकी होती है, जो सबसे ज्यादा उपकारी हो, सबसे ज्यादा काम में आये। पहले होने का मतलब भी पूज्य नहीं हो गया। जो काम में आये, उसके पास अक्षर छोटे भले ही हो, दर्शन में तीन अक्षर हैं, ज्ञान में दो अक्षर हैं, फिर भी ज्ञान की पूज्यता है इसलिए ज्ञान को पहले कहा जाएगा।

ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग के प्रकार

आठ प्रकार का ज्ञानोपयोग बताया गया। कौन-कौन-सा? पाँच प्रकार के सम्यग्ज्ञान थे... कौन-कौन-से? मतिज्ञानोपयोग, अब इसमें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आपने यह सब पढ़ा था। अब इसमें उपयोग जोड़-जोड़ कर के बोलो क्योंकि अब यहाँ ज्ञान के साथ उपयोग जुड़ रहा है।

1. मति-ज्ञानोपयोग
2. श्रुत-ज्ञानोपयोग
3. अवधि-ज्ञानोपयोग
4. मनःपर्यय-ज्ञानोपयोग और
5. केवल-ज्ञानोपयोग

तीन मिथ्या ज्ञानोपयोग -

6. कुमति-ज्ञानोपयोग
7. कुश्रुत-ज्ञानोपयोग
8. कुअवधि-ज्ञानोपयोग,

आठ प्रकार के क्या हो गए ये? ज्ञानोपयोग

चार प्रकार के दर्शनोपयोग बताए-

1. चक्षु-दर्शनोपयोग
2. अचक्षु-दर्शनोपयोग
3. अवधि-दर्शनोपयोग और
4. केवल-दर्शनोपयोग

ये चार प्रकार के दर्शनोपयोग हैं।

उपयोग का सम्बन्ध ज्ञान और दर्शन के साथ है

मनःपर्यय-ज्ञान के साथ में दर्शन नहीं होता, मनःपर्यय-ज्ञान से पूर्व में 'ईहा' नाम का मति ज्ञान होता है, उसी से वह वस्तु को जानता है। अन्य जो ज्ञान है, इनमें से जो क्षायोपशमिक-ज्ञान है, इन क्षायोपशमिक-ज्ञानों में पहले दर्शन होगा, बाद में ज्ञान आएगा। **लेकिन जब क्षायिक-ज्ञान होता है, तो क्षायिक-ज्ञान में, क्षायिक-ज्ञान और क्षायिक-दर्शनोपयोग, दोनों एक साथ काम करते हैं।** क्षायिक ज्ञान का मतलब केवल ज्ञानोपयोग और केवल दर्शनोपयोग। केवलज्ञान और केवलदर्शन, इसमें आगे-पीछे नहीं हैं। ये दोनों एक साथ वस्तु को जानेंगे...सामान्य को भी और विशेष को भी, एक साथ जानना-एक साथ देखना। अन्य जो उपयोग हैं, उनमें पहले दर्शनोपयोग होता है, बाद में ज्ञानोपयोग होता है। जब आप दर्शनोपयोग कर रहे हैं तो आपके लिए पता नहीं पड़ेगा लेकिन वह हुए बिना उस वस्तु का ज्ञान नहीं होगा, यह जान कर रखना।



संसारी जीवों में होने वाले दर्शनोपयोग

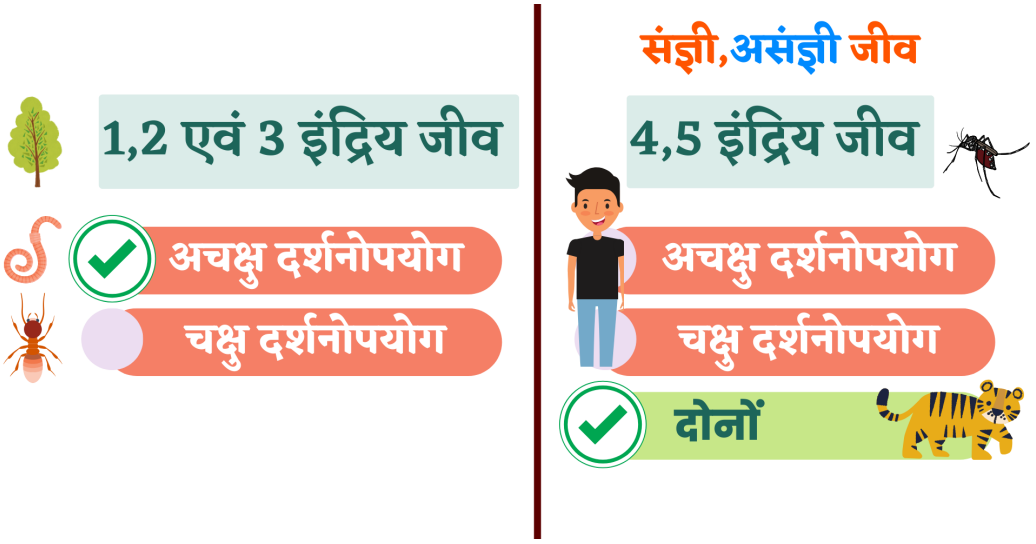


मति और श्रुत ज्ञान के साथ में संसारी जीवों के लिए जो थोड़ा सा काम में आने वाला उपयोग है, वह ज्ञानोपयोग के बारे में तो बता दिया गया है, थोड़ा-सा दर्शनोपयोग के बारे में भी जानना चाहिए। कितने प्रकार का दर्शनोपयोग? चार प्रकार का और उनमें से last का केवल दर्शनपयोग है। उसकी तो अभी कोई बात इसलिए नहीं करना क्योंकि वह तो केवलज्ञान होने के साथ होगा, वे जीव संसार से ऊपर उठ गए। अवधि-ज्ञानोपयोग के साथ में होने वाला अवधि-दर्शनोपयोग है, वह भी जब आपके अन्दर अवधि-ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होगा तब होगा, उसकी भी चलो चर्चा नहीं करते। **संसार में सब जीव जो मति और श्रुत ज्ञान के साथ रह रहे हैं,** इनमें कौन-कौन से जीवों में कौन-कौन से दर्शनोपयोग हो सकते हैं? यह आपको जानना चाहिए।

एकेन्द्रिय से संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में दर्शनोपयोग का कार्य किस प्रकार होगा?

चक्षु-दर्शनोपयोग को पहले ले लिया, अचक्षु-दर्शनोपयोग को बाद में लिया। इसमें भी यही कारण हो सकता है, होता है कि चक्षु हमारे लिए अधिक उपकारी है, अचक्षु कम उपकारी है। अन्य इन्द्रियों में चक्षु-दर्शनोपयोग ही है, सभी इन्द्रियों के दर्शनोपयोग नहीं है, केवल चक्षु-दर्शनोपयोग है मतलब जि**न जीवों के चक्षु-इन्द्रिय पाई जाएगी, उन्हीं के लिए चक्षु-दर्शनोपयोग होगा** और जो जीव चक्षु-इन्द्रिय से भी रहित हैं, जिनमें चक्षु-इन्द्रियावरण-कर्म का क्षयोपशम नहीं है, उन जीवों में केवल अचक्षु-दर्शनोपयोग ही काम करेगा। अब आप बताएँगे कि चक्षु-इन्द्रिय कहाँ से शुरु होती है? बोलो-बोलो! चार-इन्द्रिय से।

अचक्षु-दर्शनोपयोग कहाँ तक है?



एकेन्द्रिय में, दो-इन्द्रिय में, तीन-इन्द्रिय जीवों में कौन-सा दर्शनोपयोग होगा? अचक्षु-दर्शनोपयोग होगा। फिर चार-इन्द्रिय जीव में केवल चक्षु ही होगा केवल कि दोनों होंगे? अब उसमें दोनों शुरू हो गए, पिछले वाले छूट थोड़ा न गए। आँख आ गई तो इसका मतलब यह थोड़ी है कि हमें स्पर्शन-इन्द्रिय से कोई ज्ञान नहीं होगा कि रसना-इन्द्रिय से कोई ज्ञान नहीं होगा। उसके ज्ञान से पहले भी जो दर्शनोपयोग काम करेगा उसका नाम क्या होगा? अचक्षु-दर्शनोपयोग। मतलब चार-इन्द्रिय, असंज्ञी-पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय सभी जीवों में चक्षु दर्शनोपयोग भी मिलेगा और अचक्षु दर्शनोपयोग भी मिलेगा। चक्षु इन्द्रिय के साथ, ज्ञान के साथ में उससे पहले जो होने वाला, वस्तु को सामान्य रूप से जानने वाला, जो आत्मा की प्रक्रिया है या व्यापार है, उसका नाम हो गया...चक्षु-दर्शनोपयोग और अन्य इन्द्रियों से होने वाला जो ज्ञान है, उससे पहले जो आत्मा का एक सामान्य अवलोकन हो जाता है, वस्तु को सामान्य रूप से देखने में आ जाता है, उसका नाम होता है...अचक्षु दर्शनोपयोग।

संज्ञी जीवों में अचक्षु दर्शनोपयोग कैसे काम करता है?

आपके सिर के पीछे क्या है? हाथ लगा कर देखो! क्या है? अगर हाथ नहीं लगाओ तो पता नहीं है कि क्या है? बाल हैं? बिना हाथ लगाए ही महसूस हो रहे हैं? अब आदत में पड़ गया होगा तो न होते होंगे। अब कभी बाल बिल्कुल ही उतरवा कर देखो, फिर महसूस होने लग जाएगा। आप के पीछे अगर कोई बाल हैं और उन बालों में भी आप पीछे कुछ लगा लेते हो, क्या बोलते है उसको? गजरा...वह भी आप बिना देखे उसको लगा लेते हो और फिट बैठ जाता है, वह सही से लग



जाता है। चुटिया बनाने वाले सब अपनी चोटी बिना देखे ही बना लेते हैं। किससे बना लेते हैं? आपको दिख तो रहा है लेकिन वह कौन-सा उपयोग है? बिना आँखों के दिखने वाला वह अचक्षु दर्शनोपयोग है। ज्ञान से आप काम कर रहे हो लेकिन उससे पहले भी एक दर्शन चल रहा है, उसका नाम क्या है? अचक्षु दर्शनोपयोग। देखो! कितना अपने को पता पड़ जाता है।

मान लो आपको पसीना आ रहा है, गले से पसीना आ रहा है, आपको दिख तो नहीं रहा,



पसीना आपके गले पर टपकने लगेगा या रिसने लगेगा तो आपको उस पसीने का ज्ञान होने लगेगा, यहाँ पसीना आ रहा है; यह नाक के ऊपर पसीना आ रहा है, यह आपको ज्ञान हो रहा है, तो ज्ञान से पहले क्या होगा? दर्शन जरूर होगा तो वह दर्शन का नाम क्या है? जो आँखों से नहीं हो रहा है, उसका नाम हो गया- अचक्षुदर्शन। वह स्पर्शन-इन्द्रिय सम्बन्धी हो, चाहे रसना-इन्द्रिय सम्बन्धी हो, चाहे कर्ण-इन्द्रिय सम्बन्धी हो या घ्राण-इन्द्रिय सम्बन्धी हो, ये सब क्या कहलाएँगे? इन सबके ज्ञान से पहले होने वाला जो आपके लिए दर्शनोपयोग होगा, उसको क्या जानेंगे? अचक्षु दर्शनोपयोग। सुन रहे हैं! आप देखो! अपने उपयोग को, अपने चेतना के ज्ञानोपयोग-दर्शनोपयोग की प्रवृत्तियों को, आप कितनी तरीके से करते रहते हो? आपको पता कुछ नहीं है। बस यह ही है, automatic machine चल रही है, पसीना आ गया-पोंछ लिया, यह हो गया-वह कर लिया, यह कर लिया-वह कर लिया, यह हुआ क्यों? कर क्यों रहे? यह कभी जानने में नहीं आता।

हमारे उपयोग एक साथ काम नहीं करते



आप देखो! आपके पास कितने उपयोग हैं? अभी आप संज्ञी-पंचेन्द्रिय मनुष्य हैं तो बताएँगे आप! आठ प्रकार के उपयोगों में से आपके पास कितने उपयोग काम कर रहे हैं? ज्ञानोपयोग कितने? आप में कितने? 2 और दर्शनोपयोग कितने? 2, ये चार उपयोग आपके अन्दर काम कर रहे हैं। मतलब ज्ञान और दर्शन ये दो-दो रूप में आपके अन्दर काम कर रहे हैं। यह भी जानना, इन चार

में से एक समय पर, एक ही उपयोग होता है। क्या कहा? जिस समय दर्शनोपयोग काम करेगा तो ज्ञानोपयोग नहीं करेगा। दर्शनोपयोग में भी अचक्षु काम करेगा तो चक्षु नहीं करेगा। चक्षु करेगा तो अचक्षु नहीं करेगा और ज्ञान में भी जब मतिज्ञान काम करेगा तो श्रुतज्ञान नहीं करेगा। श्रुतज्ञान करेगा तो मतिज्ञान नहीं करेगा क्योंकि आत्मा तो एक ही है न! उसके ये चार तरीके के उपयोग हैं। इनसे वह आत्मा हर समय जानना-देखना, जानना-देखना जल्दी-जल्दी बहुत-सारी चीजों का एक-साथ, सब करने की कोशिश करता है, इतनी उसमें क्षमता होती है। इस प्रकार के अपनी अन्तरंग आत्मा को आप आँख बंद करके तभी जान पाएँगे जब आपको पता हो कि भीतर क्या है? अन्यथा आँख बंद करने के बाद अंधेरा दिखाई देगा, कुछ नहीं दिखेगा।

कर्म के क्षयोपशम और लब्धियों के अनुसार जीव के उपयोग की परिणति बनती है

अब आँख बंद करके क्या देखना? मेरी चैतन्य-आत्मा में मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से, श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से, वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से, मतिज्ञान श्रुतज्ञानोपयोग निरन्तर प्रवाहित है। चक्षु-दर्शनावरण, अचक्षु-दर्शनावरण कर्मों के क्षयोपशम से चक्षु-दर्शनोपयोग, अचक्षु दर्शनोपयोग की निरन्तर धारा चल रही है लेकिन इतने उपयोगों में भी प्रति समय एक-एक उपयोग ही काम करता है। हर अन्तर्मुहूर्त में वह उपयोग बदल करके बिना थके, बिना रुके अपना निरन्तर काम करता रहता है। यह हमेशा machine चलती रहती है। जैसे क्षयोपशम मिले, वैसे इस जीव ने उपयोग की परिणति बना ली, वैसी-ही लब्धियाँ हुई और वैसी उपयोग की परिणति बन गयी।

मतिज्ञान का, श्रुतज्ञान का, इतना जघन्य क्षयोपशम

मैं ज्ञानवान-चैतन्य आत्मा हूँ



यही देखो आप, अन्य भी जो एकेन्द्रिय आदि जीव हैं उनमें भी देखो आप, क्या चल रहा है? उनमें मतिज्ञान का, श्रुतज्ञान का, इतना जघन्य क्षयोपशम है, इतना न्यून क्षयोपशम है कि

वह उन्हें महसूस ही नहीं होता कि मैं ज्ञानवान-चैतन्य आत्मा हूँ, उनको महसूस ही नहीं हो सकता। यही आपके अन्दर उपयोग की परिणति, जब दूसरे जीवों के भी जीवत्व को पहचानने में काम आएगी तभी आप समझ पाओगे कि जीव की पहचान करना कितना कठिन काम है। यह विज्ञान के भरोसे का काम नहीं है। विज्ञान क्या देखेगा जीव को? इसलिए कहा जाता है विज्ञान को कुछ नहीं आता। विज्ञान तो केवल पुद्गलों का समावेश कर सकता है। तरह-तरह के जो लोहा-चांदी ये item और ये जो भी, पुद्गल-वर्गणाएँ जो पकड़ में आ जाती हैं, शब्द हैं पकड़ में आ जाते हैं तो इनका संचार करना, दूरसंचार दूरदर्शन, इस तरह की जो सब पुद्गल के आश्रित जितनी भी technology है, वे सब पुद्गल के आश्रित हैं। जीव के आश्रित विज्ञान के पास कोई खोज नहीं होती है। इतना-सा समझ करके, आप आज अपने उपयोग को, इस प्रकार के भेदों के साथ जानकर अपने जीव का लक्षण पकड़ कर रखना कि जीव का लक्षण तो यही है, यही आगे काम में आएगा। अन्य जो इसके अलावा है, वह जीव का लक्षण नहीं है, सिर्फ यही जीव का लक्षण है, यह जानना ही इन दो सूत्रों का एक उद्देश्य है।

बोलो महावीर भगवान की जय।

सारांश

1. हमने सूत्र 8 में जीव का लक्षण समझा
2. द्रव्य के **विशिष्ट-गुणधर्म** या special quality जिससे एक वस्तु को बहुत सारी **वस्तुओं से पृथक** कर सकें लक्षण कहते हैं
3. संसार-अवस्था में जीव **कर्म के साथ,** पुद्गल-शरीर के साथ मिला हुआ है, उसकी पहचान करने के जीव का लक्षण जानना जरूरी है
    - अजीव-पदार्थ तो हमें प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं
    - उनके बीच में जीव को लक्षण से पहचानते हैं
4. आत्मा का **असाधारण लक्षण** ऐसा होना चाहिए जो अन्य द्रव्यों में न पाया जाए
5. साधारण लक्षण सभी द्रव्यों में पाए जाने वाले गुणधर्म होते हैं
6. हमने जाना आत्मा का लक्षण है **"उपयोगो लक्षणं"**
    - इसके ही माध्यम से हम जीव को अन्य दूसरे जीवों से अलग कर सकते हैं
    - और कर्म आदि से भी अलग कर सकते हैं
    - जीव कभी भी अपने उपयोग रूपी लक्षण को नहीं छोड़ता
7. यहाँ उपयोग का मतलब किताब के, वस्त्र के, सोने-चांदी के उपयोग से नहीं है
8. उपयोग का अर्थ है जो आत्मा के साथ निरन्तर रहने वाला उसका चैतन्य-परिणाम
    - जिसका वह हमेशा अनुकरण करता है
    - उसकी हमेशा धारण करता है
    - और कभी छोड़ता नहीं है
9. उपयोग को चैतन्य का **अनुविधायी परिणाम** भी कहते है
10. सिर्फ पंचेन्द्रिय-जीव को जीव समझना बहुत ही व्यवहारिक स्थूल दृष्टि है
11. हमने समझा कि जीव सिद्धान्त समझने से हम अनेक तरह के जीवों की पर्यायों का ज्ञान कर पाएंगे और जीव को जान पायेंगे
12. चैतन्य-स्वभाव जीव पारिणामिक-भाव है
    - यह हर जीव में पाया जाने वाला, अनुभव करने वाला **एक सामान्य भाव** है
13. जब यह वस्तुओं को जानने में काम करता है उसे जानने का व्यापार कहते हैं
    - यहाँ व्यापार का अर्थ व्यवसाय नहीं बल्कि क्रिया, प्रक्रिया, आदान-प्रदान
    - जैसे जब हमने आँख खोलकर किसी वस्तु को देखा तो यह चक्षु-इन्द्रिय का व्यापार हो गया
14. आत्मा के अन्दर निरन्तर **यह जानने-देखने का व्यापार** चलता है उसे ही उपयोग कहते हैं
15. संसार के सभी जीवों का उपयोग अलग अलग होता हैं
    - और यह बाह्य और अभ्यंतर हेतुओं के सन्निधान पर उत्पन्न होता है

- जिसके पास जितनी अन्तरंग और बहिरंग सामग्री है, उसी के अनुसार उपयोग की क्रिया होगी

16. लक्षण हमेशा दो प्रकार के होते हैं आत्मभूत और अनात्मभूत
17. **आत्मभूत लक्षण** वस्तु में मिले होते हैं, उसी स्वभाव वाले होते हैं
- जैसे अग्नि की उष्णता; इसमें अग्नि और उष्णता दोनों अलग-अलग नहीं है

18. **अनात्मभूत लक्षण** वस्तु के अन्दर नहीं समाये होते और ऊपर से उसने ले किये होते हैं
    - संयोग के कारण से वे उसकी पहचान बन गए होते हैं
    - जैसे चश्मे वाला कहकर किसी की पहचान करना

19. किसी नारियल को अगर रंग से रंग दें तो यह इसका अनात्मभूत लक्षण है
20. और इसके अन्दर की सफेद गिरी उसका आत्मभूत लक्षण है
21. जीवों के लिए **बाह्य और अन्तरंग** दोनों ही हेतु **आत्मभूत और अनात्मभूत** होते हैं
22. इन्हीं बाह्य और अन्तरग कारणों के अनुसार ही उपयोग की प्रवृत्ति होती है
23. जीव की इन्द्रिय उसका **बाह्य आत्मभूत लक्षण** हैं क्योंकि वह जहाँ-जहाँ रहेगा, इन इन्द्रियों को लेकर के चलेगा
24. और जो उसने अलग कपड़े, चश्मा, टोपी आदि पहने हैं, वे उसका **बाह्य अनात्मभूत लक्षण** हो गए
    - वे उसकी आत्मा के साथ हमेशा रहने वाला नहीं हैं
    - इसी तरह जो भी चीजें इन्द्रियों के लिए सहायक होंगी, जैसे चक्षु के लिए प्रकाश या सुनने के लिए mic, वे भी अनात्मभूत बाह्य लक्षण हैं

25. **बाह्य अनात्मभूत कारणों** को भी हटाने से उपयोग में अन्तर आ जाता है
- जैसे अंधकार हो जाने पर जानने-देखने की प्रक्रिया बंद ही हो जाती है

26. चमगादड़, उल्लू आदि का उपयोग अंधकार में ही काम करता है
27. इन्द्रियों की हीनाधिकता होने पर, उपयोग की परिणति भी कमती-बढ़ती हो जाती है
    - जैसे असंज्ञी जीव सुनेगा सब, **मगर मन के आभाव** में समझेगा नहीं
    - वहीं **चार इन्द्रिय** जीव सुन ही नहीं सकेगा

28. हमने जाना कि **अन्तरंग आत्मभूत हेतु** में हमारे अन्दर ज्ञानावरण आदि कर्मों का क्षयोपशम होता है
- जीव इनके कारण ही बाह्य हेतुओं के सानिध्य से अपना कोई व्यापार कर पाता है
- बिना ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के जीव **इन्द्रियाँ** होने पर भी **नहीं** जान पायेगा

29. **अन्तरंग अनात्मभूत हेतु** में मन-वचन-काय की पुद्गल वर्गणाओं आती हैं
    - ये आत्मा का स्वभाव नहीं है
    - लेकिन आत्मा इसी से अपना काम कर रही है

30. हमने जाना किसी चीज को जानने, देखने के लिए **अन्तरंग और बाह्य दोनों हेतुयों का सन्निधान** होना चाहिए

31. उपयोग हमेशा अपने चैतन्य के परिणाम के साथ चलता है
    - जैसे सोने से हम कुण्डल, हार आदि बनाकर उसको उस रूप ढाल लेते हैं
    - उसी प्रकार इन्द्रियाँ, ज्ञान का क्षयोपशम आदि के अनुसार हमारी चेतना भीउस रूप ढल जाती है

32. चेतना का परिणाम कहीं पर किसी भी जीव में नहीं छूटता
    - इसे **उपयोग-स्वभाव वाला** जीव कहते हैं

33. हमने देखा कि ज्ञान के क्षयोपशम अनुसार ही लोगों को चीजें कठिन या सरल लगती हैं
    - किसी को संगीत-शास्त्र अच्छा लगता है
    - तो किसी तो तत्वार्थ सूत्र
    - तो किसी तो प्रथमानुयोग के ग्रन्थ

34. जीव को अन्तराय आदि कर्मों के क्षयोपशम के अनुसार ही अनुकूलताएँ मिलेंगी, बाहरी सुख-दुःख की प्राप्ति होगी

35. सूत्र 9 में हमने उपयोग के भेदों को जाना

36. सिद्धान्त की दृष्टि से पहले दर्शनोपयोग होता है, फिर ज्ञानोपयोग

37. **जहाँ दर्शन** वस्तु का सामान्य अवलोकन करता है और उसका निर्णय नहीं कर पाता

38. **ज्ञान** वस्तु के साकार, विशेष स्वरूप को ग्रहण करता है और उसका निर्णय करता है

39. इसलिए ज्ञान पूज्य है, उपकारी है

- और सूत्र में दर्शन से पहले आता है

40. ज्ञानोपयोग **पाँच सम्यक् ज्ञानोपयोग** और **तीन मिथ्या ज्ञानोपयोग** के भेद से आठ प्रकार का होता है
    - मति-ज्ञानोपयोग
    - श्रुत-ज्ञानोपयोग
    - अवधि-ज्ञानोपयोग
    - मनःपर्यय-ज्ञानोपयोग और
    - केवल-ज्ञानोपयोग

ये सभी सम्यग्ज्ञानोपयोग हैं

41. और
    - कुमति-ज्ञानोपयोग
    - कुश्रुत-ज्ञानोपयोग और
    - कुअवधि-ज्ञानोपयोग

ये सभी मिथ्या ज्ञानोपयोग हैं

42. **दर्शनोपयोग** चार प्रकार के हैं
    - चक्षु-दर्शनोपयोग
    - अचक्षु-दर्शनोपयोग

- अवधि-दर्शनोपयोग और
- केवल-दर्शनोपयोग

43. हमने जाना कि क्षायोपशमिक-ज्ञानों में पहले दर्शन होगा, बाद में ज्ञान होगा
44. और क्षायिक ज्ञान में दर्शन और ज्ञान साथ-साथ होते हैं
    - यानि सामान्य अवलोकन और विशेष ज्ञान एक साथ होता हैं
45. मनःपर्यय-ज्ञान से पहले दर्शन नहीं होता बल्कि **"ईहा"** मति ज्ञान होता है
46. अभी हमें केवल-दर्शनोपयोग और अवधि-दर्शनोपयोग नहीं होगा
47. सिर्फ मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के साथ होने वाले **चक्षु-दर्शनोपयोग** और **अचक्षु-दर्शनोपयोग** होगा
48. इनमें **चक्षु-दर्शनोपयोग** हमारे लिए अधिक उपकारी है इसलिए क्रम में पहले आता है
49. चक्षु दर्शनोपयोग **चक्षु दर्शनावरणीय कर्म** के क्षयोपशम और **चक्षु इन्द्रिय** के साथ होता है
50. अचक्षु दर्शनोपयोग **अचक्षु दर्शनावरणीय कर्म** के क्षयोपशम और **बिना चक्षु इन्द्रिय** के होता है
    - एकेन्द्रिय, दो-इन्द्रिय और तीन-इन्द्रिय जीवों में सिर्फ **अचक्षु-दर्शनोपयोग** होता हैं
    - चार-इन्द्रिय, असंज्ञी-पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में **चक्षु और अचक्षु-दर्शनोपयोग** दोनों होते हैं
51. संज्ञी जीवों में ज्ञान चाहे स्पर्शन-इन्द्रिय सम्बन्धी, रसना-इन्द्रिय, कर्ण-इन्द्रिय सम्बन्धी या घ्राण-इन्द्रिय सम्बन्धी हो, इन सबसे पहले होने वाला दर्शनोपयोग अचक्षु दर्शनोपयोग होता है
    - जैसे बिना पीछे देखे चोटी बना लेना
    - या बिना देखे यह जानना कि गले से पसीना बह रहा रहा है
52. हमने जाना कि अभी हमारे 2 ज्ञानोपयोग और 2 दर्शनोपयोग काम कर रहे हैं
    - मगर आत्मा में एक समय पर चारों में से एक ही उपयोग काम करता है
    - चाहे वो मति-ज्ञानोपयोग, श्रुत-ज्ञानोपयोग हो या चक्षु-दर्शनोपयोग, अचक्षु-दर्शनोपयोग
    - यह हर अन्तर्मुहूर्त में बदलता है और बिना थके, रुके अपना निरन्तर काम करता रहता है
    - इससे आत्मा हर समय जानने देखने की प्रक्रिया करता है
53. चैतन्य आत्मा में कर्म के क्षयोपशम और लब्धियों के अनुसार जीव के उपयोग की परिणति बनती है

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1. जीवत्व रूप भाव कौन सा भाव है?
1. क्षायिक भाव
2. औपशमिक भाव
3. पारिणामिक भाव
4. औदयिक भाव

Q2. उपयोग क्या होता है?
1. मन की क्रिया
2. शरीर की क्रिया
3. चैतन्य का अनुविधायी परिणाम
4. व्यापार करना

Q3. अनुविधायी परिणाम किसे कहते हैं ?
1. निरंतर रहना
2. अनुकरण करना
3. दोनों
4. कोई नहीं

Q4. सभी जीवों का उपयोग एक जैसा होता है यह कथन-
1. सत्य
2. असत्य
3. दोनों

Q5. उपयोग के हेतु क्या हैं ?
1. बाह्य
2. अभ्यंतर
3. दोनों
4. कोई नहीं

Q6. आत्मभूत लक्षण क्या हैं ?
1. वस्तु का स्वभाव
2. वस्तुत्व
3. अस्तित्व
4. नास्तित्व

Q7. कौन सा लक्षण आत्मा के साथ हमेशा रहता है?
1. आत्मभूत लक्षण
2. अनात्मभूत लक्षण

Q8. अंतरंग हेतु के बिना बाह्य हेतु कार्यकारी नहीं है
1. सत्य
2. असत्य

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q9. ज्ञानोपयोग कैसा है?
1. निराकार
2. साकार
3. दोनों
4. कोई नहीं

Q10. दर्शनोपयोग कैसा है?
1. निराकार
2. साकार
3. दोनों
4. दोनों नहीं

Q11. दर्शन ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण है, यह कथन-
1. सत्य है
2. असत्य है

Q12. कौन सा उपयोग पूज्य है?
1. दर्शन
2. ज्ञान
3. चारित्र

Q13. ज्ञानोपयोग कितने प्रकार का है
1. 8
2. 5
3. 4
4. 12

Q14. सम्यक् ज्ञानोपयोग कितने प्रकार का है?
1. 8
2. 5
3. 6
4. 9

Q15. ज्ञान और दर्शन एक साथ कहाँ होते हैं?
1. श्रुत ज्ञान
2. अवधि ज्ञान
3. केवल ज्ञान
4. कभी नहीं

Q16. सिध्दांतः पहले कौन सा उपयोग होता है?
1. ज्ञानोपयोग
2. दर्शनोपयोग
3. दोनों साथ होते हैं



TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें



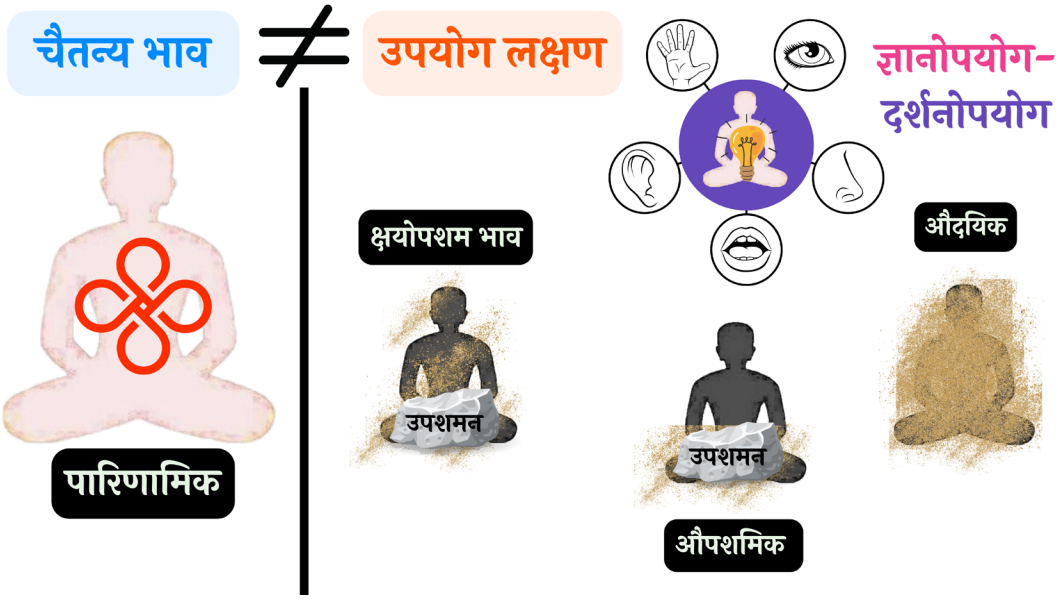
अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1. लक्षण किसे कहते हैं ?
2. उपयोग किसका लक्षण है?
3. उपयोग किसे कहते हैं?
4. जीव के आत्मभूत और अनात्मभूत लक्षण बताइये ।
   इंद्रियाँ , टोपी , चश्मा , प्रकाश
5. उपयोग कितने प्रकार का होता है?
6. ज्ञान और दर्शन द्वारा वस्तु के ग्रहण में क्या भिन्नता है? समझाइये।
7. कितने ज्ञानोपयोग सम्यक् है और कितने मिथ्या?
8. कौन-कौन से ज्ञानोपयोग के पहले दर्शनोपयोग होता है?
9. इन जीवों में कौनसा दर्शनोपयोग तथा ज्ञानोपयोग होगा ?
   बरगद का पेड़ , लट , खटमल , अग्निकायिक जीव , झिंगुर , केंचुआ , टिड्डा , शंख
10. क्षायिक ज्ञान और क्षायिक दर्शन में से पहले क्या होगा ?

प्रवचन 09

सभी भावों की अनुभूति उपयोग ही करता है

उपयोग के भेदों का वर्णन करने के बाद आचार्य आगे उस विषय को बढ़ाते हुए, अब जीवों के भेदों की चर्चा करने वाले हैं। यह तो हमने जान लिया कि जीव का जो मुख्य लक्षण है...वह उपयोग है और यह भी जान लिया कि जीव का एक जो पारिणामिक भाव है...वह जीवत्व है। उस **जीवत्व रूप पारिणामिक भाव में और जो उपयोग लक्षण है, उसमें जो अन्तर आता है,** वह भी आप लोगों ने लगभग-लगभग समझ ही लिया होगा कि **पारिणामिक भाव तो जीव के चैतन्य भाव के साथ हमेशा चला करता है किन्तु जो जीव का उपयोग लक्षण है, वह उपयोग अनेक तरह से परिवर्तित होता रहता है।** ज्ञानोपयोग-दर्शनोपयोग तो है ही, इसके साथ-साथ **जिस इन्द्रिय वाला जो जीव होता है, उसके अनुसार उपयोग में अनेक तरह की भावात्मक परिणति बनती जाती है।** अब उपयोग है, तो उपयोग में हर तरह की जो अनुभूति है, ज्ञान है, वह सब आएगा ही। हम यूँ भी कह सकेंगे कि उपयोग में सब प्रकार के जो भाव हैं, वे सब आ जाएँगे। क्योंकि सबकी अनुभूति कौन करेगा? उपयोग ही करेगा। पारिणामिक भाव की अनुभूति भी उपयोग ही करेगा। क्षायिक भाव, क्षयोपशम भाव, औपशमिक भाव, औदयिक भाव सब की अनुभूति उपयोग ही करेगा। अगर उपयोग नहीं करेगा तो उस भाव का कोई मतलब भी नहीं रहेगा।



चैतन्य लक्षण और उपयोग लक्षण में बड़ा अन्तर है

उपयोग भी जीव का स्वभाव है और जो चैतन्य रूप परिणाम है, वह भी जीव का एक बहुत बड़ा लक्षण है। लेकिन इन दोनों में यह अन्तर भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जो **चैतन्य है, वह तो पारिणामिक भाव है और जो उपयोग है, वह सभी प्रकार के भावों पर निर्भर करता है।** एक आपके लिए यह नया विषय भी हो सकता है। इस तरह से विभाजन करके, कहीं शायद आप लोगों ने न सुना हो। क्योंकि जो हमें पढ़ाया जाता हैं, हम सिर्फ उतना ही पढ़ते हैं, जितना प्रश्नोत्तरों के रूप में या कहीं टीका आदि में लिखा हुआ होता है। कुछ हम पूर्वापर अगर चिन्तन बनाकर के कोई चीज आपके लिए देते हैं तो वे अपने आप में ज्ञान की वृद्धि के लिए एक अच्छी सामग्री होती है। आप यह समझ ले कि चैतन्य लक्षण और उपयोग लक्षण में कितना बड़ा-अन्तर आपके सामने आ जाता है। जबकि पहले कहा था कि चैतन्य का ही परिणाम उपयोग है-

SCAN TO WATCH

"चैतन्यानुविधायिपरिणामः उपयोगः"

चैतन्य तो चैतन्य ही है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं है लेकिन बहिरंग और अन्तरंग हेतु के अलग-अलग तरह से मिलने पर जो चैतन्य का अलग-अलग रूप से परिणमन होता है, वह उपयोग कहलाता है। एक तरह से चैतन्य का बहुत-बड़ा विस्तार है, वह उपयोग के रूप में हमें दिखाई देता है। ऐसा चैतन्य भाव में और उपयोग स्वभाव में या उपयोग लक्षण में अन्तर जानना। बहुत अधिक लोग इस विषय में confused ही रहते हैं। आपको इस तरह की विवेचना से यह confusion दूर हो जाने चाहिए।

जीव के मुख्य रूप से दो ही भेद हैं

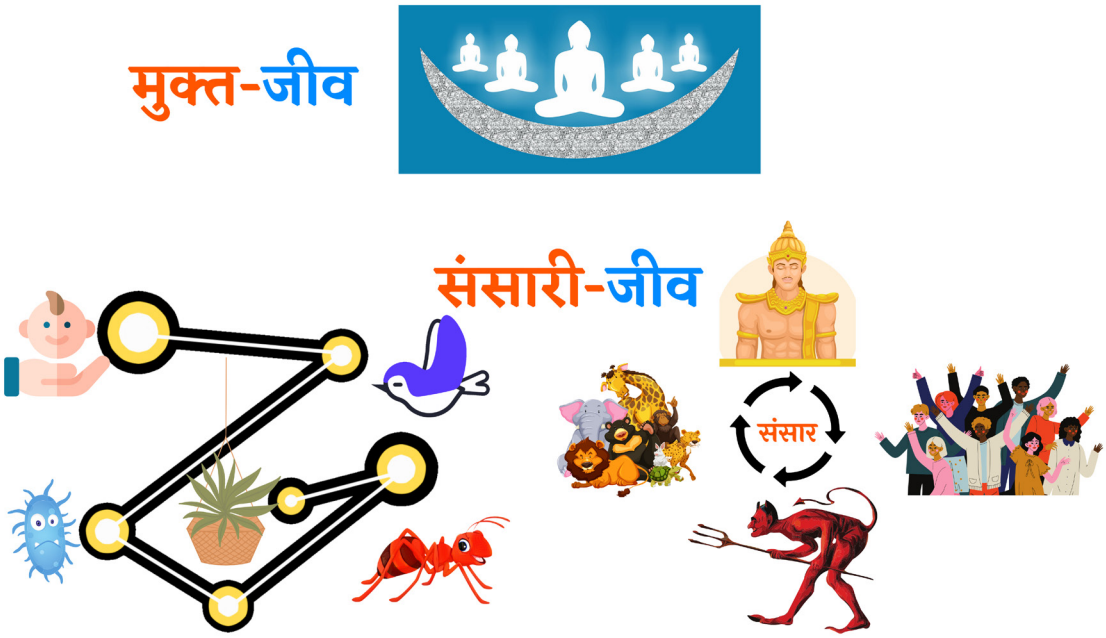
अब आगे की चर्चा करते हैं कि जो हमने जीव का लक्षण तो जाना लेकिन जीव कितने तरह के होते हैं? जीव एक ही प्रकार का है कि अनेक प्रकार के हैं? यहाँ पर आचार्य आगे जीव का विभाजन स्थूल और मुख्य रूप से करते हुए, आगे का सूत्र कहते हैं...

संसारिणो मुक्ताश्च ॥2.10॥

परिवर्तन जो पाँच हैं, उनमें भटके जोय।
संसारी वे जीव हैं, भेद-मुक्ति सह दोय॥2.10॥

इसमें तीन शब्द हैं- संसारी, मुक्त और च। 'च' का भी अपने आप में महत्व होता है। संसारी का मतलब जो **'संसरण'** करे मतलब जो परिवर्तन करे, उसका नाम है- संसारी-जीव। जीव के मुख्य रूप से दो ही भेद हैं...जो संसार में परिवर्तन करे, संसार में परिणमन करे, जिसका एक गति से दूसरी गति में **'संसरण'** होता रहे, उसका नाम है- **संसारी-जीव** और जिनमें इस तरह का कोई **'संसरण' न हो**, परिवर्तन न हो, उन्हें कहा जाता है- **मुक्त-जीव।** जीव दो प्रकार

के हैं। ऐसा नहीं समझना कि हम संसार में हैं तो हमें केवल संसारी-जीव ही दिखते हैं तो संसारी-जीवों को ही हम माने। जो संसार को अपने पुरुषार्थ से छोड़ चुके हैं और संसार से मुक्त हुए हैं, इस **'संसरण'** को जिन्होंने तोड़ा है, ऐसे मुक्त-जीव भी **अनन्त की संख्या में हैं।** अनादि काल से होते आए हैं और आगे भी अनन्त काल तक होते रहेंगे। संसारी-जीव और मुक्त-जीव, यही जीवों का मुख्य रूप से दो प्रकार का एक भेद ज्ञान हो जाता है।



संसारी जीव में किस-किस प्रकार से परिवर्तन होते हैं?

संसारी में परिवर्तन होता है, परिवर्तन का नाम ही संसार है, यूँ कह लो। परिवर्तन किसका? हर चीज का।

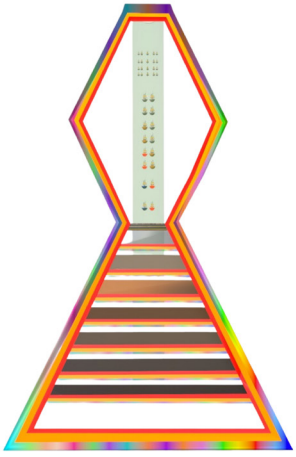
- आपके पास में जो शरीर है, उस शरीर का परिवर्तन। जो आपने कर्म बांधे हैं, उन कर्मों का परिवर्तन। यह सब **द्रव्य-परिवर्तन** कहलाएगा।
- जिस स्थान पर आप जन्म लिये हो, उस स्थान से किसी अन्य स्थान पर जन्म होना, वहाँ से पुनः किसी अन्य स्थान पर जन्म होना, वहाँ से फिर अन्य स्थान पर जन्म होना, हर जगह पर जन्म होना, हर जगह पर मरण होना, यह सब परिवर्तन निरन्तर संसारी-जीव करता ही रहता है, **यह क्षेत्र-परिवर्तन है;** क्षेत्र का बदलना। आप नहीं बदलोगे तो भी यह स्वभाव है, कर्म आपको यहाँ से कहीं और ले जाकर के जन्म देंगे। आपको कहीं और ले जाकर के आपकी व्यवस्था बनाएँगे। यह क्षेत्र-परिवर्तन होता रहता है।
- इसी-तरह से जिस समय पर आपने जन्म लिया है, कोई जरूरी नहीं हमेशा उसी समय

1.द्रव्य-परिवर्तन





2. क्षेत्र-परिवर्तन



पर आपका जन्म होता रहे, अगला जन्म न जाने किस समय पर हो? कितने ही जन्म हो चुके होते हैं और कितना ही समय निकल चुका होता है। जीवों का हर समय पर जन्म होता है, हर समय पर मरण होता है, **काल की अपेक्षा** से भी यह परिवर्तन होता रहता है।

- **भव की अपेक्षा** से भी परिवर्तन होता है। यह जीव कभी मनुष्य भव में है, कभी नारकी भव में है, कभी तिर्यंच भव में हैं और कभी देव-गति आदि में चला जाता है, तो भवों का भी परिवर्तन चलता रहता है, भव की अपेक्षा से परिवर्तन होता है।

3. काल परिवर्तन



4. भव-परिवर्तन



5. भाव-परिवर्तन



- **भाव परिवर्तन** भी होता ही रहता है, जो आप जानते हो। कभी बहुत तीव्र कषायें हैं, कभी

मन्द कषायें हैं, कभी मध्यम quality की कषायें हैं। कभी कषायों के साथ मन और शरीर का योग भी जुड़ जाता है, कभी वचन-योग भी जुड़ जाता है, कभी बिना उसके भी कषाय अनुभूति में आ जाती है। तरह-तरह के परिवर्तन होते रहते हैं। कभी किसी निमित्त से कषाय हो जाती है, कभी किसी निमित्त से हो जाती है, कभी बिना निमित्त के भी हो जाती है। यह क्या हो गया? यह भावों में परिवर्तन चलता रहता है। संसार इसी का नाम है।

- जिसमें द्रव्य मतलब जो कोई भी पुद्गल रूप शरीर है या उस पुद्गल रूप शरीर को बनाने वाले कोई भी आहार आदि हैं, इन सब का ग्रहण करना, छोड़ना, सब **द्रव्य परिवर्तन** है।
- कोई-भी ऐसा क्षेत्र नहीं होना जहाँ पर कि इस जीव ने जन्म न लिया हो, जहाँ पर इस जीव ने मरण न किया हो। ऐसा कोई भी पूरे लोक में कोई point न होना, यह सब **क्षेत्र-परिवर्तन** है।
- कोई-भी ऐसा समय न होना, जिस समय पर आपका जन्म न हुआ हो, मरण न हुआ हो। आज आप इस समय पर यहाँ बैठे-बैठे सुन रहे हो या दूर से कहीं-भी कोई सुन रहे हैं, पहले इसी समय पर हम कहीं जन्म भी ले रहे होते होंगे। इसी समय पर हमारा कहीं मरण भी हो रहा होगा। समझ आ रहा है? समय कोई ऐसा बचा नहीं जिसमें जन्म न हुआ हो, मरण न हुआ हो। इसका नाम है- **काल परिवर्तन।**
- ऐसे ही कोई-भी भव, संसार, कोई-भी गति, जिसकी किसी-भी आयु के साथ में हमारा जन्म बाकी नहीं बचा, सब आयु जघन्य से लेकर के उत्कृष्ट तक, minimum से लेकर के maximum तक हमको मिल चुकी हो। जितनी lower limit से upper limit आयु की होती है, वह एक-एक वृद्धि को प्राप्त करके भी हमने एक-एक आयु को भोगा है। इसका नाम क्या है? **भव-परिवर्तन।**

हमें बार-बार एक जैसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव मिल चुके हैं



यह हो चुका है, यह नहीं समझना अभी कुछ बाकी है। अभी शायद हमने पूरी limit touch न की हो, ऐसा नहीं समझना। सब ही limit हर एक संसारी जीव छू चुका है, पा चुका है और छोड़ चुका है। बचा कुछ नहीं है। अब जो हम कर रहे हैं, वह उसी का repetitions कर रहे हैं, नया कुछ नहीं लेते हैं। न **द्रव्य** कोई नया मिलता है, न **क्षेत्र** नया मिलता है, न **समय** कोई नया आता है, न कोई नया संसार आपके लिए आता है, न कोई नया **भाव** आपके लिए आता है। वही-वही होता है और इसी का बार-बार प्राप्त करना, बार-बार वही चीज आकर के हमें मिलना, **इसी को ही एक परिवर्तन या परावर्तन भी कहा जाता है।** सैद्धान्तिक शब्दों में कुछ ज्यादा अन्तर नहीं है- परिवर्तन और परावर्तन। परिवर्तन हर समय भी हो रहा है और एक बड़ा-परिवर्तन जब हमारे लिए देखने में आ जाता है, तो भी वह परिवर्तन होता है। कहीं-कहीं उसको परावर्तन भी कह दिया जाता है, तो कोई अलग बात नहीं है। है, तो सैद्धान्तिक-रूप से

एक ही बात। इसी **पाँच प्रकार के ये जो परिवर्तन हैं, इन्हीं में यह संसारी-जीव का निरन्तर परिवर्तन होता हैं, संसरण होता हैं, नया कुछ भी नहीं होता।**

नया संसार मिला, यह सोच तो मिथ्यात्व है

आप सोचते हो...एक नया संसार मिला, एक नया संसार बसाएँगे। पूर्व में जितना भी है, आगे में जितना भी आएगा, सब भोग चुके? आगे का भी बन चुके हैं? आगे का तो जो भी आप बनोगे, अगर संसार में ही रहकर के बनना है, तो वह भी बन चुके हो। जब तक संसार की प्रक्रिया में जीव लगा हुआ है, जब तक उसके अन्दर कोई नया भाव विशुद्धि वाला, सम्यग्दर्शन आदि वाला कोई भाव नहीं आता तब तक जो मिथ्यात्व के साथ हैं, वह तो सब हो चुका है। संसार में कुछ भी अब नया बचा नहीं है। कह भले ही लो, नया संसार! यह तो उनके लिए है, जिन्हें कुछ संसार का कोई ज्ञान है ही नहीं। नया संसार बसाएँगे, नई दुनिया बसाएँगे, एक नया संसार होगा, एक नया जन्म होगा, इस तरीके की बातें तो मोह के कारण से, अज्ञानता से, मिथ्यात्व के कारण से चलती रहती हैं। इनमें कोई भी sense नहीं रहा, अगर आपके लिए थोड़ा-सा ज्ञान आने लगेगा तो आपको महसूस होने लगेगा। यहाँ तक कि **हमारा यह जो शरीर है, वह शरीर भी हम पहले इसी वर्गणाओं वाला, बिल्कुल ऐसा ही, जैसा मतलब इसका रंग है, जैसे इसकी smoothness है या जैसी इसकी roughness है, जैसा भी इसके अन्दर जो कोई भी स्पर्श, रस, गन्ध आदि के गुण हैं, इन्हीं वर्गणाओं को, इन्हीं पुद्गलों को भी, हम पहले कई-बार ले चुके हैं।** समझ आ रहा है? इसी का नाम परिवर्तन कहलाता है।



सब कुछ नया लगता है लेकिन ऐसा होता नहीं है

जिस कपड़े को हमने पहन लिया, फाड़ दिया, फट गया, जल भी गया, वही परमाणुओं से फिर से उस कपड़े का बनना, असम्भव नहीं है। जो परमाणुओं से कपड़ा बना, जिसको हमने आज जला दिया, जल गया, फट गया, नष्ट हो गया, वे परमाणु बिखर गए। वही फिर स्कन्ध बन करके, फिर वही कपड़े के रूप में ढलेंगे और फिर वही कपड़ा फिर हम ही पहनेंगे। ऐसा भी हो चुका है, यह जान लेना चाहिए कि इस संसार में द्रव्य की अपेक्षा से, द्रव्य मतलब जो हम बोलते हैं- materialistic संसार है, इस matter की अपेक्षा से, क्षेत्र मतलब space के point of view से, काल मतलब time के point of view से और भव मतलब जो हमें किसी भी तरीके की हर संसार में आयु मिलती है, उस age के point of view से और भाव मतलब जो हमारे लिए तरह-तरह के कषायों के, मोह के, ये जो भाव हैं, इन emotions के point of view से अगर हम देखेंगे तो कुछ भी नया नहीं है। लगता तो है नया लेकिन है कुछ नहीं। यह संसरण का नाम ही संसार है और इस तरह से जब यह संसार हमारे थोड़े-से विश्वास में आने लगता है, तो ही फिर कुछ **मुक्ति की इच्छा होती है।** कब तक वही बासा, कब तक वही पुराना? वही-वही कब तक? यह जब आता है तब जाकर के उससे कुछ विरक्ति होती है।

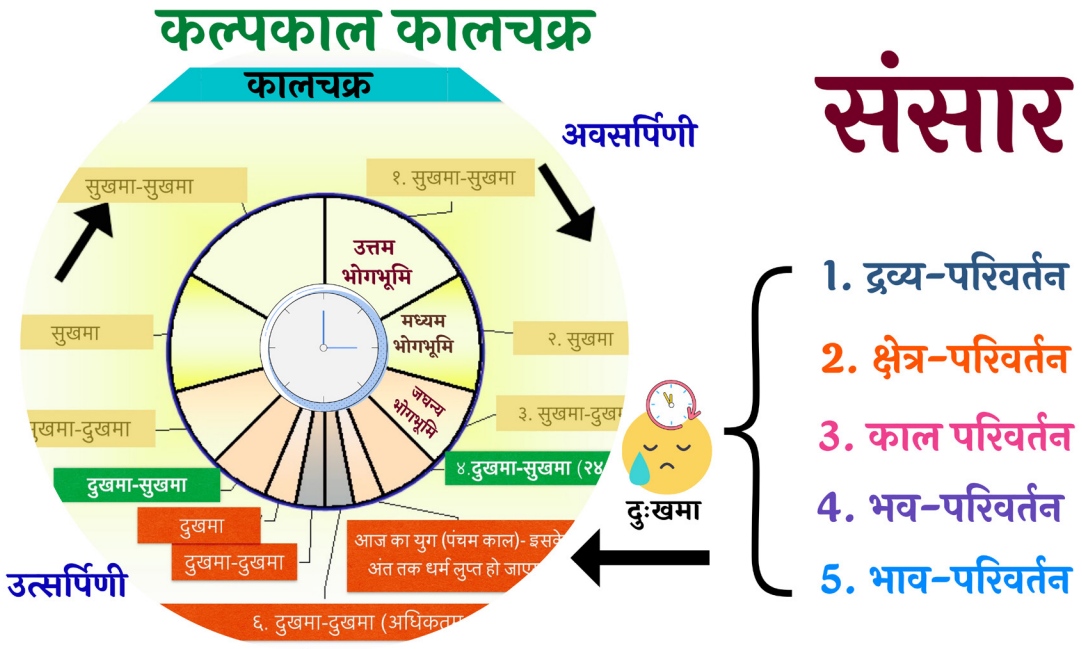
मुक्ति की इच्छा तब होती जब सब बासा है, इसका अनुभव हो



आप भी देखते हो, कोई-भी वस्त्र आप पहन लेते हो तो जब पहली-बार नया होता है तब तो बहुत अच्छा लगता है और जब दो-चार बार पहन लिया गया फिर तो बिल्कुल बेकार-सा हो जाता है। भले ही बिल्कुल पहली जैसी उसमें चमक हो, कुछ-भी हो। लेकिन वह दो-चार बार पहन लिया तो फिर वह नया-सा नहीं लगता, फिर तो पुराना हो जाता है। अब नया दूसरा लाओ, भले उसका कुछ न बिगड़ा हो, नया दूसरा लाओ। क्योंकि एक भाव रहता है कि जो नया है, वह हमें लेना है और अगर हम यह कह दे कि वह जो नया आ रहा है, वह भी पुराना हो चुका है, वह भी आप पहले पहन चुके हो तो आपको हो सकता है थोड़ी-सी विरक्ति सी हो जाए। अच्छा! दुकान पर कोई नया कपड़ा ही नहीं बचा! ऐसा कोई कपड़ा ही नहीं जिसको हमने पहले न पहना हो! तभी थोड़ा-सा temper down हो सकता है। तभी तो फिर क्या मतलब है? फिर तो जो है वही ठीक है, उसी से काम चला लेते हैं। पर जैसे ही पता पड़ता है कि नई quality, बिल्कुल नई design और ये सब चीजें आई हैं तो बस नया होने से ही एकदम से नया भाव पैदा हो जाता है। यह तो हमारी केवल एक thinking होती है। हमें जब इस-तरह के सिद्धान्त पता पड़ते हैं तो वास्तव में **पुद्गल-वर्गणाएँ हर चीज की अपने आप में सीमित हैं। जो जिस रूप में ढलती है, वह उस रूप में ढ़लती रहती है और वही उस रूप में ढल-ढल के नए-नए form में हमारे सामने आती रहती हैं।**

परावर्तन का नाम ही संसार है

हर चीज एक अपने आप में, एक चक्र के through हम देखें तो जैसे प्रकृति का चक्र है, तो उसमें भी जो खाने-पीने की चीजें हैं, वे सब उसी रूप में बार-बार convert होती रहती हैं। यह जो चक्र चलता रहता है, यह चक्र आखिर कहीं-न-कहीं तो पूरा होता ही है, तो बस उसी पूरा होने का नाम कहलाता है- **एक द्रव्य-परिवर्तन पूरा** हो गया। उसी क्षेत्र पर हम पुनः लौट कर के आ गये, फिर से सब दुनिया में एक क्षेत्र से जन्म लेकर के सब क्षेत्रों पर, सब space पर हमने जन्म लेने के बाद में फिर वहीं पर जन्म ले लिया। समझ लेना **एक क्षेत्र-परिवर्तन पूरा** हो गया है।



यह आपको बहुत generalize कर के बता रहा हूँ, जो उसकी सैद्धान्तिक-परिभाषाएँ है, वह थोड़ी-सी tough हो जाती हैं। वह आपको मैं पहले **ज्ञानार्णव** में बता चुका हूँ। इसलिए यहाँ पर अभी कठिनता से ज्यादा नहीं बता रहा हूँ। इस तरीके से जैसे मान लो यह काल चल रहा है, अवसर्पिणी-काल चल रहा है। अवसर्पिणी काल का यह समय चल रहा है, पंचम काल का time चल रहा है। अब इसी time पर, हमारा अनन्त बार जन्म हो चुका है, अनन्त बार मरण हो चुका है, एक-बार नहीं...इसका नाम है- परावर्तन। **उन्हीं-उन्हीं चीजों पर, उन्हीं-उन्हीं स्थानों पर, उन्हीं-उन्हीं समयों पर, उन्हीं-उन्हीं भावों से, उन्हीं-उन्हीं आयु आदि के साथ में, जो जीव का निरन्तर भ्रमण होता है...आचार्य कहते हैं- इसी का नाम संसार है।**

संसार समझ में आने लगे तो हमारे दुःख कम हो सकते हैं

अगर यह थोड़ा-सा भी समझ में आने लग जाए तो शायद संसार में कुछ छूटे तो रोना-धोना कम हो सके! अन्यथा कैसे होगा? अगर कुछ संसार समझ में आता होगा तो ही कुछ रोना-धोना कम होगा। नहीं तो कितना ही कुछ भी समझाये कोई, क्या समझ पाता है कोई आदमी? यही कहेगा हमारे ऊपर बीत रही है, तो हम ही जानते हैं। तुम क्या जानोगे? यह भी कह दोगे... अब महाराज! आपको तो क्या फ़र्क पड़ता है? "आगे नाथ न पीछे पगा" क्या बोलते हो? आप तो समझा देते हो लेकिन जिस पर बीतती है, वह ही जानता है। हम क्या बताये इसके आगे अब?

दुःख सबको मिलते हैं हमारे साथ कुछ नया नहीं हो रहा

अगर आप ऐसा कह रहे हो तो हमें यह भी मंजूर है। यह भी हम मान लेते हैं कि सही कह रहे हो। लेकिन आखिर इसके अलावा भी आपके लिए solution क्या है? समझ आ रहा है? आपको कहीं-न-कहीं यह तो मानना ही पड़ेगा कि ऐसा सबके साथ होता है, ऐसा कई बार होता है, यह हमारे साथ कुछ नया नहीं, कुछ अनोखा नहीं। जब तक ऐसा नहीं मानोगे तब तक आपका कोई भी दुःख-दर्द दूर नहीं होगा, कम नहीं होगा।

संसारी-जीव ही मुक्त होता है

" सूत्र को बनाने वाले आचार्य होते हैं,
बहुत ही विज्ञ, बहुत ही ज्ञानी होते हैं "



इस संसार का स्वरूप समझ कर इसका practical भी तो करना है कि केवल सूत्र पढ़

लेना **'संसारिणो मुक्ताश्च'**? संसारी जीव पंच परावर्तन में परिवर्तन करते रहते हैं और मुक्त जीव पंच परावर्तन से रहित हो जाते हैं। फिर आगे वाला सूत्र पढ़े कि इसके कुछ application भी करना है? आखिर इसमें भाव तो यही है न! और यह भी बात है कि देखो! सूत्रों के अच्छे महत्व हैं। पहले संसारी शब्द आया फिर मुक्त शब्द आया। इसमें भी आचार्यों ने बताया कि देखो! संसारी-जीव ही मुक्त होता है। लिखने को तो **'मुक्ताः संसारिणश्च'** ऐसा भी लिखा जा सकता था और जैसा कि हम बताते आए हैं कि जो पूज्य शब्द होता है, वह पहले लिखा जाता है। जिसकी बहुत महत्ता होती है, वह पहले लिखा जाता है, तो मुक्त-जीव तो पूज्य है, उनको आपको पहले लिखना चाहिए था, संसारी-जीवों को क्या लिखना पहले? जब आप बता ही रहे हो, सूत्र में पूज्य पहले लिखा जाता है, सम्यग्दर्शन पहले लिख दिया, ज्ञान-दर्शन में ज्ञान पहले लिख दिया तो यहाँ पर भी आपको मुक्त पहले लिखना चाहिए था? लेकिन और भी चीजें सोचने की होती हैं, एक पूज्यता ही नहीं है। पूज्यता के साथ-साथ यह भी है कि इसका कोई अर्थ उल्टा न लगा ले। 'मुक्ताः संसारिणः' ऐसे कर दिया तो फिर मुक्त-जीव पहले हैं, संसारी बाद में हैं, यह हो जाएगा। जबकि पहले क्या है? पहले संसारी-जीव हैं, मुक्त बाद में हैं, इसलिए यह क्रम है।

SCAN TO WATCH

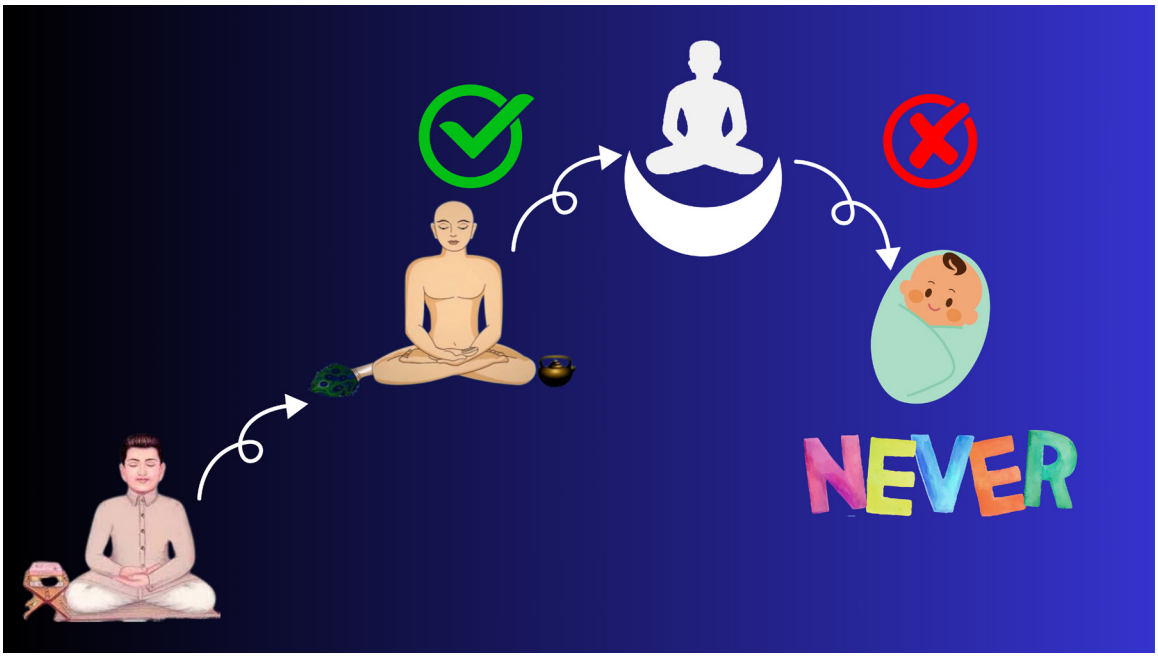
आचार्य बहुत ही विज्ञता से सूत्र लिखते हैं

आचार्य बड़ी सोच-समझ करके, जो सूत्र को बनाने वाले आचार्य होते हैं, बहुत ही विज्ञ, बहुत ही ज्ञानी होते हैं। इसीलिए तो उन एक आचार्यों की एक-एक छोटे-छोटे सूत्र पर इतने महान आचार्यों ने, उन्हीं सूत्रों का व्याख्यान किया, संस्कृत में टीकाएँ लिखी। आचार्य पूज्यपाद, आचार्य अकलंक, आचार्य विद्यानन्दी, ऐसे बड़े-बड़े महान आचार्यों ने मतलब कि इन सूत्रों के ऊपर संस्कृत में बहुत बड़ी-बड़ी व्याख्याएँ लिखी हैं। अन्यथा एक आचार्य को दूसरे आचार्य की कृति पर अपनी कलम चलाने क्या जरूरत है, वह खुद भी अपने सूत्र बना लेते? क्योंकि उन्हें पता है कि ये जो सूत्र हैं, ये बहुत ही संभले हुए, बहुत ही प्रमाणिक और ये सूत्रधार जो आचार्य होते हैं, उनमें ये अन्तिम आचार्य हैं, उनके द्वारा बनाए हुए ये सूत्र हैं। इसलिये संसारी जीव पहले कहा।

सूत्र में संसारी को पहले रखने के कारण

1. संसारी ही मुक्त होगा इसलिए संसारी-जीव पहले कहा, मुक्त को फिर संसारी नहीं होना पड़ता। इस सूत्र से ही यह खण्डन हो जाता है कि जो जीव एक बार मुक्त हो गया, फिर संसारी नहीं होगा। संसारी तो मुक्त हो जाएगा लेकिन मुक्त कभी संसारी नहीं बनेगा। इसलिए जो लोग कहते हैं- भगवान होने के बाद, भगवान मुक्त होने के बाद भी, संसार से मुक्त होने के बाद फिर संसार में आता है- **"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः"** समझ आ रहा है? ये सब बातें तर्क युक्त नहीं हैं। अच्छा लगता होगा यह बात अलग है लेकिन सत्य का अच्छे और बुरे से कोई लेना-देना नहीं है, ये बातें तर्क संगत नहीं हैं। जो जीव एक-बार मुक्त हो गया, इतना

बड़ा संसार जिसने छोड़ा, मुक्त होने के बाद में पुनः इस संसार में आने पर उसको क्या मिलेगा? यह तो संसार ऐसे चलता ही रहेगा। इस तरह से यह **संसारी जीवों का पहले वर्णन करना, यह बताता है कि संसारी को ही मुक्त होना है, मुक्त को संसारी नहीं होना।**



2. दूसरी बात- **जिसके बारे में कुछ ज्यादा वर्णन हो, जिसको बहुविकल्पीय वाला कहा जाता हो**, उसको सूत्र में पहले रखा जाता है। जैसे- पिछले वाले सूत्र में **"स द्विविधोष्ट चतुर्भेदः"** ज्ञान के भेद ज्यादा हैं, ज्ञान अपने आप में बहुत तरह की विविधता रखता है। दर्शन में कोई विविधता नहीं होती। वह जैसा है सामान्य है, सामान्य तो सामान्य ही होता है। विविधता जहाँ होती है, वहाँ पर उसके अन्दर पूज्यता भी अपने आप आ जाती है। इस दृष्टि से संसारी और मुक्त-जीवों में विविधता अगर देखोगे तो कहाँ मिलेगी? संसारी जीवों में बहुत विविधता है। मुक्त-जीवों में तो क्या है? सब बिल्कुल एक जैसे हो गए, एक समान हैं, एक ही भाव में हैं, एक ही स्थान पर हैं, वहाँ तो कुछ विविधता है ही नहीं। विविधता कहाँ हैं? संसारी-जीवों में। वर्णन अगर बढ़ेगा, किसी का अधिकता से किया जाएगा तो किन जीवों का? संसारी-जीवों का। बहुविकल्प वाले, बहुत भेद वाले जो जीव हैं, वे संसारी-जीव हैं। जिनका भेद विकल्प अधिक होता है, उन्हीं का वर्णन पहले किया जाता है इसलिए संसारी जीवों को पहले रखा है, यह दूसरा कारण है। इसका पहला कारण क्या बताया? संसारी को ही मुक्ति होती है। दूसरा कारण क्या? संसारियों के भेद बहुत हैं। जो बहुविकल्पीय होते हैं, जिनका विस्तार बहुत होता है, उन्हें पहले कहना होता है, उन्हें पहले रखा जाता है।

3. **तीसरा भी एक कारण है**,क्या? **जो दिख रहा है, जो प्रत्यक्ष है, जिसका हम संवेदन कर सकते हैं, उसको पहले रखना पड़ता है, उसको पहले बताना पड़ता है।** जो दिख नहीं

रहा तब आपकी उस पर थोड़ी-सी आस्था बनेगी। समझ आ रहा है? संसार की बात करेंगे तो थोड़ा आपको विश्वास आएगा कि हाँ! बात तो कुछ सही लग रही है, संसार में ऐसा ही होता है, जो बताया जा रहा है।



संसार तो अनादि काल से चला आ रहा है

SCAN TO WATCH

कुछ गलत इसलिए भी नहीं है कि वास्तव में अनादि काल से जो अनन्त काल आया है, इस अनन्त काल में कोई भी काल में, संसार तो कभी छूटता ही नहीं। जीव हमेशा परिवर्तन करते ही रहते हैं, संसार में हमेशा ही चारों गतियों में जीव बने ही रहते हैं। संसार में हमेशा यह सब, हर काल में रहा ही है, तो काल तो अनन्त है। काल से तो कोई संसार शुरू हुआ ही नहीं कि इस सृष्टि की रचना शुरू हुई हो कि संसार शुरू हुआ हो, ये तो सब बातें मिथ्या सिद्ध हो चुकी हैं। अब अगर इस तरह का संसार है, तो कोई बड़ी बात नहीं है कि अनादि काल इतना बड़ा है कि जब जिसकी कोई beginning ही नहीं है कहीं पर, कोई जिसका कोई प्रारम्भिक बिन्दु ही नहीं है, तो कितना? उससे पहले, उससे पहले, उससे पहले तो इस जीव ने सब-कुछ ग्रहण भी कर लिया हो और सब कुछ छोड़ भी दिया हो और पुनः उसका repetition शुरू हो गया हो तो कोई बड़ी बात नहीं लग रही है। धीरे-धीरे विश्वास में आ जाएगा, धीरे-धीरे जैसे-जैसे दिमाग की नसें खुलेंगी। ज्ञान से विश्वास की ओर परिणति जाती है, जाने लगे तो अच्छा है, नहीं जाए तो बार-बार सुनोगे तो जाने लगेगी। संसार तो प्रकट दिखाई दे रहा है, संसार तो स्वसंवेदन में आ रहा है। यह भी स्वसंवेदन-गम्य कहलाता है। **केवल आत्मा स्वसंवेदन-गम्य नहीं होती है, यह संसार भी स्वसंवेदन-गम्य है।**

स्वसंवेदन कैसा होता है?

कैसा स्वसंवेदन? देखो! संसार में कितना दुःख है? बड़े-बड़े actor होते हैं, उनके भी बंगले नष्ट कर दिए जाते हैं। मतलब कि जब आप देखते हो तो आपको क्या लगेगा? उसका दुःख आपके अन्दर जैसे आ रहा हो। स्वसंवेदन हो रहा है कि नहीं? बताओ इतने बड़े-बड़े लोगों का अपमान हो जाता है। जो Trump अभी राष्ट्रपति बना हुआ है, जब भारत में आया, कितनी उसकी शान-ओ-शौकत। अब देखो! उसके ऊपर चुनाव में हारने की जैसी स्थिति बन रही है। सब दिख रहा है, स्वसंवेदन-गम्य है। बड़े-बड़े company के director नीरव मोदी जैसे इधर-उधर भागे फिर रहे हैं, माल्या जैसे विदेशों में अर्पण करते फिर रहे हैं। कुछ नहीं है! यह सब आपको जो देखने में आ रहा है, **यह सब संसार तो स्वसंवेदन-गम्य है।** इसको तो मान लो...हाँ! इसका तो सुख-दुःख हमें देखने में आ रहा है। कितने कत्ल, कितने murder, कैसे encounter होकर के आदमी को सीधे-सीधे क्षणभर में मार दिया जाता है, कितनी बड़ी-बड़ी वारदातें? तीन मिनट में मेरठ के अन्दर एक जैन को ही बदमाशों ने आकर के, उसकी दुकान में घुसकर के, पैसा भी ले लिया, murder भी कर दिया। बस! तीन मिनट में घर स्वाहा हो गया। मतलब कि सुख-दुःख भी सबका देखने में आ रहा है। आप अगर इसका संवेदन करो तो सबका संवेदन होने में आ रहा है। अगर आप संवेदन न करो तो फिर यह होगा कि बस आपको उनसे मतलब नहीं है, इसलिए संवेदन नहीं हो रहा है। बाकी आप देखो तो अब किसी का पच्चीस साल का लड़का था, उसका murder कर दिया, मार दिया एक क्षण में, आदमी ने पच्चीस साल तक बच्चों को कैसे पाला होगा? क्या सपने संजोए होंगे? एक ही लड़का है, मर गया, अब मर गया वह तो दोबारा आना नहीं।

संसार भी स्वसंवेदन-गम्य है



संसारी का स्वसंवेदन होगा मुक्त जीवों का नहीं

अब जो कुछ भी परिणाम हो रहे हैं, जो कुछ भी दुःख हो रहा है, वह दुःख सब संवेदन-गम्य है। आपके संवेदन में सबका सुख-दुःख आ सकता है। अपना हो या पराया, सुख-दुःख किसी का अपना हो या पराया, सुख-दुःख तो सबका ही स्वसंवेदन-गम्य हो सकता है, इसमें कोई बड़ी बात नहीं। संसार में जो सुख-दुःख मिल रहे हैं, उनको आप देख सकते हो, उनको आप अच्छे ढंग से अपने संवेदन में ला सकते हो। मुक्त जीवों का कोई संवेदन नहीं होना। मुक्त-जीवों के सुख की कोई अनुभूति नहीं होना। इसलिए **जो वास्तव में दिख रहा है, प्रत्यक्ष है, वह स्वसंवेदन गम्य संसारी जीवों का जो सुख है या दुःख है, इसलिए संसारी जीवों को पहले रखा गया। मुक्त-जीवों का तो हमें कोई संवेदन होता ही कहाँ है?** जिसका संवेदन हो रहा है, उसी की बात पहले कर लेते हैं। ये तीन कारण हैं...इसलिए संसार को और संसारी जीवों को, इस सूत्र में पहले दिखाया गया है, मुक्त जीवों की बात बाद में दसवें अध्याय में फुरसत से करेंगे। पहले संसार तो देख लो ढ़ंग से, क्या-क्या है?

संसारी जीवों के दो भेद होते हैं

अगला सूत्र...

समनस्का-मनस्काः ॥2.11॥

समनस्क + अमनस्काः

संसारी भी जीव सब, होते दोय प्रकार ।
रहित मना कुछ मन सहित, करो सुधी स्वीकार ॥2.11॥

क्या कहते हैं? अब यह संसार में संसारी जीवों के ही थोड़े-से भेद करके आपको और बताते हैं। वैसे तो बहुत है लेकिन सामान्य रूप से मोटा-मोटा जो भेद हो सकता है, वह क्या है? इस संसार में दो तरह के जीव जानना। एक तो मन से सहित और एक मन से रहित। **'समनस्का'** मतलब मन से सहित, **'अमनस्का'** मतलब मन से रहित। अब इसमें भी समनस्क पहले लिखा क्योंकि जो मन से सहित हैं, वे कुछ करते हैं, उनमें कुछ बड़ी-बातें होती हैं, उनमें कुछ बड़े-पुरुषार्थ होते हैं, उनकी कुछ महत्ता है। अमनस्क हैं, बाद के हैं। समझ आ रहा है? **"समनस्का-अमनस्काः"**

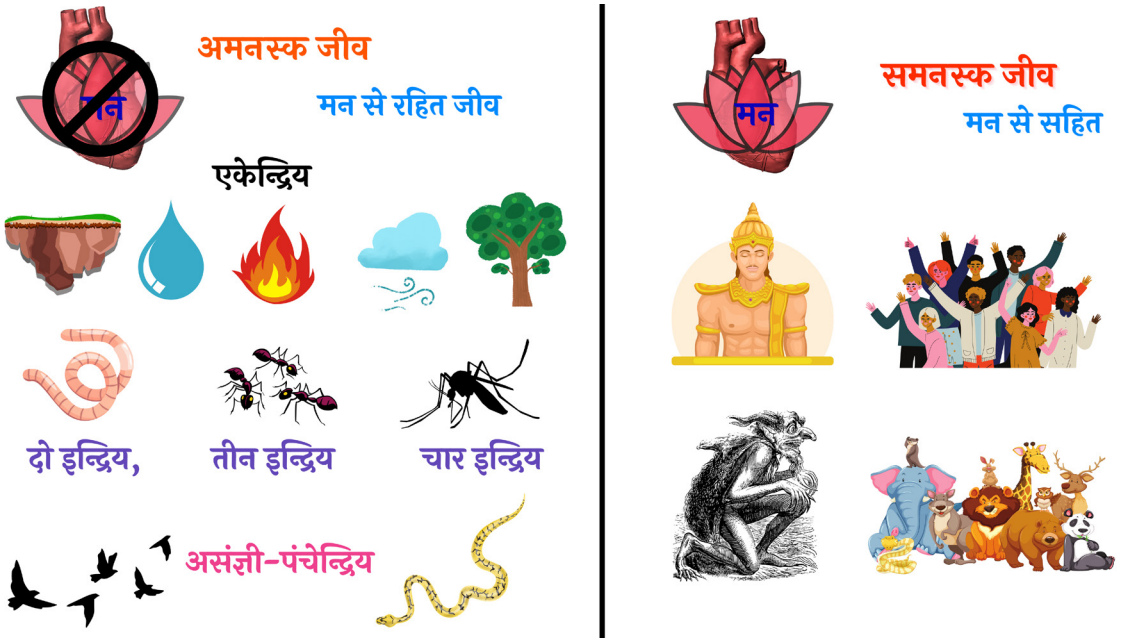
- जो संज्ञी-जीव हैं, वह समनस्क कहलाते हैं।
- जो मन से रहित होते हैं, वह असंज्ञी-जीव होते है, उन्हें अमनस्क कहते हैं।

समनस्क जीव महान काम कर सकते हैं

मन का काम कुछ हिताहित का विचार करना। जो पढ़ाया जाए, सुनाया जाए, उसे समझ पाना, सीख पाना, बता पाना, यह सब किसके काम है? मन के काम हैं। इन्हीं कामों से मन वाला जीव महान बनता है। उसके पास ही महान बनने की क्षमता होती है। **समनस्क जो जीव हैं, वे महान काम कर सकते हैं, इसलिए उन्हें पहले रखा। अमनस्क तो कुछ नहीं कर सकते, कर्म-फल का ही बस अनुभव कर सकते हैं, इसलिए उनका कथन बाद में है।**

समनस्क जीव किस गति में पाये जाते हैं?

अब इन समनस्क-जीवों में भी आप देखें तो किस-गति में समनस्क-जीव मिलते हैं मतलब संज्ञी-जीव मिलते हैं? बताएँगे? केवल मनुष्य-गति में ही होते हैं? आप ही केवल समनस्क हैं? मनुष्य-गति में मन सहित जीव होते हैं और तिर्यंच की बात बाद में कर लेते हैं। देव-गति में होते हैं? देव-गति में सभी समनस्क ही होते हैं। नारकियों में? नारकी भी सभी समनस्क ही होते हैं।



अमनस्क जीव किस गति में पाये जाते हैं?

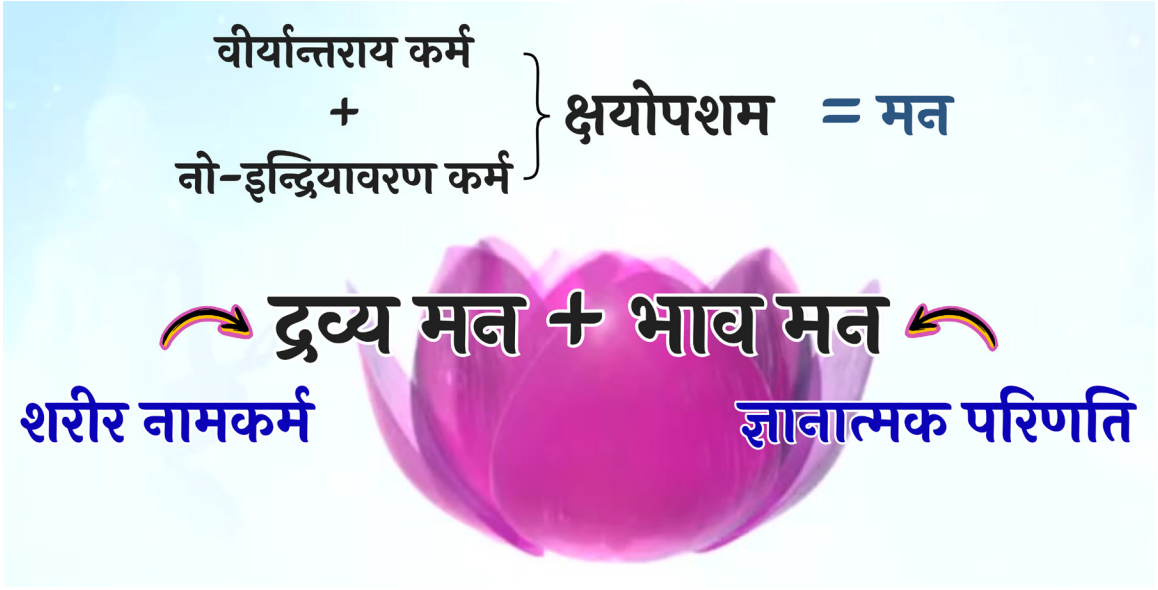
अगर देखा जाए तो समनस्क और अमनस्क का अन्तर केवल तिर्यंच गति में ही आता है। आया समझ में? यानि एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रियों में ये दो भेद- कुछ समनस्क और कुछ अमनस्क। अतः एकेन्द्रिय से लेकर के जो अमनस्क-पंचेन्द्रिय

हैं, जिन्हें हम असंज्ञी-पंचेन्द्रिय कहेंगे, यहाँ तक तो यह सब क्या हो गये? मन से रहित जीव हैं और जो मन से सहित जीव हैं, वे कुछ पंचेन्द्रिय-तिर्यंच होते हैं, पशु भी होते हैं, पक्षी भी होते हैं, जो मन से सहित होते हैं। जो पशु-पक्षी अक्सर हमें दिखा करते हैं वे सभी समनस्क ही होते हैं। अमनस्क तो बहुत कम देखने को मिलते हैं।

मन की प्राप्ति और प्रकार

SCAN TO WATCH

यह समनस्क और अमनस्क के रूप में संसारी-जीवों को देखो तो आपको पता पड़ेगा कि जिसको इस संसार में मन नहीं मिला हो, जिन्हें मन की प्राप्ति नहीं हुई हो, उस आत्मा के लिए यह कितना बड़ा अन्धकार है? बिना मन के संसार में क्या है? बताओ! जहाँ पड़े हो, वहाँ भी नहीं मालूम कि हम कहाँ पड़े हैं। यह भी नहीं मालूम कि हम कहाँ पड़े हैं, यह विचार करने का मन ही नहीं है। समझ आ रहा है? बस इस इन्द्रिय के कारण से संवेदन होगा, बस यहाँ यह है। यह पता नहीं है कि कहाँ हैं? आप देखो कि **हमारे अन्दर वीर्यान्तराय कर्म और नो-इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से मन की प्राप्ति होती है।** जिसे हम कर्म के क्षयोपशम से जनित मन कहते हैं, वह कहलाता है- **भाव-मन** और जो हमारे शरीर में हमारे हृदय के अन्दर एक आठ पंखुड़ी के आकृति की एक विशिष्ट रचना होती है, जो मन के ही पुद्गल वर्गणाओं से होती है, उसे कहते हैं- **द्रव्य मन।** दो तरह के मन होते हैं- एक द्रव्य मन और एक भाव मन, यह भी जान लेना।



- द्रव्य मन तो एक पौद्गलिक रचना है, जैसे हमारी इन्द्रियों की रचना हैं। आँख है, कान

है, ऐसी ही **द्रव्य मन** भी एक पुद्गल की रचना है, यह शरीर नामकर्म के उदय से हुई है।

- लेकिन भाव मन हमारी ज्ञानात्मक परिणति है, जो हमारे ज्ञान का क्षयोपशम है, उसका नाम **भाव मन** है। वह भाव मन के माध्यम से ही हम सब विचारों का आदान-प्रदान करते हैं, चीजें समझते हैं, बाहर की चीजें, अन्दर की चीजें, सब हमको जो महसूस होती हैं, यह सब किसकी देन है? यह सब भाव मन की देन है। **यह भाव मन का क्षयोपशम करने वाले कर्म अलग हैं और जो द्रव्य मन की उत्पत्ति करने वाले कर्म हैं, वह अलग हैं और इन दोनों के संयोग से यह हमारे अन्दर मन का कार्य चलता रहता है।**

मन एक लब्धि है इसे सम्भाल कर रखो

ये बड़ी-बड़ी लब्धियाँ हैं। यह कौन-सी नई लब्धि आ गई भाई! लब्धि का मतलब? नई उपलब्धियाँ, इसी को लब्धि कहते हैं, जो हमें मिली है। कर्म के क्षयोपशम का नाम ही लब्धि होता है, आगे सूत्र आने वाले हैं। ये इस तरह की हम जो लब्धियाँ लिए हुए हैं और जिनके पास में वे लब्धियाँ नहीं है तभी हम समझेंगे कि इस लब्धि का कितना महत्व है? **आज हम थोड़ी-सी बात पर परेशान हो जाते हैं, किसी के कुछ कह देने पर या किसी की कोई बात सुन लेने पर, हम इतने विचलित हो जाते है, हम depression में भी जा सकते हैं।** थोड़ा-सा किसी के द्वारा कोई अपमान हो जाता है, कुछ बोल दिया जाता है, तो आदमी अपना बिल्कुल mental balance खो देता है। यह क्या है? इस मन को सम्भाल कर रखना चाहिए कि नहीं? मन है, तो तुम सही हो, तभी तक तुम हो। मन खराब हो गया, मन अगर depression में जाने लगा या uncontrolled हो गया तो फिर तुम्हारा भी कोई होना या न होना, कोई मतलब का नहीं।

Coma में मन मूर्छित हो जाता है



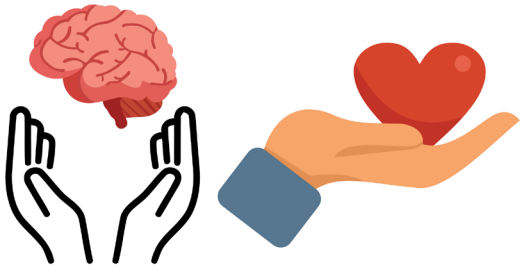
यह मन होने के बाद, जो मन से रहित हैं, उनके बारे में सोचोगे तो आपको पता पड़ेगा कि इस मन को कितना संभालना चाहिए। बिना वजह क्यों इस मन के ऊपर extra pressure डाला जाए, जिससे depression का शिकार बने। अब जो coma में हैं तो वह मन वाला भी तो coma में हो सकता है। लेकिन coma में है, तो वह अमनस्क तो नहीं हो गया। है, तो मन वाला लेकिन coma में चला गया तो मतलब मन जो है इतना ज्यादा भीतर मूर्छित हो गया कि उसे पता ही नहीं कि हम कहाँ है? **ज्ञान का क्षयोपशम होते हुए भी उसका बाहर से connection हट गया।** coma में जाने का मतलब क्या हो गया? बाहर से उसकी connectivity नहीं मिल रही, mobile तो है लेकिन उसकी connectivity मिल नहीं रही है। कहाँ खो गयी है?

मन वाले जीव दुर्लभ हैं



सोने से पहले और उठने के एक घण्टे बाद तक देखना ही नहीं

मन को संभालना चाहिए





तो इस तरह के जीव ज्यादा हैं। मन वाले जीव कम हैं और अमनस्क जो जीव हैं, ये ज्यादा हैं। दुर्लभ चीजें कम मिला करती हैं। समझ आ रहा है? जो कठिन चीजें होती हैं, वही दुर्लभ होती हैं। अतः हम यह समझे कि हमारा मन अगर हमें मिला है, तो हम इस मन के ऊपर देखते रहे, इस मन को कोई परेशान न कर दे। यह अपनी लब्धि है, उपलब्धि है यह, इसको संभाल कर रखना है। कौन-सा message आपके लिए रात की नींद चुरा दे, आपकी रात की नींद खराब कर दे। इसलिए mobile का message सोने से पहले और उठने के बाद तक भी, एक घण्टे बाद तक तो कभी देखना ही नहीं। सम्भालो! इस मन को जो सम्भाल लेगा वह समझेगा मन की कीमत। अतः कोई भी ऐसा विचार, कोई भी ऐसा message, कोई भी ऐसी बात जो किसी को दुःख पहुँचाए, न करो और न उसको सुनो तभी आदमी का मन अच्छा रहेगा। यह सही मन वालों का काम होता है। **हम किसी के मन को क्यों दुःखी करे?** यह जब आएगा तभी हमें यह सूत्र का सही ढंग से इसका application करना आएगा कि यह समनस्क अपने आप में बहुत बड़ी चीज है, जो हमें मिली है, इसका हम उपयोग करे। जो आप अभी अध्ययन कर रहे हैं, यह इसका एक बहुत बड़ा उपयोग है। जो हम इस तरह की सैद्धान्तिक बातें सुन पा रहे हैं। मन समझ पा रहा है।

त्रस और स्थावर संसारी जीव

आगे का सूत्र क्या है-

संसारिणस्त्रस-स्थावरा: ॥2.12॥

संसारिण: त्रस - स्थावरा:

भव में अटके जीव द्वय, विधि त्रस-थावर जान।
तीन लोक में भ्रमत हैं, गुरु की बात न मान॥2.12॥

हम जानते ही हैं महाराज! संसारी जीवों का दूसरी तरह से और भेद कर के बता रहे हैं कि संसारी-जीव दो प्रकार के हैं-

1. **त्रस-जीव** होते हैं और
2. **स्थावर-जीव** होते हैं।

अलग-अलग तरीके से भेद करके बताने से आपको अलग-अलग रूप में समझ में आने लग जाता है। अब देखो! संसारी जीव के 2 तरीके से भेद कर दिए। वे भी दो भेद हैं लेकिन उसमें मन की quality से, मन के कारण से, उनका अलग-अलग division कर दिया- समनस्क और अमनस्क और यहाँ पर त्रस और स्थावर। अब यह त्रस क्या कहलाता है? त्रस मतलब जो चले-फिरे...उसका नाम त्रस। जो चले-फिरे उसका नाम त्रस? फिर आपके गर्भ में जो बच्चा होगा, वह तो चलता-फिरता नहीं है, त्रस कहलाएगा या नहीं कहलाएगा? नहीं समझ आ रहा है?

त्रस और स्थावर में अन्तर कैसे किया जाए?



मान लो आपको किसी ने नींद की गोली खिला दी, आप गिर पड़े, मूर्छित हो गए...त्रस हो कि नहीं? नींद में सोए हुए हो त्रस कहलाओगे कि स्थावर हो जाओगे? कोई ऐसे भी पक्षियों के अण्डे होते हैं जिनमें बच्चे जन्म लेते रहते हैं, उन पक्षियों के उन अण्डों में बच्चा है, चूजा है, वह भी चल-फिर नहीं रहा है, तो त्रस होगा कि नहीं होगा? फिर ऐसा कैसे कहा जाए जो चले-फिरे उसका नाम त्रस? और जो न चले-फिरे, वह तो स्थावर हो जाएगा? ऐसा तो नहीं बनेगा तो आपको क्या सोचना पड़ेगा? यह परिभाषा तो कहीं और **सैद्धान्तिक रूप से** आपको समझनी होगी।

त्रस और स्थावर नामकर्म के उदय का प्रभाव

यह कर्म का उदय जिसके अन्दर हो, त्रस नाम कर्म का उदय जिसके अन्दर हो, उसको ही त्रस जीव कहा जाएगा। चाहे वह मूर्छित हो रहा हो, चाहे सो रहा हो, चाहे अण्डे में पड़ा हो, चाहे गर्भ में पड़ा हो, इससे कोई मतलब नहीं। जिसमें **त्रस नामकर्म का उदय है, उसके कारण से जिसे त्रस पर्याय मिली है,** वह जीव त्रस-जीव कहलाएगा। जो स्थावर हैं, **उनको स्थावर नामकर्म के उदय से जिनको यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति रूप यह पर्याय मिलती हैं,** उनको स्थावर जीव कहा जाएगा।

त्रस और स्थावर का भेद चलने और न चलने से नहीं होता



त्रस का अगर और स्थावर का अगर भेद आप चलने और न चलने के ऊपर करेंगे तब तो फिर पृथ्वी तो अचल हो गई और वायु चल रही है, पानी भी तो बहता है, अग्नि भी तो बहती है, अग्नि भी तो कहीं से कहीं तक पहुँच जाती है, वह भी तो चल कर ही जाती है, ये सब त्रस हो जाएँगे। अग्नि, वायु, जल ये सभी त्रस हो जाएँगे जबकि ये त्रस नहीं हैं। ये क्या हैं? **स्थावर** हैं क्योंकि ये सभी एकेन्द्रिय जीवों का **स्थावर नामकर्म के उदय से जो पर्याय प्राप्त हुई है, उसका समूह है। एक जीव नहीं है, यह जीवों का समूह है।** ऐसे यह त्रस और स्थावर के भेद से अगर हम संसार में देखे तो देखो! हमें पूरा का पूरा जीवों का विभाजन बस एक ही दृष्टि में हो जाता है। यह त्रस, यह स्थावर, इसके अलावा कोई तीसरी उसकी कोई faculty नहीं मिलेगी। अब आप देख लो! जो एक इन्द्रियों में, ये जो है पृथ्वी आदि पाँच, ये स्थावर हो जाते हैं, बाकी जो भी हैं, सभी क्या हैं? त्रस हैं।

जैन धर्म में ही जीव विज्ञान है

यह जो संसारी-जीवों में हम तरह-तरह से विभाजन देखते हैं, इसी से हमको संसारी-जीवों की विविधता का ज्ञान हो रहा है। कितने प्रकार के जीव हैं? यह जो ज्ञान है, इसी का नाम है- जीव का विज्ञान। ये प्रवचन पहले भी हो चुके हैं और तत्त्वार्थ सूत्र के द्वितीय-अध्याय पर एक book भी निकल चुकी है, जिसका नाम ही है- जीव-विज्ञान। क्या नाम रखा है? मैंने भी थोड़ा science के हिसाब से नाम रखा है, इससे अच्छा विज्ञान कहाँ मिलेगा? लोग थोड़ा confuse हो तो क्या फर्क पड़ रहा है। जाने तो कि jainism में कहाँ से जीव-विज्ञान आ गया तो बताएँगे jainism में ही जीव विज्ञान है। अब इसमें आगे जो आपको ज्ञान मिलेगा, सारा-का-सारा जीव के बारे में ही विज्ञान मिलेगा। जीव के अन्दर और क्या-क्या होता है? जीव कैसे कहाँ-कहाँ जन्म लेता है? किन-किन जीवों की उत्पत्ति किन-किन कारणों से कहाँ-कहाँ होती है? कौन-कौन से शरीर होते हैं? इत्यादि यह सब वर्णन आपको जीव-विज्ञान इसी में मिलेगा तो दूसरा-अध्याय का नाम क्या है? 'जीव-विज्ञान'।

बोलो महावीर भगवान की जय

सारांश

1. हमने जीव के **जीवत्व पारिणामिक भाव** और **उपयोग लक्षण** में अंतर को समझा
2. चैतन्य तो पारिणामिक भाव है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है
3. चैतन्य का ही परिणाम, उपयोग है
4. इसी चैतन्य के **बहिरंग** और **अन्तरंग हेतु** के अलग-अलग तरह से मिलने पर अलग-अलग रूप से जो परिणमन होता है, वह **उपयोग** कहलाता है
5. औदयिक आदि सभी भावों की अनुभूति उपयोग ही करता है
6. सूत्र १० में हमने जीव के दो भेद - संसारी और मुक्त को जाना
7. हमने जाना कि **संसारी-जीव** संसार में परिवर्तन, परिणमन करता है, एक गति से दूसरी गति में 'संसरण' करता है
8. वहीं **मुक्त-जीव** के इस तरह के कोई 'संसरण' नहीं होते , परिवर्तन नहीं होते
   - ये संसार को अपने पुरुषार्थ से छोड़ चुके हैं
   - और ये भी अनन्त की संख्या में हैं
9. परिवर्तन का नाम ही संसार है
10. हमने जाना कि पाँच प्रकार के **परिवर्तन** या **परावर्तन** होते हैं जिनमें संसारी-जीव का निरन्तर संसरण होता है
    - पुद्गल रूप शरीर या उससे बनाने वाले आहार आदि को ग्रहण करना, छोड़ना; बंधे हुए कर्मों का परिवर्तन आदि **द्रव्य परिवर्तन** है
    - संसारी जीव का जन्म-मरण तीन लोक के अलग-अलग स्थान में होता रहता है इसे **क्षेत्र परिवर्तन** कहते है
      i. अब कोई-भी ऐसा क्षेत्र नहीं है बचा जहाँ इस जीव ने जन्म-मरण न किया हो
    - जीव का जन्म-मरण अलग-अलग होता है इसे **काल परिवर्तन** कहते हैं
      i. कोई-भी ऐसा समय नहीं है जिस समय पर इस जीव ला जन्म-मरण न हुआ हो
    - भव की अपेक्षा से ऐसा कोइ भव, संसार, गति, आयु जघन्य से उत्कृष्ट तकनहीं है जिसे हमने भोगा न हो; इसे **भव-परिवर्तन** कहते हैं
    - जीव के भाव निमित्त या बिना निमित्त के, कषाय अदि की तीव्रता या मन्दता, या मन-वचन-काय के योग आदि से परिवर्तित होते हैं इसे **भाव परिवर्तन** कहते हैं
11. हमने जाना की संसार में **नया कुछ भी नहीं** है
    - हमें बार-बार एक जैसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव मिल चुके हैं
    - अब हम जो कर रहे हैं, वह सब repetitions है
    - इसी तरह चीजों को बार-बार प्राप्त करने को एक **परावर्तन** कहा जाता है
12. मोह और अज्ञानता के कारण से जीव सोचता है कि उसे **नया संसार** मिला है
    - जबकि इसी रंग का शरीर, इन्हीं स्पर्श, रस, गन्ध आदि गुणों के साथ, इन्हीं वर्गणाओं

को हम पहले कई-बार ले चुके हैं

- सब कुछ नया लगता है लेकिन होता नहीं
- जब यह हमारे विश्वास में आता है तो फिर **मुक्ति की इच्छा** होती है

13. हमने जाना कि पुद्गल-वर्गणाएँ आदि सीमित हैं, और वह नए-नए form में हमारे सामने आती रहती हैं

- जैसे प्रकृति के चक्र में खाने-पीने की चीजें उसी रूप में बार-बार convert होती रहती हैं उसी तरह यह पुद्गल-चक्र भी कहीं-न-कहीं पूरा होता है
  i. जिसे एक **द्रव्य-परिवर्तन** पूरा होना कहते हैं

14. हमने पाँच परावर्तन में जाना कि

- लोक के सभी space point पर जन्म लेने के बाद में फिर किसी स्थान पर वापस जन्म लेने से **एक क्षेत्र-परिवर्तन** पूरा होता है

15. उन्हीं-उन्हीं चीजों पर, उन्हीं-उन्हीं स्थानों पर, उन्हीं-उन्हीं समयों पर, उन्हीं उन्हीं भावों से, उन्हीं-उन्हीं आयु आदि के साथ में, जो जीव का निरन्तर भ्रमण होता है, इसे ही आचार्य संसार कहते हैं

16. अगर संसार समझ में आने लगे, तो हम समझेंगे **दुःख सबको मिलते हैं** हमारे साथ कुछ नया नहीं हो रहा

- इससे हमारे दुःख कम हो सकते हैं

17. मुक्त जीव संसारी-जीव से **पूज्य है** फिर भी आचार्य ने **तीन कारणों** से संसारी जीव को पहले रखा है

- **पहला कारण है** - संसारी जीव ही मुक्त होते हैं
- उसका उल्टा नहीं होता
- इससे उन मतों का खंडन हो जाता है जो भगवान को पुनः संसार में अवतरित करते हैं
- **दूसरा कारण है** - संसारी जीव का वर्णन ज्यादा है और यह मुक्त की अपेक्षा बहुविकल्पीय है
  i. इसी तरह पिछले सूत्र में आठ भेद होने के कारण ज्ञान को दर्शन से पहले रखा
  ii. संसारी जीवों में विविधता है वहीं मुक्त जीव सब बिल्कुल एक समान, एक ही भाव में और एक ही स्थान पर हैं
- **अंतिम कारण है** - कि संसारी जीव हमें प्रत्यक्ष हैं, हम इनका स्वसंवेदन कर सकते हैं जबकि मुक्त-जीवों का हम संसारी जीव को कोई संवेदन नहीं होता है
- हमने जाना कि **केवल आत्मा स्वसंवेदन-गम्य नहीं होती है**, यह संसार भी स्वसंवेदन-गम्य है
- हम संसारी जीवों के सुख दुःख का संवेदन कर सकते हैं

18. आचार्य उमास्वामी बहुत ही विज्ञता से सूत्र लिखते हैं, इसलिए आचार्य पूज्यपाद, आचार्य अकलंक, आचार्य विद्यानन्दी, जैसे बड़े-बड़े महान आचार्यों ने इन सूत्रों के ऊपर

संस्कृत में बहुत बड़ी-बड़ी व्याख्याएँ लिखी हैं

19. संसार तो अनादि काल से चला आ रहा है संसार में हमेशा ही चारों गतियों में जीव बने ही रहते है

20. अनादि काल इतना बड़ा है कि जिसकी कोई beginning ही नहीं है

- उससे पहले उससे पहले करके हम तब तक जा सकते हैं जब तक इस जीव ने सब-कुछ ग्रहण भी कर लिया हो और पुनः उसका repitition शुरू हो गया हो

21. हमने सूत्र 11 से जाना कि संसारी जीवों के दो भेद होते हैं

- 'समनस्क' या संज्ञी यानि मन से सहित
- 'अमनस्का' या असंज्ञी यानि मन से रहित

22. मन से सहित जीव बड़े-पुरुषार्थ कर सकते हैं अतः उनकी महत्ता है

- इसलिए समनस्क को सूत्र में पहले रखा है

23. सूत्र 11 में हमने जाना कि मन सहित **संज्ञी जीव** बड़े पुरुषार्थ कर सकते हैं

- लेकिन अमनस्क या असंज्ञी जीव बस कर्म-फल का ही अनुभव कर सकते हैं

24. संज्ञी और असंज्ञी का भेद सिर्फ तिर्यंच गति में होता है

- शेष तीनों गति में सिर्फ संज्ञी जीव ही होते हैं
- एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी-पंचेन्द्रिय, सब मन से रहित होते हैं
- वो पशु, पक्षी जो अक्सर हमें दिखा करते हैं वे संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यंच होते हैं

25. बिना मन के आत्मा अन्धकार में रहता है

- उसे यह भी नहीं मालूम होता कि वे कहाँ पड़े हैं
- उनके इन्द्रिय के कारण से संवेदन होगा

26. हमने जाना कि वीर्यान्तराय कर्म और नो-इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से द्रव्य और भाव मन की प्राप्ति होती है

- **भाव मन** कर्म के क्षयोपशम से जनित होता है
  i. यह हमारी ज्ञानात्मक परिणति है
  ii. इसके माध्यम से ही हम विचारों का आदान-प्रदान करते हैं
- **द्रव्य मन** हमारे शरीर में हमारे हृदय के अन्दर एक आठ पंखुड़ी के आकृति की एक विशिष्ट रचना होती है
  i. यह मन की पुद्गल वर्गणाओं से बनी एक पौद्गलिक रचना है
  ii. यह शरीर नामकर्म के उदय से हुई है
- भाव मन और द्रव्य मन की उत्पत्ति करने वाले कर्म अलग हैं और दोनों के संयोग से हमारे अन्दर मन का कार्य चलता रहता है

27. हमने जाना की **मन एक लब्धि** है और हमें इसे सम्भाल कर रखना चाहिए

- किसी के कुछ कह देने या सुन लेने से विचलित हो कर depression में नहीं जाना चाहिए

28. अमनस्क की अपेक्षा मन वाले जीव **कम हैं**
29. अतः मन को संभाल ने के लिए हमें ऐसे विचार जो किसी को दुःख पहुँचाए नहीं करने चाहिए
30. हम इस मन के उपयोग से ही इस तरह की सैद्धान्तिक बातें सुन पा रहे हैं और समझ पा रहा हैं
31. सूत्र 12 में हमने संसारी जीव के दो भेद - त्रस और स्थावर को समझा
32. त्रस का अर्थ है चलना
33. सैद्धान्तिक रूप से **त्रस-जीव** को त्रस नाम कर्म के उदय से त्रस पर्याय मिली हुई है
- फिर चाहे वह जीव मूर्छित, सुप्त या अचल हो

34. स्थावर नामकर्म के उदय से जिनको यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति रूप पर्याय मिलती हैं उन्हें **स्थावर-जीव** कहते हैं
35. त्रस और स्थावर का भेद चलने और न चलने से नहीं होता
- जैसे- वायु चलती है, पानी बहता है, अग्नि बहती है मगर ये सब त्रस नहीं हैं, स्थावर हैं

36. संसारी-जीवों के भावों, भेदों आदि में विविधता के ज्ञान को ही जीव विज्ञान कहते हैं
37. **जीव विज्ञान** नाम से ही एक पुस्तक श्री तत्त्वार्थ सूत्र के अध्याय दो पर पूज्य श्री के प्रवचनों के आधार पर प्रकाशित हो चुकी है

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1. जीव का मुख्य लक्षण क्या है?
1. उपयोग
2. वस्तुत्व
3. प्रमेयत्व

Q2. पांचों भावों की अनुभूति कौन करता है?
1. जीव का उपयोग
2. चेतना
3. अजीव
4. पुद्गल्

Q3. जीव का पारिणामिक भाव क्या है?
1. जीवत्व
2. अजीवत्व
3. दर्शन
4. चारित्र

Q4. चैतन्य लक्षण और उपयोग लक्षण में अन्तर है यह कथन कैसा है?
1. सही
2. गलत

Q5. चैतन्य जीव का क्या है?
1. स्वभाव
2. पारिणामिक भाव
3. दोनों

Q6. पूरे लोक में ऐसा कौन सा point है जहाँ ये जीव नही गया?
1. नरक
2. निगोद
3. स्वर्ग
4. ऐसा कोई point नही है

Q7. पूरे लोक मे जीव का भ्रमण करना कौन सा परिवर्तन है?
1. द्रव्य
2. क्षेत्र
3. काल
4. भव

Q8. समय कोई ऐसा बचा नहीं जिसमें जीव का जन्म न हुआ हो, मरण न हुआ हो। यह कथन कैसा है?
1. सही
2. गलत

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q9. कोई भी ऐसा समय नहीं है जिसमें जीव का जन्म या मरण नहीं हुआ है, ये कौनसा परावर्तन है?
1. द्रव्य
2. क्षेत्र
3. काल
4. भव

Q10. सभी गतियों की किसी भी आयु के साथ हमारा जन्म बाक़ी नहीं बचा, ये कौनसा परिवर्तन है?
1. द्रव्य
2. क्षेत्र
3. काल
4. भव

Q11. कषाय का जीव के अंदर वृद्धि होना कम होना ये कौन सा परिवर्तन है?
1. द्रव्य
2. भव
3. काल
4. भाव

Q12. समनस्का __स्का:। पूर्ण करो
1. मान
2. मन
3. मीन
4. माया

Q13. समनस्क जीव महान काम कर सकते हैं। यह कथन कैसा है?
1. सही
2. गलत

Q14. किन जीवों की संख्या ज्यादा है?
1. अमनस्क
2. समनस्क
3. दोनो की एक जैसी है

Q15. मन कितने प्रकार के होते है?
1. 2
2. 6
3. 4
4. 8

Q16. द्रव्य मन क्या है?
1. पौद्गलिक रचना
2. शरीर नाम कर्म के उदय से होने वाली रचना
3. उपरोक्त दोनों

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें



अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1. चैतन्य भाव और उपयोग में क्या अंतर है?
2. जीव कितने प्रकार के होते हैं? नाम बताइये ।
3. क्षेत्र परावर्तन को समझाइये ।
4. पांच परावर्तन के नाम बताइये।
5. पांच परावर्तन को पढ़ने से हमें क्या लाभ मिलता है?
6. वर्तमान में कौनसा काल चल रहा है? नाम बताइये।
7. 'संसारिणो मुक्ताश्च' सूत्र में संसारी जीव को पहले रखने का कारण क्या है? इस कारण का उपयोग करते हुए ईश्वर के अवतारवाद सिद्धांत का खंडन करिये।
8. समनस्क व अमनस्क किन जीवों के भेद है?
9. समनस्क व अमनस्क जीव किन गतियों में पाये जाते हैं?
10. भाव मन तथा द्रव्य मन की प्राप्ति किन कर्मों के क्षयोपशम तथा उदय से होती है?
11. त्रस जीव तथा स्थावर जीव की परिभाषा बताइये ।

प्रवचन 10

पाँच स्थावर जीवों का वर्णन

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतय: स्थावरा: ॥2.13॥

पृथ्वि + अप् + तेज: + वायु- वनस्पतय: स्थावरा:

थावर जीव अनन्त हैं, उनमें पाँच प्रकार।
वायु-तेज-अप-हरित औ, क्षिति में दु:ख अपार॥2.13॥

यह स्थावर जीव होते हैं जो कि एक इन्द्रिय वाले होते हैं, जिनके पास में स्पर्शन इन्द्रिय जन्य ज्ञान भी होता है। ऐसे यह स्थावर नामकर्म के उदय से जो एकेन्द्रिय होते हैं, वे पाँच प्रकार के जीव बताये गये हैं। 'पृथिव्यप्' यानी पृथ्वी और 'अप्'... 'अप्' शब्द जो होता है वह जल के लिए प्रयुक्त होता है। 'अप्' मतलब क्या होता है? जल। पृथ्वी, जल, अग्नि, तेज मतलब क्या है? अग्नि और फिर उसके बाद में वायु और अन्त में वनस्पति...ये पाँच स्थावर जीव हैं। **इन पाँच स्थावर जीवों का नाम ही एक तरह से प्रकृति है**...जिसे हम बाहरी प्रकृति कहते हैं। उस प्रकृति में हमें ये पाँच चीजें ही दिखाई देती हैं और इस प्रकृति में हम देखें तो अगर यहाँ पर इस स्थावर जीवों के माध्यम से यह प्रकृति बन रही है, तो प्रकृति जीवमय ही हो जाती है यानि सर्वत्र हर एक स्थान पर आपको यह एकेन्द्रिय जीवों से युक्त कोई न कोई परिणति दिखाई दे रही है।



स्थावर जीवों के माध्यम से जीवन का यह क्रम बड़ा वैज्ञानिक है

सर्वत्र आपको इन्हीं एकेन्द्रिय जीवों का विस्तार दिखाई देगा। इन्हीं स्थावर जीवों के माध्यम से सब कुछ अपना जो जीवन चल रहा है, वह आपको दिखाई देगा। पृथ्वी के बिना कुछ भी सम्भव नहीं होता, सबका आधार है। जल, पृथ्वी में ही मिलता है। अग्नि की उत्पत्ति जल से ही होती है और पृथ्वी से भी होती है। अगर हम इस क्रम को देखें तो यह क्रम भी बड़ा वैज्ञानिक है। पृथ्वी सबसे पहले आवश्यक है, पृथ्वी में ही जल मिलता है, पृथ्वी के ही आधार से जल रहता है। नदियों और सागरों का भी जल है, तो पृथ्वी के आधार से है। पृथ्वी के आधार के बिना जल का रहना असम्भव है।

जल के आधार से पृथ्वी और अग्नि का अस्तित्व बना रहता है

SCAN TO WATCH

इसके बाद में अग्नि का क्रम आता है, जो इस बात के लिए है कि अग्नि की उत्पत्ति आज के समय के हिसाब से देखें तो भी यह वैज्ञानिक रूप से हमें दिखाई देता है कि अग्नि दो ही तरीकों से बन रही है। एक तो पृथ्वी में पाए जाने वाले कोयला आदि खनिज पदार्थ हैं, उनसे बनती है या पानी से बनती है। अतः अग्नि की उत्पत्ति जल से भी हो रही है और पृथ्वी से भी हो रही है। समझ में आ रहा है? दूसरी बात यह है कि पृथ्वी और अग्नि के बीच में जल की जरूरत इसलिए है क्योंकि पृथ्वी और अग्नि ये एक दूसरे के विरोधी हो जाते हैं और अग्नि पृथ्वी को जला देती है और पृथ्वी भी अग्नि को समाप्त कर देती है। जल बीच में आ जाता है, तो जल के आधार से दोनों का अस्तित्व बना रहता है। एक अच्छा आप पर्यावरण समझने के लिए इस सूत्र को लगा सकते हैं।

वायु को अग्नि का सखा माना जाता है

अग्नि के बाद वायु का नम्बर आता है क्योंकि अग्नि का सखा वायु मानी जाती है। सखा जानते हैं? साथी, सखा। अग्नि का साथ वायु देती है क्योंकि वायु के माध्यम से ही अग्नि कहीं पर भी spread होती चली जाती है। वायु होने पर ही अग्नि कहीं पर जल पाती है। यह बात अलग है कि अगर वायु का force ज्यादा है, तो अग्नि बुझ भी जाती है लेकिन अग्नि के जलने में, उसको बढ़ने में, हवा का वातावरण, हल्की हवा का वातावरण होना आवश्यक होता है और फिर वही हवा उसको आगे बढ़ाती जाती है, तो अग्नि के बाद में वायु का क्रम आता है।

वनस्पति में जल, अग्नि, वायु सभी स्थित होते हैं



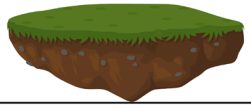
फिर वायु के बाद वनस्पति बनती है, तो वनस्पति तो यह समझ लो कि वनस्पति में तो सब कुछ मिला-जुला है। वनस्पति में पृथ्वी भी है, जल भी है, अग्नि भी है और वायु भी है। वनस्पति में सब कुछ स्थित है, तो वनस्पति इन सब चीजों से मिलकर के ही बनती है। किसी भी चीज की कमी होगी तो वनस्पति नहीं बन पाएगी। क्या समझे? वनस्पति जो भी बनेगी तो पृथ्वी का आधार चाहिए, जल भी चाहिए, उसको तेज अग्नि भी चाहिए...चाहे वह सूर्य का तेज हो, चाहे कुछ हो, वह भी उसके लिए तेज है, उसके बिना काम नहीं बनेगा। वायु भी चाहिए, उससे ही वह फलती-फूलती है...हवा का वातावरण अच्छा हो तो यह वनस्पति की उत्पत्ति होती है। इस तरह से हम इस सूत्र के बारे में बड़ा अच्छा एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते हैं कि आज के समय पर भी जो हमें पर्यावरण में ये चीजें दिख रही हैं और जो अपने मतलब इस पृथ्वी पर उपलब्ध होने वाली जो भी ये सम्पदाएँ हैं, ये सब हमें इसी क्रम से उत्पन्न होती हुई भी दिखती हैं और इनकी रक्षा करने के लिए भी इसलिए कहा गया कि अगर इनकी रक्षा हम करते रहेंगे तो ये चीजें हमारे काम में आती रहेंगी।

जैन शास्त्रों में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति को जीव कहा कहा गया है

अब हम यह जाने कि जैन शास्त्रों में इन सबको जीव कहा जा रहा है। क्या कह रहे हैं? जीव! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति ये सभी क्या होते हैं? जीव होते हैं। थोड़ा-सा इसका विस्तार हम और समझे कि क्या ये सब जीव ही होते हैं या जीव के बिना भी होते हैं? यह हमें चीज तब समझ में आएगी जब हम इनके चार भेद जो आगम में बताए गए हैं। हर एक के कितने? चार-चार भेद होते हैं। उसको समझेंगे तो हमें समझ में आएगा। अतः हर चीज के चार भेद करना।

जैसे पृथ्वी है, तो एक तो पृथ्वी सामान्य रूप से पृथ्वी, फिर पृथ्वीकाय, तीसरा पृथ्वीकायिक और चौथा पृथ्वी जीव, ऐसे चार भेद जानना। इसी तरीके से जल के साथ लगाना- जल, जलकाय, जलकायिक और जल जीव। अग्नि, अग्निकाय, अग्निकायिक, अग्नि जीव। वायु, वायुकाय, वायुकायिक, वायु जीव। वनस्पति, वनस्पतिकाय, वनस्पतिकायिक और वनस्पति जीव। हर एक को चार तरीके से व्याख्यायित किया गया है। इन चार चीजों का क्या अर्थ है?

पृथ्वी के चार भेद होते हैं



पृथ्वी के चार भेद

पृथ्वी	सामान्य पृथ्वी	अचेतन
पृथ्वीकाय	जिसमें पहले जीव था फिर निकल गया	अचेतन
पृथ्वीकायिक	जिसमें जीव है	चेतन
पृथ्वी जीव	अन्य पर्याय को छोड़ कर आ रहा हो	चेतन

1. पृथ्वी का मतलब होता है...सामान्य पृथ्वी जो कि एक तरीके से अपने स्वभाव से ही जो बन जाती है। उसको यहाँ पृथ्वी के रूप में कहा गया है मतलब **वैस्रसिक** परिणाम कहलाता है, जो अपने ही स्वभाव से बन जाए। जो कठोर रूप में अपना किसी भी तरीके का कोई भी आकार बना ले, वह सब जो पृथ्वी है, वह सामान्य पृथ्वी में आती है। एक तरह से यह जो सामान्य पृथ्वी है, यह अचेतन है। यह कैसी है? यह अचेतन है। इसको चेतन नहीं कहा गया मतलब कि ऐसा नहीं कि जो भी हमें पृथ्वी दिख रही है, सब चेतन रूप ही है, सब में जीव ही है। अचेतन भी होती है, **जिसे हम सामान्य पृथ्वी कहते हैं, जो स्वभाव से बनी हुई होती है, अपने काठिन्य गुण को धारण किए रहती है।** उसके कारण से उसका अपना जो फैलाव या विस्तार रहता है इसलिए उसको पृथ्वी के



रूप में ये रूढ़ शब्द के रूप में भी कहा जाता है।

2. अब हम आगे देखते हैं- पृथ्वीकाय। पृथ्वीकाय क्या है? **पृथ्वीकाय** उसको कहेंगे **जिसमें पहले जीव था फिर निकल गया। जीव था और उसमें से जीव निकल गया तो जीव निकलने के बाद जो वह पृथ्वी बची है, वह पृथ्वीकाय है।** जैसे कि मनुष्य का शरीर

होता है, उसमें से जीव निकल गया तो शरीर बचा रह गया तो हम उसको मृत शरीर कहते हैं तो वह मृत शरीर की तरह जो मृतकाय है, वह ही उसकी पृथ्वीकाय कहलाएगी। ये दो तरह के जीव हो गए।

3. **पृथ्वीकायिक!** कौन-सा? पृथ्वीकायिक। कायिक वह कहलाएगा **जिसमें जीव है,** जिसके अन्दर जीव अभी उपस्थित है जैसे कि जीवित मनुष्य है...उसका शरीर है, अभी वह उसमें है। वह क्या कहलायेगा? कायिक। काय में और कायिक में अन्तर समझ आ गया। काय तो केवल काय रह गई, उसका शरीर रह गया, जिसमें जीव नहीं रहा...वह कहलाया काय और कायिक वह कहलाएगा...जो जीव से सहित हो।

4. चौथा भेद होता है- **पृथ्वी जीव।** जीव का मतलब अब यहाँ पर वह लेना कि जो किसी अन्य पर्याय को छोड़ कर आ रहा हो। **अभी उस पृथ्वी को अपनी उसने काया नहीं बनाया हो।** बीच में आकाश में जो **विग्रह गति** होती है, जब तक वह रह रहा है तब तक उसका नाम है- पृथ्वी जीव। ऐसा जीव जो नियम से आगे किसी न किसी पृथ्वी को अपनी काया बनाने वाला है। नियम से उस पृथ्वी में उत्पन्न हो कर के पृथ्वीकायिक जीव कहलाएगा। अतः जो अभी रास्ते में है...**विग्रह गति का मतलब - एक शरीर को छोड़ने के बाद दूसरे शरीर को ग्रहण करने के बीच का जो एक रास्ता है, वह विग्रह गति कहलाती है।** उस स्थिति में जो जीव है, उसको कहेंगे...पृथ्वी जीव। यह चीज आपको हर जगह घटित करनी है।

स्थावरों के इन चार भेदों में दो-दो रूप अचेतन और चेतन के हैं

पहली बात इसमें यह है कि इन चार चीजों में अचेतन दो रूप हैं और चेतन के दो रूप हैं। **जो सामान्य पृथ्वी है और जो पृथ्वीकाय है,** ये दोनों क्या हैं? ये **अचेतन हैं,** इनमें जीव नहीं है। अब इनमें भी अगर देखा जाये तो यह जो सामान्य पृथ्वी है, वह सामान्य ही है। एक तो वह है जिसमें से जीव निकल गया इसलिए वह अचेतन हो गई और एक वह है, जो अपने स्वभाव से अचेतन है। ऐसा हमें थोड़ा difference करना चाहिए। ऐसी भी पृथ्वी होती है, जो स्वभाव से अचेतन है और ऐसी भी पृथ्वी होती है, जिसमें जीव रहा लेकिन उसमें से निकल गया, वह उसकी काया स्वरूप है। हम ऐसा नहीं कह सकते कि हमें जगत में जितनी भी पृथ्वी दिखाई दे रही है, जितना भी जल दिखाई दे रहा है, वह सब चेतन ही है या सब अचेतन ही है। जानना हमें चारों चीजें हैं लेकिन निर्णय करने में किसी particular कोई पृथ्वी या जल का हम निर्णय करना चाहे वह कठिन है। लेकिन ऐसा होता है, यह हमें सिद्धान्त से जानना चाहिए। हम किसी भी पृथ्वी, जल, अग्नि को देखकर के यह निर्णीत नहीं कर सकते कि यह अचेतन है कि चेतन है? हमें उसकी रक्षा करने के लिए, उससे बचने के लिए, हमें उसको चेतन ही मान कर चलना पड़ेगा क्योंकि हमें चेतन की रक्षा करनी है। लेकिन अपनी धारणा में यह भी होना चाहिए कि ये सब चीजें चेतन के साथ-साथ अचेतन भी होती हैं। चार रूपों में से दो रूप अचेतन हैं और दो रूप चेतन हैं।

जल के चार भेद

SCAN TO WATCH

अब जल में भी ऐसे ही घटित करना है। सामान्य जल! सामान्य जल का मतलब होता है...जो अपने स्वभाव से जल के रूप में ही परिणमन करता हुआ है बस; जल के रूप में है। अगर उसमें जलकायिक जीव हैं वे निकल गए तो वह जलकाय कहलायेगा और जब तक उसमें जलकायिक जीव हैं तब तक वह जलकायिक कहलायेगा और जल जीव तो जो उसमें उत्पन्न होने को आ रहा है, वह हो रहा है लेकिन सामान्य जल भी होता है। अब वह कितनी देर सामान्य रहता है? कौन-सा होता है? यह कहना कठिन है लेकिन होता तो है। यही मैं कह रहा था कि हम किसी particular, किसी भी जीव को या किसी भी इस प्रकृति की चीज को यह कह कर के नहीं ले सकते हैं कि यह जल जीव से रहित है और ऐसा कहकर के भी use नहीं कर सकते हैं कि यह जीव से रहित है इसलिए use कर रहे हैं। लेकिन चार रूप उसके होते हैं, यह जानना जरूरी है।



कब क्षणभर के लिए जल और अग्नि को शुद्ध रूप कहा जा सकता है?

ऐसे ही अग्नि में भी होता है, वायु में भी होता है, वनस्पति में भी होता है। अब कोई-कोई जल या पृथ्वी को आप एक शुद्ध पृथ्वी या शुद्ध जल का रूप अगर आप कहना चाहे तो यह कहना मुश्किल तो होता है। लेकिन फिर भी समझने के लिए आपको समझाया जा सकता है कि जैसे बादलों से निकला जल; जैसे ही वह निकला बस! तब तक हम उसे शुद्ध कह सकते हैं,

वह शुद्ध जल है। अब यहाँ तक आते-आते उसके साथ क्या मिल गया? कितने जीव उसमें जन्म ले गए? कुछ नहीं कहा जा सकता और जरूरी नहीं कि पृथ्वी पर आकर के ही उसमें जलकायिक जीव उत्पन्न हो, जलकायिक बने। रास्ते में भी बन सकता है लेकिन उस क्षण, जिस क्षण वह केवल बादल से निकला, उस समय तो कम से कम हम उसे शुद्ध जल कह सकेंगे। समझ आ रहा है? ऐसे ही कोई अग्नि भी जिस समय जिस क्षण जलती है, क्षण भर के लिए हम उसे शुद्ध कह सकते हैं। लेकिन जलने के बाद उसमें भी जीव उत्पत्ति हो जाती है... अग्निकायिक जीव उसमें उत्पन्न होने लगेंगे।सबसे बड़ी बात हमें क्या जानना चाहिए है? इन पाँचों ही स्थावरों की एक और विशेषता है जो बहुत कम लोग जानते हैं।



एकेन्द्रिय जीव अपनी काया पहले से ही उपस्थित द्रव्य को बना लेते हैं

क्या जानना चाहिए? कि इनके अन्दर जो जीव रहते हैं वे जीव उसको अपनी काया बनाते हैं, जो पहले से ही वह द्रव्य के रूप में उपस्थित हैं। पृथ्वी है, पृथ्वी को काया के रूप में बना लिया, इसका नाम है- पृथ्वीकायिक। क्या समझ आ रहा है? ऐसा नहीं है कि जैसे हमने अपना शरीर बनाया, हम धीरे-धीरे अपना शरीर बना कर के बड़े हुए, यहाँ थोड़ी-सी व्यवस्था अलग समझनी चाहिए। पृथ्वी है, जल है, अग्नि है, वह उसी में जाकर के अपनी काया बना लेता है, उसी को अपना शरीर बना लेता है। इस तरह से वह उसमें जन्म ले लेता है, उसी को काय के रूप में स्वीकार करके वह उसी में फलित हो जाता है। कुछ अन्तर समझ में आ रहा? यह अन्तर जरूर ध्यान रखना चाहिए।

पाँचों ही स्थावरों के शरीरों को एकान्त रूप से कलेवर नहीं है



स्थावर जीव की काया = घनांगुल का असंख्यातवाँ भाग

SCAN TO WATCH

तभी कुछ लोग यह समझते हैं कि जो कुछ भी हमें यहाँ पर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति इत्यादि हैं, ये सब सारा का सारा जीवों का छोड़ा हुआ **कलेवर** है। कलेवर मतलब? शरीर है, जीवों को छोड़ा हुआ शरीर है। यह बात एकान्त रूप से सही नहीं है। समझ आ रहा है? क्यों नहीं है? क्योंकि यह जीव तो उस शरीर को अपना शरीर बना लेते हैं, **जो पृथ्वी पड़ी हुई है स्वभाविक रूप में जो सामान्य पृथ्वी है, उसको अपनी काया बना ली, उसका नाम है- पृथ्वीकायिक।** जल जो सामान्य था, उस जल को ही जिसने अपनी काया बना ली तो हो गया जलकायिक। वायु जो बह रही थी, उसको ही जिसने अपनी काया बना लिया, वह हो गया वायुकायिक। अग्नि जो जल रही थी, उसी को जिसने अपनी काया बना लिया तो वह हो गया अग्निकायिक। वनस्पति जो उग रही थी, उसी में अपनी काया बना ली, उसका नाम हो गया वनस्पतिकायिक। मतलब क्या हुआ ? एकान्त रूप से यह नहीं है कि यह जो कुछ भी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु है ये सब जीवों का त्यक्त शरीर है, छोड़ा हुआ शरीर है, ऐसा नहीं है। इसमें जो पौद्गलिक formation है, वह ज्यादा है। नहीं समझे? मतलब कि जैसे पृथ्वी को बनाने वाले परमाणु, जल को बनाने वाले परमाणु, ये पौद्गलिक formation ज्यादा हैं, इसे हम बोलते हैं- matter, इसका यह काम ज्यादा है।

प्रकृति में जल , पृथ्वी आदि पुद्गल और जीव रूप, दोनों तरह से हैं

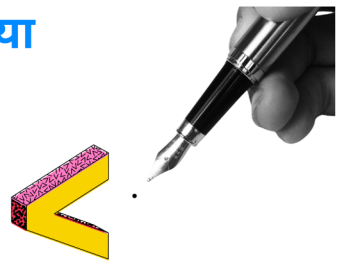
जीव तो वहाँ जाकर के उत्पन्न हो रहा है। **त्रसों की जैसी व्यवस्था है, वह व्यवस्था सर्वथा स्थावरों की नहीं है।** यह बहुत कम लोग जानते हैं। ऊँचे दर्जे के पण्डित भी बहुत कम लोग जानते होंगे। इसलिए कई बार, कई बच्चे या कुछ पढ़े-लिखे थोड़ा बहुत एकेन्द्रिय आदि का ज्ञान रखते तो सीधा-सा इसी बात को कहने लग जाते हैं- यह भी तो जीवों का शरीर है। यह

जल है, इसमें से आपने जीव निकाल दिए, जीव निकल गए तो जीवों का शरीर है। अब आप इसको पी रहे हो, खा रहे हो। जैसा बोला जा रहा है ऐसा यह एकान्त नहीं है। हो सकता है लेकिन ऐसा ही हो कोई जरूरी नहीं है। क्योंकि हमारे पास में सामान्य पृथ्वी, सामान्य जल भी बताया गया है और उसको जो काया बना रहा है, वह जीव जो है, उसको काया बनाने के बाद में वह कायिक बन रहा है। जैसे कि अपना शरीर है।अब इस शरीर में आकर के दूसरे जीवों की उत्पत्ति हो रही है। मान लो दूसरे जीव इसमें उत्पन्न हो रहे हैं तो यह शरीर तो अलग था। इसमें उत्पन्न हो करके उन जीवों ने अपना इसमें रहने का स्थान बना लिया या उसी को अपनी काया बना ली तो उनका वह शरीर नहीं कहलाएगा। वह तो अपना शरीर तो अलग ही था, समझने के लिए पृथक था। समझ आ रहा है? पृथ्वी कहीं पर है, उस पृथ्वी में जीव जाकर के उत्पन्न हो गया, पृथ्वी कायिक हो गया। इस तरह की व्यवस्था को जान करके हम यह समझ सकते हैं कि यहाँ जो पृथ्वी, जल आदि हैं, वह सब कुछ जीवों का कलेवर एकान्त रूप से नहीं है, इसलिए यह सब पौद्गलिक भी कहलाता है। प्रकृति में ये सब चीजें पुद्गल रूप भी हैं और जीव रूप भी हैं।

पृथ्वी आदि में जीव कहाँ है और कहाँ से निकल गए नहीं बताया जा सकता

जीव इनमें उत्पन्न हो सकते है, रह सकते हैं लेकिन सर्वत्र जीव होते हुए भी हम यह एकान्त रूप से नहीं कह सकते हैं कि जहाँ-जहाँ जो-जो भी पृथ्वी है सब में जीव ही है और यह भी नहीं कहा जा सकता है कि कौन-सी पृथ्वी में जीव नहीं है। सम्भावनाएँ सब हैं। यह भी नहीं कह सकते कि खदान से जो पत्थर निकल गया, अब उसमें से जीव निकल गया, प्रासुक हो गया, ऐसा कुछ नहीं है। खदान में से पत्थर निकल गया, वह पत्थर टूट गया। वह एक पत्थर था, उसकी बहुत बड़ी काया थी, उसके हमने टुकड़े-टुकड़े कर दिए तो अब उसमें जीव निकल गया, ऐसा कुछ नहीं है क्योंकि ये जो जीव होते हैं ये तो बहुत छोटे होते हैं। मतलब हम तो इतना point भी नहीं बना सकते, जितना point भी समझ लो बहुत बड़ा बन जाएगा। अगर आप copy के ऊपर dot का एक point भी रखोगे तो वह भी बहुत बड़ा हो जायेगा, उससे भी छोटी काया वाले जीव होते हैं। **घनांगुल का असंख्यातवाँ भाग इनकी काया कहलाती है,** तो ऐसे जीव तो उसमें कितने भी हो सकते हैं। जहाँ पर आपने चोट न की हो वहाँ पर भी जीव हो सकता है और जहाँ पर आपने चोट कर दी बस! उतना सा जीव अलग हो सकता है लेकिन जितना portion बचा है, उसमें तो कहीं भी जीव हो सकता है, हम कुछ नहीं कह सकते हैं।

स्थावर जीव की काया



घनांगुल का असंख्यातवाँ भाग

आपने अपने मन्दिर के भगवान भी बनाए हैं तो उस पत्थर में भी, उस पाषाण में भी पृथ्वीकायिक जीवों की उत्पत्ति हो सकती है और होने में कोई बाधा नहीं है। क्या सुन रहे हो? सिद्धान्त तो सिद्धान्त है, समझने की बात है। हमने उस पाषाण की केवल ऊपरी आकृति तो बनाई, उसके एक-एक point को थोड़े ही न फोड़ दिया। point को फोड़ देंगे तो फिर पत्थर ही कहाँ बचेगा। यह चीज समझ करके आपको समझना है कि चाहे पृथ्वी हो, चाहे जल हो, चाहे अग्नि हो या वायु हो या वनस्पति ये सभी जो हैं, बड़ी सूक्ष्म काया वाले जीव होते हैं और बड़े सूक्ष्म रूप से परिणमन करके रहते हैं। इसलिए कहाँ पर कौन से जीव हैं, इसकी व्यवस्था जैसी आगम में बताई गई है, हमें उसी के अनुसार उनकी रक्षा के लिए तत्पर रहना होता है। लेकिन ज्ञान में यह भी रखना होता है कि जीव के अलावा भी अजीव रूप में भी, अचेतन रूप में भी यह सब प्रकृति हमारे लिए उपलब्ध होती है।

हमारा जीवन इन सभी चीजों से चल रहा है

पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये तो आपके लिए जो चार चीजें हैं, इनमें से अगर रक्षा की बात आती है, तो हम केवल जल के बारे में ही सोचते हैं और बहुत-बहुत अग्नि के बारे में सोच लेते हैं। वायु तो क्या, जितनी वायु आवश्यक है, वह तो लेनी ही है। अब ये सब चीजें कैसी हैं? जिनसे हमारा जीवन चल रहा है। बिना पृथ्वी के हम रह नहीं सकते; घर-मकान बनाना है। बिना जल के यह शरीर नहीं चलता, बिना अग्नि के कोई भोजन नहीं पकता, बिना वायु के श्वास नहीं चलती और बिना वनस्पति के कुछ चीजें होती नहीं है, अब वनस्पति तो वनस्पति है। सिद्धान्त से देखो, विस्तार करके देखो तो आपको पता पड़ेगा कि वनस्पति के द्वारा ही अपना जीवन चलता है। चाहे कोई भी चीज हम खा रहे हो, चाहे सूखी खा रहे हो या गीली खा रहे हो, सब वनस्पति ही तो होती है। चलो! थोड़ा-सा वनस्पति के बारे में चर्चा करते हैं।

वनस्पति के भेदों को समझे



दो प्रकार की वनस्पति है- सबसे पहले एक **साधारण वनस्पति** कहलाती है और एक **प्रत्येक वनस्पति** कहलाती है। सबसे पहले वनस्पति के दो भेद, ये चार भेद तो रहेंगे ही। अब जो काम में आने वाली चीजें उसको और ढंग से समझने के लिए दो तरह की वनस्पति बताई गई है- एक साधारण और एक प्रत्येक। साधारण का मतलब होता है...**जो अनन्त निगोद जीवों का शरीर या अनन्त निगोद जो जीवों का एक पिण्ड होता है, वह सब साधारण वनस्पति के रूप में कहा जाता है।** मतलब साधारण वनस्पति कायिक जीव कहो या निगोद जीव कहो, एक ही बात है। साधारण वनस्पति कायिक का शरीर कहो या निगोदों का शरीर कहो, यह एक ही बात है। समझ आ रहा है? यह तो चलो निगोद हो गया। साधारण वनस्पति का मतलब क्या समझ में आया आपको? निगोद! जो कि अनन्त, अनन्त जीवों का पिण्ड होता है। **दूसरी होती है- प्रत्येक वनस्पति।** प्रत्येक वनस्पति का मतलब...**जिसमें एक शरीर का एक जीव ही स्वामी**

होता है, वह प्रत्येक वनस्पति वाला जीव।



साधारण वनस्पति को ही निगोद कहते हैं

निगोद जीव

एक शरीर के अनन्त जीव स्वामी होते हैं

साधारण वनस्पति



प्रत्येक वनस्पति —··➤ **जिसमें एक शरीर का एक जीव ही स्वामी होता है**



जिसमें एक शरीर के अनन्त जीव स्वामी होते हैं वह साधारण वनस्पति वाला जीव हो गया।

निगोद जीव को हमने साधारण कहा तो मतलब निगोद में अनन्त जीव होते हैं, वह अनन्त जीवों का एक ही शरीर होता है। वह निगोद जीव बादर और सूक्ष्म के भेद से पूरे लोक में स्थित रहते हैं। उन्हीं निगोद जीवों से हमारे शरीर के अन्दर माँस आदि की उत्पत्ति होती रहती है और वह माँस में निगोद जीव ही रहते हैं। **अनन्त-अनन्त निगोद जीव, हर समय जीते-मरते हैं। अन्तर्मुहूर्त की उनकी आयु होती है और इस तरह से यह प्रति समय परिणमन चलता रहता है।** वहीं निगोद जीव वनस्पति में भी होते हैं तो यह साधारण वनस्पतिकायिक जीव जो हुए, वे क्या हो गए? अनन्त जीव। अनन्त जीव वाले, अनन्त शरीर को धारण किए हुए, अनन्त निगोद जीवों का जो यह पिण्ड है, इन सब निगोद जीवों को ही हम साधारण वनस्पति कह रहे हैं और यह भी है कि एक-एक निगोद जीव के आश्रित अनन्त निगोद जीव होते हैं। एक निगोद जीव जिस शरीर में रह रहा है, उसके उस शरीर में अनन्त निगोद जीव रह रहे हैं। **ऐसे ये निगोद जीवों के एक-एक गुच्छे अनन्त समझना और अनन्त में अनन्त-अनन्त जीव हैं इसलिए अनन्तानन्त निगोद जीव होते हैं।**

यह तो हो गया साधारण। अब आप कहोगे इसका वनस्पति से क्या लेना-देना है? आपको धीरे-धीरे बताएँगे कि इसका वनस्पति से क्या लेना-देना? यह तो चलो एक, इसको एक तरफ रखो। साधारण वनस्पति का मतलब क्या हो गया? निगोद जीव। **अब प्रत्येक वनस्पति... ऐसा वनस्पति कायिक जीव जिसका अपना एक शरीर है और उसका वह स्वामी हैं, उसी की उसकी अपनी आयु है और उसी के अनुसार उसमें जीवत्व बना रहता है, वह कहलाएगा- प्रत्येक वनस्पति।** अब आगे बढ़ते हैं...

प्रत्येक वनस्पति के दो भेद होते हैं

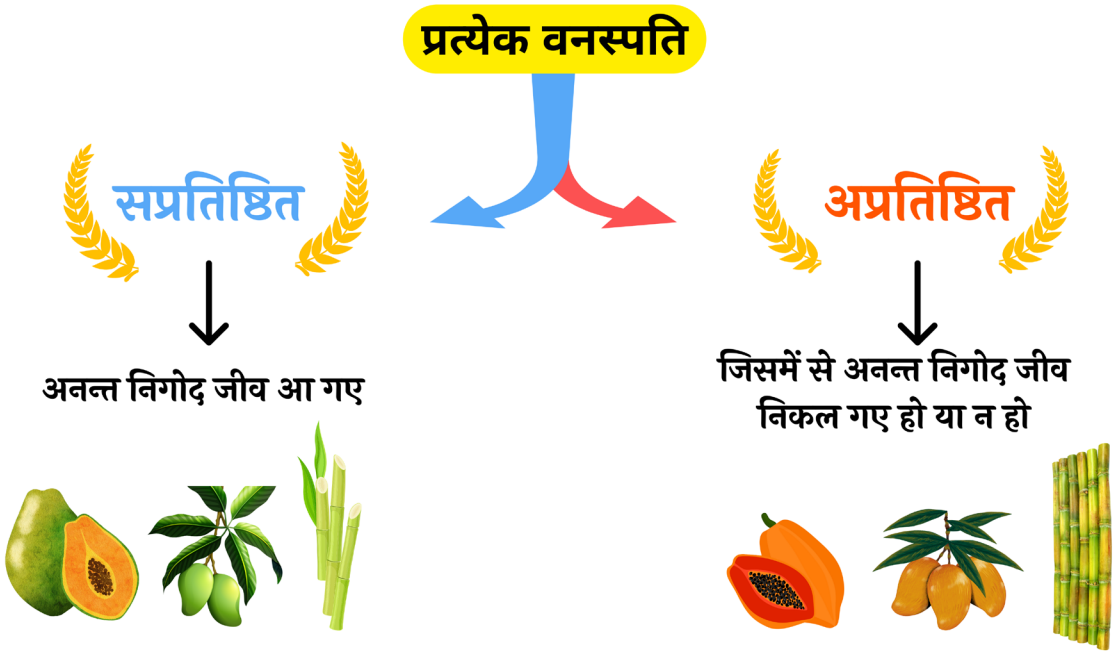


प्रत्येक वनस्पति के दो भेद हो जाते हैं। किसके? प्रत्येक के। एक कहलाती है- **सप्रतिष्ठित प्रत्येक और दूसरी** कहलाती है- **अप्रतिष्ठित प्रत्येक।** क्या बोलते हैं? सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति और अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति। शब्द में थोड़ी-सी आपको कठिनाई सी महसूस हो सकती है लेकिन बड़ी simple सी जानने की चीजें हैं और simple से शब्द हैं। यहाँ पर प्रतिष्ठित का मतलब है- उसमें स्थित होना, प्रतिष्ठा होना मतलब वह चीज उसमें है। क्या है? जो प्रत्येक वनस्पति है, ध्यान रखना जिसका एक जीव का एक शरीर है, अगर उस शरीर में उसी प्रत्येक वनस्पति में अगर अनन्त निगोद जीव आ गए और अनन्त निगोद जीव भी उसमें रह रहे हैं तो वह कहलाएगा सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति है।

मतलब क्या हुआ? ऐसी वनस्पति, प्रत्येक वनस्पति जो अनन्त निगोद जीवों से सहित हो, जिसमें प्रतिष्ठा किसकी हो गई? निगोद जीवों की प्रतिष्ठा हो गयी। अनन्त निगोद जीव जिसमें हो, वह क्या हो गया? सप्रतिष्ठित प्रत्येक। जिसमें से अनन्त निगोद जीव निकल गए हो या न हो, उसको बोलेंगे- अप्रतिष्ठित प्रत्येक। ये दो प्रकार के भेद हमें ध्यान में रखने योग्य हैं।

सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति और अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति। क्यों ध्यान में रखने योग्य हैं? क्योंकि हम जितनी वनस्पति का उपयोग करते हैं, जो भी वनस्पति हमारे काम में आती है, वे ये दो रूपों में ही हमारे काम में आती है और हर कोई जो वनस्पति हमारे काम में आती है, वह **प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति** ही होती है। यानि सप्रतिष्ठित भी है और अप्रतिष्ठित प्रत्येक जीव भी उसके अन्दर हो सकते हैं लेकिन कुल मिलाकर के वह सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति ही कहलायी न?

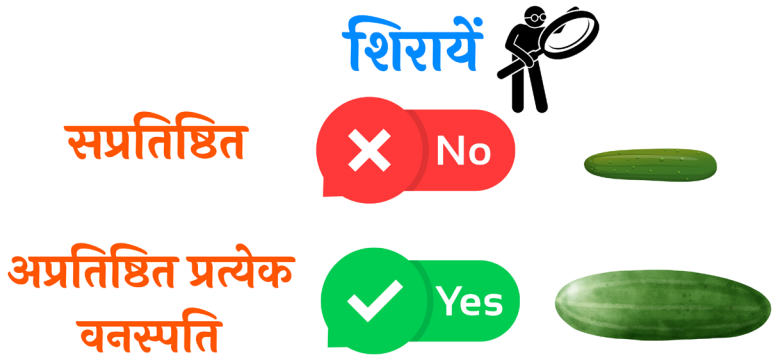
हमारे योग्य सभी वनस्पति दोनों प्रकार की होती है



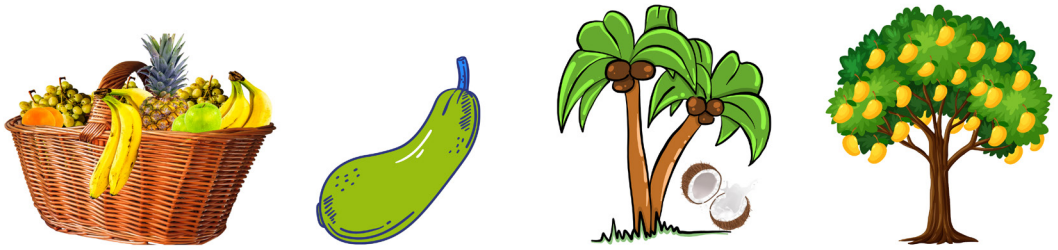
कोई भी वनस्पति है, हर वनस्पति जो हमारे काम में आती है उसमें दोनों तरह के जीव होते हैं- सप्रतिष्ठित भी और अप्रतिष्ठित प्रत्येक भी। अप्रतिष्ठित प्रत्येक जो जीव है, वह तो चलो एक जीव, एक शरीर को धारण करने वाला होता है। लेकिन उसे सप्रतिष्ठित जो बना दिया जाता है, अनन्त जीवों के जो निगोद जीव जो साधारण वनस्पति थी, उसमें प्रतिष्ठा होने के कारण से वह क्या बन गया? सप्रतिष्ठित। यही वनस्पति सब जगह पर हमें दिखायी देती है, निगोद जीवों से जो सहित होती है...**इसी को हम साधारण जीव बोलते हैं, इसी को हम अनन्तकाय बोलते हैं।** आपने कभी सुना होगा लोग कहते हैं...इसमें तो अनन्त जीव हैं, अनन्त जीव हैं तो लोग किसमें बताते हैं? जैसे पालक है, मेथी है या कोई और कोई हरी पत्ती वाली कोई चीज है, तो कहते हैं...अनन्त जीव हैं, इसमें अनन्त जीव हैं। कोई भी ऐसी वनस्पति नहीं होती जिसमें अनन्त जीव न हो। सब में अनन्त जीव होते हैं।

क्या कह रहे हैं? अनन्त जीव से प्रतिष्ठित हर वनस्पति होती है लेकिन इतना जरूर है कि इनमें उन अनन्त जीवों की संख्या ज्यादा होती है, उनमें कम होती है।

साधारण, प्रत्येक वनस्पति की पहचान



अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतियाँ - भक्ष्य



जो भी वनस्पति अगर हमें पहचानना है, तो उसके लिए भी आचार्यों ने थोड़ी सी चीज बताई है कि वह कब तक साधारण है और कब वह प्रत्येक हो जाती है? साधारण का मतलब वह साधारण निगोद जो जीव हैं, उनसे जब प्रतिष्ठित रहेगी, उसकी मात्रा उसमें अनन्त जीवों की जब अधिक भरी रहेगी तो वह जो है- सप्रतिष्ठित है प्रत्येक। वह हमारे लिए खाने योग्य एक तरह से नहीं होती है। जब वह अप्रतिष्ठित अवस्था में आ जाए तो वह खाने योग्य होती है। आचार्य कहते हैं- ऐसी वनस्पति जिसके शिरायें, शिरायें जानते हो? स्नायु होते हैं जैसे आपकी नसें होती हैं न, वनस्पतियों में उसकी शिराएँ होती हैं। जब हम किसी वनस्पति को खोल कर अन्दर देखेंगे तो उसकी जो फाँकें होती हैं, उनके बीच में एक संधि होती है, यह शिरायें हैं, सन्धियाँ हैं। **अगर यह अदृश्य हो, दिखाई न दे रही हो तो यह साधारण है।**

जैसे इसके अलावा जिनमें शिरायें वगैरह नहीं होती, जिनमें पौरें दिखाई देती हैं। जैसे ईख होता है, गन्ना! इसमें क्या दिखायी देता है? पौरें। एक तो इसमें पौर दिखाई न दे, ऐसा गन्ना!

अगर दिखाई नहीं दे रहा है, तो वह जो है साधारण है, जीवों से प्रतिष्ठित है। वह अनन्तकाय वाला है, अगर उसमें पौर दिखाई नहीं दे रही है। समझ आ रहा है? कुछ ऐसी वनस्पतियाँ होती हैं, जिन्हें अगर हम तोड़े तो जिनके सम भंग हो जाए, बिल्कुल बीच में से टूट जाए तो वह क्या है? वह साधारण के साथ में प्रतिष्ठित है, सप्रतिष्ठित है। किसी-किसी में रेशा भी लगा हुआ न दिखाई दे, उसका कोई रेशा भी न लगा दिखाई दे और अगर हम उस वनस्पति को छिन्न कर दे, छेद दे, तोड़ दे और फिर उसको हम उगाए तो फिर से उग जाए। यह सब वनस्पतियों का जो लक्षण बताया जा रहा है, यह सब आप सप्रतिष्ठित वनस्पति का ही लक्षण समझ लो। इनमें अनन्तानन्त साधारण वनस्पतिकाय वाले जीव हैं और इससे विपरीत लक्षण आ जाए तो वह अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति वाला जीव कहलाएगा, साधारण जीवों से रहित हो गया।

गन्ने, नारियल आदि की पहचान



जैसे वही ईख है, गन्ना है। जब वह पका होता है, बड़ा होता है, तो फिर उसके पौर हमें अलग दिखाई देते हैं, फिर वह अदृश्य नहीं होते हैं। नारियल होता है, उसकी हमें शिराएँ फिर अलग से उभरी हुई दिखाई देती हैं। खरबूजा होता है, उसकी शिराएँ अलग दिखाई देती हैं। अन्दर अगर कोई फाँकें हैं, उन फाँकों के बीच में कुछ भी अदृश्यता नहीं होगी, वे फाँकें हमें बिलकुल दृश्य दिखाई दे रही होंगी, प्रकट रूप से ये फाँकें अलग-अलग हैं तो ये क्या हो गये? ये जो हमारे भोजन में आते हैं, ये जो खाने में आते हैं, ये वस्तुतः इसलिए सही माने जाते हैं क्योंकि यह काफी कुछ पक चुके होते हैं। पक गए! ये एक तरीके से साधारण जीवों से तो रहित हो गए लेकिन इनमें भी अभी प्रत्येक वनस्पति कायिक जीव हो सकते हैं, होते हैं और उन प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों की संख्या तो असंख्यात होती है। निगोद जीवों की जो साधारण वनस्पति कायकों की जो संख्या है, वह अनन्त होती है। जब हम इन पके हुए वनस्पतियों को देखते हैं तो इनमें अपने आप जीवों की संख्या जो अनन्त वाली है, वह कम हो चुकी होती है।





जीव विज्ञान का सही ज्ञान वनस्पति के माध्यम से होता है

हम अक्सर जो भोजन लेते हैं, उनमें इसी तरीके की वनस्पतियों का उपयोग करते हैं। समझ आ रहा है? खासतौर से जो भी भक्ष्य चीजें मानी जाती हैं या अच्छी वनस्पतियाँ मानी जाती हैं, हम वह लेते हैं जो अच्छी वनस्पतियाँ होती है। जितना पृथ्वी से ऊपर, जितना ऊपर उठकर के आकाश में जिसका बिल्कुल हवा में जिसका फल डोले, वह उतना ही अच्छा और उतना ही वह जीव से रहित और उतना ही ज्यादा फायदेमन्द फल होगा। जितना जमीन के पास होगा, जमीन के अन्दर होगा, वह उतना ही ज्यादा जीवों से सहित होगा और जितना जमीन से ऊपर फलेगा-फूलेगा, हवा में डोलेगा-लटकेगा, वह खाएँगे, वह जीव से रहित होगा।

साधारण वनस्पति के उदाहरण



अनन्त जीव जब हम कहते हैं तो जैसे घास है, काई जो लग जाती है, वह वनस्पति है और अनन्त जीव के साथ में ये जो पालक, मैथी, बथुआ वगैरह जो होते हैं, पत्ते वाली जो वनस्पतियाँ हैं, ये एक तरीके से इसलिए अनन्त जीव कहलाती हैं क्योंकि इनमें कुछ भी पकाव नहीं होता और ये साधारण रूप से हमेशा अनन्त जीवों से सहित ही हमको उपलब्ध होती हैं। लेकिन इनमें भी प्रत्येक होते हैं लेकिन इनकी प्रत्येकता हमारे ग्रहण करने में नहीं आती। नारियल है, आम हैं, ये सब फल जो लटक रहे हैं, सेब हैं, लौकी हैं ये सब चीजें जो अच्छी पक गई, बन गई, इनमें अब क्या समझना? अब ये जो है आपके लिए ये अप्रतिष्ठित प्रत्येक हो गई मतलब साधारण जीवों से तो यह रहित है, कम से कम। अब हम उसको प्रासुक करेंगे तो उसके लिए जो उसके अन्दर और भी प्रत्येक वनस्पति वाले जीव होंगे उनको प्रासुक करेंगे। यह जीवों का जो वनस्पति के साथ में विज्ञान है इसी के माध्यम से आपको वनस्पति का सही ज्ञान हो सकता है। जो भी वनस्पति हमें दिखाई देती है, हमारे भोजन में आती है वे सारी की सारी चीजें वनस्पति ही होती हैं।

हरी के त्याग का क्या मतलब है



आप लोग क्या समझते हो? अब देखो! व्यवहार में जो कुछ भी चीजें अच्छी हैं लेकिन सिद्धान्त की दृष्टि से देखो तो एक सिद्धान्त अपनी जगह पर एक अलग व्यापक दृष्टिकोण से हमें देखने को सब कुछ चीजें देता है। जैसे मान लो आपने कहा, हमारा हरी का त्याग है, **तो आपने हरी का त्याग करके क्या समझ लिया? वनस्पति का त्याग है, क्या समझ लिया आपने?** हरी के त्याग का मतलब क्या हो गया है? वनस्पति का त्याग है? अब हमें आप यह बताओ कि बिना वनस्पति के कौन-सी चीज खा रहे हो आप? दाल-रोटी बिना वनस्पति के उग रही है क्या? सूख गई, न सूख गई यह तो बाद की बात है; है, तो सब वनस्पति ही। अगर गेहूँ भी हो रहा है, तो उसमें बालों में ही वह गेहूँ होता है, उसकी भी बालें लगती हैं, उसकी भी फसल होती है वह भी तो आखिर वनस्पति से ही पैदा हुआ है न? मैं कह रहा हूँ व्यवहार में जो हम कर रहे हैं सब अच्छा कर रहे हैं। लेकिन हम सिद्धान्तत: भी देखे तो कोई भी जीव अगर हरी छोड़ दी तो वह यह समझ लेता है कि उसने वनस्पति छोड़ दी। आज आप वनस्पति का विज्ञान पढ़ रहे हो तो अपने दिमाग में यह भी रखो कि वनस्पति छोड़कर के तो हम जीवित ही नहीं रह सकते हैं।

सूखा अनाज भी वनस्पति है

अगर हम दाल भी खा रहे हैं तो दाल कहाँ हो रही है? दाल क्या वनस्पति नहीं है? वह भी सूख गयी है। हम कोई भी वनस्पति को भी सुखाकर खा सकते हैं और सूखने से वनस्पति नहीं हो ऐसा तो नहीं है। हमें तो यह देखना है कि वह चीज वनस्पति कायिक थी कि नहीं। वनस्पति काय जो रह गई वह तो सूख कर रह गई, यह तो बात अलग है लेकिन थी तो वनस्पति ही। हम जिस तरह से केवल हरी के त्याग में सब्जियों का त्याग कर लेते हैं, फलों का त्याग कर लेते हैं लेकिन दालों को और यह गेहूँ हैं, चावल हैं, ये क्या वनस्पति नहीं हैं? आप कहोगे महाराज! आप कुछ न कुछ नई-नई बातें बताते रहते हो। बात नयी नहीं है, नये ढंग से सोचने की है। यह हम भी जान रहे हैं, मान रहे हैं कि हाँ! ठीक है! वही वनस्पति है लेकिन यह भी वनस्पति है सिद्धान्ततः यह भी तो जानो।

हम जो भी भोजन में लेते हैं सब वनस्पति है

गन्ना है, यह भी वनस्पति है। अगर आप हल्दी का प्रयोग कर रहे हैं तो वह भी वनस्पति है। सौंठ का, अदरक का प्रयोग कर रहे हैं, वह भी वनस्पति है। नहीं समझ आ रहा है? जो भी आप मसालों का प्रयोग कर रहे हैं, बिना वनस्पति के कभी सूखे मसाले कहाँ बनेंगे? सब वनस्पति हैं। जो आप ये फल fruit ले रहे हैं, इसी को बस आप वनस्पति समझ रहे हो। यह आप के लिए एक व्यवहार की दृष्टि से सही है लेकिन सिद्धान्त की दृष्टि से तो यह भी तो जानो कि सब कुछ वनस्पति तो होता है। हम अगर इसको सूखा-सूखा कह रहे हैं, इसको सूखा कर

खा रहे हैं तो ऐसी भी वनस्पतियाँ होती हैं, फिर आप उनको भी सूखा करके खा लो। कोई भी वनस्पतियाँ मान लो जैसे कि ये जो beans आती है, beans में भी कई तरीके की चीजें होती हैं। गँवार फली, उसे अच्छे ढंग से सुखा लो, खालो। आखिर अगर आपको सूखा कर के ही खाना है और यह सोचना है कि वनस्पति नहीं है, तो आपने जो यह व्यवहार बना रखा है, हमें तो ऐसा लगता है कि यह फल fruit वनस्पति है और यह अन्न है, यह वनस्पति नहीं है।

फल, अन्न, तिलहन आदि सब वनस्पति के भेद हैं



फल fruit हैं, आपने यह तो वनस्पति मान लिया और यह जो है इसको अपने अन्न की श्रेणी में रख दिया तो वनस्पति से रहित कर दिया। अरे! वनस्पति तो व्यापक चीज है। उसके भेद कर दिए; यह अन्न है, यह तिलहन है, यह शाक हैं, यह फल हैं, यह उसके अलग-अलग भेद करो। यह तो बात ठीक बनती है लेकिन भेद करते-करते हमने ऐसी एकान्त धारणा बना ली कि न हमें कभी तिलहन वनस्पति समझ आती, न कभी सरसों वनस्पति समझ आती है, आखिर सरसों क्या है? वनस्पति के बिना होती है क्या? फूल होते हैं, उसकी भी फसल लगती है। हर चीज जिसकी फसल लग रही है, जमीन में उग रही है, वह वनस्पति ही तो है। बताओ तो? महाराज! क्या महाराज? यह वनस्पति के तरह-तरह के भेद हैं लेकिन हम एक भेद में अटक गए। केवल फल fruit और सब्जी यह वनस्पति हैं बाकि सब वनस्पति नहीं है। अगर हम व्यापक दृष्टिकोण से देखें तो यह सब भी वनस्पति कायिक जीवों में ही आते हैं और वनस्पति के बिना तो कोई भी भोजन होता ही नहीं है। अतः हमारा जो जीवन चलता है, इन्हीं पाँच प्रकार के स्थावर जीवों के द्वारा चलता है।

पाँचों स्थावर जीवों की रक्षा करनी है, दुरुपयोग नहीं करना है



इन्हीं का हमें सेवन भी करना है और इन्हीं की हमें रक्षा भी करनी है। रक्षा इस sense में करनी है कि जितना अपने लिए उपयोगी है, उतना अपने लिए उपयोग में ले आओ। बाकी का जो अनुपयोगी है, उसको हम बिना वजह नष्ट न करे, यही इसकी रक्षा करना है। बेवजह जमीन खोदना, बेवजह पानी बहाना, बेवजह अग्नि को जलते रखना, बेवजह पँखे-कूलर चलते रखना, यह सब क्या है? जहाँ एक आदमी भी नहीं बैठा, दस पँखे खोल डाले। खट खट खट खट खट खट खट खट खट, बस! ऐसी आकुलता पड़ती है कि आजकल आदमी बस यह चाहने लगा होगा, अब तो कई घरों में होने भी लगा होगा। बस एक switch दबाने से दस पँखे चलने चाहिए, एक साथ दस-बीस switch न दबाने पड़े। AC चल रही है, वह अलग ही चल रही है। यह और extra सब कुछ एक साथ, बिलकुल जैसे ही घर में पहुँचे...ठण्डक ही ठण्डक ऐसा cool-cool लगे। पहले तो आदमी थोड़े में सन्तुष्ट हो लेता था, अब आदमी कितना व्यर्थ कर रहा है। यह इसका क्या है? एक तरीके से दुरुपयोग है। यही जो है हमारे लिए पाप बन्ध का कारण है। जितना आपके लिए उपयोग हो, अति आवश्यक है और जितना कम से कम में काम चले, आप उसका उतना उपयोग करें तो यह आपके लिए धर्म होगा और जो आप अनावश्यक, बेवजह व्यर्थ का कर रहे हैं वह सब आपके लिए अधर्म की श्रेणी में जाएगा। चाहे वनस्पति के साथ हो, चाहे अग्नि वायु के साथ हो, सबके साथ यही नियम लगाना। इसलिए पर्यावरण की रक्षा करने के लिए आप देखेंगे, **जो लोग जीवों की रक्षा करने में तत्पर होते हैं, वही जीव पर्यावरण की रक्षा करने वाले कहलाते हैं। इसलिए व्रती जीव जितना पर्यावरण की रक्षा कर सकते हैं, उतना किसी भी गृहस्थ का पर्यावरण की रक्षा में कोई योगदान नहीं हो सकता।** यह पर्यावरण भेद अच्छे ढंग से जान ले तो ये पाँच स्थावर जीवों का विज्ञान आप लोगों को ध्यान में रखना है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये सब जो हैं स्थावर जीव हैं। इसके बाद त्रस जीवों का क्रम प्रारम्भ होगा, जिसका वर्णन आगे किया जाएगा। आज स्थावर जीवों का ही विज्ञान हुआ इतना ही पर्याप्त।

बोलो महावीर भगवान की जय।

सारांश

1. सूत्र 13 में हमने पाँच स्थावर जीवों के वर्णन को समझा
2. हमने जाना कि स्थावर जीव
    a. स्थावर नामकर्म के उदय से होते हैं
    b. इनके सिर्फ स्पर्शन एक इन्द्रिय होती है
    c. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति के भेद से पाँच प्रकार के होते हैं
    d. इन जीवों से ही प्रकृति जीवमय हो जाती है
3. स्थावर जीवों यह क्रम भी बड़ा वैज्ञानिक है
    a. पृथ्वी सबका आधार है
    b. जल, नदियों, सागरों का जल, पृथ्वी में ही मिलता है
    c. अग्नि की उत्पत्ति जल से ही होती है या पृथ्वी में पाए जाने वाले कोयला आदि खनिज पदार्थों से होती है
        i. हालाकि पृथ्वी और अग्नि एक-दूसरे के विरोधी होते हैं किन्तु जल के आधार से दोनों का अस्तित्व बना रहता है
    d. वायु को अग्नि का सखा माना जाता है
    e. और अंतिम वनस्पति में सभी का समावेश होता है
        i. पृथ्वी का आधार
        ii. जल
        iii. सूर्य से तेज या अग्नि
        iv. और वायु
        v. किसी भी चीज की कमी होगी तो वनस्पति नहीं बन पाएगी
4. शास्त्रों के अनुसार इन स्थावर जीवों में प्रत्येक के चार-चार भेद होते हैं जैसे
5. पृथ्वी के पृथ्वी, पृथ्वीकाय, पृथ्वीकायिक और पृथ्वी जीव
    a. पृथ्वी का मतलब है सामान्य पृथ्वी जो स्वाभाव से कठोर रूप में अपना कोई भी आकार बना ले और अपने काठिन्य गुण को धारण किए रहे
    b. पृथ्वीकाय में पहले जीव था जो अब निकल गया है
        i. जैसे आत्मा निकलने के बाद मृत मनुष्य शरीर
    c. पृथ्वीकायिक के अन्दर जीव अभी उपस्थित है
    d. और पृथ्वी जीव वह है जो अभी विग्रह गति में है और नियम से आगे किसी न किसी पृथ्वी को अपनी काया बनाकर पृथ्वीकायक बनेगा
6. एक शरीर को छोड़ने के बाद दूसरे शरीर को ग्रहण करने के बीच के रस्ते को विग्रह गति कहते हैं
7. पृथ्वी की ही तरह जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में चार-चार भेद घटित करना

8. हमने जाना स्थावरों के इन चार भेदों में दो-दो रूप अचेतन और चेतन के हैं
   a. जैसे- सामान्य पृथ्वी **स्वाभाव से** और पृथ्वीकाय **जीव निकलने से** अचेतन हैं
   b. और पृथ्वीकायक और पृथ्वी जीव चेतन रूप हैं
9. किसी भी पृथ्वी, जल, अग्नि को देखकर के यह निर्णीत नहीं हो सकता कि वह अचेतन है या चेतन
10. यह हमें सिद्धान्तपूर्वक ग्रहण करना है
11. बादल से निकल हुआ पानी या जलाई हुई अग्नि क्षण भर के लिए शुद्ध मानी गयी है
12. हमने जाना एकेन्द्रिय **जीव** पहले से ही उपस्थित द्रव्य को अपनी काया बना लेते हैं
   a. जैसे जीव सामान्य पृथ्वी को ही अपनी काया बनकर पृथ्वीकायिक होता है
13. यह स्थावरों की विशेषता है
14. त्रस में ये व्यवस्था नहीं होती
15. हमें पाँचों ही स्थावरों को एकान्त रूप से कलेवर या जीव का छोड़ा हुआ शरीर नहीं समझना चाहिए
   a. क्योंकि इस व्यवस्था में जीव पहले से ही उत्पन्न काया में जाकर उसे अपना शरीर बनाता है, वहाँ उत्पन्न होता है
   b. इसलिए स्थावर पुद्गल रूप भी हैं और जीव रूप भी हैं
16. सिद्धान्ततः पृथ्वी आदि जीव कहाँ है और कहाँ से निकल गए नहीं बताया जा सकता
   a. एक पत्थर के किस भाग में जीव होगा किस में नहीं, कुछ नहीं कहा जा सकता
   b. इनकी काया घनांगुल का असंख्यातवाँ भाग जितनी छोटी होती है
17. ये पाँच स्थावर वाले जीव बड़ी सूक्ष्म काया वाले होते हैं और बड़े सूक्ष्म रूप से परिणमन करके रहते हैं
   a. अतः हमें आगम अनुसार ही इन जीवों की रक्षा के लिए तत्पर रहना चाहिए
   b. और साथ ही यह ज्ञान रखना चाहिए कि स्थावर अजीव रूप भी उपलब्ध होते हैं
18. पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु से हमारा जीवन चलता है
   a. जैसे पृथ्वी से घर-मकान
   b. जल से शरीर
   c. अग्नि से भोजन
   d. वायु से श्वास आदि
19. सिद्धान्ततः देखें तो वनस्पति के द्वारा ही हमारा जीवन चलाता है
20. वनस्पति का पहला भेद है **साधारण वनस्पति** यानि निगोद जीव
   a. निगोद में अनन्त, अनन्त जीवों का पिण्ड होता है मतलब अनन्त जीवों का एक ही शरीर होता है
   b. जो बादर और सूक्ष्म के भेद से पूरे लोक में स्थित रहते हैं
   c. और उन्हीं से हमारे शरीर के अन्दर माँस आदि की उत्पत्ति होती रहती है

d. इनकी आयु अन्तर्मुहूर्त की आयु होती है
e. यही निगोद जीव वनस्पति में होते हैं तो साधारण वनस्पतिकायिक जीव होते हैं

21. वनस्पति का दूसरा भेद होता है **प्रत्येक वनस्पति**
    a. जिसमें एक शरीर का एक जीव ही स्वामी होता है
    b. उसकी अपनी आयु होती ही
    c. और उसी के अनुसार उसमें जीवत्व बना रहता है
22. **प्रत्येक वनस्पति** के दो भेद होते हैं
    a. **सप्रतिष्ठित प्रत्येक** यानि जिसमें अनन्त निगोद जीव आकर रह रहे हों यानि उनकी प्रतिष्ठा हो गयी हो
        i. यह हमें हर जगह दिखाई देती है जैसे पालक, मैथी या हरी पत्ती वाली चीजें
        ii. इन्हें हम अनन्तकाय भी कहते हैं
    b. और **अप्रतिष्ठित प्रत्येक** जिसमें से निगोद जीव निकल गए हो या न हो
23. हमने जाना कि सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति **अनंत साधारण निगोद जीवों** से प्रतिष्ठित होती है
    a. इसलिए हमारे खाने योग्य नहीं होती है
    b. यही जब अप्रतिष्ठित अवस्था में आ जाए तो खाने योग्य होती है
24. सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति पहचानने के लिए हम इनकी शिरायें, फाँकें देख सकते हैं
    a. अगर शिराएँ या फांकें अदृश्य हैं, अलग-अलग नहीं दिख रही हैं
    b. तो ये **सप्रतिष्ठित प्रत्येक** वनस्पति है
    c. जैसे गन्ना, खरबूजा आदि जिसमें पोरें या फांके नहीं दिख रही हैं
25. ऐसे ही वो वनस्पतियाँ जिन्हें तोड़े तो सम भंग हो जाए, बिल्कुल बीच में से टूट जाए तो वे सप्रतिष्ठित हैं
26. या जिसमें कोई रेशा भी न लगा दिखाई दे और उस वनस्पति को छिन्न करके, छेदकर, तोड़कर अगर उगायें और वो उग जाए; तो वह सप्रतिष्ठित है
27. इससे विपरीत **अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति** साधारण जीवों से रहित होती हैं
    a. यह पक गयी होती हैं
    b. और साधारण जीवों से रहित होती हैं
    c. जैसे पकने के पश्चात गन्ना, नारियल, खरबूजा
    d. ये खाने योग्य मानी जाती हैं
28. जिस वनस्पति का फल **पृथ्वी से** ऊपर उठकर आकाश में होता है वह जीव से रहित और उतना ही ज्यादा फायदेमन्द होता है
29. और जितना जमीन के पास, अन्दर होता है वह उतना ही ज्यादा जीवों से सहित होता है
30. घास, काई और पालक, मैथी, बथुआ जैसी पत्ते वाली वनस्पतियाँ में पकाव नहीं होता इसलिए अनन्त जीव कहलाती हैं

31. नारियल, आम, सेब, लौकी ये सब अच्छे से पककर अप्रतिष्ठित बन जाती हैं
32. हमने जाना कि **हरी के त्याग** को लोग अक्सर वनस्पति का त्याग समझ लेते हैं
    a. मगर सिद्धान्त से इसमें सिर्फ सब्जी, फल आदि का त्याग ही आता है
    b. वनस्पति का त्याग कहना गलत है
    c. क्योंकि वनस्पति तो व्यापक है
    d. दाल, गेहूँ, चावल, मसाले, तिलहन, सरसों का तेल आदि सभी वनस्पति ही हैं
33. हमारा जीवन इन्हीं पाँच प्रकार के स्थावर जीवों के द्वारा चलता है
    a. अतः हमें इनका सेवन भी करना है और रक्षा भी
34. जितना कम से कम हो सके उतना उपयोग करने से ही हमारे लिए धर्म होगा
35. और जो अनुपयोगी है, उसको हम बिना वजह नष्ट न करे
    a. जैसे- बेवजह जमीन खोदना, पानी बहाना, अग्नि को जलाए रखना, पँखे-कूलर चलाना
    b. ये न सिर्फ दुरुपयोग है अपितु अधर्म भी है और पाप बन्ध का कारण भी
36. जो लोग जीवों की रक्षा करने में तत्पर होते हैं, वही पर्यावरण की रक्षा करने वाले कहलाते हैं
37. इसलिए व्रती जीव का पर्यावरण रक्षा में योगदान किसी भी गृहस्थ से अधिक होता है

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1. स्थावर जीव कितने प्रकार के होते हैं?
1. 2
2. 9
3. 5
4. 3

Q2. पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतय:___! पूर्ण कीजिये
1. त्रस
2. त्रस:
3. स्थावर
4. स्थावरा:

Q3. स्थावर जीव के पास कौन सी इंद्रिय होती है?
1. स्पर्शन
2. रसना
3. चक्षु
4. इंद्रिय रहित होता है

Q4. स्थावर मे जन्म किस कर्म के कारण से होता है?
1. वेदनीय
2. आयु
3. अंतराय
4. स्थावर नाम कर्म

Q5. पृथिव्य शब्द का अर्थ क्या होता है?
1. जल
2. वायु
3. अग्नि
4. पृथ्वी

Q6. अप् शब्द किसके लिए प्रयुक्त हुआ है?
1. जल
2. वायु
3. अग्नि
4. पृथ्वी

Q7. स्थावर जीव अपनी काया पहले से उपस्थित द्रव्य को बना लेते हैं,यह कथन-
1. सत्य है
2. असत्य है

Q8. स्थावर किस रूप हैं?
1. पुद्गल रूप
2. जीव रूप
3. दोनों

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q9. किस जीव ने पृथ्वी को काया के रूप में बना लिया है?
1. पृथ्वीकाय
2. पृथ्वी
3. पृथ्वीकायिक
4. उपरोक्त सभी

Q10. पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े करने पर उसमें से जीव निकल गया यह कथन-
1. सत्य है
2. असत्य है

Q11. स्थावर जीव की काया ___ होती है
1. घनांगुल
2. घनांगुल का अनंतवा भाग
3. घनांगुल का असंख्यातवां भाग

Q12. जिन वनस्पतियों की शिराएँ अदृश्य हों उन्हें क्या कहते हैं?
1. सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति
2. अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति

Q13. अनंत जीव वाली वनस्पति है?
1. आम
2. पालक-बथुआ
3. सेब
4. लौकी

Q14. पांच स्थावर जीवों की रक्षा नही करनी है। यह कथन कैसा है?
1. सही
2. गलत

Q15. गन्ने, नारियल क्या है?
1. सादा वनस्पति
2. साधारण वनस्पति
3. प्रत्येक वनस्पति

Q16. जीव विज्ञान का सही ज्ञान किसके माध्यम से होगा?
1. जल
2. वायु
3. अग्नि
4. वनस्पति

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

SCAN TO WATCH

अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1. किस कर्म के उदय से जीव स्थावर होता है ?
2. 'अप ' शब्द का क्या अर्थ है?
3. पृथ्वी के नाम सहित भेद बताइये।
4. जल के चारों भेदों में से चेतन तथा अचेतन भेद बताइये ।
5. अग्नि को जिसने अपनी काय बना लिया है , वह क्या कहलायेगा ?
6. साधारण वनस्पति की परिभाषा बताइये।
7. प्रत्येक वनस्पति के भेदों को समझाइये ।
8. प्रतिष्ठित वनस्पति के लक्षण बताइये।
9. निम्न वनस्पतियों के खाने योग्य होने की पहचान कैसे करेंगे?
   - नींबू,
   - ककड़ी,
   - खरबूजा,
   - चीकू,
   - गन्ना तथा
   - संतरा
10. स्थावर जीवों की रक्षा करके किस तरह आप पर्यावरण संरक्षण में योगदान कर सकते हैं?

प्रवचन 11

त्रस जीव के भेद

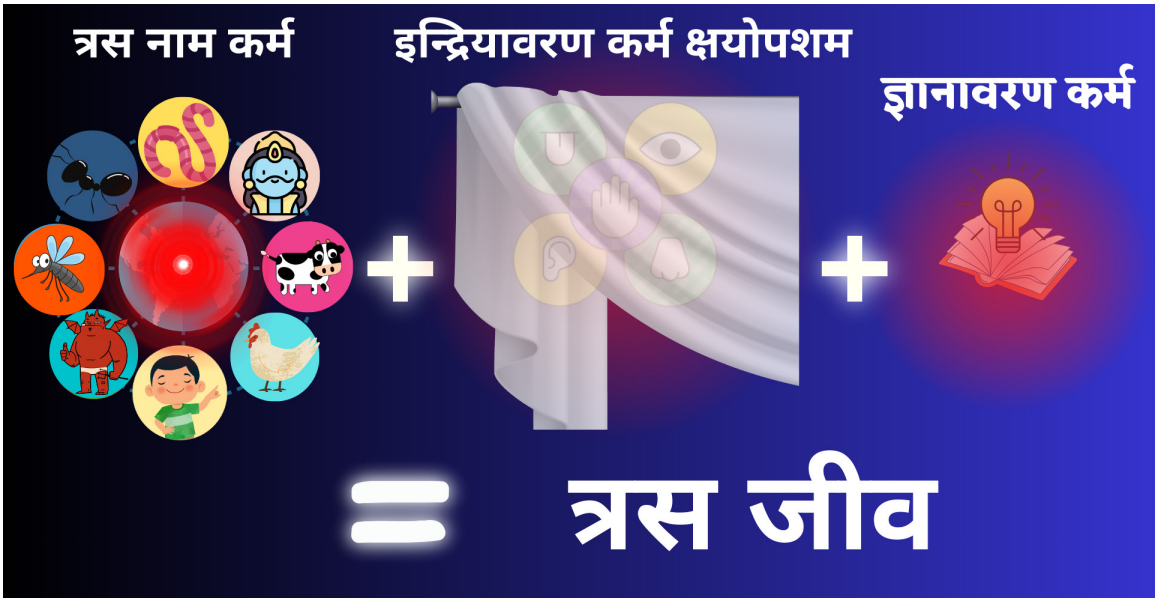
द्विन्द्रियादयस् त्रसाः ॥ 2.14 ॥

द्वि + इंद्रियादयः - त्रसा :

दो-त्रय-चौ-पन-इन्द्रि याँ , त्रस के भेद जु चार।
दुर्लभता की ये कड़ी , कर्म बली निरवार॥2.14॥

आचार्य कहते हैं- त्रस जीव वे हैं जो दो इन्द्रिय आदि वाले हैं मतलब जिनके पास में दो इन्द्रिय हैं, वे भी त्रस हैं और 'आदि' शब्द से जो बचे हैं, वे सभी आगे के जीव त्रस जीव जानना। 'आदि' यह शब्द प्रकारवाची भी होता है, व्यवस्थावाची भी होता है। सिद्धान्त के अनुसार यह सभी लोग जानते हैं कि एकेन्द्रिय के बाद में दो इन्द्रिय की व्यवस्था शुरू होती है और फिर वही व्यवस्था पंचेन्द्रिय तक चलती है।

त्रस नाम कर्म का उदय दो से पाँच इन्द्रियों में होता है



एकेन्द्रिय जीवों को तो स्थावर कहा गया, दो इन्द्रिय आदि जीवों को यहाँ त्रस कहा जा रहा है। यह भी आप लोगों को बताया जा चुका है कि जो जीव त्रस होते हैं, वे त्रस नामकर्म के उदय से बनते हैं। यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि त्रस नामकर्म का उदय भी होगा और त्रस

नामकर्म के उदय के साथ-साथ जिस इन्द्रिय का क्षयोपशम होगा वही इन्द्रिय वाला वह जीव बनेगा। एक तो यह त्रस नाम कर्म का उदय तो व्यापक हो गया, वह त्रस जीवों में आपको कहीं भी ले जा सकता है- दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय। उसके साथ-साथ जिस तरह के ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम, इन्द्रियावरण कर्मों के क्षयोपशम होंगे, त्रस जीवों में वही पर्याय उपलब्ध होगी।

कौन से जीव में कितने प्राण हैं?

दो इन्द्रिय जीवों के लिए जो पर्याय है, उस पर्याय में उन्हें क्या-क्या उपलब्ध होता है? यह उनके प्राणों के माध्यम से जाना जाता है। किसके माध्यम से? प्राण ही जीवन है। प्राण से ही पता पड़ेगा कि उस जीव के अन्दर कितने प्राण हैं और कितनी उसके अन्दर उपलब्धियाँ हैं, जिनके माध्यम से वह जी रहा है। इसको जानने से ही हम थोड़ा समझ पाएँगे कि उसके अन्दर केवल दो इन्द्रियाँ ही नहीं है और भी कुछ है। प्राणों को भी समझाना जरूरी है क्योंकि लोग प्रश्न पूछते हैं और प्राणों को जानने के लिए उत्सुक तो रहते ही हैं कि किस में, कितने प्राण होते हैं? अतः यह व्यवस्था भी अपने को पता होना चाहिए। जब हम पर्याप्त जीव होते हैं और अपर्याप्त जीव होते हैं, इन दो प्रकार के जीवों की बात करते हैं तो हमें थोड़ा-सा इन सब जीवों को एक तरफ रख करके केवल पर्याप्त और अपर्याप्त, दो तरीके से उन जीवों को देखना है। अब आप लोगों के लिए यह नया शब्द है लेकिन जानना जरूरी है।

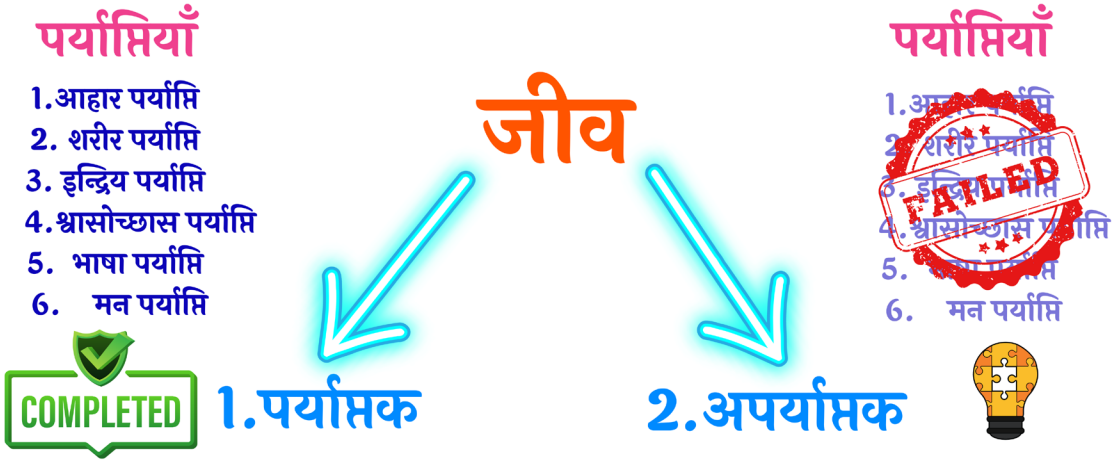
पर्याप्त दशा और पर्याप्तक जीव में अन्तर है



जीव कोई भी हो, उसकी एक पर्याप्त दशा होती है और एक अपर्याप्त दशा होती है। पर्याप्त दशा कहना और पर्याप्तक कहना इसमें भी थोड़ा-सा अन्तर है। जब तक कोई भी जीव अपनी पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं कर लेता तब तक वह जीव अपर्याप्तक दशा वाला कहलाएगा; जीव अपर्याप्तक नहीं है। **जीव दो ही प्रकार के होते हैं या तो पर्याप्तक या अपर्याप्तक।** ये भी दोनों नामकर्म ही है। जैसे- त्रस नाम कर्म का उदय हुआ तो त्रस नाम कर्म के उदय के साथ-साथ अब अगला कर्म बताएगा कि इसके साथ में यह कहाँ जाएगा? हर एक कर्म अपना-अपना आगे-आगे काम करता चला जाता है। त्रस नाम कर्म के उदय के साथ-साथ सबसे पहले dividation इसी में होगा कि यह पर्याप्तक जीव बनेगा कि अपर्याप्तक बनेगा? पर्याप्तक जीव उसको बोलते हैं...जो अपनी पर्याप्तियों को नियम से पूर्ण करेगा। उसको क्या बोलेंगे? पर्याप्तक।

अपर्याप्तक जीव कौन से है?

अपर्याप्तक उसको कहेंगे...जो अपनी पर्याप्तियों को प्रारम्भ तो कर देगा लेकिन पूर्ण एक भी नहीं कर पाएगा और उसकी मृत्यु हो जाएगी, जीवन समाप्त हो जाएगा। उसको बोलते हैं- अपर्याप्त जीव। अतः जो जीव अपर्याप्त बोले जाते हैं, वह वस्तुतः एक तरह से वह सब लब्धि अपर्याप्तक जीव ही होते हैं। उनको क्या बोलते हैं? लब्धि अपर्याप्तक। यहाँ पर भी लब्धि आ गई। जिनकी लब्धियाँ मतलब उपलब्धियाँ सब अपर्याप्त हैं अर्थात् अपूर्ण हैं, उनकी कोई भी लब्धियाँ पूर्ण नहीं होंगी। जिस इन्द्रिय में उन्हें जाना है, जितनी इन्द्रिय वाला बनना है उतनी इन्द्रिय का क्षयोपशम लेकर तो गए, शुरू भी कर दिया लेकिन पूर्ण एक भी इन्द्रिय नहीं होगी और उससे पहले उनकी मृत्यु हो जाएगी। ये जीव कहलाएँगे- अपर्याप्तक। ऐसे अपर्याप्तक जीव सभी इन्द्रिय वाले जीवों में होते हैं। एकेन्द्रिय जीव भी अपर्याप्तक होते हैं, पर्याप्तक भी होते हैं। दो इन्द्रिय जीव भी अपर्याप्तक होते हैं, पर्याप्तक होते हैं, तीन इन्द्रिय जीव भी अपर्याप्तक होते हैं, पर्याप्तक होते हैं। ऐसे ही चार इन्द्रिय, ऐसे ही पाँच इन्द्रिय, यहाँ तक कि मनुष्य भी अपर्याप्तक और पर्याप्तक के भेद से दो प्रकार के होते हैं।



सभी इन्द्रिय वाले जीवों में उपरोक्त दोनों भेद होते हैं

मनुष्य भी अपर्याप्तक और पर्याप्तक होते हैं

अतः ऐसे भी मनुष्य होते हैं, जो लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य होंगे। **लब्धि अपर्याप्तक का मतलब है- उनका जीवन श्वास के अठारहवें भाग में बस पूर्ण हो जाएगा।** ऐसे भी मनुष्य होते हैं जो लब्धि अपर्याप्तक होते हैं। अतः यह एक तरह से सम्मूर्च्छन जन्म वाले जीव कहलायेंगे। लेकिन जिनका गर्भ में जन्म होता है वे पर्याप्तक जीव ही होते हैं। पर्याप्तक जीव होते हुए भी जब तक उसकी पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं होती तब तक उसको अपर्याप्त दशा वाला कहा जाएगा कि उसकी अभी अपर्याप्त दशा चल रही है। लेकिन जीव अपर्याप्त नहीं है, जीव तो पर्याप्त है।

क्योंकि पर्याप्तक नाम कर्म का उदय है, तो वह जीव अपनी पर्याप्तियाँ नियम से पूर्ण करेगा।

पर्याप्तियों के आधार से जीवों के भेद

अतः तीन तरीके के जीव आप समझ सकते हो।

1. एक तो लब्धि **अपर्याप्तक जीव**- जो totally अपर्याप्तक ही कहे जाएँगे, उनकी सभी पर्याप्तियाँ incomplete ही रहेंगी। इनको क्या बोलेंगे? लब्धि अपर्याप्तक।
2. दूसरे **पर्याप्तक जीव**- जो नियम से अपनी पर्याप्तियाँ पूर्ण करेंगे।
3. अब इन्हीं पर्याप्तक जीवों की एक दूसरी और दशा जब तक कि ये पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं करते, एक पर्याय को छोड़कर दूसरे पर्याय में गए...तब तक और उसके बाद में जन्म लेने के बाद भी एक अन्तर्मुहूर्त तक अपनी पर्याप्तियाँ पूर्ण करने में इनको time लगता है। उस अवस्था को जो एक अन्तर्मुहूर्त तक का time होता है, जब तक यह अपनी पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं कर लेते हैं तब तक इनको बोला जाता है- **निर्वृत्ति अपर्याप्तक जीव**। क्या बोलते हैं? निर्वृत्त अपर्याप्तक जीव। समझ आ रहा है? इनकी रचनाएँ चल रही हैं, निर्वृत्ति मतलब होता है- रचना, इनकी रचना, (formation) चल रहा है लेकिन अब यह incomplete है। इसलिए उसको बोलेंगे- निर्वृत्त अपर्याप्तक जीव।

पर्याप्तक जीव की दो दशाएँ हैं

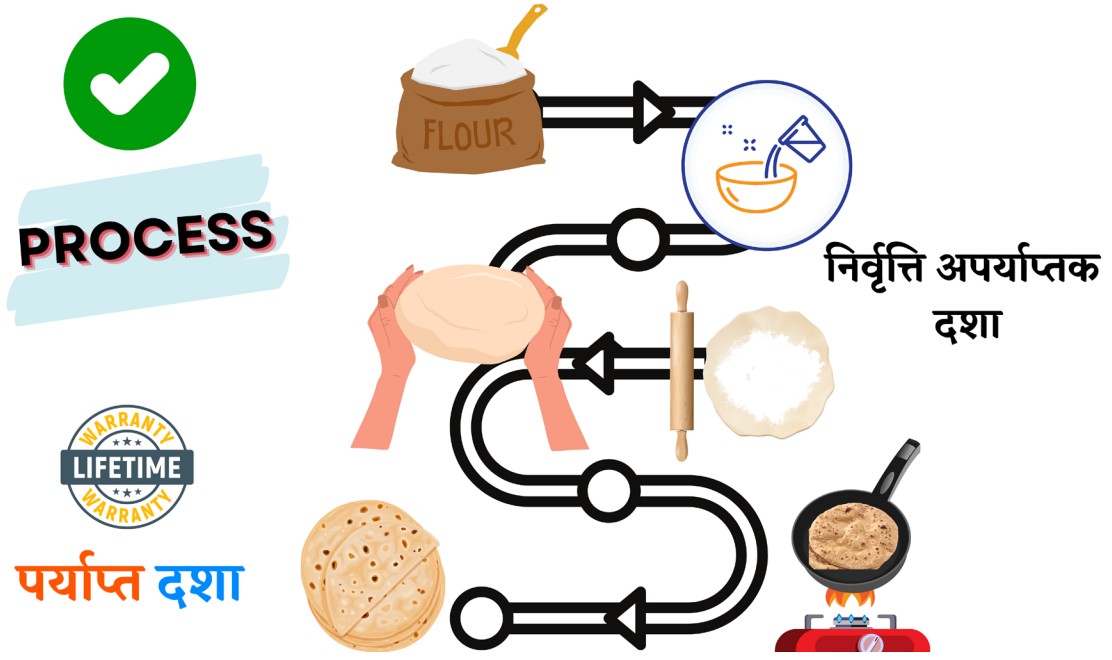
अतः आप अपर्याप्तक जीव की दशा एक ही प्रकार की जानना, जो लब्धि अपर्याप्तक है। पर्याप्तक जीव में दो तरीके की चीजें हैं...जन्म लेने के एक अन्तर्मुहूर्त तक, जन्म से ही वह अपर्याप्तक एक अन्तर्मुहूर्त तक रहेगा। वह उसके लिए निर्वृत्त अपर्याप्तक अवस्था कहलाएगी। अन्तर्मुहूर्त के बाद में पर्याप्तक हो जाएगा, जितनी उम्र रहेगी, वह पर्याप्तक ही कहलाएगा।



लब्धि अपर्याप्तक जीव को समझने के लिए उदाहरण

SCAN TO WATCH

रोटी तो सभी बनाते ही हैं, नहीं भी बनाते तो खाते तो सभी जानते हैं तो सभी रोटी कैसे बनती है? देखो! जब आपने आटे में पानी डाल करके उसको गूँथना शुरू किया। किसके लिए? रोटी बनाने के लिए। आटे में आपने पानी डाला और पानी डालते ही पानी पूरा आटे में फैल गया। नहीं समझ आ रहा है? आटा तो था थोड़ा-सा और पानी था बहुत ज्यादा, फिर क्या हुआ? वह पूरे थाल में पानी-पानी हो गया। अब रोटी बन पाएगी? नहीं बन पायेगी। मतलब आपने आटे से रोटी बनाना शुरू किया और आपने आटे में पानी डाला और पानी फैलाकर के उस रोटी तक तो पहुँचने की बात दूर रही, अभी लोई भी नही बन पाई है। क्या हुआ? वह आटा सब एक तरीके का अब तो खराब सा ही हो गया। हो गया न! यह कहलाती है- लब्धि अपर्याप्तक दशा। इसको क्या बोलेंगे? सब अपर्याप्त रह गया। बनाना था रोटी, लोई बनाने के लिए तैयारी कर रहे थे और वह लोई भी न बन पाई और उससे पहले ही वह आटा खराब हो गया। पानी तो डालना ही था, जो process थी वह तो कर ही रहे थे लेकिन वह imbalance हो गई। इसलिए क्या हो गया? वह रोटी बन ही न पाई, उससे पहले ही पूरा सब कुछ खराब हो गया। इसी तरीके से जिस जीव को जितनी पर्याप्तियाँ पूर्ण करनी थी, वह पूर्ण कर भी नहीं पाया, उससे पहले उसकी मृत्यु हो गई। उसकी पर्याप्तियाँ पूर्ण होगी ही नहीं क्योंकि कर्म का कौन-सा उदय चल रहा है? अपर्याप्त नाम कर्म का उदय चल रहा है। यह लोई बनाने से पहले ही आटा खराब हो जाना, यह बताता है- लब्धि अपर्याप्तक दशा।



निर्वृत्ति अपर्याप्तक जीव को समझने के लिए उदाहरण

फिर दूसरी बात, अब आपने पानी अनुपात से उसमें डाला। जितना आटा था उसी अनुपात से उसमें पानी डाला और पानी डालने के बाद में आपने जिस तरीके से उसकी process की जाती है, वह आपने शुरू कर दी। लोई बना ली, अभी रोटी तो नहीं बनी। अब आपने लोई बना ली तो लोई बनने के बाद में जब रोटी बनना शुरू हो गई, जब आपने उसको चकले पर रखकर के बेलन से दबा करके, बड़ा बनाना शुरू किया तो यह एक जब रोटी का रूप हो गया, यह उसकी एक तरीके से पर्याप्त दशा हो गई। आटे को मिलाने में और उसकी लोई बनाकर के उसे कोई रोटी का आकार पूरा देने में एक अन्तर्मुहूर्त time लगा न। लेकिन यह आप बनाते चले जा रहे हो तो यह जो बीच का time है जब तक कि वह रोटी बिल्कुल गोल-गोल, चन्द्रमा के समान नहीं बन गयी, अभी तो भले ही उसमें रखी है चकले पर, आगे तो पूरी होती रहेगी, उसके पास बहुत सारा समय है लेकिन उससे पहले ही वह जो आपने process की, लोई बनाकर के उसको रोटी बनाने की...यह क्या कहलाई? निर्वृत्ति अपर्याप्तक दशा।

नियम से आकार पूरा करना ही पर्याप्तक दशा है

जो आप उसकी रचना कर रहे हो, वैसी रोटी बनेगी। अगर समोसा बनाना है, तो फिर समोसे की आकृति जैसी बनेगी, वह कहलाएगी...निर्वृत्ति अपर्याप्तक। लेकिन वह नियम से पूर्ण की आपने, वह नियम से उस रोटी के आकार का रूप ले लेगी। जब वह ले ली तो उसके बाद हो गई...उसकी पर्याप्तक दशा। वह पर्याप्तक दशा उसकी जीवन पर्यन्त तक रहेगी। जितना उसका आयु कर्म का उदय है, उतने समय तक उसकी पर्याप्तक दशा अब कही जाएगी। उसकी पर्याप्त दशा को अब कोई बिगाड़ नहीं सकता है।

अन्तर्मुहूर्त तक पर्याप्तक जीव भी अपर्याप्तक रहते हैं



जो पर्याप्तक जीव बनते हैं, उन्हें अन्तर्मुहूर्त तक अपर्याप्तक भी रहना पड़ता है। जब तक बन रहे हैं, बना रहे हैं, लोई की दशा जो है, वह क्या है? रोटी बनने से पहले लोई की जो स्थिति है, आटे की जो स्थिति है, वही दशा निर्वृत्ति अपर्याप्तक जीव की जानना। अब तो ध्यान रहेगा? पर्याप्तक जीव सबसे पहले कैसी स्थिति में आएगा? निर्वृत्त अपर्याप्तक अवस्था में आएगा फिर पर्याप्तक बन जाएगा। लेकिन अपर्याप्तक जीव जो होगा वह अपर्याप्तक ही रहेगा। उसका नाम ही है- लब्धि अपर्याप्तक। वह तो पानी जैसे आटे में डाला सब खराब हो गया, कुछ भी नहीं बनेगा। दलिया भी नहीं बनेगा अब तो। समझ आ रहा है? उसे तो खराब कर दिया। ऐसे लब्धि अपर्याप्तक दशा जानना। हम सभी जीव कैसे हैं? जो सुन रहे हैं, सब पर्याप्तक जीव हैं। अन्तर्मुहूर्त तक जब हमने जन्म लिया था तो ऐसे ही अपर्याप्तियाँ का जो समय था, वह हमने पूर्ण किया। अन्तर्मुहूर्त में पर्याप्तियाँ तैयार हो गयी, उसके बाद में पर्याप्त दशा हो गई, फिर उसी के अनुसार काम चलता है। इसको जानने का प्रयोजन यह है कि जब भी हम प्राणों का वर्णन करते हैं तो सामान्य रूप से अगर आपने द्रव्य संग्रह भी पढ़ा होगा तो शायद हमने उसमें केवल पर्याप्तक जीवों के हिसाब से आपको ज्ञान दिया होगा। क्योंकि शायद इतना detail बताने का उस समय time न रहा हो। पर्याप्तक जीवों के प्राण अलग और अपर्याप्तक जीवों के प्राण अलग-अलग तरह से जानना चाहिए।

पर्याप्तक जीवों के प्राण इन्द्रियों की संख्या बढ़ने से बढ़ते जाते हैं



मान लो एक इन्द्रिय जीव है, पर्याप्तक जीव है। पर्याप्तक के प्राण तो सभी जानते ही हैं... एकेन्द्रिय जीव में पर्याप्तक दशा में चार प्राण होंगे। कौन-कौन से? एक स्पर्शन इन्द्रिय प्राण, एक काय बल प्राण, एक आयु और एक श्वासोच्छ्वास ये चार प्राण हो गए। फिर दो इन्द्रिय हो गया तो उसमें दो प्राण और बढ़ा दिए...एक रसना इन्द्रिय बढ़ गई और रसना इन्द्रिय बढ़ी तो

वचन बल भी बढ़ गया। दो प्राण और बढ़ गए तो छह प्राण हो गए। अब आगे एक-एक बढ़ाते जाओ। तीन इन्द्रिय में सात प्राण हो जाएँगे। कौन-सी इन्द्रिय बढ़ा दी? घ्राण इन्द्रिय बढ़ा दी। चार इन्द्रिय में चक्षु इन्द्रिय बढ़ा दी तो कितने प्राण हो गए हैं? आठ हो गए। फिर आगे असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव, जिसके पास अभी मन नहीं बनना तो उस जीव में एक इन्द्रिय बढ़ गई तो नौ प्राण बढ़ गए और संज्ञी पंचेन्द्रिय तो इन्द्रिय तो हम पहले बड़ा चुके थे, अब हमने संज्ञी हो गया तो मन बढ़ा दिया तो मन बल प्राण उसके अन्दर आ गया। संज्ञी पंचेन्द्रिय में मनोबल प्राण आ गया तो ये दस प्राण हो गए। ये हो गए पर्याप्तक जीवों के प्राण। पर्याप्तक एकेन्द्रिय जीव में कितने प्राण होंगे? चार प्राण होंगे। दो इन्द्रिय जीव में...छह होंगे। कौन-कौन-से दो बढ़ गए? इन्द्रिय और वचन बल।

पर्याप्तक जीवों के प्राण

जीव	प्राणों की संख्या	प्राण
एकेन्द्रिय जीव	4	स्पर्शन इन्द्रिय प्राण, काय बल प्राण, आयु और श्वासोच्छ्वास
दो इन्द्रिय जीव	6	स्पर्शन इन्द्रिय प्राण, रसना इन्द्रिय प्राण, काय बल प्राण, आयु और श्वासोच्छ्वास, वचन बल
तीन इन्द्रिय जीव	7	स्पर्शन इन्द्रिय,रसना इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय प्राण, काय बल प्राण, आयु और श्वासोच्छ्वास, वचन बल
चार इन्द्रिय जीव	8	स्पर्शन इन्द्रिय,रसना इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय,चक्षु इन्द्रिय प्राण, काय बल प्राण, आयु और श्वासोच्छ्वास, वचन बल
असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव	9	स्पर्शन,रसना,घ्राण,चक्षु, कर्ण इन्द्रिय प्राण, काय प्राण, आयु और श्वासोच्छ्वास, वचन बल
संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव	10	स्पर्शन,रसना,घ्राण,चक्षु, कर्ण इन्द्रिय प्राण, काय बल प्राण, आयु और श्वासोच्छ्वास, वचन बल, मनोबल

दो इन्द्रिय जीव से बोलने की शक्ति आ जाती है

एक साथ दो बढ़ेंगे क्योंकि जीभ के काम दो हैं- चखना और बकना। यह जीभ के दो काम नहीं है? रसना इन्द्रिय के दो काम है- चखना और बकना। अतः जो बल आ जाता है- वचन बल, वह बल के साथ जिह्वा इन्द्रिय है जिसको मिल गई तो दो इन्द्रिय हो गया। यही तो बता रहे हैं... **'द्विन्द्रियादयस् त्रसाः'** दो इन्द्रिय हो गया, अब उसके पास में वक्तृत्व शक्ति आ गई। आचार्यों ने इतना लिखा है- वक्तृत्व शक्ति! वक्तृत्व का मतलब बोलने की शक्ति उसके अन्दर है। अपनी भाषा में बोलता होगा, अपने को समझ नहीं आएगी क्योंकि उसकी भाषा है- अनक्षरी भाषा! कौन-सी है? आप लोग समझते हो अक्षरी ही भाषा है। अक्षर न उसको सुनने में आते हैं, न उसको बोलने वाले हैं। अक्षर ज्ञान अलग होता है और अनक्षर ज्ञान अलग होता है। उन सबकी भाषा अनक्षरी भाषा होती है। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय ये सब भी बोलते हैं।



चींटी, मच्छर आदि सब की अपनी अलग अनक्षरी भाषा है

मतलब चींटी भी बोलती होगी। हाँ! हाँ! जब लिखा है, तो बोलती होगी। Practical तो देखो तो चींटी भी बोलती है। अब चींटी की भाषा तो चींटी समझेगी, तुम क्या समझोगे। जो मकड़ी होगी वह भी बोलती है। सब मकड़ियाँ इकट्ठी हो जाएँगी, आपस में बोल लेंगी। पता नहीं पड़ेगा, कब बोल लिया? मच्छर तो बोलता ही है, वह तो कान पर सुनाई पड़ता है। अच्छे ढंग से समझ आ रहा है? वह कहीं बोले या न बोले लेकिन कान पर आकर जरूर बोलता है। उसे पता होता है, यह कान हैं। अब चक्षु इन्द्रिय आ गई उसके पास, दिखता है उसको। इन जीवों की भी अपनी भाषा होती है। इसको हम सब क्या बोलते हैं? अनक्षरी भाषा। ये सब जीवों के अन्दर जो प्राण हैं तो आप देखें! दो इन्द्रिय जीव में प्राण एकदम से दो प्राणों की वृद्धि हो जाती है, तीन इन्द्रिय में फिर एक इन्द्रिय और बढ़ा दी...स्पर्शन, रसना हो गई, घ्राण बढ़ा दी। चार इन्द्रिय में चक्षु इन्द्रिय बढ़ा दी, असंज्ञी में पंचेन्द्रिय श्रोतृ इन्द्रिय बढ़ा दी तो इस तरह से दस प्राण किसके हो गए? संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के दस प्राण हो जाते हैं।

अपर्याप्त जीव के पास में मन,वचन और श्वासोच्छ्वास प्राण नहीं होते है



अब आप थोड़ा-सा यह जाने! यह तो हो गए पर्याप्तक जीवों के प्राण। अपर्याप्त जीवों के अगर हमें प्राण जानना है, तो यह जानना पड़ेगा कि अपर्याप्त जीव के पास में तीन प्राण नहीं होंगे। उनके पास में मनोबल प्राण नहीं होगा, मन बल प्राण जिसको बोलते हैं। वचन बल प्राण नहीं होगा और श्वासोच्छ्वास प्राण नहीं होगा। किसके पास? अपर्याप्तक जीवों के पास। पर्याप्ति होना अलग बात है और प्राण होना अलग बात है। जो प्राण बनते हैं, यह वस्तुतः पर्याप्तक जीव के अन्दर जब उस पर्याप्त होने की जो अन्तर-अन्तर्मुहूर्त के बाद दशाएँ होती हैं, उस दशा में जिस कर्म का उदय आता चला जाता है उसी के अनुसार उसके अन्दर प्राणों की उत्पत्ति होती चली जाती है। अतः अपर्याप्तक जीव तो कोई भी पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं कर पाता तो उसके लिए तो इन प्राणों का कोई काम शुरू ही नहीं हो पाता, प्राणों का उदय नहीं होता। उसकी पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं होने के कारण से अपर्याप्तक जीव के अन्दर तीन प्राण नहीं मिलेंगे। कौन-कौन से? ध्यान रख लो! मनबल, वचन बल और श्वासोच्छवास। जब तक पर्याप्तक जीव की भी अपर्याप्त दशा रहेगी तब तक उसके लिए भी ये तीन प्राण नहीं होंगे। कौन-सा? मतलब लब्धि अपर्याप्तक जीव में भी ये तीन प्राण नहीं होंगे और जो निर्वृत्त अपर्याप्तक जीव होंगे उनमें भी ये तीन प्राण नहीं होंगे। पर्याप्तक जीव में ये तीन प्राण शुरू हो जाएँगे।

अपर्याप्तक जीव में ये तीन प्राण छोड़कर बाकि कर्मोदय के अनुसार होंगे



अब आप इस तरीके से देखो कि अपर्याप्तक जीव के दस में से सीधे-सीधे तीन प्राण कम हो गये। मान लो संज्ञी पंचेन्द्रिय है, तो उसके तीन प्राण कम हो गए। अगर उसको अपर्याप्तक जीव बनना है, लब्धी अपर्याप्तक जीव बनना है, मनुष्य भी बनना है, तो दस में से सात प्राण वाला होगा। मनबल प्राण उसके पास नहीं होगा, वचन बल नहीं होगा, श्वासोच्छवास प्राण नहीं होगा क्योंकि ये पर्याप्तियाँ पूर्ण होने पर ही इन कर्मों का उदय होता है, क्षयोपशम होता है। इनका उदय या क्षयोपशम जब तक नहीं होगा तब तक वह प्राण की संज्ञा उसको नहीं मिलेगी। अब अपर्याप्तक संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के कितने प्राण हुए? सात प्राण हुए। फिर एक इन्द्रिय कम कर दो। अपर्याप्तक चार इन्द्रिय जीव के सात में से एक प्राण कम हो गया, छः प्राण कर दो। फिर तीन इन्द्रिय जीव के पाँच प्राण रह गए। फिर आगे दो इन्द्रिय जीव के चार प्राण रह गए और एक इन्द्रिय जीव के तीन प्राण रह गए। कितने रह गए? तीन। अपर्याप्तक एकेन्द्रिय जीव

के तीन प्राण होंगे। कौन-कौन से? एक तो उसकी स्पर्शन इन्द्रिय प्राण होगा, काय बल प्राण होगा और आयु प्राण रहेगा, उसका श्वासोच्छ्वास प्राण नहीं बनेगा। समझ आ रहा है? इसलिए अपर्याप्तक जीवों के प्राण का जो वर्णन है, वह अपने ढंग से अलग है। यह भी चीज जानना जरूरी है।

अपर्याप्तक जीवों के प्राण

जीव	प्राणों की संख्या	प्राण
एकेन्द्रिय जीव	3	स्पर्शन इन्द्रिय प्राण, काय बल प्राण, आयु
दो इन्द्रिय जीव	4	स्पर्शन इन्द्रिय,रसना इन्द्रिय प्राण, काय बल प्राण, आयु
तीन इन्द्रिय जीव	5	स्पर्शन इन्द्रिय,रसना इन्द्रिय घ्राण इन्द्रिय प्राण, काय बल प्राण, आयु
चार इन्द्रिय जीव	6	स्पर्शन इन्द्रिय,रसना इन्द्रिय घ्राण इन्द्रिय,चक्षु इन्द्रिय प्राण, काय बल प्राण, आयु
असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव	7	स्पर्शन,रसना,घ्राण,चक्षु, कर्ण इन्द्रिय प्राण, काय प्राण, आयु
संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव	7	स्पर्शन,रसना,घ्राण,चक्षु, कर्ण इन्द्रिय प्राण, काय बल प्राण, आयु

अपर्याप्तक और विग्रह गति में एकेन्द्रिय के प्राण



पहले किसी ने प्रश्न किया था कि विग्रहगति में एकेन्द्रिय जीव के कितने प्राण होते है? एकेन्द्रिय जीव के तो चार प्राण होते हैं लेकिन विग्रहगति में? विग्रहगति एक तरह से उसकी अपर्याप्त दशा हो गई। विग्रहगति क्या होती है? **जो एक पर्याय से दूसरे पर्याय को ग्रहण करने के बीच में है, जो आकाश में उसका गमन होता है, आकाश की श्रेणी के अनुसार, वह उसकी विग्रहगति कहलाती है।** उसमें भी वह अपर्याप्तक होता है और जब तक वह पर्याप्तक नहीं हो जाएगा तब तक भी बीच में, जन्म लेने के बाद अन्तर्मुहूर्त तक अपर्याप्त रहेगा। उसमें भी उसकी अपर्याप्त दशा रहेगी तो अपर्याप्तक दशा कहलाई। विग्रहगति की दशा कौन-सी हो गई? अपर्याप्त दशा। अपर्याप्त दशा में एक इन्द्रिय जीव के तीन प्राण ही होंगे। इस तरीके से यह प्राणों का वर्णन जानना। दो इन्द्रिय जीव में प्राण और बढ़ा लेना, तीन इन्द्रिय में एक-एक प्राण बढ़ाते जाना, इस तरीके से अन्त में पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक जीव में सात प्राण ही बनेंगे, तीन प्राण तो पर्याप्त होने के बाद ही बनते हैं।

कर्म उदय के साथ-साथ पर्याप्तियाँ बनती जाती हैं

जब आप पर्याप्तियों के बारे में और थोड़ा-सा जानेंगे तो जो छह प्रकार की पर्याप्तियाँ होती हैं, वे पर्याप्तियाँ भी क्रम-क्रम से बनती हैं और उन पर्याप्तियों के बनने में वैसे-वैसे ही कर्मों का उदय होता चला जाता है। जैसे मान लो श्वासोच्छवास पर्याप्ति जब बनेगी तब उसके लिए श्वासोच्छवास नाम कर्म का उदय आएगा तब वह पर्याप्ति पूर्ण होगी, तब से उसका प्राण कहलाएगा। इस तरीके से आप यह जानना कि अपर्याप्त जीवों में तीन प्राण नहीं होते, बाकी के सब इन्द्रिय के अनुसार उन प्राणों को आप लगा लेना। द्वीन्द्रिय आदि जो त्रस जीव हैं, उनके

अन्दर अपर्याप्त दशा में कितने प्राण और पर्याप्त दशा में कितने प्राण? इसको अच्छे ढंग से जान करके ही हम आगे बढ़ते हैं।

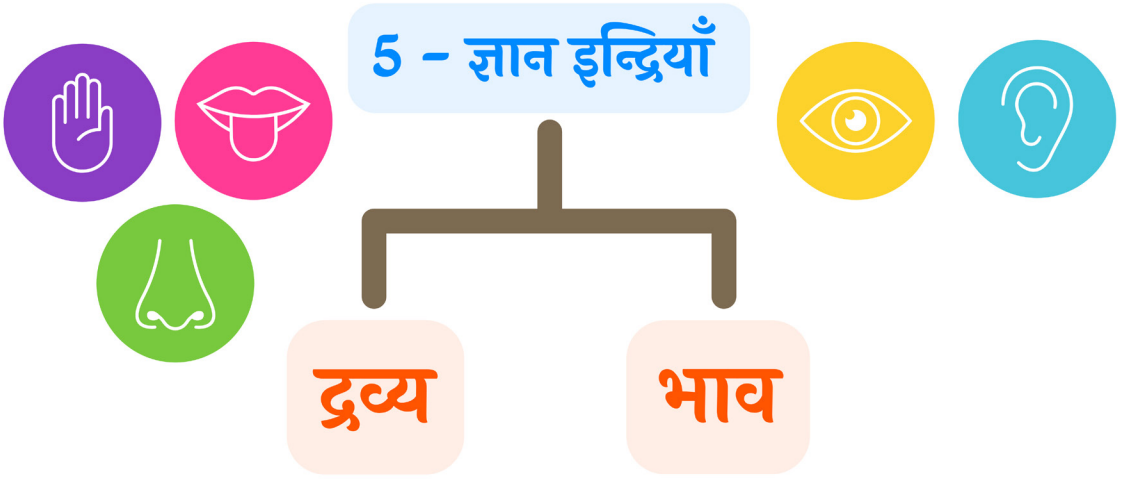
पाँच इन्द्रियों के विषय

पञ्चेन्द्रियाणि ॥2.15॥

पञ्च + इन्द्रिय + आणि

इन्द्रिय संख्या पाँच हैं, अधिक नहीं यह जान।
मन ईषत् इन्द्रिय कहा, फल हित की पहचान ॥2.15॥

मतलब अब यहाँ से इन्द्रियों का वर्णन प्रारम्भ हो जाता है। अभी हमने क्या कर दिया? जीवों के काय के अनुसार उनका विभाजन कर दिया। स्थावर काय वाले जीव, त्रसकाय वाले जीव, short में यह बता दिया। अब काय के बाद में उनकी इन्द्रियाँ बताने जा रहे हैं। 'पंचेन्द्रियाणि' इन्द्रियाँ कितनी होती हैं? पाँच होती हैं। ये इन्द्रियाँ जो हैं...किस विषय में, किस परिपेक्ष में कही जा रही हैं? ये जो हमने आत्मा का उपयोग स्वभाव बताया था...'उपयोग लक्षणं' उपयोग लक्षण वाला है, तो जो आत्मा उपयोग लक्षण वाला है, वही आत्मा पाँच प्रकार की इन्द्रियों के माध्यम से, पाँच प्रकार के पदार्थों को और जानने में अपना उपयोग लगाता है। ग्रहण करने में अपना उपयोग लगाता है। ये जो इन्द्रियों का विभाजन है, यह उपयोग की अपेक्षा से है, ज्ञान की अपेक्षा से है, इसलिए इन इन्द्रियों को ज्ञान इन्द्रिय कहा जाता है।



अन्य मतों में कर्म इन्द्रियों को भी जोड़ते हैं

अन्यत्र आप पढ़ेंगे हिन्दुओं के यहाँ पर भी, अजैन शास्त्रों में भी, इन्द्रियों को माना गया है, इन्द्रियों का वर्णन किया गया है लेकिन वहाँ पर पाँच से अधिक इन्द्रियाँ ली गई हैं। वहाँ पर इसलिए पाँच से अधिक ली गई क्योंकि वे कर्म इन्द्रियों को भी जोड़ते हैं। जिनसे हम कर्म करते हैं उनको भी वे इन्द्रिय मान कर चलते हैं। यहाँ पर हम कर्म इन्द्रिय नहीं ले रहे हैं। यहाँ पर हम क्या बोल रहे हैं? ज्ञान इन्द्रिय। उन्होंने वाक् मतलब बोलने को भी, एक अलग से एक इन्द्रिय की क्रिया होती है न...बोलना तो उसको उन्होंने कर्म इन्द्रिय माना। यह पाद जो होता है- चरण वगैरह चलना, इसको भी उन्होंने कर्म इन्द्रिय माना।

जैन मत में ज्ञान इन्द्रियाँ कही हैं

यहाँ पर वह कर्म इन्द्रिय की विवक्षा नहीं होने के कारण से इसे यहाँ आचार्य पाँच ही इन्द्रियाँ कह रहे हैं। वह किस अपेक्षा से कह रहे हैं? जिसमें हमारा उपयोग लगता है, जो हम इन्द्रियों की रचना करते हैं, उपयोग जो हमारा इन्द्रियों की रचना करके उससे जो जानकारियाँ लेता है, वह ज्ञान इन्द्रियाँ तो पाँच ही होती हैं। 'पंचेन्द्रियाणि' ठीक है! फिर आगे कहते हैं-

द्विविधानि॥2.16॥

इन्द्रिय के दो भेद हैं, द्रव्य भाव से जान।
लक्षण आगे अब लिखूँ, सुनो-सुनो विज्ञान॥2.16॥

कितने प्रकार की हैं? अब हर एक इन्द्रिय दो प्रकार की है।

हर एक इन्द्रिय के दो-दो भेद हैं

एक-एक इन्द्रिय के दो भेद करना...एक द्रव्य इन्द्रिय, एक भाव इन्द्रिय। कैसे करना? एक द्रव्य इन्द्रिय, एक भाव इन्द्रिय मतलब स्पर्शन इन्द्रिय के भी दो भेद...द्रव्य स्पर्शन इन्द्रिय और भाव स्पर्शन इन्द्रिय। रसना इन्द्रिय के भी दो भेद...द्रव्य रसना इन्द्रिय और भाव रसना इन्द्रिय। घ्राणेन्द्रिय के भी दो भेद...द्रव्य घ्राण इन्द्रिय और भाव घ्राण इन्द्रिय। चक्षु इन्द्रिय के भी दो भेद...द्रव्य चक्षु इन्द्रिय, भाव चक्षु इन्द्रिय। श्रोतृ इन्द्रिय के दो भेद...द्रव्य श्रोतृ इन्द्रिय और भाव श्रोतृ इन्द्रिय। अलग-अलग इसलिए बता रहे हैं कि आपके दिमाग में अच्छे ढंग से fit हो जाये। द्रव्य इन्द्रिय भी इन्द्रिय है और भाव इन्द्रिय भी इन्द्रिय है। द्रव्येन्द्रिय क्या है? भावेन्द्रिय क्या है?

अब इसके विभाजन के लिए आगे का सूत्र दिया जा रहा है-

द्रव्य इन्द्रिय का स्वरूप

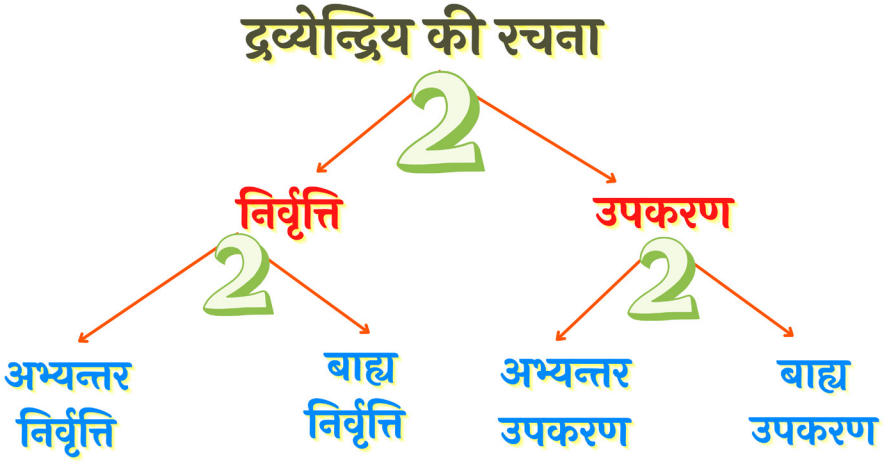
निर्वृत्त्युप-करणे द्रव्येन्द्रियम् ॥2.17॥

निर्वृत्ति+उपकरणे - द्रव्य+इंद्रियम्

रचना औ उपकरण से, द्रव्येन्द्रिय दो भेद।
भीतर-बाहर जान लो, पुनः भेद पर भेद ॥2.17॥

SCAN TO WATCH

यह द्रव्येन्द्रिय का स्वरूप बताया जा रहा है- निर्वृत्ति और उपकरण। ये जो दोनों चीजें हैं, ये द्रव्य इन्द्रिय कहलाती हैं। द्रव्य का मतलब है- जो एक तरह से पुद्गल द्रव्य से सम्बन्ध रख रही हैं, पुद्गल द्रव्य से जिनकी संरचना हमें बनती हुई दिखाई देती है। उन इन्द्रियों की रचना दो तरह से होती है...एक निर्वृत्ति रूप में और एक उपकरण के रूप में। अब निर्वृत्ति भी दो प्रकार की होती है...एक अभ्यन्तर निर्वृत्ति, एक बाह्य निर्वृत्ति और उपकरण भी दो प्रकार के होते हैं...एक अभ्यन्तर उपकरण और एक बाह्य उपकरण।



इन्द्रियों की भीतरी रचना आत्मा से शुरु होती है

अभ्यन्तर निर्वृत्ति क्या कहलाती है? सबसे पहले शुरु होती है...इन्द्रियों की निर्वृत्ति मतलब रचना, भीतरी रचना। कहाँ से शुरु होगी? आत्मा से शुरु होगी। कहाँ से शुरु होगी? आत्मा से। सब आत्मा ही तो रचना कर रही है, आत्मा में ही रचना हो रही है सब। आत्मा के जो प्रदेश, प्रदेश मतलब समझ रहे हो न, आत्मा के points हैं- space points, वे आत्मा के शुद्ध प्रदेश जो केवल उस इन्द्रिय के आकार के रूप में इकट्ठे हो जाते हैं, उतने ही इन्द्रिय के आकार की अपनी एक रचना, उतने ही प्रदेशों में बन जाती है। उसको अभ्यन्तर निर्वृत्ति कहा जाता है।

चक्षु इन्द्रिय का आकार मसूर का दाने जैसा होता है

नहीं समझ आया? मतलब जैसे आँख लेकर के चले..चक्षु इन्द्रिय है न! चक्षु इन्द्रिय को आप इतनी बड़ी इन्द्रिय समझ रहे हो। यह तो इसका ऊपर का cover है, यह तो उपकरण है और रचना भीतर होती है। हर एक इन्द्रिय के आकार बताये हैं, उनके आकार वही होते हैं। चक्षु इन्द्रिय का आकार होता है...जैसे मसूर का दाना होता है, मसूर की दाल, गोल-गोल, यह चक्षु इन्द्रिय का आकार ऐसा होता है। सबसे पहले उस मसूर के दाने के रूप में आत्मा के जो असंख्यात प्रदेश हैं, उनमें से कुछ उत्सेधांगुल के असंख्यात भाग वाले प्रदेश ही उस आँख की रचना के रूप में सबसे पहले अपनी निर्वृत्ति शुरू करते हैं। फिर से सुन लो! जल्दी सुन लो! जो हमारी आँख बनी है, उस आँख के बनने में कहाँ से वह process शुरू हुई है? वह mechanism आपको यहाँ बताई जा रही है। सबसे पहले जो हमारी आँख बनी, वह आँख, यह जो बाहर दिखती है वह आँख नहीं है। आँख कौन-सी है? जो मसूर के दाने के बराबर आँख की रचना होती है। आँख जो चक्षु इन्द्रिय है, इसकी रचना किसके आकार में होती है? मसूर के दाने के बराबर। मसूर का दाना होता है, दाल का दाना, जो गोल-गोल होता है वैसा आपको दिखता भी है, अगर ढंग से देखोगे तो। उस आकार में पहले क्या हो जाना? पहले तो आत्मा के केवल जो प्रदेश हैं, उस आकार में ढल जाना। पहले तो आत्मा के प्रदेश ढल गए। इसका नाम हुआ- अभ्यन्तर निर्वृत्ति।

चक्षु इन्द्रिय की रचना



1.अभ्यन्तर निर्वृत्ति (inside formation)	2.बाह्य निर्वृत्ति (outside formation)
	मसूर का दाना 
आत्मा के उत्सेधांगुल के असंख्यात भाग वाले प्रदेश ही सबसे पहले मसूर के दाना जैसी आँख की रचना के रूप में अपनी निर्वृत्ति शुरू करते हैं	पुद्गलों की रचना, उन्हीं आत्मा के प्रदेशों पर होना

बाह्य निर्वृत्ति पुद्गलों की रचना है



अब उसी आत्मा के उतने प्रदेशों पर जो कि उनकी संख्या जैसे आत्मा के तो असंख्यात प्रदेश हैं तो उनमें से कुछ असंख्यात्वाँ भाग वह कहलाता है...उत्सेधांगुल का असंख्यात्व भाग। उतने प्रदेश केवल उस आँख की रचना के रूप में ढल गए। अब इसी के ऊपर हमारे नामकर्म के उदय से, क्योंकि रचना होगी भी किसकी वजह से होगी? नाम कर्म के उदय से! नाम कर्म के उदय से अब पुद्गल जो matter होगा, जो पुद्गल परमाणु होंगे, नाम कर्म के उदय से वे पुद्गलों की रचना, अब उन्हीं आत्मा के प्रदेशों पर होने लग जाएगी। उतनी ही आत्मा के प्रदेशों पर आँख के बराबर, उसको बोलेंगे...बाह्य निर्वृत्ति। यह डॉक्टरों का विषय नहीं है। डॉक्टरों का जो विषय आएगा अब उपकरण में आएगा। डॉक्टर की needle कभी-भी न तो अभ्यन्तर निर्वृत्ति तक पहुँच पाएगी, न उसकी बाह्य निर्वृत्ति तक पहुँच पाएगी। मतलब डॉक्टरों की पहुँच कहाँ तक? यह भी मैं आपको बता रहा हूँ। यह जो मैं आपको बता रहा हूँ, यह क्या है? यह आत्मा के प्रदेशों की उस रूप में रचना हो जाना और फिर उसी आत्मा के, उन प्रदेशों पर कर्म के उदय से पुद्गलों की रचना उसी आकार में हो जाना, मसूर के दाने के आकार में हो जाना, यह कहलाई- बाह्य निर्वृत्ति।

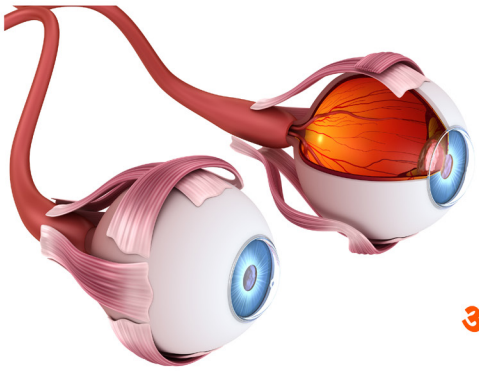
निर्वृत्ति की रक्षा करने के लिए यह उपकरण बनते हैं

SCAN TO WATCH

अब यह तो दो प्रकार की निर्वृत्ति हो गई...अभ्यन्तर और बाह्य। दो प्रकार की निर्वृत्ति होने के बाद में अब उपकरण शुरू होता है। क्या शुरू होता है? उपकरण। उपकरण किसे कहते हैं? जो निर्वृत्ति हो रही है, उसका जो उपकार करे, उसका नाम है- उपकरण। उपकार कैसा? मतलब जो हो गई है, उसकी रक्षा करना। उसकी रक्षा करने के लिए जैसे एक के ऊपर एक हम उसकी परत बनाते चले जाते हैं, वैसे ही आत्मा के इन प्रदेशों में जो निर्वृत्ति हो गई, इसकी रक्षा करने के लिए यह उपकरण बनते हैं। हमारे अन्दर जो काले रंग की गोलक दिखाई दे रही है, यह

उसका उपकरण है। जो भी उसके अन्दर retina है, उसके अन्दर यह काली-काली गोलक है और उसके चारों ओर जो सफेद रंग का एक जो द्रव रहता है, यह सब उसका उपकरण है। इसे कहेंगे- अभ्यन्तर उपकरण। यह अभ्यन्तर उपकरण है। समझ आ रहा है? बाह्य उपकरण क्या है? इस सारी रचना की रक्षा करने वाली जो हमारी पलकें हैं, ये बाह्य उपकरण हैं। जैसे ही धूल आई... shutter बंद...रक्षा हो गयी न! किसकी रक्षा कर ली?

Doctor की needle निर्वृत्ति को नहीं छू सकेगी



डॉक्टरों की needle सिर्फ बाह्य और अभ्यन्तर उपकरण जाती है निर्वृत्ति तक नहीं

आँख की रक्षा! किसने कर ली? पलकों ने कर ली। यह हो गया...बाह्य उपकरण। हमारी ये जो आँखों की पलकें हैं, बाल हैं, ये सब किस लिए हैं? ये सब हमारी अभ्यन्तर उपकरण की रक्षा करने के लिए हैं। डॉक्टरों का काम कहाँ तक होता है? अभ्यन्तर उपकरण तक होता है। बाह्य उपकरण हो जाएगा। अभ्यन्तर उपकरण तक डॉक्टरों की needle पहुँच जाएगी। किसी भी तरीके का कोई भी operation होगा, कुछ भी होगा, वह सब अभ्यन्तर उपकरण के आस-पास ही चलेगा। कोई भी निर्वृत्ति को नहीं छू सकेगा। जहाँ से वह रचना शुरु हुई, वहाँ तक कोई needle नहीं पहुँचेगी। कोई x ray मशीन नहीं पहुँचेगी और कोई भी laser machine भी नहीं पहुँचेगी। laser भी वहाँ तक नहीं पहुँचेगा। इसी तरह की सब रचनाएँ होती हैं और हर एक रचना के लिए आकार नियत है।

जौ नाली की तरह यह कर्ण इन्द्रिय की रचना होती है

चक्षु इन्द्रिय का आकार कैसा है? मसूर के दाने के बराबर। श्रोतृ इन्द्रिय का आकार? यह बताया गया है- जौ की नाली की तरह। जौ नलिका होती है...जवा, वह जौ कहलाता है। उसमें जव नाली type की बनी होती है। जौ नाली की तरह यह कर्ण इन्द्रिय की रचना होती है मतलब भीतरी। यह बाहर का कान नहीं है, यह तो उपकरण है इसका, बाहरी रक्षा करने के लिए। अब इसमें भी यही चीज लगाना। सबसे पहले इसकी अभ्यन्तर निर्वृत्ति होगी मतलब आत्मा के प्रदेश कान के, जौ नाली के आकार में ढलेगी। फिर उसके ऊपर पुद्गलों की रचना

होगी जो उस कर्म के निमित्त से होगी। पुद्गल की रचना उसी आकार में (जौ नाली के आकार में) ढलेगी, यह तो हो गई बाह्य निर्वृत्ति। फिर उसके ऊपर अभ्यन्तर उपकरण शुरू होगा, जो कान का पर्दा है, जहाँ से सुनने पर शब्द टकराता है, वह सब अभ्यन्तर उपकरण हो गया और उसके ऊपर यह सब बाहरी उपकरण हो गया। कान में तेल डालते हो, कहाँ तक पहुँचेगा? अभ्यन्तर उपकरण तक पहुँचेगा। बाहर की चीज का अभ्यन्तर या बाह्य निर्वृत्ति से कोई भी लेना-देना नहीं है। वह तो जैसी एक बार हो गई, वैसी हो गई। यह हो गई इसका नियत आकार, ऐसा होता है।

घ्राण इन्द्रिय की निर्वृत्ति उपकरण मुक्तक पुष्प के समान है

अब मान लो घ्राण इन्द्रिय है। जो नाक है...इसका भी एक नियत आकार होता है। उसके लिए बताया गया 'अति मुक्तक पुष्प' के समान। अति मुक्तक पुष्प होता है, जैसे-तिल का फूल, एक तिल, तिलहन होती है न! तिल! उसका जो फूल होता है। आप search करोगे mobile पर आपको मिल जाएगा। तिल का फूल होता है। उस फूल के आकार की नाक होती है, वह उसकी अभ्यन्तर निर्वृत्ति होगी। फिर बाह्य निर्वृत्ति फिर अभ्यन्तर उपकरण और यह पूरा बाह्य उपकरण है।



रसना इन्द्रिय, खुरपा के आकार की होती है

रसना इन्द्रिय...खुरपा के आकार की होती है। किसके आकार की? खुरपा जानते हो? खुरपी! कभी घास खोदी है। घास भी खोद लिया करो computer चलाने वालों। कभी किसी खेत में जाकर के किसान के पास देखना, एक खुरपी होती है, जिससे वह घास काटता है। वह खुरपी की जैसी रचना होती है, वैसे ही जिह्वा की रचना होती है। खुरपी इसके मूल में जिह्वा की रचना की मूल आकृति है, वह ऐसी ही है और उसमें भी ऐसे ही उपकरण। जीव जो है वह तो बाह्य उपकरण है, बस! स्पर्शन इन्द्रिय अनेक प्रकार की है। उसका कोई एक आकार नियत नहीं है क्योंकि दो इन्द्रिय जीव है, एक इन्द्रिय जीव है, तीन इन्द्रिय जीव है, जिसकी जैसी शरीर की रचना होगी, उसकी स्पर्शन इन्द्रिय उसी आकार की होगी। अनेक आकार वाली हो जाती है।



निर्वृति और उपकरण में भावों का कुछ काम नहीं है

ऐसे हर इन्द्रिय के आकार के अनुसार पहले आत्मा के प्रदेश की रचना होना, फिर उसके ऊपर शरीर नाम कर्म के कारण से पुद्गल की रचना होना, फिर उसके उपकरण बनना और फिर उस उपकरण की रक्षा करने वाला बाहरी उपकरण बनना। यह सब बन जाता है तब यह द्रव्य इन्द्रिय कहलाती है। यह सब क्या है? यह द्रव्य है। मतलब आत्मा के द्रव्य से लेकर के पुद्गल के द्रव्य तक यह सब जो काम चल रहा है, द्रव्य का काम है। इसमें अभी अपने भाव का कुछ काम नहीं है। भाव इन्द्रिय अलग है। वह क्या है?

भाव इन्द्रिय के भेद

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥2.18॥

लब्धि+उपयोगौ भाव+इंद्रियम्

लब्धि और उपयोग मिल, बने पदारथ ज्ञान।
भावेन्द्रिय के भेद दो, यही ज्ञान की शान ॥2.18॥

यह भाव इन्द्रिय दो प्रकार की है...लब्धि रूप और उपयोग रूप। लब्धि का मतलब क्या होता है? लब्धि मतलब है- लाभ। हमें लाभ हो गया। किसका लाभ हो गया? अगर हमें पाँच इन्द्रिय बनना है, तो पाँच इन्द्रिय कर्मों का क्षयोपशम हो गया, उतने ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हो गया। उस क्षयोपशम के लाभ का नाम है- लब्धि। जिसके पास में जितनी इन्द्रिय होंगी उतनी ही इन्द्रिय सम्बन्धी मतिज्ञान आदि का क्षयोपशम होगा, यह उसका उतना लाभ कहलाया। जो अन्तरंग आत्मा में कर्मों का क्षयोपशम है, वह हुआ भाव इन्द्रिय, वह लाभ है और उस लाभ के अनुसार हमारी आत्मा का जो उपयोग है, ज्ञानोपयोग काम कर रहा है। वह ज्ञान जो जान रहा है, वह ज्ञानोपयोग, उस आत्मा के अनुसार जो कर्म का क्षयोपशम हो गया है, उसके अनुसार जो हमारा उपयोग काम करेगा वह कहलाएगा- उपयोग रूप भाव इन्द्रिय। भाव जो हो गया वह ज्ञानात्मक हो गया। एक तो ज्ञान का क्षयोपशम 'लब्धि' हो गई और उस क्षयोपशम का उपयोग जो ज्ञान में आ रहा है, वह उपयोग हो गया। यह उपयोग और लब्धि यह भाव इन्द्रिय हैं। फिर उसके बाद में उस क्षयोपशम के अनुसार ही इन द्रव्य इन्द्रियों के माध्यम से हम जानते हैं तो यह द्रव्य इन्द्रिय कहलाती है।

द्रव्य मन की रचना अष्ट पंखुड़ी वाले कमल के रूप में है

द्रव्य इन्द्रिय और भाव इन्द्रिय का ये इन्द्रियों का science भी आपको पता होना चाहिए। भले ही psychology का subject आपको पढ़ना हो लेकिन आपको इन्द्रियों के बिना अनिन्द्रिय का ज्ञान नहीं हो सकेगा। क्योंकि मन को क्या बोलते हैं? अनिन्द्रीय बोलते हैं। वह भी एक मन की रचना है, एक रचना होती है। लेकिन वह इन्द्रियों की तरह उसकी रचना एक स्थान पर होते हुए भी जो भाव मन है, उसकी एक कोई नियत स्थिति नहीं है। क्या समझ में आया? द्रव्यमन है, उसकी रचना होती है। उसकी रचना के लिए बताया गया कि जो हृदय में अष्ट पंखुड़ी वाले कमल के रूप में द्रव्यमन की रचना होती है। अब यह मन भी कभी डॉक्टरों की पकड़ में नहीं आ सकता। कितने भी आप dissection कर लो और postmortem कर लो। यह मन भी पकड़ में नहीं आ सकता।

भाव मन ज्ञानात्मक है

भाव मन वह ज्ञानात्मक है। वह भी always unsteady है। वह हमेशा fleeting position वाला है, जिसे बोलते हैं- क्षणभंगुर। मन की यह दशा है कि वह कहाँ पर रहे, कहाँ पर काम करे। जो भाव मन है उसका कोई नियत स्थान नहीं है। जैसे द्रव्य इन्द्रिय के साथ लगाया ऐसे मन के साथ भी लगाना द्रव्यमन और भावमन। द्रव्य मन की तो रचना बताई गई है लेकिन भाव मन ज्ञानात्मक है, वह कहीं पर भी हो सकता है। उसकी कोई एक स्थिरता नहीं है।

द्रव्य मन के ऊपर कोई उपकरण नहीं होता

इस तरह से मन को भी एक इन्द्रिय की तरह से जानना। मन की भी रचना इन्द्रियों की तरह ही होती है लेकिन वह मन अन्तरंग में हमें दिखाई नहीं देता। उसका कोई भी एक fix स्थान हमारे लिए समझ में नहीं आता या उसका कोई एक परिणाम हमारे लिए पकड़ में नहीं आता। इसलिए हम उसको अनिन्द्रीय कहते हैं। मतलब ईषत् इन्द्रिय है...थोड़ा इन्द्रिय का काम जैसा है लेकिन पूर्ण इन्द्रिय की तरह नहीं है। द्रव्य मन में भी आत्मा के प्रदेश उसी हृदय के अन्दर अष्ट पंखुडी के कमल के आकार की उसकी रचना में ढल जाएँगे, उसके ऊपर पुद्गल की रचना होगी। लेकिन फिर उसके जो उपकरण इत्यादि के रूप में कुछ भी दिखाई देने वाला नहीं है। इस तरह से मन और इन्द्रिय के बारे में आप लोग अच्छे ढंग से जैन science से जान सकते हो, जो कहा जा रहा है। इतनी पकड़ दुनिया में किसी science के पास में नहीं है। द्रव्येन्द्रिय और भावेंद्रिय के माध्यम से इन्द्रिय और मन को जान लेना। आज इतना ही पर्याप्त है।

बोलो महावीर भगवान की जय।

सारांश

1. सूत्र 14 में हमने जाना कि दो या उससे अधिक इन्द्रिय वाले जीव त्रस होते हैं
2. एकेन्द्रिय में स्थावर की व्यवस्था होती है और दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक त्रस की व्यवस्था होती है

त्रस जीवों में त्रस नामकर्म का उदय होता है

3. इसके साथ जिन इन्द्रियों का क्षयोपशम होगा, उतनी इन्द्रिय वाला वह जीव बनेगा
4. त्रस पर्याय के अंदर जो उपलब्धियाँ हैं उनको प्राणों के माध्यम से जाना जाता है
5. प्राण ही जीवन है

6. जीव के त्रस नामकर्म के साथ में पर्याप्तक या अपर्याप्तक नामकर्म का उदय होते है जिससे पता चलता है कि जीव पर्याप्तक होगा या अपर्याप्तक
    - पर्याप्तक जीव नियम से अपनी पर्याप्तियों को पूर्ण करेगा
    - अपर्याप्तक जीव अपनी पर्याप्तियों को प्रारम्भ तो कर देगा लेकिन पूर्ण एक भी नहीं कर पाएगा और उसकी मृत्यु हो जाएगी
7. अपर्याप्तक जीव वस्तुतः **लब्धि अपर्याप्तक** ही होते हैं
    - जिनकी सब लब्धियाँ अपूर्ण हैं
    - जिस इन्द्रिय में उन्हें जाना है, उतनी इन्द्रिय का क्षयोपशम भी है लेकिन पूर्ण एक भी इन्द्रिय नहीं हुई
    - इनका जीवन श्वास के अठारहवें भाग में पूर्ण हो जाता है

i. एक तरफ से ये सम्मूर्च्छन जन्म वाले जीव होते हैं

8. ऐसे अपर्याप्तक जीव मनुष्य सहित सभी इन्द्रिय वाले जीवों में होते हैं
9. अपर्याप्तक जीव हमेशा अपर्याप्त दशा में ही रहता है
10. मगर पर्याप्तक जीव जब तक अन्तर्मुहूर्त में अपनी पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं कर लेता तब तक वह जीव अपर्याप्त दशा में होता है
    - **उसके पश्चात् वह पर्याप्त दशा में आ जाता है**

11. पर्याप्तक नामकर्म के उदय से वह नियम से अपनी पर्याप्तियाँ पूर्ण करता है
12. गर्भ जन्म वाले जीव पर्याप्तक ही होते हैं
13. पर्याप्तियों के आधार से हम तीन तरह से जीवों को समझ सकते हैं

i. पहला लब्धि अपर्याप्तक जीव- जिनकी सभी पर्याप्तियाँ incomplete ही रहेंगी

ii. दूसरा पर्याप्तक जीव - जिन जीवों ने अपने पर्याप्तियाँ पूर्ण करलीं हैं
iii. और **निर्वृत्ति अपर्याप्तक जीव**- पर्याप्तक जीव जब एक पर्याय को छोड़कर दूसरे पर्याय में आते हैं और जन्म लेने के बाद अन्तर्मुहूर्त तक अपनी पर्याप्तियाँ पूर्ण करते हैं तो उस अवस्था को निर्वृत्ति अपर्याप्तक कहते हैं

14. उदाहरण के लिए
  i. जब आटे गूँथने में अत्यधिक पानी डाल दें तो पूरा आटे फैल जाता है इसे लब्धि अपर्याप्तक दशा समझ सकते हैं
  ii. गुथे हुए आटे से लोई बनाकर रोटी बनाने की प्रक्रिया हो गयी निर्वृत्ति अपर्याप्तक दशा
  iii. सही आकार आदि में आने के बाद **रोटी पर्याप्तक दशा** में आ जाती है

15. हमने जाना की पर्याप्तक जीवों में इन्द्रिय के साथसाथ प्राण भी बढ़ते हैं जैसे
  i. एक इन्द्रिय के 4
  ii. दो इन्द्रिय के 6
  iii. 3 indriya ke 7
  iv. 4 indriya ke 8
  v. असंज्ञी पंचेन्द्रिय के 9 और
  vi. संज्ञी पंचेंद्रिय के 10 प्राण होते हैं

16. हमने जाना कि रसना इन्द्रिय के दो काम होते हैं - **चखना और बोलना**
17. अतः दो इन्द्रिय जीव में वक्तृत्व शक्ति यानि बोलने की शक्ति आ जाती है
18. **चींटी, मच्छर आदि** दो से पंचेन्द्रिय असंज्ञी जीवों की भाषा अनक्षरी होती है

19. और यह हमारी अक्षरी भाषा से भिन्न है
20. हमने जाना कि पर्याप्ति और प्राण होते हैं
    - **पर्याप्ति पूर्ण होने के अन्तर-**अन्तर्मुहूर्त के बाद की दशा में जिस कर्म का उदय होता है उसी के अनुसार प्राणों की उत्पत्ति होती है

21. दोनों ही निर्वृत्य अपर्याप्तक जीव और लब्धि अपर्याप्तक जीव की अपर्याप्त दशा में मनबल, वचनबल और श्वासोच्छवास प्राण नहीं होते
22. क्योंकि पर्याप्तियाँ पूर्ण होने पर इन कर्मों का उदय, क्षयोपशम होता है जिससे उस प्राण की संज्ञा मिलती है
    - **जैसे पर्याप्ति पूर्ण** होने पर और श्वासोच्छवास नाम कर्म के उदय होने पर श्वासोच्छवास प्राण कहलाएगा पर्याप्तक जीव में ये तीन प्राण शुरू हो जाएँगे

23. अपर्याप्तक जीव एक भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं कर पाता

24. अतः अपर्याप्तक जीव में शेष प्राण कर्मोदय अनुसार होंगे
    - **पंचेन्द्रिय में सात**
    - **चार इन्द्रिय में छः**
    - **तीन इन्द्रिय में पाँच,**
    - **दो इन्द्रिय में चार और**
    - **एक इन्द्रिय में तीन ही प्राण होते हैं**

25. जो एक पर्याय से दूसरे पर्याय को ग्रहण करने के बीच में जीव का आकाश में गमन होता है उसे विग्रहगति कहते हैं
    - जीव यहाँ भी अपर्याप्त दशा में होता है
    - और जन्म लेने के बाद अन्तर्मुहूर्त तक अपर्याप्त रहता है
26. सूत्र 15 से हमने जाना कि स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोतृ पाँच इन्द्रियाँ होती हैं
27. उपयोग लक्षण वाला आत्मा इन इन्द्रियों के माध्यम से पाँच प्रकार के पदार्थों को जानने में अपना उपयोग लगाता है
28. अतः इन्द्रियों का ये विभाजन उपयोग और ज्ञान की अपेक्षा से है
29. इसलिए इन्हें ज्ञान इन्द्रिय भी कहते हैं
30. अन्य मतों में कर्म इन्द्रियों को जैसे बोलना और चलना को भी इसमें जोड़ देते हैं
31. सूत्र 16 में हमने जाना द्रव्य इन्द्रिय और भाव इन्द्रिय के भेद से पांच इन्द्रिय के कुल 10 भेद हो जाते हैं
32. सूत्र 17 में हमने समझा कि निर्वृत्ति और उपकरण द्रव्येन्द्रिय कहलाती हैं
33. द्रव्य का अर्थ है जो पुद्गल द्रव्य से सम्बन्ध रखे, पुद्गल द्रव्य से जिनकी संरचना बनती हुई दिखाई दे

34. यह रचना भी निर्वृत्ति रूप और उपकरण रूप होती है
    - अभ्यन्तर और बाह्य के प्रभेद से यह चार प्रकार की होती है
    - अभ्यन्तर निर्वृत्ति
    - बाह्य निर्वृत्ति
    - अभ्यन्तर उपकरण और
    - बाह्य उपकरण

निर्वृत्ति मतलब आत्मा से शुरु हुई भीतरी रचना

35. अभ्यन्तर निर्वृत्ति में आत्मा के शुद्ध प्रदेश उस इन्द्रिय के आकार के रूप में इकट्ठे हो जाते हैं और इन्द्रिय के आकार की एक रचना बन जाती है
36. वहीं बाह्य निर्वृत्ति पुद्गलों की रचना है

37. जैसे चक्षु इन्द्रिय की अभ्यन्तर निर्वृत्ति में आत्मा के असंख्यात प्रदेश में असंख्यात्वाँ भाग मतलब उत्सेधांगुल का असंख्यात्व भाग मसूर के दाने के आकर में ढल जाते हैं
38. और बाह्य निर्वृत्ति में उन प्रदेशों पर कर्म के उदय से पुद्गलों की रचना उसी आकार में हो जाती है
39. उपकरण **निर्वृत्ति की रक्षा** करते हैं
40. आँख में retina, काली गोलक आदि सब अभ्यन्तर उपकरण हैं
41. वहीं हमारी पलकें बाह्य उपकरण हैं जो धूल आदि से इसकी रक्षा करती हैं
42. डॉक्टर की needle सिर्फ उपकरण तक पहुँचती है निर्वृति तक नहीं
43. **कर्ण इन्द्रिय** की रचना जौ नाली की तरह होती है
44. इसमें कान का पर्दा अभ्यन्तर उपकरण है और उसके ऊपर सब बाहरी उपकरण
45. चक्षु इन्द्रिय की रचना मसूर के दाने के बराबर होती है
46. घ्राण इन्द्रिय की रचना मुक्तक पुष्प जैसे तिल का फूल के समान होती है
47. रसना इन्द्रिय जिह्वा के समान खुरपा के आकार की होती है
48. **जीभ** इसका बाह्य उपकरण है
49. स्पर्शन इन्द्रिय का कोई एक आकार नियत नहीं है
50. यह शरीर की रचना के अनुसार उसी आकार की होगी
51. सूत्र 18 में हमें जाना कि भाव इन्द्रिय लब्धि रूप और उपयोग रूप होती हैं
52. **लब्धि मतलब लाभ**
53. इसमें जीव के पास जितनी इन्द्रिय होंगी उतनी ही इन्द्रिय सम्बन्धी मतिज्ञान आदि का क्षयोपशम होगा
54. उस लब्धि या कर्मों के क्षयोपशम के अनुसार आत्मा का जो उपयोग है वह उपयोग रूप भाव इन्द्रिय हो गयी
55. यह ज्ञानात्मक होती है
56. इसी क्षयोपशम के अनुसार ही हम इन द्रव्य इन्द्रियों से जानते हैं
57. द्रव्य मन अष्ट पंखुड़ी वाले कमल के रूप में होता है
58. इसकी रचना एक स्थान पर होते हुए भी जो भाव मन की कोई एक नियत स्थिति नहीं है
59. भाव मन ज्ञानात्मक है
60. द्रव्य मन के ऊपर कोई उपकरण नहीं होता

61. मन को **अनिंद्रिय मतलब ईषत् इन्द्रिय भी कहते हैं**
    - क्योंकि यह थोड़ा इन्द्रिय जैसा है लेकिन पूर्णतः नहीं
    - हमें इसका अन्तरंग दिखाई नहीं देता
    - और न ही परिणाम पकड़ में आते हैं

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1."द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः " सूत्र में आदयः शब्द किसके लिये प्रयुक्त हुआ है
1. त्रीन्द्रिय
2. चतुरिन्द्रिय
3. पंचेन्द्रिय
4. उपरोक्त सभी

Q2. त्रस जीव कैसे होते हैं
पर्याप्तक
अपर्याप्तक
उपरोक्त दोनों

Q3.त्रस जीव किस कर्म के उदय से बनते हैं
1. त्रस नाम कर्म
2. इंद्रियावरण कर्म
3. ज्ञानावरण कर्म
4. उपरोक्त तीनों

Q5. दो इंद्रिय जीव किनके माध्यम से जी रहा है
1. केवल दो इंद्रियों के
2. प्राणों के
3. अपने अंदर की उपलब्धियों के

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q6.निर्वृत्यपर्याप्तक जीव में कौन से प्राण होते हैं.
1. आयु प्राण
2. कायबल
3. वचनबल
4. मनबल

Q7.लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यो के प्राणों की संख्या है-
1. दस
2. छः
3. सात
4. नौ

Q8.श्वासोच्छवास प्राण किन के होता है-
पर्याप्तक के
अपर्याप्तक के
दोनों के

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q9.आँखों की पलकें क्या है
1. अभ्यंतर निर्वृत्ति
2. बाह्य निर्वृत्ति
3. अभ्यंतर उपकरण
4. बाह्य उपकरण

Q10.Doctors की needle किसको नहीं छू सकती
1. निर्वृत्ति को
2. उपकरण को
3. दोनों को

Q11.आत्मा के - - - - - प्रदेशों से चक्षु इन्द्रिय की निवृत्ति होती है -
1. उत्सेधांगुल के अनन्तवे भाग
2. प्रमाणागुल के असख्यातवें भाग
3. उत्सेधांगुल के असंख्यातवे भाग
4. उत्सेधांगुल के बराबर

Q12.नेत्र में काला और सफेद मण्डल क्रमशः कौन से उपकरण है -
1. अभ्यन्तर , बाह्य उपकरण
2. बाह्य , अभ्यन्तर उपकरण
3. अभ्यन्तर , अभ्यन्तर उपकरण
4. बाह्य , बाह्य उपकरण

Q13.निर्वृत्ति एवं उपकरण
1. भाव सहित हैं
2. भाव रहित हैं
3. द्रव्य हैं
4. द्रव्य नहीं है

Q14.द्रव्य इंद्रिय बनने का क्रम है
1. अभ्यंतर निर्वृत्ति,अभ्यंतर उपकरण,बाह्य निर्वृत्ति,बाह्य उपकरण
2. अभ्यंतर निर्वृत्ति,बाह्य निर्वृत्ति,अभ्यंतर उपकरण,बाह्य उपकरण
3. अभ्यंतर उपकरण,बाह्य उपकरण,अभ्यंतर निर्वृत्ति,बाह्य निर्वृत्ति
4. अभ्यंतर उपकरण,अभ्यंतर निर्वृत्ति,बाह्य उपकरण,बाह्य निर्वृत्ति

Q15.भाव इंद्रिय किस रूप होती है
1. निर्वृत्ति
2. उपकरण
3. लब्धि
4. उपयोग

Q16.लब्धि का अर्थ है
1. लाभ
2. इंद्रियों की रचना में कारणभूत ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम विशेष
3. उपरोक्त दोनों

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

SCAN TO WATCH

अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1. पर्याप्तक , निर्वृत्यपर्याप्तक तथा अपर्याप्तक जीव में अंतर समझाइये ।
2. अपर्याप्तक मनुष्य की आयु तथा जन्म का प्रकार बताइये ।
3. क्या पर्याप्तक जीव जन्म के प्रथम समय से ही पर्याप्तक होते हैं ?
4. एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव के प्राणों की संख्या बताइये।
5. एकेन्द्रिय तथा द्विन्द्रिय पर्याप्तक जीव के प्राणों के नाम बताइये ।
6. तिलचट्टे की कौनसी भाषा होती है?
7. लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य तथा पर्याप्तक देव में कौन-कौनसे प्राण होंगे?
8. विग्रह गति में पंचेन्द्रिय जीव के कितने प्राण होंगे?
9. द्रव्य इन्द्रिय तथा भाव इन्द्रिय के भेद बताकर इन्हें समझाइये।
10. सही मिलान कीजिए ।

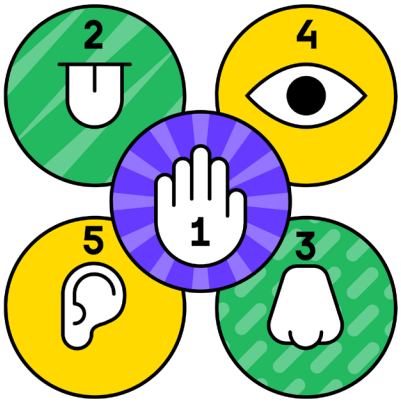
a.	इन्द्रिय विषय	मच्छर
b.	मन रहित	जलकायिक
c.	स्पर्श	समनस्क
d.	चार इन्द्रिय	पलक
e.	वायुकायिक	त्रस
f.	द्रव्येन्द्रिय	चिकना
g.	घ्राण इन्द्रिय	सुगन्ध
h.	मन सहित	चक्षुदर्शन
i.	दर्शनोपयोग	अमनस्क
j.	चींटी	तिल पुष्प

प्रवचन 12

स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्राणि॥2.19॥

घ्राण चक्षु औ फास रस, श्रवण इन्द्रियाँ पाँच।
विषयी के सुख द्वार ये, योगी करता जाँच॥2.19॥

इन्द्रियों के नाम सही तरीके से लेना



सभी इन्द्रियों का आधार
स्पर्शन-इन्द्रिय ही है

स्पर्शन-इन्द्रिय ✓

स्पर्श-इन्द्रिय ✗

'स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु-श्रोत्राणि' इस सूत्र में 5 इन्द्रियों का वर्णन किया गया है। आप थोड़ी-सी सावधानी से देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि इन्द्रिय का जो हम नाम लेते हैं, वह नाम भी कभी-कभी हम जल्दी में शायद गलत बोल देते होंगे। क्या लिखा है? ये 5 इन्द्रियों के नाम बताए जा रहे हैं...सबसे पहली इन्द्रिय का नाम क्या है? स्पर्शन-इन्द्रिय। हम लोग जल्दी में क्या बोल जाते हैं? स्पर्श-इन्द्रिय। यद्यपि आपकी बात को कोई भी व्याकरण विज्ञ व्यक्ति सही कर सकता है लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह है- सूत्र के अनुसार इन्द्रिय का नाम है- स्पर्शन-इन्द्रिय। जब भी कभी आपको पहली इन्द्रिय का ज्ञान हो तो आप स्पर्शन-इन्द्रिय रूप से ही शब्द का प्रयोग करें।

सभी इन्द्रियों का आधार स्पर्शन इन्द्रिय है

स्पर्शन-इन्द्रिय सबसे पहली इन्द्रिय है क्योंकि किसी-भी जीव में अन्य इन्द्रियाँ बाद में बनती हैं। सभी इन्द्रियों का आधार यदि कोई इन्द्रिय है, तो वह स्पर्शन-इन्द्रिय ही है। सभी इन्द्रियाँ इसके बाद ही बनेगी और जो भी इन्द्रियों की उत्पत्तियाँ अलग-अलग जीवों में होती हैं तो स्पर्शन-इन्द्रिय के साथ होने पर ही होती हैं। आपको कोई-भी जीव ऐसा नहीं मिलेगा,

जिसके पास में यह स्पर्शन-इन्द्रिय न हो। इस स्पर्शन-इन्द्रिय-ज्ञान का क्षयोपशम सभी जीवों के पास में रहता है। कम-से-कम भी यदि क्षयोपशम होता है, तो वह स्पर्शन-इन्द्रिय-जन्य क्षयोपशम तो रहता ही है।

इन्द्रियों का सम्बन्ध ज्ञानात्मक उपयोग से है



SCAN TO WATCH

यहाँ पर उपयोग का विषय चल रहा है। इन्द्रियों का सम्बन्ध भी उपयोग से ही है, मन का सम्बन्ध भी हमारे आत्मा के ज्ञान-उपयोग से ही है। इसी-तरह से इन्द्रियों का सम्बन्ध भी आत्मा के उपयोग से ही है। अब हम थोड़ा-सा यह देखें कि आत्मा है, इन्द्रियाँ हैं और मन है और ये सभी चीजें ज्ञान के साथ चल रही हैं। ये सभी परिणतियाँ कैसी हैं? ज्ञानात्मक परिणतियाँ हैं। इन ज्ञानात्मक-परिणतियों में सबसे ज्यादा जो ज्ञान की प्रवृत्ति है, वह हमें स्पर्शन-इन्द्रिय में ही दिखाई देगी क्योंकि स्पर्शन-इन्द्रिय के लिए बहुत ज्यादा, उसके शरीर के माध्यम से, उसका विषय जो है, बहुत ज्यादा फैला हुआ रहता है। पूरे शरीर में एक स्पर्शन-इन्द्रिय है, जो फैली हुई है।

प्रत्येक जीव में स्पर्शन-इन्द्रिय का क्षयोपशम अलग-अलग होता है

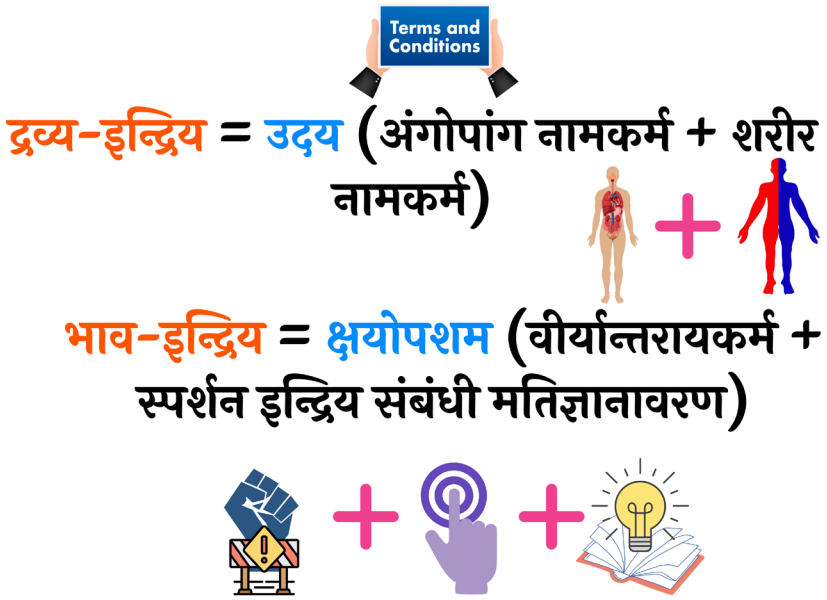
इस स्पर्शन-इन्द्रिय का क्षयोपशम भी अलग-अलग जीवों में अलग-अलग होता है और इस क्षयोपशम के लिए भी आत्मा ही जिम्मेदार है। यह क्षयोपशम कहाँ होगा? आत्मा में क्षयोपशम हुआ। इन्द्रिय में जो ज्ञान आया, वह ज्ञान कहाँ से आया? आत्मा से आया। मन में भी ज्ञान आया तो कहाँ से आया? आत्मा में जो ज्ञानावरण-कर्मों का क्षयोपशम है...उससे आया। इन इन्द्रियों को जानकर के हम धीरे-धीरे यह भी जान लेंगे कि यद्यपि इन इन्द्रियों की रचना आत्मा ही करता है।

द्रव्य इन्द्रिय और भाव इन्द्रिय किन कर्मों पर निर्भर करती है?

जैसा हम जानते हैं- 'द्रव्य-इन्द्रिय हैं, भाव-इन्द्रिय हैं'

1. **द्रव्य-इन्द्रिय-** जो नाम-कर्म के विशेष उदय से होने वाली रचना विशेष है। जब द्रव्य-इन्द्रिय की बात आएगी तो उसमें नाम-कर्म के कारण से, अंगोपांग-नाम-कर्म के कारण से या शरीर-नाम-कर्म के उदय से जो उसकी इन्द्रिय बनेगी, उसी की वहाँ पर मुख्य भूमिका होगी। यह कहलाती है- द्रव्य-इन्द्रिय।
2. जब **भाव-इन्द्रिय** आएगी तो उसमें ज्ञानावरण-कर्म के क्षयोपशम की मुख्य भूमिका होगी और ज्ञानावरण में भी कौन-से ज्ञानावरण-कर्म के क्षयोपशम से इन्द्रिय बनेगी? 5 ज्ञान हैं, 5 ज्ञानावरणी-कर्म हैं तो इन्द्रिय के लिए कौन-से ज्ञानावरण-कर्म का क्षयोपशम चाहिए? मति-ज्ञानावरण-कर्म का क्षयोपशम चाहिए।

इन्द्रियों की रचना कैसे होती है?



मतलब कि अन्तरंग में आत्मा के अन्दर वीर्यान्तराय-कर्म का क्षयोपशम हो, साथ में मति-ज्ञानावरण-कर्म का क्षयोपशम हो तब यह मतिज्ञान की प्रवृत्ति बनती है। इन्द्रिय बनी है, तो उस इन्द्रिय की उत्पत्ति के लिए या रचना के लिए शरीर-नाम-कर्म का भी उदय हो तो वह इन्द्रियों की रचना होती है। द्रव्य-इन्द्रिय और भाव-इन्द्रिय, इन दोनों प्रकार की इन्द्रियों में अगर हम देखें तो एक में तो कर्मों के उदय की अपेक्षा है और एक में कर्मों के क्षयोपशम की अपेक्षा है।

जो द्रव्य-इन्द्रिय है, वह तो शरीर-नाम-कर्म आदि के उदय से होगी और जो भाव-इन्द्रिय है, वह हमारे वीर्यान्तराय, ज्ञानावरण, स्पर्शन-इन्द्रियावरण, जो मतिज्ञान है, इसके क्षयोपशम से होगी। मतलब कि एकेन्द्रिय-जीव भी यदि एक इन्द्रिय को उपलब्ध हो रहा है, तो उसमें भी इतने कर्मों का क्षयोपशम होता है तब उसको एक इन्द्रिय उपलब्ध होती है। तब उसके अन्दर यह स्पर्शन-इन्द्रिय सम्बन्धी मतिज्ञान आता है। यह स्पर्शन-इन्द्रिय के माध्यम से स्पर्श को जाना जाता है। क्या किया जाता है? स्पर्श को जाना जाता है।

ज्ञानेन्द्रिय क्यों कहा?

अब आप थोड़ा-सा गहराई से देखते जाएँ। ज्ञान इन्द्रिय में आ रहा है, तो इन्द्रिय जान रही है कि आत्मा अपना ज्ञान इन्द्रिय में पहुँचा रहा है, तो आत्मा जान रही है। कौन जान रहा है? आत्मा ने इन्द्रियों की रचना की, इन्द्रियों में ज्ञान आया इसलिए हमने इनको ज्ञानेन्द्रिय कहा। स्पर्शन-इन्द्रिय जब उत्पन्न हुई तो स्पर्शन-इन्द्रिय के माध्यम से क्या जाना? स्पर्श को जाना।

- जिसके माध्यम से स्पर्श को जाना जाए- वह स्पर्शन-इन्द्रिय।
- जिसके माध्यम से रस को चखा जाये- वह रसना-इन्द्रिय।
- जिसके माध्यम से गन्ध को सूँघा जाए- वह घ्राण-इन्द्रिय।
- जिसके माध्यम से रूप को देखा जाए- वह चक्षु-इन्द्रिय और
- जिसके माध्यम से शब्द को सुना जाए- वह कर्ण-इन्द्रिय (श्रोतृ-इन्द्रिय)

इन्द्रिय जानने का एक माध्यम है



आत्मा इन्द्रियों के माध्यम से उसके विषय को जानता है सीधे नहीं

यह इन्द्रियों की परिभाषा क्या बताती है? कि इन्द्रियों के माध्यम से जाना जा रहा है। यह परिभाषा हमें क्या बता रही है? जिसके माध्यम से स्पर्श को जाना जाए, उसका नाम... स्पर्शन-इन्द्रिय। मतलब इन्द्रिय एक करण हो गया, जिसके माध्यम से जाना जाए। क्या हो गया? करण मतलब एक साधन हो गया। एक बीच में, इसको बोलते हैं- instrumental cause मतलब ऐसा साधन, जिसके through, जो ज्ञान हमारा ही है लेकिन हमें इसके माध्यम से वह ज्ञान करना पड़ता है। आत्मा का ही ज्ञान है, कर्म का क्षयोपशम आत्मा में हुआ

लेकिन उसी क्षयोपशम के कारण से आत्मा में इस इन्द्रिय की अधीनता आ गई। अब आत्मा स्पर्श को अगर जानेगा तो स्पर्शन-इन्द्रिय के माध्यम से जानेगा। रस को जानेगा तो रसना-इन्द्रिय के माध्यम से जानेगा। आत्मा रस को direct नहीं जान सकता।

यह आपको बहुत अच्छा भेद-ज्ञान बता रहा हूँ। भेद-ज्ञान तभी होगा जब आप इन्द्रियों की प्रवृत्ति और आत्मा में उपयोग की प्रवृत्ति, इन दोनों को अच्छे ढंग से समझेंगे। यह matter आपको meditation में भी काम आएगा। meditation में हमें क्या करना? वह तो बाद में बताएँगे। पहले आप यह जान लो कि जब हम बैठ गए और हमने कहा- आँखें बन्द करो, आपने आँखें बन्द कर ली। अब इसके आगे जो आपको करना होता है, वह आपकी knowledge पर depend करता है। अगर इस subject की knowledge आपको होगी तब तो वह आगे meditation का कोई process हो पाएगा और अगर नहीं है, तो meditation में knowledge तो नहीं दी जा सकती है, theory तो आपको अभी सीखनी पड़ेगी।

आत्मा को बाहर की जानकारी इन्द्रियाँ ही देती हैं



देखो! कितना बड़ा यह function है, जो इन्द्रियों के माध्यम से आत्मा से चल रहा है। इन्द्रियों ने एक बीच में mediator का काम किया, एक वह हमारे लिए medium बन गई। किसके लिए? बाहर की किसी भी चीज की जानकारी या ज्ञान के लिए। अब आप देखो कि मान लो नींबू रखा है। नींबू के स्वाद का खट्टापना! मैं जान रहा हूँ कि नींबू खट्टा होता है। हम तुरन्त बोल देते हैं- क्यों भाई! नींबू कैसा है? वह खट्टा है। आम कैसा है? मीठा है। यह आम कैसा है? यह खट्टा है। कैसे जाना? अरे! मैंने चख लिया...मैंने चख लिया। जब आपने बोला कि मैंने चख लिया तो अब आप यह सोचो कि यह चखने वाला "मैं" कौन है? मैंने चख लिया। किसने चख लिया भाई? मैंने मतलब? मुझे पता है इसका taste ऐसा है। इस चीज का स्पर्श soft है या hard है, hot है या cool है। यह मुझे पता है, मैंने जान लिया, मैंने इसको touch कर लिया। मैंने मतलब? यह किसी को पता नहीं होता।

दुनिया का कोई भी जीव इन्द्रियों में और मुझमें का अन्तर नहीं जानता

दुनिया में हर जीव इन्हीं इन्द्रियों से अपना काम ले रहा है। दुनिया में हर जीव इन्द्रियों के माध्यम से अपना बाहरी वस्तुओं का ज्ञान लेता है और किसी को यह पता नहीं होता कि इन इन्द्रियों में और मुझमें यानि 'मैं' में कोई अन्तर बीच में है कि नहीं, वे सब एकमेक होकर के चलता है। यानि त्मा मूल में है, ज्ञानावरण-कर्मों का क्षयोपशम है, उसके कारण से इन्द्रियों की रचना होना शुरु हुई। इन्द्रियों के लिए पुद्गल-कर्मों का आवरण, पुद्गल-कर्मों का बन्ध, पुद्गल-कर्मों के माध्यम से इन्द्रियों की रचना इकट्ठी होती गई और वह पुद्गल अब बीच में हमारे लिए इतना medium बन गया कि वही हमें रस का स्वाद दे रहा है...मतलब मैं कितना पराश्रित हो गया कि मैं direct नींबू को नहीं चख सकता।

ज्ञान आत्मा का है पर उसे सीधे नहीं होता

आप मेरी बात अभी भी नहीं समझ पा रहे होंगे। हो सकता है आप तो चख रहे हो, मैं नहीं चख सकता, ऐसा समझ लो पहले। मुझे ऐसा लगता है कि मैं direct नींबू को नहीं चख सकता। अब मुझे यह सोचने में आता है कि जब यह ज्ञान मेरा है, आत्मा में क्षयोपशम मेरा है, तो मुझे अपने ज्ञान से यह नींबू direct क्यों नहीं चखने में आ रहा है? यह बीच में जीभ क्यों आ जाती है? इस पर रखे बिना आत्मा को उसकी knowledge नहीं होती है? ऐसा क्यों? जब आप यह जानोगे तभी आपको भीतर से लगेगा कि मेरी ही आत्मा का ज्ञान है, मेरी ही आत्मा का अपना क्षयोपशम है, मेरी ही आत्मा में जानने की इच्छा है और मेरी ही आत्मा जानने की क्रिया कर रही है, सब कुछ मैं ही कर रहा हूँ। लेकिन देखो आप! किसी-भी पदार्थ का direct contact उस आत्मा से नहीं होता।

Meditation में क्या-क्या किया जा सकता है?



यह भेद-विज्ञान बता रहा हूँ। किसी भी पदार्थ का direct contact किसी भी इन्द्रिय के माध्यम से ही होकर के जाता है और वह indirect हो गया। फिर वह direct कहाँ रहा? समझ आ रहा है? पुद्गल वह भी है, पुद्गल यह भी है और पुद्गल का पुद्गल से सम्बन्ध हो रहा है और पुद्गल का ज्ञान पुद्गल के माध्यम से हो रहा है और करने वाला चैतन्य आत्मा है। बताओ आप! कैसे आप के लिए ध्यान करना कठिन हो जाता है? अगर आप कुछ भी न जानते हो और

ध्यान में केवल बस आप बैठ जाएँ तो बस आप यही देखते रहें कि

- **हमारा उपयोग क्या कर रहा है?**
- इन्द्रियों के माध्यम से हमको किन-किन चीजों का ज्ञान हो रहा है? और

मन के माध्यम से हमें कौन-कौन-सी वस्तुओं का ज्ञान किस तरह के विचारों से आ रहा है?

अगर आप इन तीन चीजों की theory जानते होंगे तो आप meditation में बैठे-बैठे, यही देखते-देखते भी बहुत सारे time तक meditation कर सकते हो। महाराज meditation में क्या करना पड़ता है? करना कुछ नहीं पड़ता। जो जान रहा है, जिसके द्वारा जाना जा रहा है या जो जान कर के खुद और ज्यादा याद कर रहा है या अपनी जानकारी कहीं से कहीं तक ले जा रहा है, उस सबको वह अलग-अलग देखता रहता है। यह इन्द्रिय के ज्ञान से जाना जा रहा है, यह मन के माध्यम से जाना जा रहा है और यह हमारे उपयोग स्वभाव के माध्यम से हमें उपयोग में अनुभव में आ रहा है।

चक्षु से ही विषय का ज्ञान आत्मा को direct होता है



स्पर्शन-इन्द्रिय का भी आपको स्पर्शन direct नहीं होता। स्पर्शन-इन्द्रिय-जन्य ज्ञान भी आपको स्पर्शन-इन्द्रिय के माध्यम से होगा। अब देखो! मैं थोड़ा-सा अलग तरीके से सोच कर बता रहा हूँ कि कोई भी आत्मा पदार्थ को direct न तो चखती है, न सूँघती है, न स्पर्श करती है और न सुनती है। एक देखने के काम को छोड़कर। कौन-से काम को? कोई कितना ही बड़ा ज्ञानी हो जाए, अवधिज्ञानी हो या मन:पर्यय ज्ञानी हो, even केवलज्ञानी भी हो तो उन्हें भी पदार्थ का स्वाद नहीं पता होता। उन्हें भी पदार्थ का स्वाद कोई direct जानने में नहीं आता, पदार्थ के स्वाद का ज्ञान उन्हें तो इसलिए भी नहीं हो सकता क्योंकि उनकी इन्द्रियाँ तो अपने

से भी ज्यादा काम करना ही बन्द कर दी हैं। उनकी तो इन्द्रियाँ कोई काम कर ही नहीं रही। उनकी द्रव्य-इन्द्रियों ने अन्तरंग से अपना सम्बन्ध cut-off कर लिया है। भाव-इन्द्रिय का कोई काम बचा नहीं क्योंकि ज्ञान के क्षयोपशम के साथ भाव-इन्द्रिय काम करती थी, वह भी क्षय को प्राप्त हो गया, अब तो ज्ञान भी क्षायिक हो गया। अब देखो! न तो मतिज्ञान वालों को कोई direct किसी-भी प्रकार के स्पर्श, रस का ज्ञान हो रहा, न श्रुतज्ञान वालों को हो रहा, न अवधिज्ञान वालों को हो रहा है, न मन:पर्यय ज्ञान वालों को हो रहा। even केवलज्ञान वालों को भी नहीं हो रहा। कौन-कौन-सी इन्द्रियों का ज्ञान? स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोतृ इन 4 इन्द्रियों के विषय का ज्ञान किसी को भी direct नहीं होता।

4 इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान सभी को मतिज्ञान से ही होता है

बस! चक्षु-इन्द्रिय का जो विषय है, वह जैसे हमें आँख से दिखाई देता है वैसे केवलज्ञानी को direct अपनी आत्मा से, अवधि-मन:पर्यय ज्ञानियों को भी direct अपनी आत्मा से दिखाई देगा। समझ में आ रहा है? समझो आप! संसार के सभी पदार्थों में, जिनमें रस हैं, गन्ध हैं, स्पर्श है, शब्द हैं, इन सबको मतिज्ञान के माध्यम से ही जाना जाता है और मतिज्ञान के माध्यम से ही हम बाहरी इन इन्द्रियों के उपयोग को कर पाते हैं। यह मति-ज्ञानावरण-कर्म के क्षयोपशम का यह परिणाम है, यह लाभ है। इन्द्रिय से direct इसका सम्बन्ध नहीं होता मतलब कि स्पर्शन-इन्द्रिय, रसना-इन्द्रिय...ये जो इन्द्रियाँ हैं, ये इन्द्रियाँ आगे की भी सभी इन्द्रियों के साथ में कोई भी अपने विषय को direct आत्मा तक नहीं पहुँचा रही है, बीच में इन इन्द्रियों का माध्यम लेना जरूरी है।

स्वाद इन्द्रिय लेती है और जानकारी आत्मा को होती है



स्वाद हम लेंगे, आप केवल जानकारी लेंगे। नहीं समझ आ रहा है? स्वाद हम लेंगे, आप केवल, यह कौन कह रहा है? मैं नहीं कह रहा हूँ, स्वाद हम लेंगे, आप केवल जानकारी लेंगे। यह कौन कह रहा है? यह इन्द्रिय कह रही है। स्वाद हम लेंगे, आप केवल जानकारी लेंगे। खट्टा है, मीठा है, कड़वा है, यह स्वाद लेंगे हम...हम मतलब 'मैं'...मैं मतलब अब देखो आप 'मैं' को differentiate करो। कब? 'मैं' कौन कहलाता है? अभी यह 'मैं' कौन कह रहा है? अभी यह 'इन्द्रिय' कह रही है। स्वाद मैं लूँगी, आपको जानकारी forward कर दूँगी। यह sweet है, यह sour है, यह bitter है, यह आपको जानकारी बाद में forward कर दी जाएगी, स्वाद पहले मैं लूँगी।

आत्मा का काम केवल जानना है

आत्मा केवल जानती है...यह मुलायम है, चिकना है, कोई भी चीज है, यह स्पर्शन-इन्द्रिय ज्ञान ले रही है लेकिन आत्मा केवल जान रही है। अब आप देखो! आत्मा का काम क्या है?

केवल जानना ही तो है। आत्मा का काम केवल कितना रह गया? जानना बस! उसे बस बता दो। अगर कभी उसके लिए ऐसा लगने लग जाए कि यह चीज हमारे स्पर्श में नहीं आ रही या इसका स्वाद हमें नहीं आ रहा या हमें इसकी गन्ध महसूस नहीं हो रही तो आत्मा तड़पेगी कि इन्द्रिय तड़पेगी? अब बताओ? अब कौन तड़पेगा? अब मैं, अब 'मैं' मतलब कौन हो गया? अब 'मैं' मतलब हो गया 'आत्मा'। मुझे सूँघने में नहीं आ रहा, कहीं कोरोना तो नहीं हो गया! यह भी एक कोरोना का लक्षण है। करेला खा रहा हूँ तो, रसगुल्ला खा रहा हूँ तो, कुछ taste ही समझ नहीं आ रहा, यह भी एक कोरोना का लक्षण है। यह चिन्ता इन्द्रिय को नहीं है। नहीं समझ आ रहा? अब यह चिन्ता किसको? यह 'आत्मा' को है। मतलब कि ज्ञान देना, ज्ञान लेना, ज्ञान का माध्यम बनाना, सब काम आत्मा का है और हम सोचते हैं कि रस हमने खाया, रस हमने पीया और पीने वाला कौन? चखने वाला कौन? आत्मा में कोई रस गया क्या? आत्मा ने तो कितना? रस बहुत अच्छा था, ठण्डा था, मीठा था, मजा आ गया। बस! यह काम किसने किया? यह सोच-विचार किसका? यह आत्मा का।

इन्द्रिय अचेतन नहीं है क्योंकि वह ज्ञान इन्द्रिय है

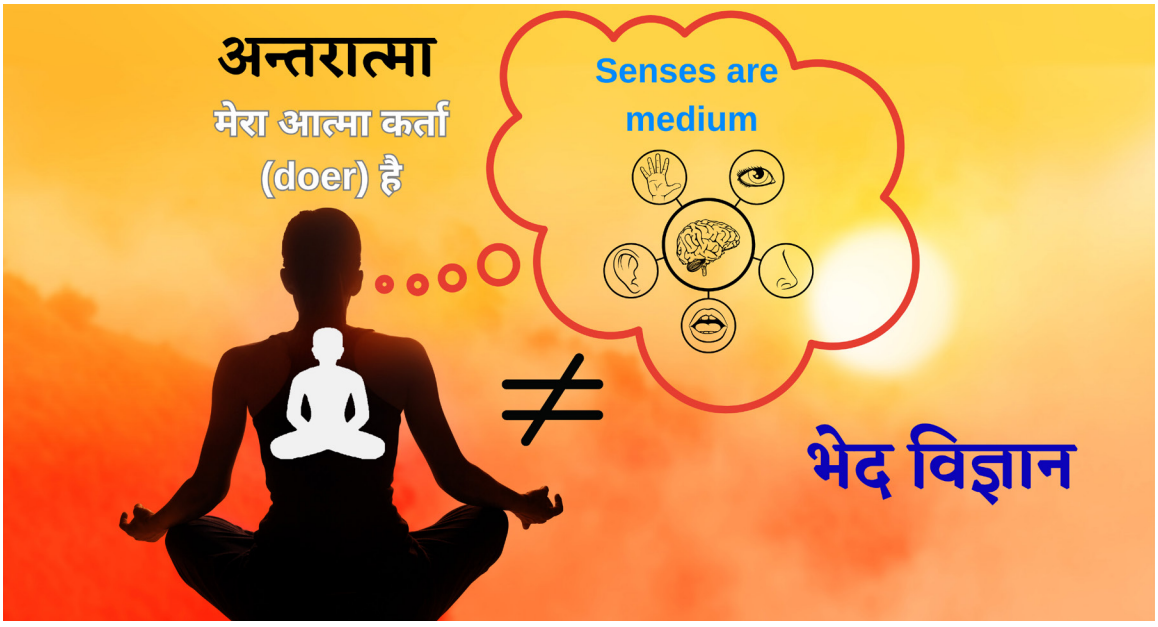


जबकि रस चखने का काम उस इन्द्रिय का, वह इन्द्रिय भी अचेतन नहीं है क्योंकि वह ज्ञान-इन्द्रिय है, उसको ज्ञान हमने दे दिया। समझ आ रहा है? वह इन्द्रिय भी अपने ज्ञान से अपनी जानकारी को फिर हमारे लिए forward करती है। आप चिन्ता नहीं करो, हमने चख लिया है, बढ़िया है। ऐसा कभी विचार आता है? आप क्या बोलते हो? 'मैंने चख लिया', अब 'मैंने' मतलब आप क्या बोलते हो? 'मैंने' मतलब 'मैं' मतलब 'मेरी आत्मा' ने चख लिया। कभी

आपको ऐसा differentiate करना आता है कि मैंने चख नहीं लिया, चखा तो यह इन्द्रिय ने था। इसने मुझे चख कर के फिर अपनी knowledge मेरे पास पहुँचा दी। यह मैंने इसको knowledge दी थी कि तू चखती रहना और फिर उसने ही मुझे फिर वह knowledge reverse करके दे दी। हाँ! मैंने चख लिया, तुम जान लो, वह खट्टा है, वह मीठा है। ऐसे कभी महसूस करने में आता है? खाते-जाते, दिन-भर खाते हो, रात-भर खाते हो, कभी कुछ महसूस नहीं करते! यह सूत्र हमें कुछ ऐसा ही ज्ञान देते हैं। अब आपने तत्त्वार्थ सूत्र पढ़ा तो कई बार होगा लेकिन आपने कभी-भी इस तरह से इन्द्रिय-ज्ञान को समझा नहीं होगा, यह मैं definitely कह सकता हूँ क्योंकि यह चीज भी मैं भी शायद पहली-बार ही आपको बता रहा हूँ।

इन्द्रिय हमारे लिये कर्ता है या करण है?

जब तक हम इन्द्रियों का इस तरह से विवक्षा के अनुसार उसका व्यवहार नहीं देखेंगे कि यह इन्द्रिय हमारे लिए कर्ता है कि करण है? क्या है? इन्द्रिय कर्ता हो जाएगी तो फिर आत्मा और इन्द्रिय एक हो गए तो इन्द्रिय कर्ता हुई। जब आप कहते हो- 'मैंने चख लिया' इसका मतलब



है...आपने अपनी आत्मा को और अपनी इन्द्रिय को, दोनों को एक मिलाकर के कर्ता बना लिया। अब आपको कर्ता नहीं बनाना है। अगर कर्ता बनाते रहोगे तब तक तो फिर आप एक तरह से कहना चाहिए...कर्तृत्व बुद्धि इन इन्द्रियों में रखे रहोगे, आप मूढ़ बने रहोगे। मूढ़ किसे कहा जाता है? मिथ्यादृष्टि- जो अपनी आत्मा और अपनी इन्द्रियों को एक माने, वही बहिरात्मा है।

बहिरात्मा से अन्तरात्मा कैसे बने?

अब अन्तरात्मा बनना है, तो क्या करना? अपनी आत्मा और अपनी इन्द्रिय के बीच में एक difference create करना और वह difference कैसे आएगा? यह सोचना कि आत्मा तो कर्ता है, doer है, subject तो आत्मा ही है लेकिन उसकी knowledge के लिए इन्द्रियाँ जो हैं, senses are medium. ये क्या हैं? यह medium है। अगर आप इतना-सा difference ले आओगे अपनी knowledge में तो आप बहिरात्मा से अन्तरात्मा बन जाओगे...अन्तरप्पा! अन्तरप्पाओं के लिए यह practice होनी चाहिए। क्या समझ आ रहा है? इसमें कुछ लग नहीं रहा है, आप सिर्फ बैठ कर के अपने अन्दर सिर्फ यह महसूस करो कि मैं जितनी देर meditation करूँगा, अर्हं-meditation, उतनी देर में इन्द्रियों को, अभी तक जो कर्ता मान कर चल रहा था...मैंने चखा, मैंने छुआ, मैंने सुना, मैंने देखा, मैंने सूँघा, यह मैं जो अभी तक अपने आप को मैं मतलब 'मैं' और 'इन्द्रिय' दोनों को एक मानकर के, जो मैं कर्ता मान रहा था, अब मैं थोड़ी देर के लिए meditation में क्या करूँगा? मैं को अलग करूँगा, इन्द्रियों को अलग करूँगा और उनके जो objects हैं, उनको अलग रखूँगा।

ऐसे meditation की practice हमें औरों को भी कराना चाहिए

अगर आप यह करते रहे तो आप बहिरात्मा से अन्तरात्मा बन जाओगे। अन्तरप्पा की practice ऐसे ही कराई जाती है और ऐसे ही करना चाहिए। ऐसा ही हमें लोगों के लिए सिखाना भी चाहिए कि आप meditation में क्या करो? कुछ नहीं करो! आपके पास 5 senses हैं। बस! आप इनको अपना medium बना करके इनके साथ में अपना direct जो contact हैं, उसको जो है थोड़ा-सा अपने से अलग करो। ठीक है न! यह जो आप meditation में करोगे तो उस समय आपको लगेगा, उपयोग-स्वभाव वाला जो जीव आत्मा है, वह उपयोग तो अलग चीज है, ये इन्द्रियाँ अलग चीज है और उसके साथ में जो इन्द्रियों के object हैं, वे अलग हैं। ये क्या हैं? जो आगे के सूत्र बताए जा रहे हैं-

स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्तदर्थाः ॥ 2.20 ॥

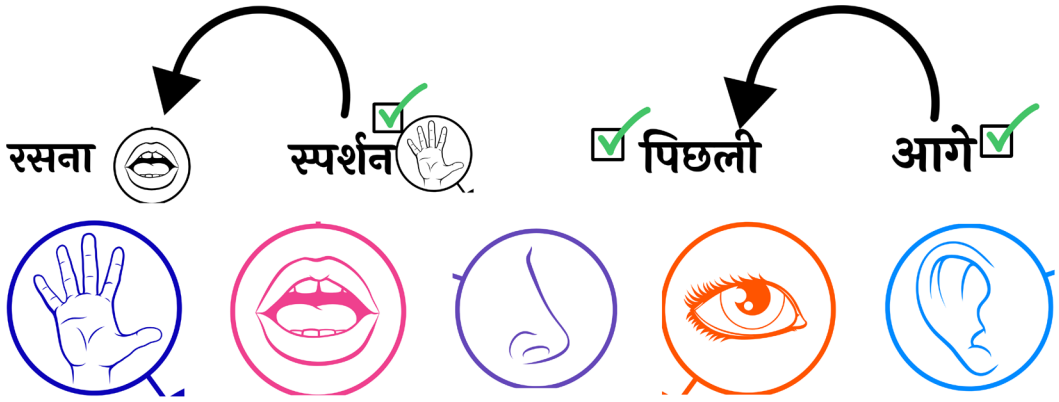
गंध रूप स्पर्श रस, शब्द विषय हैं जान।
क्रम से इन्द्रिय के कहे, निज निज शक्ति प्रमाण॥ 2.20॥

'तदर्थाः' तत् अर्थात् उन इन्द्रियों के, 'अर्थ' अर्थात् विषय; उन इन्द्रियों के ये अपने-अपने अलग-अलग objects हैं।

स्पर्श और स्पर्शन में अन्तर

स्पर्शन-इन्द्रिय है और उसका जो object वह क्या है? स्पर्श है। अब देखो! दोनों में अन्तर समझ रहे हो! स्पर्शन तो इन्द्रिय है, जो हमारे पास में है, यह ज्ञान की इन्द्रिय, यह क्या है? स्पर्शन और स्पर्श क्या है? जो हमारे पास ही book है, यह कपड़ा है, इसको जो हम touch कर रहे हैं, यह स्पर्श है। इसमें जो स्पर्श है, इसके स्पर्श का ज्ञान हमें (आत्मा को) इस स्पर्शन-इन्द्रिय के माध्यम से हो रहा है। रसना-इन्द्रिय है और रस! रस कहाँ है? रस नींबू में है, रसगुल्ले में है, उसके रस का ज्ञान रसना-इन्द्रिय कर रही है और फिर मैं यह जान रहा हूँ कि मैंने उसका रस ले लिया। मैंने क्या मान लिया? मैंने उसका रस ग्रहण कर लिया मतलब मैंने नींबू पी लिया, मैंने रस खा लिया। जबकि किया किसने? वास्तव में वह सब काम करने वाली बीच में जो इन्द्रिय है, वह रसना-इन्द्रिय का सब ज्ञान है, वह उसी का काम है।

इन्द्रियाँ क्रम-क्रम से मिलती है



स्पर्शन, रसना, घ्राण,चक्षु,श्रोतृ-इन्द्रिय

यह भी जानो! रसना तो इन्द्रिय है और रस उसका विषय है, object है। ऐसे ही घ्राण-इन्द्रिय का गन्ध, चक्षु-इन्द्रिय का वर्ण, किसी भी तरह का कोई भी वर्ण मतलब colour कोई भी और श्रोतृ-इन्द्रिय का शब्द। यह शब्द किसका विषय है? यह श्रोतृ-इन्द्रिय का यह विषय है। ये सब इन्द्रियाँ क्रम-क्रम-से ही हम को मिलती हैं, इसलिए इनको इसी order में लिखा हुआ है। बीच में से कोई भी अलग से नहीं मिल जाएगी और आगे वाली इन्द्रिय यदि है, तो पिछली वाली होगी ही, यह भी जानना। 'स्पर्शन-रसन' रसना है, तो स्पर्शन भी होगी ही। घ्राण है, तो स्पर्शन, रसना दोनों इन्द्रिय होंगी ही। चक्षु है, तो स्पर्शन, रसना, घ्राण तीनों इन्द्रिय होंगी ही और श्रोतृ-इन्द्रिय है, तो स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु ये चारों इन्द्रिय होंगी ही, इसीलिए यह

order है। इसी के ये सब विषय बताये हैं कि ये क्रम-क्रम से इनके विषय हैं।

एक कर्ता, एक करण और एक कर्म का सिद्धान्त

अब यह ध्यान रखना कि स्पर्श और स्पर्शन में कितना अन्तर हो गया? स्पर्श क्या हो गया? स्पर्श तो किसी भी matter का उसके अन्दर की जो quality है, जो metalastic चीज है, पौद्गलिक चीज है, 'स्पर्श' उसके अन्दर का वह गुण है...'स्पर्शन' यह हमारी sense है, touch-sense, जिसके माध्यम से हम उस स्पर्श की जानकारी ले रहे हैं और जानकारी लेने वाला आत्मा, वह उसका कर्ता है। अतः एक कर्ता, एक करण और एक कर्म। sentence तो तभी बनते हैं न! subject भी हो गया, object भी हो गया और बीच में उसके लिए कोई भी helping verb, उसको करण मान लो। नहीं समझ आया? इसके बिना कहाँ वाक्य पूरा होगा? अब क्या समझ में आएगा कर्ता कहने से? मैंने स्पर्श को स्पर्शन-इन्द्रिय से जाना। क्या बनेगा वाक्य? 'मैंने स्पर्श को स्पर्शन इन्द्रिय से जाना।' क्या बनेगी इसकी english? बोलो? I know touch by touch sense. इस तरह से जब आपकी knowledge में आएगा तब आपको हर चीज बिल्कुल clear होगी।

इन्द्रियों से भी हम meditation कर सकते हैं



इन सिद्धान्तों को कहीं पर कभी apply तो करो। सबको ऐसा लगता होगा, यह तो मैंने बचपन से पढ़ रखा है और न जाने कितनों ने अपने बच्चों को पढ़ा रखा है कि 5 इन्द्रियाँ होती है- स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोतृ।

सब रटा देते हैं, सब बोल देते हैं लेकिन कभी आपने इस तरह का कोई practical नहीं किया कि इन्द्रियों से भी हम meditation कर सकते हैं और भाई करोगे क्यों नहीं? जो अपने पास है, उसी का तो meditation में use करना है। उसी को object बनाओ, subject उसी को देखो, कौन है करने वाला? object उसी को बनाओ, जिसके लिए हम कर रहे हैं और जो जितनी उसकी बाहर की चीजें हैं, उनको बस जानो कि यह इस object के लिए helpful हैं, बस इतना ही है। आप के लिए इस तरह से जब ये 5 इन्द्रिय का ज्ञान आएगा तब आपको भीतर से लगेगा कि कर्ता, कर्म और करण, इन तीनों में जो अन्तर होता है, वही अन्तर हमारा इन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय में है। इतना याद रखना है आप लोगों को और इसी को आप meditation का एक रूप देना। अन्तरप्पा बनने की process यहीं से शुरू होगी।

meditation में बाहरी चीजें याद आये तो क्या करना चाहिए?



आपने मान लो T.V. में, mobile में कोई चीज देखी तो अब आपको उससे अपने को disconnect करना है। मान लो आपने कुछ ऐसा भी देखा कि आप नहीं देखना चाहते थे लेकिन आपने देख लिया। अब आप क्या करोगे? अब आप अपने पास जितना आओगे, उतना ही उस object से दूरी बनेगी, उसका एक ही साधन है। तब आपको क्या सोचना है? मैंने नेत्र-इन्द्रिय से वह वस्तु देखी, मैंने नेत्र-इन्द्रिय से वह वस्तु देखी। अब अगर मान लो वह वस्तु आपको meditation में भी याद आ रही है, आपने कुछ भी आपने देखा है, जाना है, बाहर की कोई भी चीजें आपको सब meditation में याद आ रही है, तो अब आप क्या करो? अब आप एकदम से उसको घबरा जाओगे कि यह मुझे क्या स्मृति आ रही है? यह मुझे क्या-क्या याद आ रहा है? मैं तो meditation करने बैठा था और मुझे न जाने क्या-क्या याद आ रहा है? क्या-क्या दिख रहा है? कई लोगों को problem होती है। आपको कुछ नहीं करना है, आपको उस समय पर भी अपने अन्दर यही देखना है कि आपको क्या दिख रहा है? जो दिख रहा है, उसे आप सिर्फ इतना देखो, मैंने नेत्र-इन्द्रिय से वह पदार्थ देखा था तो आपको तीन चीजें सामने होंगी, मैंने नेत्र इन्द्रिय से देखा था।

सूत्रों से ध्यान में साक्षी बनने की प्रक्रिया

अब जो आप देख रहे हो, अब आपकी नेत्र-इन्द्रिय बन्द है, तो अब आपको क्या सोचना है? अब यह नेत्र-इन्द्रिय बन्द है लेकिन नेत्र-इन्द्रिय से जो हमने पदार्थ देखा था, वह मुझे दिखाई दे रहा है, वह मुझे जानने में आ रहा है। लेकिन न तो वह पदार्थ मेरे सामने है, न तो नेत्र-इन्द्रिय का काम मेरे सामने है, मेरे सामने तो केवल मैं हूँ। इतना आप अगर विचार करोगे तो आपके सामने से वह object धीरे-धीरे गायब होते चले जाएँगे। साक्षी बनने की प्रक्रिया इसी ज्ञान के साथ होती है। केवल श्वासें गिनने से कुछ नहीं होगा। इन सूत्रों को ध्यान में उपयोग में लाया जाए, ऐसा मेरा विचार है। अब आगे आचार्य कहते हैं...

श्रुत-मनिन्द्रियस्य ॥ 2. 21 ॥

श्रुतम् + अनिन्द्रियस्य

मन का कारज मुख्य है, श्रुत वा श्रुत का ज्ञान।
इस कारज में होत ना, अक्ष सहायी जान॥ 2.21॥

क्या लिखा हैं? 'श्रुतम' ऐसा नहीं पढ़ना। 'श्रुत-मनिन्द्रियस्य' अब यहाँ देखो! यह बहुत अच्छा सूत्र है- अनिन्द्रिय मतलब होता है- मन। इन्द्रियों के विषय बता दिए, स्पर्शन-इन्द्रिय का विषय स्पर्श है, इत्यादि, सब इन्द्रियों के विषय हो गए। अब मन का भी तो कोई विषय होता है कि नहीं होता?

श्रुतज्ञान हमारे मन का विषय है



मन किसको पकड़ता है? मन का object क्या होता है? आचार्य कहते हैं- श्रुत। श्रुत अर्थात् सुना हुआ नहीं, श्रुत का मतलब जो श्रुतज्ञान है, जो भीतर हमारे श्रुतज्ञान चल रहा है, वह मन का विषय है। क्या समझ आया? हमने इन्द्रियों के माध्यम से किसी चीज को ग्रहण कर लिया, उसके बाद भी हमारे अन्दर जो ज्ञान चलता रहता है, वह श्रुतज्ञान है। जो हमें कहीं से कहीं ले जाता है। इन्द्रियों से तो आप केवल किसी भी पदार्थ को देखकर के केवल उसकी knowledge लेते हो, उसी पदार्थ की और आपके अन्दर memory में वह चीज डली होगी तो वह आ जाएगी कि हाँ! यह है। जैसे- मान लो कोई नया व्यक्ति आया। आपने उस नए व्यक्ति को देखकर के आपका मतिज्ञान काम करा...यह नया व्यक्ति है लेकिन इस व्यक्ति को मैंने पहले देखा था या मैं जानता हूँ तो एकदम से आपको याद आ गया। हाँ! यह व्यक्ति दिल्ली से आया। यह क्या हो गया? यह हो गया मतिज्ञान और आपको उसके बारे में जो भी जानकारी है, यह इसकी family का है, ये इनके बच्चे हैं, ये है, वह है, ये सब आपको जो स्मृति में पड़ा है, वह सब आपको आ गया। यह सब क्या कहलाया? यह भी सब मतिज्ञान है। यह सब क्या है? मतिज्ञान। अब देखो! जो व्यक्ति आपके सामने आकर के बैठा, आपको उसके बारे में सब पता था, स्मृति में जितना था, वह सब आपके ज्ञान में आ गया, मति भी, वही मतिज्ञान भी उसी के साथ चल रहा है, स्मृति भी मतिज्ञान है।

श्रुत ज्ञान क्या है?



श्रुतज्ञान - जो है सामने उसको छोड़कर के इसके अलावा सोचना, यह यहाँ क्यों आया? इनका यहाँ आना हुआ होगा, यहाँ से आया होगा, इस काम से आया होगा। यह सब जो सोचना है, यह हो जाता है- श्रुतज्ञान क्योंकि यह तो आप की स्मृति में कुछ है ही नहीं। यह तो आप जो उससे अलग सोच रहे हो, इसको बोलते हैं- अर्थ से अर्थान्तर का ज्ञान। क्या सोच रहे हो? अर्थ से, अर्थ मतलब जो पदार्थ सामने है, जो व्यक्ति सामने है, उसके अलावा अब दूसरे पदार्थ का आपको ज्ञान हो रहा है। हाँ! यह यहाँ हस्तिनापुर यात्रा पर आया होगा तो सोचा होगा...चलो! महाराज के दर्शन करने आ जाएँ तो इसलिए यहाँ आया होगा या वहलना आया होगा तो चलो! महाराज पास में है, तो चलो दर्शन करने आ जाएँ। अभी उसने कुछ बताया नहीं आपको लेकिन आपने अपने मन से सोच लिया या इसका यहाँ पर इस तरह का कोई काम होगा, उस काम के कारण से यह दर्शन करने आया होगा। यह जो आपके अन्दर अर्थ से अर्थान्तर का ज्ञान हो रहा है, यह कहलाता है- श्रुतज्ञान, यह मन का काम है। अब जब आप meditation करने बैठोगे तो सबसे ज्यादा परेशानी किससे होती है? मतिज्ञान से होती है कि श्रुतज्ञान से होती है? मतिज्ञान की परेशानी तो थोड़ी है लेकिन श्रुतज्ञान की परेशानी ज्यादा है।

ध्यान यदि होता है, तो श्रुतज्ञान से ही होता है

यह भी बताया गया है, जब आप आगे नौवाँ अध्याय पढ़ोगे तो यह भी आपको बताया जाएगा कि ध्यान यदि होता है, तो श्रुतज्ञान से ही होता है। मतलब जो चीज आपके लिए आपको किसी भी तरीके से disturb करने के काम में आ रही है, वही चीज आपको concentrate करने के भी काम में आएगी। बस! आपको knowledge होनी चाहिए कि इसको कैसे काम में लेना? मन का विषय श्रुतज्ञान है, तो श्रुतज्ञान के माध्यम से जो आपने देखा था, उतना ही नहीं दिखता। उससे भी ज्यादा आप जो सोच रहे हो, वह क्या हो गया? वह श्रुतज्ञान। जिसे आप बोलते हो...अपने मन की उड़ान। मन क्षण भर में, कोई चीज आप देख यहाँ रहे हो और उसकी कल्पना कर रहे हो किसी दूसरे पर्वत पर या किसी दूसरी नदी पर, यह किसका काम? यह श्रुतज्ञान का काम। जो आपके लिए एक शब्द सुनाई पड़ा और उस शब्द से आपने वहाँ की तमाम कल्पनाएँ कर डाली, भले ही आप वहाँ कभी पर गए थे, न कुछ जाना था लेकिन जो आपके पास में इतनी knowledge थी, उससे भी कई गुना आप आगे बढ़कर के उसके बारे में सोचने लग गए, यह कहलाता है- श्रुतज्ञान।

मन से मन हल्का भी होता है और भारी भी



यह काम मन का है। अब मन तो मिल गया है, अब मन से खतरा भी है और मन से बहुत बड़ा ध्यान भी होता है। मन से मन हल्का भी होता है, कर्म हल्के भी होते हैं और मन से मन भारी भी होता है, दोनों ही काम है। किसी को कोरोना हो रहा है, किसी के कोई रिश्तेदार हैं, किसी के आसपास के पड़ोसी हैं। देख रहे हैं...अरे! यह भी मर गया कोरोना से, अरे! इसको भी कोरोना हो गया। अरे! ये इतने रिश्तेदारों को हो गया, फिर एक खबर आ गई इनको भी हो गया। अब तो अगर आपको डर न लगता हो तो लगने लग जाएगा। मन का काम क्या? अब मन आप से क्या कह रहा है? आप देख रहे हो दूसरे को मरते हुए लेकिन मन आपका क्या कह रहा है? कहीं ऐसा ही मेरे साथ भी हो गया तो! बस! इतना-सा सोचा और मन के ऊपर क्या आ गया? वह जो बाहर की चीजें उनका pressure मन के ऊपर आने लग गया। जब वह pressure आया तो बस सिर्फ मन दबाव में आ गया। उसी का नाम हो गया अब वह depressed हो गया।

मन ही मन को depression से निकलता है

जो outer-circumstances बन रही हैं, उन्हीं का pressure पहले मन ने अपने ऊपर डाल लिया और उसके कारण से फिर मन जो है घबरा गया। घबरा गया तो अब क्या है? वह pressure से डर गया, घबरा गया तो उसी pressure के कारण से, वह क्या हो गया? depressed हो गया। अब मन को अगर उस depression से उभारना है, तो मन से ही उभारा जाएगा। मन ही आपको उस दुविधा से निकालेगा तो आपके लिए इतनी जानकारी

होनी चाहिए कि किसी भी बाहरी चीज का ज्ञान हमारे मन के ऊपर किसी भी तरह का दबाव न बनाए।

मन के ऊपर किसी भी तरह का दबाव न बनाये

किसी भी बाहरी परिस्थिति का ज्ञान हमारे मन के ऊपर इतना हावी न हो, इसलिए आप अच्छी चीजों की जानकारी ले, अच्छी चीजें सुने, अच्छी चीजों को देखें, जिससे कि आपके मन में किसी तरह का pressure न हो...प्रसन्नता हो। समझ में आ रहा है? जब यह होगा तो मन जिन चीजों से डरता था, उन्हीं का वह ध्यान भी करेगा और उससे निश्चिन्त भी होगा। ये दोनों चीजें सम्भव है, मन खतरे का भी काम करता है और जिनका मन खतरे का काम करने लग जाता है, तो फिर उनके लिए उनका मन ही खतरा बन जाता है। देखो आप! जिसका मन depressed हो गया मतलब वे बीमारियाँ सारी की सारी पूरे शरीर में आ गई और मन अगर खराब हो गया तो अच्छा-खासा, चलता-फिरता आदमी, हट्टा-कट्टा आदमी भी फिर कोई काम नहीं कर सकता। फिर वह कुछ नहीं कर सकता, गया वह काम से! फिर क्या करना? मन को किसी भी तरह के खतरे सामने दिखाई दे तो उससे उस मन को बचाना। कैसे बचाना?



बाहर की बातों को मन के लिए खतरा न बनने दे

आप अपनी भावनाओं से, अपने ज्ञान से, अपने meditation से और अपने अन्तरंग में अपनी आत्मा के विश्वास से, आप उन चीजों से मन को बचाओ। जो हमारे पास है, बस! उसी को महसूस करो। बाहर की चीज को भीतर इतना महसूस मत करो कि वह मन के लिए ही खतरा बन जाए। जो हमारे पास है उसको महसूस करो, हमारे पास क्या है? 5 इन्द्रियाँ हैं, मन है। 'श्रुतमनिन्द्रियस्य' श्रुतज्ञान मन का विषय है, हमें श्रुतज्ञान को ही लेना है। जो हमारा

श्रुतज्ञान इधर-उधर काम कर रहा है, वह वाला श्रुतज्ञान नहीं लेना। अब हमें इससे परेशानी होती है, तो हम कौन-सा श्रुतज्ञान ले? यह जो जिनवाणी है, यह तत्त्वार्थ-सूत्र सुन रहे हो, इसको भी श्रुतज्ञान कहते हैं, यह भी श्रुतज्ञान है। बोले...इसका चिन्तन करो। 5 इन्द्रियों का महाराज ने आज क्या बताया था? उसका चिन्तन करो।

तत्त्वार्थ सूत्र, द्रव्य संग्रह आदि सुनना भी श्रुतज्ञान है



5 प्रकार के भावों के बारे में बताया था, उसका चिन्तन करो। 5 प्रकार के स्थावर-जीव होते हैं, उनका चिन्तन करो और सोचो 5 क्या-क्या होता है? पाँच ही पाँच का चिन्तन करते रहो तो उससे क्या होगा? मन बाहर की चीजों से परेशान नहीं होगा और मन के अन्दर ज्ञान बढ़ेगा तो यही श्रुतज्ञान मन की रक्षा करेगा और अगर यह श्रुतज्ञान इसका आपने आलम्बन नहीं लिया तो दुनिया का जो श्रुतज्ञान आपके अन्दर आ रहा है, वह आपको खतरे में डाल देगा।

मन का object तत्त्वार्थ सूत्र को भी बना सकते हो और जो बाहर की दुनिया की जानकारी आपके mobile पर आ रही है, इतने संक्रमित हो गये, इतने मर गये, आज इतना हो गया, यह हो गया, वह हो गया, यह भी आप के लिए जानकारी है। यह भी श्रुतज्ञान आपको खतरे में डाल सकता है। श्रुतज्ञान तो सब जगह काम कर रहा है, तो आपको क्या सोचना है? हमें कभी-भी अगर इस तरह के कोई-भी मन में खतरे महसूस हो, हम अपने आपको उससे cut-off करे। उससे यह न सोचे कि हम उस परिस्थिति के बारे में अगर हम नहीं जावेंगे तो क्या होगा? उसके

कारण से फिर हमको नुकसान होगा, कुछ नहीं होगा।

जिनवाणी से अपने को बाहर से cut-off करें



आप पहले अपने को सुरक्षित बनाए, अपनी इन्द्रियों और इन्द्रिय के विषयों को, मन और मन के विषयों को, अपनी आत्मा से अलग-अलग जान करके अपने मन को इस तरह के श्रुतज्ञान में लगाने की कोशिश करे। द्रव्य-संग्रह, तत्त्वार्थ-सूत्र, रत्नकरण्ड-श्रावकाचार, ज्ञानार्णव, कितने सारे आपको object दिए हैं और फिर भी मन नहीं लग रहा हो तो कोई-भी आजकल तो सब system होते ही है। बस! कुछ भी on करो और बस! अपने कान में लगा लो, आँख बन्द कर लो। अब जब कान में कोई चीज जाएगी तो मन उसी को तो सुनेगा, बाहर की चीजें अपने आप cut-off हो जाएँगी। इन साधनों का उपयोग करके अपने आप को सुरक्षित रखना है।

बोलो महावीर भगवान की जय।

सारांश

1.सूत्र 19 में हमने पाँचों इन्द्रिय - स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और कर्ण के बारे में जाना
2.पहली इन्द्रिय स्पर्शन है, न कि स्पर्श
3.स्पर्शन इन्द्रिय आधारभूत है क्योंकि अन्य इन्द्रियाँ इसके बाद ही बनती हैं
   a.यह सभी संसारी जीवों के पास होती है
   b.और पूरे शरीर में फ़ैली होती है
   c.इसलिए इसकी ज्ञान की प्रवृत्ति सबसे ज्यादा दिखाई देती है
   d.सभी जीवों में स्पर्शन-इन्द्रिय का क्षयोपशम होता है किन्तु वह सबका अलग-अलग होता है
4.इन्द्रियों का सम्बन्ध ज्ञानात्मक उपयोग से है
5.और इसके लिए मति-ज्ञानावरण-कर्म का क्षयोपशम चाहिए
6.हमने जाना कि द्रव्य-इन्द्रिय के लिए शरीर-नाम-कर्म आदि का उदय चाहिए
7.वहीं भाव-इन्द्रिय के लिए वीर्यान्तराय, स्पर्शन-इन्द्रियावरण आदि मतिज्ञानवरण का क्षयोपशम चाहिए
8.आत्मा ने इन्द्रियों की रचना की तो इन्द्रियों में ज्ञान आया इसलिए इनको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं
9.इन्द्रियाँ एक करण हैं मतलब जानने का एक माध्यम है जैसे-
   a.स्पर्शन से स्पर्श जानना
   b.रसन से रस चखना
   c.घ्राण से गंध सूँघना
   d.चक्षु से रूप देखना
e.कर्ण या श्रोतृ से शब्द सुनना
10.आत्मा को बाहर की जानकारी इन्द्रियाँ ही देती हैं
   a.कर्मों के क्षयोपशम के कारण आत्मा ने इन्द्रिय रचना की
   b.और अब वह इन्द्रियों के अधीन हो गयी
   c.वह अब सिर्फ इनके माध्यम से ही जानेगी, direct नहीं
   d.जैसे आत्मा बिना रसन इन्द्रिय के नहीं पता कर सकती कि नींबू खट्टा है

11.यह विचारणीय है कि

a.आत्मा का ही ज्ञान है,

b.आत्मा में ही क्षयोपशम है,

c.आत्मा ही जानने की इच्छा कर रही है और

d.आत्मा ही जानने की क्रिया कर रही है

e.सब कुछ आत्मा ही कर रही है

f.लेकिन फिर भी किसी-भी पदार्थ का direct contact आत्मा से नहीं होता

12.भेद-ज्ञान तभी होगा जब इन्द्रियों की प्रवृत्ति और आत्मा में उपयोग की प्रवृत्ति को हम अच्छे ढंग से समझेंगे

a.पुद्गल का ज्ञान पुद्गल इन्द्रिय के माध्यम से हो रहा है

b.और करने वाला चैतन्य आत्मा है

13.हमने जाना कि भेद ज्ञान से ध्यान करना सरल हो जाता है

14.कुछ भी न जानते हुए भी आप बस ध्यान में केवल बैठ जाएँ और देखें

a.हमारा उपयोग क्या कर रहा है?

b.इन्द्रियों से, मन से हमको किन-किन चीजों का ज्ञान हो रहा है? और

c.किस तरह के विचारों से हो रहा है?

15.यही देखते-देखते आप बहुत समय तक meditation कर सकते हो

16.meditation में करना कुछ नहीं पड़ता

a.जो जान रहा है,

b.जिसके द्वारा जाना जा रहा है या

c.जो जान कर के खुद और ज्यादा याद कर रहा है

d.इन सबको अलग-अलग देखना होता है कि

i.यह इन्द्रिय के माध्यम से, मन के माध्यम से जाना जा रहा है

ii.और यह उपयोग स्वभाव से अनुभव में आ रहा है

17.हमने जाना कि पांच इन्द्रिय में से सिर्फ चक्षु-इन्द्रिय के विषय का ज्ञान, आत्मा को direct

होता है

a. इसके अलावा आत्मा स्पर्श, रस, गंध या शब्द का direct ज्ञान नहीं करती

b. इनको मतिज्ञान के माध्यम से ही जाना जाता है

c. फिर चाहे वो अवधिज्ञानी, मन:पर्यय ज्ञानी या केवलज्ञानी हो

d. केवलज्ञानी के तो इन्द्रियाँ काम ही नहीं करती

18. आत्मा का काम केवल जानना है

19. इन्द्रिय ज्ञान लेकर आत्मा को जानकारी देती हैं

a. जैसे रसना इन्द्रिय पदार्थ के रस का ज्ञान लेकर आत्मा को जानकारी देती है

20. सूँघने में नहीं आने पर या taste नहीं hone पर चिन्ता इन्द्रिय को नहीं होती बल्कि 'आत्मा' को होती है

a. कि कहीं यह कोरोना का लक्षण तो नहीं

21. ज्ञान देना, ज्ञान लेना, ज्ञान का माध्यम बनाना, सब काम आत्मा का है

22. हमने जाना कि इन्द्रिय अचेतन नहीं हैं क्योंकि वह ज्ञान-इन्द्रिय हैं

a. उसमें ज्ञान आत्मा ने दिया है

b. फिर इन्द्रिय ज्ञान से जानकारी करके आत्मा को forward करते हैं

23. इस विवक्षा के अनुसार इन्द्रियाँ हमारे लिए करण हैं

24. हमने समझा कि इन्द्रिय को कर्ता मानने से आत्मा और इन्द्रिय दोनों ही कर्ता हो जायेंगे

a. इन इन्द्रियों में कर्तृत्व बुद्धि रखने से

b. या अपनी आत्मा और अपनी इन्द्रियों को एक मानने से

c. हम मूढ़ बने रहोगे और मिथ्यादृष्टि या बहिरात्मा कहलायेंगे

25. हमें बहिरात्मा से अन्तरात्मा या अन्तरप्पा बनने के लिए

a. अपनी आत्मा और इन्द्रियों के बीच में difference करना होगा

b. समझना होगा कि उपयोग-स्वभाव वाला आत्मा कर्ता या subject है और इन्द्रियाँ उसकी knowledge के लिए medium हैं

c. आत्मा, इन्द्रियाँ और उनके objects तीनों अलग अलग चीजें हैं

d. इसे हम कर्त्ता, करण और कर्म के सिद्धांत से भी समझ सकते हैं

i.जिसमें आत्मा कर्त्ता, इन्द्रियाँ करण और objects कर्म होते हैं

26.अन्तरप्पाओं को इसी तरह फर्क करने की practice करनी चाहिए और दूसरों को करानी भी चाहिए

a.इसमें कुछ नहीं करना! अपने 5 senses को medium बना करके, इनके साथ में जो direct contact है, बस उसको थोड़ा-सा अपने से अलग करना है

27. सूत्र 20 से हमने जाना कि हर इन्द्रिय के अर्थ मतलब विषय, अलग-अलग object होते हैं

a.जैसे स्पर्शन का स्पर्श,

b.रसना का रस

c.घ्राण का गन्ध,

d.चक्षु का वर्ण और

e.श्रोतृ इन्द्रिय का शब्द

28.स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन्द्रियाँ का क्रम है

a.जीवों को इन्द्रियाँ इसी क्रम से मिलती हैं

b.अगर आगे वाली इन्द्रिय है, तो पिछली वाली होगी ही

c.जैसे चक्षु है, तो स्पर्शन, रसना, घ्राण तीनों इन्द्रिय होंगी ही

29.हमने जाना कि अन्तरप्पा बनने की process, इन्द्रियों के माध्यम से meditation करने से शुरू होती है

a.इससे आप अनचाही वस्तु जो अपने mobile आदि पर देखली थी, उससे भी दूरी बना सकते हो

b.meditation में भी वह वस्तु याद आने पर हमें देखना है कि

i .हमने उसे नेत्र इन्द्रिय से देखा था

ii.अब जब नेत्र बन्द हैं फिर bhi वह मुझे दिखाई दे रही है

iii.लेकिन न तो वह पदार्थ सामने है और न नेत्र का काम सामने है

iv.मेरे सामने तो केवल मैं हूँ

v. इतना विचार करने से वह object धीरे-धीरे गायब होते चले जाएँगे

c.साक्षी बनने की प्रक्रिया इसी ज्ञान के साथ होती है

d.केवल श्वासें गिनने से कुछ नहीं होता

e.इन सूत्रों को ध्यान में उपयोग करना चाहिए

30.सूत्र 21 में हमने जाना कि मन का विषय श्रुत यानि श्रुतज्ञान होता है

31.श्रुतज्ञान हमें अर्थ से अर्थान्तर की ओर ले जाता है

a.इन्द्रियों के माध्यम से चीज ग्रहण करने के पश्चात् जो भी हमारे अन्दर ज्ञान चलता है, वह श्रुतज्ञान है

b.जैसे- किसी नए व्यक्ति को देखकर अपनी स्मृति से जानकारी निकालना मितिज्ञान है

i.मगर आगे सोचना कि यह यहाँ क्यों आया? किससे मिलने आया? आदि श्रुतज्ञान है

ii.यानि जो सामने है उसके अलावा दूसरे पदार्थ का ज्ञान होना

32.ध्यान में श्रुतज्ञान मतिज्ञान से ज्यादा परेशान करता है

33.मगर ध्यान भी श्रुतज्ञान से ही होता है

a.disturb करने वाली चीज ही concentration के भी काम में आती है

34.श्रुतज्ञान के माध्यम से मन उड़ान भरने लगता है

a.क्षण भर में मन किसी पर्वत चला जाता है या पुरानी knowledge से भी कई गुना आगे बढ़कर के सोचने लग जाता है

35.मन के दोनों ही काम है

a.इससे खतरा भी है और ध्यान भी इससे ही होता है

b.इससे मन हल्का भी होता है और भारी भी होता है

36.जैसे दूसरे को मरता देख कर मन कह सकता है कि कहीं ऐसा मेरे साथ भी न हो जाए

a.तो मन के ऊपर उनका pressure आने लगेगा, वह depression में जाने लगेगा
b.मगर मन को इस depression से उभारा भी मन से ही जा सकता है

37.हमने समझा कि अपनी भावनाओं से, अपने ज्ञान से, अपने meditation से और अपनी आत्मा के विश्वास से;

a.बाहर की बातों को मन के लिए खतरा न बनने दें
b.बस जो हमारे पास है उसी को महसूस करें

38.5 इन्द्रियों का, 5 प्रकार के भावों का, 5 प्रकार के स्थावर-जीव आदि का चिन्तन करते रहने से मन बाहर की चीजों से परेशान नहीं होगा

a.और मन के अन्दर ज्ञान बढ़ेगा
b.यही श्रुतज्ञान मन की रक्षा करेगा

39. तत्त्वार्थ सूत्र, द्रव्य संग्रह आदि सुनना भी श्रुतज्ञान है और इनमें मन लगाना चाहिए

40. इन्द्रिय, मन और इनके विषयों को आत्मा से भिन्न जान कर जिनवाणी में मन लगाने की कोशिश करें

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1. सभी इंद्रियों का आधार कौन सी इंद्रीय है ?
1. स्पर्श
2. घ्राण
3. रसना
4. स्पर्शन

Q2 ऐसा कौन सा जीव है जिसके पास स्पर्शन इन्द्रिय नहीं है?
जलकायिक
अग्निकायिक
दोनों सही
ऐसा कोई जीव नहीं

Q3. इंद्रियों की रचना में क्या आवश्यक है ?
1. शरीर नामकर्म का उदय
2. वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम
3. मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम
4. ज्ञानावरण कर्म का उदय

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

SCAN TO WATCH

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q4 . द्रव्य इन्द्रिय की रचना कर्म के उदय और भाव इन्द्रिय की रचना कर्म के क्षयोपशम से होती है।
1. सही
2. गलत

Q5 . आत्मा ने इन्द्रियों की रचना की, इन्द्रियों में ज्ञान आया इसलिए इन्हें ज्ञानेन्द्रीय कहा।
1. सही
2. गलत

Q6 . कर्म के क्षयोपशम के कारण आत्मा इन्द्रियों के अधीन हो जाता जिसके कारण आत्मा का ही ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा जाना जाता है।
1. सही
2. गलत

Q7 .भेद ज्ञान ध्यान में काम आता है?
1. सत्य
2. असत्य

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

SCAN TO WATCH

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q8. अगर इन्द्रियों को करण बनाओगे तो आत्मा क्या कहलाएगी ?
1. अंतरात्मा
2. अन्तरप्पा
3. दोनों सही

Q9.गुरु जी ने 'अर्हम ध्यान' के लिए किसको करता और किसको करण मानने के लिए कहा है क्रम से बताए |
1. आत्मा, मन
2. इन्द्रिय, आत्मा
3. आत्मा, इन्द्रिय

Q10.स्पर्शन और स्पर्श में क्रम से अंतर बताइये |
1. इन्द्रिय, विषय
2. विषय, इन्द्रिय

Q11.मैंने स्पर्श को स्पर्शन इन्द्रिय से जाना इसमे क्रम से कर्ता,कर्म, करण बताइए |
1. स्पर्श, स्पर्शन, आत्मा
2. स्पर्शन, स्पर्श, आत्मा
3. आत्मा, स्पर्श, स्पर्शन

Q12.मन का विषय क्या है ?
1. श्रुत ज्ञान
2. अवधि ज्ञान
3. मन:पर्यय ज्ञान

Q13. मन की रक्षा कैसे हो-
1. तत्वार्थ सूत्र सुनने से
2. दुनिया की जानकारी रखने से
3. सोशल मीडिया पर एक्टिव रहने से
4. जिनवाणी पढ़ने सुनने से

Q14.मन को बाहरी विषयों से हटाकर द्रव्यसंग्रह , तत्त्वार्थ सूत्र में लगाने से मन कैसा हो जाएगा
1. भारी
2. हल्का
3. दोनों गलत

Q15.केवली पदार्थ को कैसे जानते हैं ?
1. द्रव्य इंद्रियों से
2. भाव इंद्रियों से
3. मन से
4. प्रत्यक्ष

Q16.मन का विषय क्या है ?
1. अर्थ से अर्थान्तर का ज्ञान
2. श्रुत ज्ञान
3. दोनों

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1 . द्रव्य इन्द्रिय बनने के लिए किन कर्मों का उदय चाहिये?
2 . क्या आत्मा रगगुल्ले के स्वाद को सीधे जान सकता है?
3 . कौनसी इंद्रियों के विषयों का ज्ञान अवधिज्ञानी को direct हो सकता है?
4 . स्पर्श , रस , गंध , शब्द का ज्ञान कौनसे ज्ञान से होता है?
5 . खीर के स्वाद को जानने का काम कौन करता है? रसना इंद्रिय या आत्मा ?
6 . प्रत्येक इंद्रिय के अपने-अपने नियत विषय है ।
यह कथन सत्य है या असत्य ?
7 . स्पर्श और स्पर्शन में क्या अंतर है?
8 . मुनि श्री ने इंद्रियों से मेडिटेशन करने का क्या तरीका बताया है?
9 . श्रुतज्ञान किसका विषय है?
10 . ध्यान कौनसे ज्ञान के माध्यम से होता है?

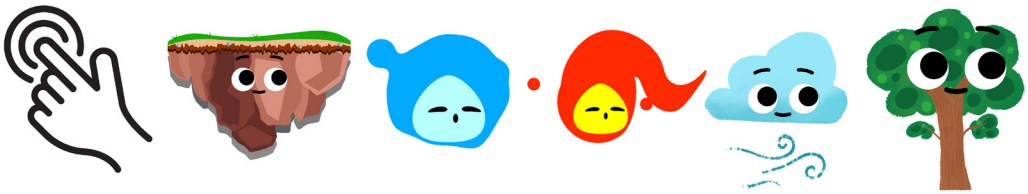
प्रवचन 13

वनस्पति जिनके अन्त में हैं

वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥2. 22॥

वनस्पति + अन्तानाम् +एकम्

सूक्ष्म तथा बादर कहे, इक इन्द्रिय के भेद।
पृथिवी जल अग्नि-हरित, वायु भेद प्रभेद॥2.22॥



एकेन्द्रिय जीव **5 स्थावर**

आपको ऊपर के सूत्रों में इन्द्रिय के विषयों की जानकारी दी गई थी और फिर मन के विषय की जानकारी दी गई थी। अब यहाँ यह बताया जा रहा है कि एकेन्द्रिय-जीव कौन-कौन-से होते हैं या एक इन्द्रिय किन-किन जीवों के पास होती है? सूत्र लिखने का आप ढंग देखें...क्या कहते हैं? 'वनस्पन्त्यानां' मतलब वनस्पति है जिनके अन्त में, उन सब जीवों की एक इन्द्रिय होती है। किसके अन्त में वनस्पति है? जो एक सूत्र पहले आया था...'**पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः**'। इस सूत्र में जिनके अन्त में वनस्पति है, वे कौन-कौन-से जीव हैं? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और अन्त में वनस्पति, इस तरह से इन सभी-जीवों के एक इन्द्रिय होती है, जिसे स्पर्शन-इन्द्रिय कहते हैं। कौन सी इन्द्रिय? स्पर्शन। इसी को आचार्यों ने परिभाषा के रूप में समझाते हुए कहा है कि एक स्पर्शन-इन्द्रिय का क्षयोपशम होने के लिए भी या उसका ज्ञान होने के लिए भी वीर्यान्तराय और मतिज्ञानावरण कर्मों के क्षयोपशम के साथ-साथ शरीर-नाम-कर्म का उदय और उसके साथ-साथ जाति-नाम-कर्म का उदय भी लगता है, तब उस जीव को एक-इन्द्रिय-जाति में उत्पन्न होना होता है। वनस्पति में भी स्पर्शन-इन्द्रिय-जन्य ज्ञान होता है और पृथ्वी आदि सभी जीवों में भी एक स्पर्शन-इन्द्रिय-जन्य ज्ञान होता है। यह बात जो यहाँ से स्पष्ट हो रही है, इससे आप यह समझ सकते हैं कि वनस्पतियों में भी हमें स्पर्शन-

-इन्द्रिय से होने वाली प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं।



पृथ्वी में स्पर्शन-इन्द्रिय से होने वाली प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती है

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु में भी हमें एक इन्द्रिय, जो स्पर्शन-इन्द्रिय है, उससे होने वाली प्रवृत्तियाँ देखने को मिल सकती हैं। पृथ्वी भी एक स्पर्शन-इन्द्रिय के माध्यम से अनेक-तरह के अपनी वृद्धियाँ कर सकती हैं और उस स्पर्शन-इन्द्रिय के माध्यम से ही जैसी पृथ्वी होती है, वैसी ही वह अपनी स्पर्शन-इन्द्रिय के माध्यम से उसको, अन्य भी पृथ्वी को ग्रहण कर लेती है। अभी किसी ने दिखाया था, बताया था कि कहीं पर विदेशों में एक स्थान है जिसमें जो पत्थर हैं, तरह-तरह की उनके अन्दर प्रतिक्रियाएँ हो रही हैं। उसको वैज्ञानिक लोग भी देख रहे हैं, जानने की कोशिश कर रहे हैं और यहाँ तक भी बताया गया है कि वे पत्थर बढ़ते हैं, पत्थर भी पत्थरों को पैदा करते हैं, उसमें इतना ही बताया गया। जो बात थोड़ी-सी अति की है, वह तो चलो अति की बात है लेकिन जो बात स्पर्शन-इन्द्रिय-जन्य ज्ञान से सम्भव है, उस बात को ग्रहण किया जा सकता है। वह इतना ही है कि उन पृथ्वी आदि रूप जो पत्थर हैं, उनका विस्तार तो उसी रूप में होता रह सकता है, जिस रूप में वह है। पृथ्वी भी अपने ही जैसी पृथ्वी और बना लेती है, आस-पास की पृथ्वी को भी। आप देखेंगे कि जिस-तरह की मिट्टी होती है, अगर उसके आस-पास कोई दूसरी भी मिट्टी रख दी जाए तो वह उस मिट्टी को अपना जैसा बना लेती है। यह भी उस पृथ्वी का एक गुण है।

वनस्पति तक के स्थावर जीवों में स्पर्शन इन्द्रिय जन्य ज्ञान प्रवृत्ति रहती है

SCAN TO WATCH

यह गुण भी हमें कहीं-न-कहीं पृथ्वीकायिक-जीवों की जो एक इन्द्रिय से होने वाली प्रवृत्ति है, उसके बारे में बताता है। जल के बिन्दु भी जल के साथ मिल जाते हैं, कहीं-न-कहीं स्पर्शन-इन्द्रिय-सम्बन्धी ज्ञान का यह एक आप परिणाम देख सकते हैं। अग्नि की लपटें भी, अग्नि के फुलिंगे भी दूसरी अग्नि के साथ में जुड़ते चले जाते हैं, मिलते चले जाते हैं। एक स्पर्शन-इन्द्रिय के माध्यम से वायु भी वायु के साथ मिल जाती है और वनस्पति की जड़ों को तो आप कहीं से कहीं तक आप गहरा उन्हें फैलता हुआ देख सकते हैं। वह भी उनकी एक स्पर्शन-इन्द्रिय-जन्य ज्ञान की प्रवृत्ति देखने में आती है, ऐसा कहा जा सकता है। इस तरह की एकेन्द्रिय-जीवों में जो प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं, ये सब प्रवृत्तियाँ उनके अन्दर एक स्पर्शन-इन्द्रिय ही है, इस बात का ज्ञान भी कराती हैं। अगर उससे कहीं ज्यादा भी प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं तो वह प्रवृत्ति उस एकेन्द्रिय-जीव की न कहकर के अन्य कुछ भी कहना पड़ेगा। इसलिए आचार्य यहाँ कहते हैं कि आप यह निश्चय कर ले कि वनस्पति तक जो स्थावर-जीव हैं, उन सब में एक मात्र ही एक इन्द्रिय होती है और उसी इन्द्रिय से उनका ज्ञान और उनकी प्रवृत्तियाँ चला करती हैं।

अन्य इन्द्रियों वाले जीवों के उदाहरण

जब एकेन्द्रिय के लिए पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति नियत हो गया तो फिर प्रश्न उठता है कि अन्य जो इन्द्रियाँ हैं, वे जीव कौन-से हैं? उसके लिए आचार्य आगे का सूत्र देते हैं-

कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीना-मेकैक-वृद्धानि ॥ 2.23॥

कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनाम्+ एक+एक-वृद्धानि

दो इन्द्रिय को आदि ले, पन इन्द्रिय के नाथ ।
कृमि, चींटी भौंरा, मनुज, आदिक त्रस के साथ॥2.23॥



क्या कहते हैं? कृमि यह एक जीव है, पिपीलिका मतलब चींटी, भ्रमर मतलब भँवरा और

मनुष्य मतलब मनुष्य और आदि सब के साथ लगा लेना; **कृमि आदि, पिपीलिका आदि, भ्रमर आदि और मनुष्य आदि।** ये सब एक-एक वृद्धि के साथ लगाना मतलब एक-एक इन्द्रिय की इनमें वृद्धि करते चले जाना। अर्थात् दो-इन्द्रिय-जीव के लिए उदाहरण दिया गया है- 'कृमि' का, तीन-इन्द्रिय जीव के लिए उदाहरण दिया गया है- 'पिपीलिका' मतलब चींटी का, चार-इन्द्रिय-जीव के लिए उदाहरण दिया गया है- 'भ्रमर' का, भौंरे का। पाँच-इन्द्रिय-जीव के लिए उदाहरण दिया गया है- 'मनुष्य' का। 'आदि' शब्द से जिन-जिन जीवों में, जो-जो भी जीव अधिक-अधिक रूप से अन्य-अन्य varieties के पाए जाते हैं, वे सब उसमें लगा लेना।

दो इन्द्रिय जीवों के उदाहरण

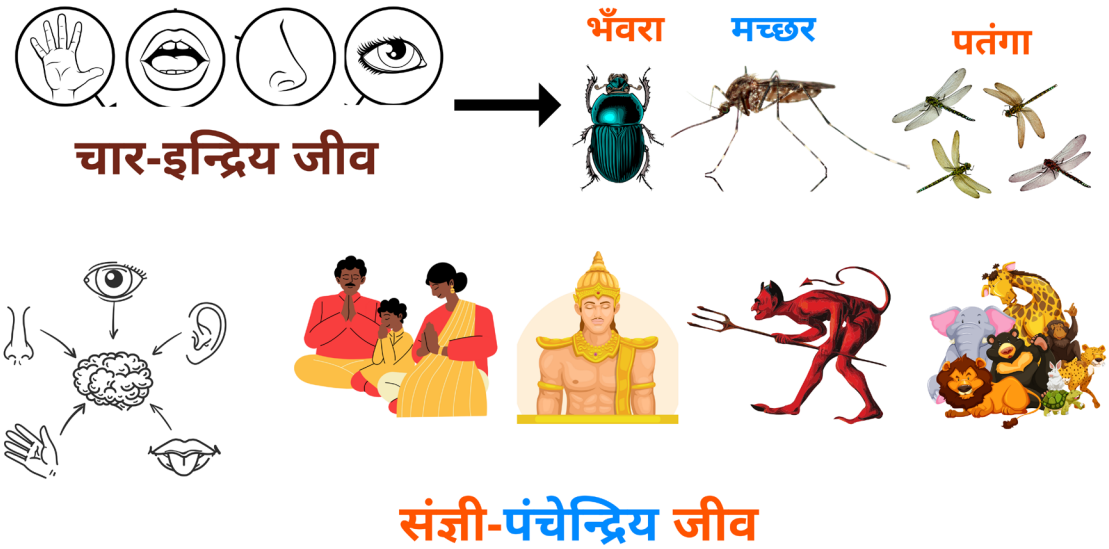
दो इन्द्रिय जीवों में कृमि के साथ-साथ में कुछ ऐसे भी जीव आ जाते हैं, जैसे-शंख में रहने वाला जीव। शंख जो होता है, वह दो-इन्द्रिय-जीव होता है। सीप में भी जीव होते हैं, वे भी दो-इन्द्रिय-जीव होते हैं। एक कुक्षि कहलाती है, जिसे हम कुक्षि कृमि भी कह सकते हैं मतलब पेट में पड़ने वाले जो कृमि वगैरह होते हैं, ये भी दो इन्द्रिय जीव होते हैं। पेट में कीड़े पड़ते हैं कि नहीं पड़ते? ऐसे ही कुछ अन्य-भी जीव होते हैं, जिन्हें क्षुल्लक भी कहा जाता है, वराटक कहा जाता है, ऐसे अन्य नाम वाले जीवों का भी ज्ञान प्रतिक्रमण आदि में मिलता है। ऐसे ये जो दो-इन्द्रिय वाले जीव हैं इनमें आपकी पहचान तो कृमियों से हो सकती है, जिन्हें कहीं-कहीं लट-वगैरह भी कहा जाता है और आप शंख में, सीप में जीवों को देख सकते हैं, वे सभी जीव दो-इन्द्रिय वाले ही होते हैं मतलब स्पर्शन और रसन, इन दो इन्द्रियों को ग्रहण करके, वह दो ही चीजों का अपना ज्ञान रखते हैं- स्पर्श का और रस का। कितने ही तरह के ऐसे जीव होते हैं जो बस! स्पर्श के ज्ञान के साथ-साथ सिर्फ रस का ही ज्ञान रख पाते हैं और उस रस ज्ञान में भी उन्हें इतना रस आता है कि कोई-कोई आप धान्य विशेष देखेंगे तो आपको लगेगा कि इस धान्य में ये कीड़े जो उत्पन्न होते हैं, वे उसी रस को जानने वाले होते हैं, जो उस धान्य के कीड़े होते हैं। कई बार कई अनाजों में इस तरह के जो कृमि इत्यादि पड़ जाती है, तो उसमें भी उसी-तरह के रस और स्पर्श को जानने वाले कीड़े होते हैं। ये दो इन्द्रिय जीवों में स्पर्श और रस-सम्बन्धी-ज्ञान इतना ज्ञान आ जाता है।

तीन और चार इन्द्रिय जीवों में इन्द्रियों की क्रम से वृद्धि

फिर उसके बाद में कृमि के आगे उदाहरण देते हैं- पिपीलिका का मतलब तीन-इन्द्रिय जीवों में चींटी आदि का ग्रहण करना। चींटी भी होती है, एक चींटा भी होता है। आप लोग चींटा को यहाँ क्या बोलते हो? मकोड़ा। इसके अलावा छोटे-छोटे एक और जीव होते हैं, जिन्हें शास्त्रों में तो कुन्थु आदि जीव कहा गया है। वे छोटे-छोटे जीव होते हैं जो हमारे लिए पता भी न पड़ते हैं लेकिन फिर भी वे जीव अपना अस्तित्व रखते हैं, जीवन जीते हैं। अब सबके नाम तो आपको बड़े-बड़े जब कोई library में बैठोगे या कहीं lab में बैठोगे तभी पता पड़ेंगे। library से

सबके नाम जानो और lab में जाकर के देखो। लेकिन जानने में आने वाले ये सब जीव जैसे बालों में जो जुएँ हो जाती हैं, ये सब तीन-इन्द्रिय जीव होते हैं। यहाँ तक कि बिच्छू जो डंक मारता है, उसको भी तीन-इन्द्रिय जीव कहा गया है। जो घरों में दीमक लग जाती है, वह भी तीन-इन्द्रिय जीव होते हैं। तीन इन्द्रिय जीवों में स्पर्श, रस और गंध, इन तीन इन्द्रियों का ज्ञान आ जाता है।

पंच इन्द्रिय जीव मन-रहित और मन सहित दो प्रकार से हैं



आगे आचार्य कहते हैं- चार-इन्द्रिय वाले जीवों में भँवरा, पतंगा, डांस जो मच्छर इत्यादि होते हैं, ये सब चार-इन्द्रिय-जीव होते हैं। इनमें स्पर्श के साथ रस, घ्राण और चक्षु इन्द्रिय का भी विकास हो जाता है। फिर आगे मनुष्य आदि आ गए, ये पाँच-इन्द्रिय जीव हो गए। इन पाँच-इन्द्रिय जीवों में मनुष्य के अलावा नारकी हैं, देव हैं, पशु हैं, पक्षी हैं, ये सभी जो हैं पंचेन्द्रिय जीवों में आ जाते हैं। एक-एक इन्द्रिय की इनमें वृद्धि होती चली जाती है। इस तरह से यहाँ पर किन जीवों के कितनी इन्द्रियाँ होती हैं? इस बात का ज्ञान कराया गया है। अभी तक आपने जो यह पढ़ा है, इसमें एक-इन्द्रिय वाले जीव तो नियम से अमनस्क ही हैं, मन से रहित हैं और जो दो, तीन, चार इन्द्रिय वाले जीव हैं, ये भी मन से रहित हैं। पंचेन्द्रियों में एक असंज्ञी होते हैं और एक संज्ञी होते हैं। उनमें से जो संज्ञी-जीव होते हैं, वही केवल मन से सहित होते हैं और बाकी

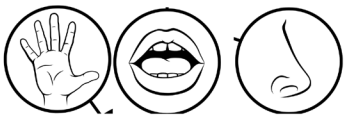
SCAN TO WATCH

के जीव असंज्ञी होते हैं, मन से रहित होते हैं। पिछले सूत्रों में आ चुका है कि जीव दो प्रकार के हैं- एक समनस्क और एक अमनस्क। यहाँ पर अब आगे विशेष-रूप से बताया जा रहा है कि समनस्क-जीवों को क्या कहा जाता है?

संज्ञिनः समनस्काः ॥ 2.24 ॥

मना जो जीव हैं, उनको संज्ञी मान ।
इन्द्रिय इक से चार तक, जीव बिना मन जान ॥2.24 ॥

शास्त्रों में कुन्थु आदि
जीव कहा गया है ●●●



तीन-इन्द्रिय जीव



पिपीलिका
चींटी



दीमक



बिच्छू

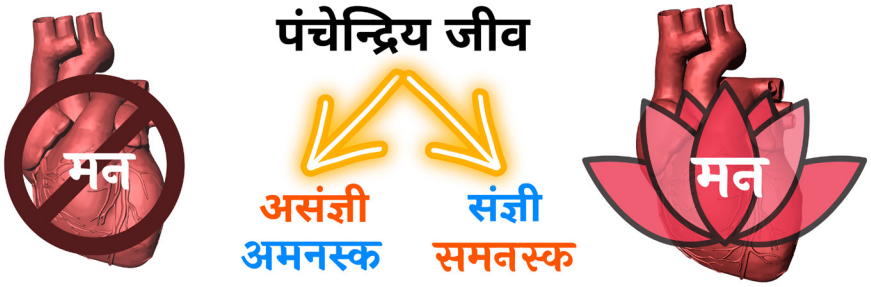


जुएँ

क्या सूत्र है? यहाँ पर समनस्क जीवों को, मन से सहित जीवों को संज्ञी कहा गया है। अब यहाँ पर जो संज्ञी-शब्द है और अन्य जो संज्ञा आदि शब्द जो आपने सुन रखे हैं, उनसे यह संज्ञी-शब्द अपने-आप में अलग है। कहाँ-कहाँ संज्ञा-शब्द सुन रखा है? एक तो पहले-अध्याय में ही आपने पढ़ा था...'मतिस्मृतिसंज्ञा' वह एक विशेष-ज्ञान होता है- मतिज्ञान, उसको संज्ञा कहा गया, उससे यहाँ प्रयोजन नहीं है। यहाँ पर संज्ञा का मतलब कोई विशेष ज्ञान नहीं है। संज्ञा का मतलब यहाँ पर सामान्य मतिज्ञान भी नहीं है क्योंकि यह ज्ञान तो सभी में पाए जाएँगे। जो एकेन्द्रिय आदि जीव है...अमनस्क-जीव हैं, उनमें भी पाया जाएगा। संज्ञा का मतलब किसी का कोई नाम होता है, उसको भी संज्ञा बोलते हैं तो उससे भी कोई लेना-देना नहीं है। संज्ञा का मतलब एक और आपने सुना होगा। 4 प्रकार की संज्ञाएँ होती हैं- आहार, भय, मैथुन और परिग्रह, इन 4 संज्ञाओं से भी यहाँ प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा क्योंकि यहाँ पर समनस्क-जीव को संज्ञी कहा गया है।

संज्ञा- संज्ञी से तात्पर्य

संज्ञी-जीव जो होगा वह तो कुछ विशेष होगा, जो केवल मन सहित जीव के साथ ही घटित होगा। क्या समझ आ रहा है? एक तरीके से यहाँ यह भी सोचने की कोशिश करे कि इस सूत्र में हम परिभाषा क्या लगाएँ? संज्ञी-जीव समनस्क होते हैं या समनस्क-जीव संज्ञी होते हैं? समझ आ रहा है? क्या परिभाषा लगायी जाए? परिभाषा यह लगानी पड़ेगी कि समनस्क-जीव को संज्ञी कहा जाता है, वे संज्ञी होते हैं। क्यों? क्योंकि समनस्क का वर्णन ऊपर आ चुका है। अब यहाँ विशेष-रूप से कहा जा रहा है कि जो समनस्क-जीव हैं, वे संज्ञी हैं, संज्ञा वाले हैं।



अब आपको यह देखना है कि संज्ञा का मतलब यहाँ क्या है? संज्ञा का मतलब

1. **मति-स्मृति-संज्ञा** वाले ज्ञान से भी नहीं है।
2. दूसरी बात संज्ञा का मतलब यहाँ पर जो जीवों में एक **सामान्य-ज्ञान** होता है, उससे भी नहीं है।
3. तीसरा संज्ञा का मतलब नाम होता है, उससे भी नहीं और
4. चौथा संज्ञा का मतलब आहार आदि **चार संज्ञाएँ** होती हैं, उससे भी नहीं है।

फिर यहाँ संज्ञा का मतलब क्या है? यह विचारणीय बात है। जो मन से सहित हैं, उन्हें संज्ञी कहा गया है। यह हमने एक नया नाम समनस्क-जीवों को दिया है, ऐसा भी हम कह सकते हैं। समनस्क-जीवों का एक यहाँ पर आचार्य महाराज ने एक नया नाम दिया है। उन समनस्क-जीवों को आप क्या बोलना? संज्ञी बोलना, संज्ञी-जीव बोलना, सैनी-असैनी इसी का नाम हो जाता है। सैनी तो बाद में और ज्यादा अपनी बिगड़ी हुई हिन्दी हो गई। नाम तो है- संज्ञी-जीव। अब यह बताओ आप लोग कि यहाँ पर संज्ञी से मतलब क्या कहना चाह रहे हैं? मन से सहित को संज्ञी कह रहे हैं तो फिर संज्ञी-शब्द में मन आ गया और मन आ गया तो फिर समनस्क और संज्ञी इन दोनों शब्दों में फिर कोई ज्यादा अन्तर तो रहा नहीं। समनस्क-जीवों को संज्ञी कहा और संज्ञी कहने से हमने मन-विशेष को ले लिया तो जब मन तो समनस्क में भी आ रहा था और मन को ही हम संज्ञी के साथ जोड़ेंगे तो कुछ ज्यादा अन्तर नहीं आ रहा है। ये सब प्रश्न पैदा हो सकते हैं, उसका भी अच्छा समाधान आपके लिए दिया जा रहा है।

संज्ञी जीव ही मन के विशेष कार्य करते हैं



समनस्क में और संज्ञी में, मन से सहितपना तो दोनों में है लेकिन संज्ञी-शब्द से यहाँ यह बताया जा रहा है कि जो मन का कार्य है, वह मन का कार्य संज्ञी-जीव ही कर पाते हैं। मन सहित जीव तो समनस्क कहलाएँगे और उनको हम संज्ञी-जीव कहेंगे लेकिन विशेष-रूप से यहाँ पर संज्ञी-जीव उनको कहा जा रहा है, जो मन के विशेष-कार्य करते हैं, मन से विशेष-कार्य में लगे रहते हैं। कैसे विशेष-कार्य? एक तो सामान्य-कार्य होते हैं, एक विशेष-कार्य होते हैं। किसी का मन मूर्छित हो गया तो अब उसे हम सामान्य कहेंगे कि विशेष कहेंगे? बताओ? सामान्य ही हो गया न! विशेष तो नहीं हुआ। विशेष में तो विशेष-काम करेगा। कुछ सोचेगा, उठेगा, बैठेगा, कुछ अच्छे काम करेगा, विचार करेगा। जब किसी का मन मूर्छित हो गया तो उस समय पर उसके मन तो है, मन तो है, तो क्या है? समनस्क भी है और एक तरह से संज्ञी भी है। अब परिभाषा के अनुसार तो कहना पड़ेगा जो समनस्क है, वह संज्ञी है, समनस्क को ही संज्ञी कहते हैं तो वह संज्ञी भी है। मान लो! कोई गर्भ में पड़ा हुआ जीव है, तो वहाँ पर भी वह मन से सहित है, तो समनस्क तो है और समनस्क को संज्ञी कहा जाएगा। लेकिन यह सामान्य-मन हो गया। यह कौन-सा मन है? यह सामान्य-मन हो गया। विशेष-मन क्या होगा? जब वह उसके साथ में कुछ विशेष-मन के काम करे।

विशेष-मन के क्या कार्य

विशेष-मन के क्या कार्य होते हैं? शिक्षा को ग्रहण करना। यह पहला काम है- विशेष-काम। पहला विशेष-काम मन का क्या है? शिक्षा। शिक्षा मतलब जो पढ़ाया जाए, सिखाया जाए, बताया जाए, उसको समझ पाए। अगर उसको यह बता दिया जाए कि तुम्हारा नाम क्या है? कालू है, लालू है, तो वह मान ले कि हाँ! मेरा नाम कालू है, मेरा नाम लालू है। यह शिक्षा उसको दे दी गई और शिक्षा के कारण से उसने ऐसा सीख लिया। शिक्षा का मतलब? सीख लेना। अगर हम किसी को सिखाते हैं और कोई सीख लेता है, तो सिखाने वाला भी मन के भी माध्यम से सिखा सकता है और सीखने वाला भी मन के माध्यम से ही सीख सकता है। लेकिन यह मन सामान्य नहीं होगा, यह कौन-सा मन होगा? विशेष मन होगा। सामान्य मन कौन-सा है? हाँ! जो मूर्छा में पड़ा है, बेहोशी में पड़ा है, गर्भ में पड़ा है। अण्डों के अन्दर भी जीव होते हैं, उनमें भी मन होता है, उसमें पड़ा है, तो यह सब क्या है? यह उनका मन एक तरीके से, मन तो है लेकिन मन बिल्कुल ऐसा लग रहा है कि मरा हुआ सा है, जीवित सा नहीं है, सामान्य-मन है, मन से जीवित नहीं है। जीवित जो मन से हैं, उन्हें वस्तुतः संज्ञी विशेष-रूप से कहा जाता है। विशेष-मन वालों का सबसे पहला काम शिक्षा का होता है। देखो! जो भी मन वाले आपके लिए मनुष्य-जाति में उत्पन्न होते हैं, सबको पहले शिक्षा दी ही जाती हैं। आपका नाम यह है, मेरा नाम यह है, यह आपके पापा है, यह आपकी माँ है, यह आपका घर

है, यह घर का नाम है। सब चीज का नाम रहता है, हर चीज की शिक्षा दी जाती है। यह इसका घर है, उसका घर है, यह गली का नाम है, यह शहर का नाम है, सब चीजें उसको सिखाई जाती हैं। यह सब क्या है? इस सब का नाम है- शिक्षा। ठीक है! बड़े हो कर के जो-जो वह सीखता रहे, वह सब क्या कहलाएगी? शिक्षा। सब शिक्षा है। यह शिक्षा का काम विशेष-मन से ही सम्भव है।

विशेष-मन के कार्य

संज्ञी जीव

1.शिक्षा को ग्रहण करना





2.क्रिया करना



मन का कार्य शरीर के हलन-चलन की क्रिया

दूसरा मन का काम होता है- क्रिया करना। क्या करना? अपने ही अंगोपांगो को हिलाना-डुलाना, चलाना, खुद अपने अंगों पर अपना मन के अनुसार उससे क्रिया करना। यह क्रिया करने का नाम या योग जिसे हम मन वचन काय की प्रवृत्ति बोलते हैं, यह भी इस मन के, संज्ञी-मन का ही काम है। यह दूसरा काम मन का विशेष-कार्य है। क्या है? क्रिया करना। अगर क्रिया न हो तो कैसा लगता है? इसमें मन है ही नहीं, यह बिल्कुल नासमझ है, कोई क्रिया नहीं करता। सुनता तो है लेकिन बोलता नहीं, हिलन-डुलन कुछ करता ही नहीं तो उसके लिए यह अपने-आप में उसके मन की जो विशेषता है, उसमें वह नहीं है। जब कभी कोई ऐसी बीमारियाँ हो जाती हैं, जिसमें मन को आघात पहुँच जाता है, तो भी वह मन फिर कुछ करता नहीं है, सिर्फ सामान्य से पड़ा-सा रह जाता है और मन को कुछ भी संकेत भी दिए जाते हैं तो उनको वह ग्रहण नहीं कर पाता। यह क्रिया जो भी हो रही है, यह मन से होती है।

हमारे शरीर के सारे संकेत brain से ही जाते हैं



SCAN TO WATCH

आज का science भी कहता है कि जो कुछ भी हम करते हैं, इनके signals इस brain से शुरू होता है। पूरे शरीर की नसें, सब का connection यहाँ से है। इतना बड़ा connection भी है कि आप पहले यहाँ सोचो, यहाँ विचार लाओ, यहाँ से वह अपने-आप enzymes उन नसों के माध्यम से, उन ग्रंथियों के माध्यम से, उस स्थान पर बनने लग जाएँगे, खुलने लग जाएँगे, जहाँ पर जिस enzyme की जरूरत है। पूरा शरीर ग्रंथियों से जुड़ा हुआ है, तरह-तरह की glands इस शरीर में फैली हुई हैं और उनमें अलग-अलग तरीके के रस भी बनते हैं। कभी महसूस नहीं होता? देखो! आपको अगर भोजन करना है, तो भोजन करने के लिए भी आपके मन में पहले भोजन करने की इच्छा पैदा होती है। अगर भोजन की इच्छा ही न होगी तो आप भोजन नहीं कर पाओगे। भोजन की इच्छा मन पहले करता है, brain में पहले संकेत पहुँचता है कि मुझे भोजन करना है, तो फिर पेट में संकेत पहुँचता है, वहाँ पर उस तरीके के रस बनना शुरू हो जाते हैं, जो आपके अन्दर एक भूख पैदा कर देते हैं। हाँ भई! अब चाहिए, आने दो। नहीं समझ आ रहा है? रस कहाँ से बनता है? मैंने कह दिया, आपने मान लिया? कुछ practical करते हो कि नहीं करते हो? नहीं करते! देखो! मैं practical अभी करा रहा हूँ। आपके मन में इच्छा उत्पन्न हुई, आपने भोजन करने के लिए इच्छा की तो इच्छा करने का मतलब ही है कि आपने दिमाग में सोचा, वहाँ से संकेत पेट के पास में गया और वहाँ पर इस तरीके की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी कि वहाँ पर आपको लगेगा कि हाँ! हमें कुछ यहाँ देना है,

पहुँचाना है।

मृत्यु का समाचार सुनकर भोजन का रस, भय में बदल गया



अब देखो! भूख लगी थी, भोजन भी था, हम भोजन करने बैठे। अचानक से संदेश आया कि आपके घर में यहाँ किसी की death हो गयी है। समझ आ रहा है? एकदम से accident हो गया है, death हो गई है। सुना! सुन लिया? किस से सुना? कान से! कान से भी सुना महाराज! मन से भी सुना। अब मन के अन्दर जो रस बन रहा था, वह रस बनना एकदम से बंद हो जाएगा। भूख लग रही थी न! कहाँ चली गई? पेट में खलबली मच रही थी, कहाँ चली गई? अरे! पहले वहाँ जाना है! क्या ऐसा हो गया? उनका accident! उनकी मृत्यु! सब भूल जाएगा। अब दूसरा रस बनने लगा। अब कौन-सा रस बनने लगा? अब उसके हाथ-पैर कापेंगे, भय का रस उसके अन्दर पैदा हो गया। उसके अन्दर तरह-तरह की चिंता के कारण से शरीर में अलग तरह से...कहीं पसीना आ रहा है या heartbeat disturb हो गई, कम ज्यादा हो गई, यह सब शुरू हो जाएगा। कहाँ से? सब यहीं (मन) से शुरू होता है। यह पूरा control-room यहीं हैं, इसी से सब control होता है। आपके लिए अगर यहाँ से कुछ-भी गलत होना शुरू हुआ तो पूरे शरीर में वह शुरू हो जाता है। यहीं से हर जगह पर संकेत पहुँचते हैं, पूरे शरीर के अन्दर, पेट-पीठ, हाथ-पैर सब जगह।

paralysis में मन को क्या होता है?

आप देखो! कभी किसी को paralysis हो जाता है। क्या होता है? उसका वह जो संकेत देने वाली ग्रंथियाँ हैं, उनसे उस दिमाग का एक सम्बन्ध जो है, थोड़ा-सा disconnect हो जाता है। हाथ हिलाना चाहेगा, हिलेगा ही नहीं, उसे लगेगा ही नहीं यह मेरा हाथ है। मैं हाथ हिला रहा हूँ, हिलता ही नहीं, उठता ही नहीं। वह order दे रहा है ऊपर से, उसमें काम हो ही नहीं रहा, वह काम करता ही नहीं। यह क्या है? यह क्रिया किससे हो रही है? मन से। मन है, तो मन के ही माध्यम से यह brain, जिसे हम बुद्धि एक अलग कह सकते हैं, यह मन के सही होने पर ही बुद्धि सही काम करती है। यह आगे का मन का ही function है। मन के ही माध्यम से ही यह पूरे शरीर में हलन-चलन, किसी भी तरह की क्रियाएँ हो रही हैं।

पाचन में भी शान्त मन का होना जरुरी है



आपने भोजन कर लिया, भोजन करने के बाद में भोजन भी digest तब होगा जब आपके परिणामों में किसी-भी तरीके का चिन्ता, भय, उद्वेग कुछ नहीं होगा। शान्त रहोगे तो शान्ति से भोजन पचेगा और अगर आप भोजन करने के बाद में आपका दिमाग खराब, यह समाचार-वह समाचार और यह सुनने को मिल गया, यह mood खराब हो गया, इससे काम, उससे काम, इससे लेना, उसको देना, इस हाय-तौबा में पड़ गया तो आप नियम से मान कर चलो आपने कितना ही अच्छा भोजन किया होगा, उसका digestion ठीक होगा ही नहीं। दूसरे दिन आपको पेट में दर्द मिलेगा, आपका पेट खराब मिलेगा। उसी दिन नहीं मिलेगा, दूसरे दिन मिलेगा। आप सोचोगे तो समझ में आएगा, यह क्यों हुआ? अगर आप संज्ञी हैं तो संज्ञी का मतलब इतना नहीं है कि हमको मन मिल गया तो मैं संज्ञी हो गया, मैं यह कहना चाह रहा हूँ। एक आपको यहाँ से नई व्याख्या मैं इसलिए बता रहा हूँ कि संज्ञी का मतलब यह है कि

हम विशेष-मन के साथ में रहेंगे तो हम संज्ञी हैं और उस विशेष-मन के साथ में हमारे अन्दर शिक्षा की क्रिया, हलन-चलन की क्रिया, यह सब होती हैं। इसी के साथ-साथ उस संज्ञीपने का, विशेष मन का तीसरा कार्य आलाप होता है।

मन का तीसरा विशेष कार्य आलाप होता है

SCAN TO WATCH

आलाप! आलाप मतलब? कहना, किसी से कुछ कहना, किसी को कुछ समझाना, शब्द बोलना, यह भी मन के साथ ही होता है और मन वाला ही कर पाता है। आप देख लो! अगर आप कितना ही अच्छा ज्ञान रखते हो लेकिन आपका मन कहीं disturb है या कहीं दूसरी जगह लगा हुआ है, तो आप सामने उस चीज को कह नहीं पाओगे। सुन रहे हो! यह किससे सम्भव है? जब आपका विशेष मन सही हो। कितनी ही ऐसी चीजें होती हैं, जिन्हें हम जानते हैं लेकिन हम कह नहीं पाते हैं। उस समय पर हमारे ध्यान में नहीं आती हैं और हम जो है कुछ कहने को अगर होते हैं तो अगर हमारा मन साथ नहीं देता तो हम कहकर के भी कुछ का कुछ कह जाते हैं। विशेष मन का काम क्या है? आलाप! मतलब सही बोलना और जो बोलता है, वह मन के साथ ही बोलता है। बोलना बिना मन के नहीं होता। बोलना तो बाहर दिखाई देता है लेकिन भीतर मन का ज्ञान काम करता चला जाता है तभी वह मन के साथ बोलते हुए शब्दों में ज्ञान डाल पाता है अन्यथा शब्दों में कहाँ से ज्ञान आया? क्या समझ आ रहा है? आप देखते हो, अगर कोई भी वक्ता बोलता चला जाता है, तो उसके भीतर उसके ज्ञान की reel चलती रहती है। वह reel उसके लिए बिल्कुल, अन्यथा कुछ-भी नहीं जाएगी, अन्यत्र वह ज्ञान की प्रक्रिया कहीं भी नहीं जाएगी और वह ज्ञान की प्रक्रिया शब्द की उसी तरह से संरचना कराती चली जाएगी, जैसा ज्ञान उसके अन्दर है। इसलिए बोलने का काम भी विशेष मन के साथ में होता है। अगर कोई लंबे-समय तक सही-ढंग से बोल पाता है, तो वह तभी सम्भव है, जब उसका ज्ञान सही-ढंग से उसके भीतर बिल्कुल arrange हो। वह बिल्कुल ऐसा लगेगा कि

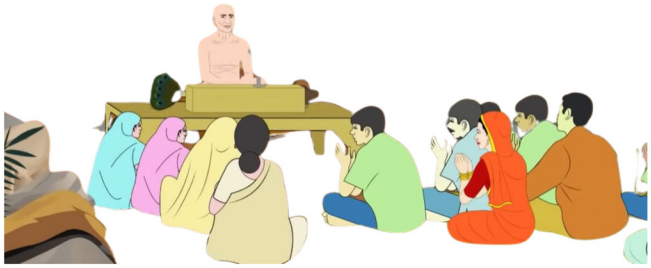
विशेष-मन के कार्य

संज्ञी जीव

3. आलाप - कहना



4. उपदेश



reel की तरह, एक के बाद एक, एक के बाद एक, एक के बाद एक, वह विषय की प्रस्तुति होती चली जाती है। यह किसका काम है? विशेष-मन का, संज्ञी-जीव का। सामान्य-मन का नहीं! सोते हुए नहीं कर पाओगे, ऊँघते हुए नहीं कर पाओगे। मन कहीं और होगा तो आप कभी इतना तत्त्व की बात न सुन पाओगे, न कह पाओगे, न सीख पाओगे। अतः शिक्षा, आलाप, क्रिया, उपदेश ये सब चीजें मन के माध्यम से होती हैं। इन्हीं को संज्ञी-जीव कहा जाता है, जो इन सब क्रियाओं को अच्छे-ढंग से करते हैं।

उपदेश- जो भी हम तरह-तरह का उपदेश दूसरों को देते हैं, दूसरों को ज्ञान देते हैं, दूसरों के लिए जो चीजें नहीं आती हैं, वह भी हम बताते हैं, यह सब उपदेश में आ जाता है। आत्मा के हित के लिए भी हो सकता है, आत्मा के अहित के लिए भी हो सकता है, वह अलग matter है। लेकिन संज्ञी का काम है इस तरह की प्रक्रियाओं में अपने मन को लगाए रखना।

मच्छर घूम कर एक ही जगह कैसे आता है?

अब आप यह देखो! जो दो-इन्द्रिय-जीव होते हैं, इनमें मन नहीं है, तीन-इन्द्रिय, चार-इन्द्रिय-जीव, इनमें मन नहीं है। लेकिन आप देखो! इनके क्रियाकलाप देखो आप! कैसा लगेगा? आपको ऐसा अनुभूत होगा कि जैसे इनमें मन के बिना तो ऐसा हो ही नहीं सकता। मान लो! मच्छर है। उस मच्छर को आप देखो कि अगर वह कहीं पर बैठ जाता है, एक बार उसको यह ज्ञान में आ जाता है कि यहाँ आदमी बैठा है और वह उसके शरीर पर एक-बार बैठ गया। उसको वह बार-बार हटाएगा तो भी वह घूम फिर से वहीं आकर बैठेगा। आप उसको थोड़ी-सी देर तक हटाओ भी, दूर तक हटाओ भी, वह कहीं दूर चला भी जाएगा, थोड़ी देर वहाँ बैठ जाएगा लेकिन वह फिर उड़कर के फिर वहीं आकर के बैठेगा। यह कैसे होता है? अब आप उसे कहोगे कि मन तो है नहीं और मन नहीं तो उसे स्मरण कहाँ से आ गया कि यह आदमी यहाँ बैठा है, तो यहीं पर जाकर के हमें काटना है? जो उसके अन्दर यह आ रहा है कि मेरे लिए यह जो स्थान है, यहाँ किताब रखी है, माइक रखा है, वह यहाँ नहीं बैठेगा। यहाँ भूल-चूक से बैठ भी गया तो उठ जाएगा और फिर जहाँ उसके मतलब की चीज मिलेगी, वहाँ बैठ जाएगा। एक बार बैठ गया तो फिर उसे क्या लगता है कि अगर हटा भी दिया जाए तो मुझे यहीं बैठना है।

विकलेन्द्रिय भी अपना हित अहित समझते हैं...कैसे?

यह क्या है? अब इसमें मन तो नहीं है, चलो ठीक है। अगर मन नहीं है, तो उसे बार-बार, उसकी धारणा में यह चीज कैसे बैठी है कि हमें यहीं बैठना है? इसी पर आकर के बार-बार बैठना है? यह उसकी धारणा है। इसे कौन-सा ज्ञान बोलते हैं? धारणा। मतिज्ञान का जो एक भेद धारणा है और कहीं-न-कहीं उसमें स्मृति भी काम कर रही है। बिना स्मृति के तो फिर यह भी सम्भव नहीं है कि उसे जो चीज अच्छी लगती है, उस पर तो बैठ जाए और जो चीज अच्छी नहीं लगती उससे दूर भाग ले। मान लो धुआँ कर दिया तो वह दूर भागेगा तो उसे ज्ञान तो है

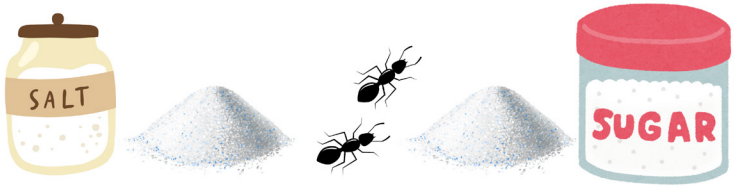
कि धुआँ मेरे लिए अहितकारी है। कोई ऐसी, कोई दूसरी chemical की उसके लिए smell डाल दी जाए तो उसको अलग भागने की पड़ती है। उसको ज्ञान तो है कि यह मेरे लिए अहितकारी है। कहीं पर उसके लिए कोई अच्छी-चीज मिल जाए या कोई गंदी भी चीज मिल जाए, उसको लगे यह मेरे लिए सुरक्षित है, तो बस वहाँ बैठ जाएगा। उसे अपने हित की कहीं-न-कहीं स्मृति तो है कि मेरा हित इसी में है और अहित की भी स्मृति है कि मुझे इससे हटना है और हम कह रहे हैं कि उसके अन्दर मन नहीं है। मन नहीं है, तो स्मृति तो मन में ही होती है, तो उसमें स्मृति भी नहीं। हम उसमें धारणा भी देख रहे हैं तो उसमें धारणा भी नहीं है। धारणा कैसे होगी जब उसमें मन ही नहीं है? क्या समाधान है?



मतिज्ञान



1. सामान्य-स्मृति,
2. सामान्य ईहा,
3. सामान्य अवाय,
4. सामान्य -धारणा



श्रुतज्ञान की भी प्रवृत्तियाँ मति ज्ञानपूर्वक होती हैं

आचार्यों ने इसका भी एक हमें समाधान दिया है। एक आचार्य **'आचार्य विद्यानंदी महाराज'** हुए तत्त्वार्थ-सूत्र के टीका करने वाले, उन्होंने **श्लोकवार्तिक ग्रंथ** लिखा। उन्होंने बताया कि इस तरह की जो प्रवृत्तियाँ देखने में आती हैं यद्यपि हम कहते हैं कि ये प्रवृत्तियाँ श्रुतज्ञान से हो रही हैं। यह ठीक है, श्रुतज्ञान की हैं लेकिन श्रुतज्ञान में भी मतिज्ञान पूर्वक ही प्रवृत्तियाँ होती हैं। मतिज्ञान में कुछ ऐसा होता है, जो मतिज्ञान में इन जीवों के साथ में रहता है लेकिन वह सामान्य-रूप से रहता है। कैसे? सामान्य! सामान्य का मतलब उसमें भी एक सामान्य-स्मृति रहती है, सामान्य उनमें भी ईहा मतलब जानने की इच्छा-सी पड़ी रहती है। सामान्य-रूप से अवाय, सामान्य रूप से निश्चय वह भी कुछ कर लेते और सामान्य-धारणा भी उनके अन्दर पड़ी रहती है तभी जिसको जिस विषय की ललक है, वह उस विषय को ग्रहण करने के लिए

लालायित रहता है और उस विषय को पाकर के ही सन्तुष्ट होता है। लेकिन वह सामान्य ही है, विशेष नहीं है।

संज्ञी जीव में विशेष मतिज्ञान होता है

हम लोगों में जो संज्ञी जीव हैं, उनमें जो धारणा होगी वह विशेष-धारणा कहलाएगी। **ईहा, अवाय, स्मृति होगी, वह विशेष होगी** लेकिन उनमें जो होगी वह सामान्य होगी। यह भी एक जानने की चीज है कि उनमें भी मतिज्ञान है। मतिज्ञान के यह भेद...अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा, अब हम यह तो कह देते हैं कि मतिज्ञान है लेकिन हम यह नहीं कह पाते हैं कि अवाय, ईहा और धारणा भी हैं। जब मतिज्ञान है, तो मतिज्ञान अलग से क्या चीज है? अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा का नाम ही तो मतिज्ञान है। अब यही अवग्रह नहीं होगा तो ईहा कैसे होगी और ईहा नहीं होगी तो किसी भी चीज की धारणा कैसे बनेगी?

मतिज्ञान का स्वरूप अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा है



चींटी के अन्दर धारणा है कि उसे कहीं चिकनी चीज मिल जाए, मीठी चीज मिल जाए तो उससे वह चिपक लेती है। उसके अन्दर इस विषय के अनुभव की एक सामान्य-धारणा है। मान लो नमक की डली भी रखी है और शक्कर की भी डली रखी है और दोनों को मान लो आपने बिल्कुल ऐसा कर रखा है जैसे बूरा कर दिया हो। आप confuse हो जाओगे कि यह नमक है कि शक्कर है? आप कई-बार नमक की जगह पर शक्कर भी खिला जाओगे, शक्कर की जगह पर नमक भी खिला जाओगे और कहोगे कि हाँ महाराज! नमक डला है! लेकिन वह चींटी कभी confuse नहीं होगी। उसके लिए पकड़ में आएगा...वह नमक से नहीं चिपकेगी, वह शक्कर से ही चिपकेगी, बूरे से ही चिपकेगी। अब आप देखो! आखिर यह बात कितनी अच्छी है कि मतिज्ञान है, श्रुतज्ञान है, हम सामान्य से इतना कह कर के आगे बढ़ लेते हैं। हमने कभी इसमें विचार नहीं किया कि मतिज्ञान है, तो अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा के अलावा मतिज्ञान का क्या स्वरूप है? मतिज्ञान तो इन्हीं चार रूप में ही होता है। मतिज्ञान इसके अलावा और कोई वस्तु का नाम तो है नहीं। मतिज्ञान और क्या वस्तु रही?

श्लोकवार्तिक में सामान्य-विशेष दोनों मति श्रुत ज्ञानों को स्वीकारा है

मति ज्ञान के भेद- सबसे पहले मतिज्ञान कहाँ से शुरू होगा? अवग्रह से शुरू होगा, सामान्य-रूप से कुछ है। ईहा शुरू होगी। क्या है? यही तो ईहा, अभिलाषा, यही तो मतिज्ञान है। यह अभिलाषा उसके अन्दर भी पड़ी है। इसलिए यह बहुत अच्छी बात हमें श्लोकवार्तिक में पढ़ने को मिली है। आप लोगों को ही बता रहा हूँ कि इन जीवों में भी मतिज्ञान की सभी परिणतियाँ, सभी भेद सामान्य-रूप से स्वीकार करना। इन्हें सामान्य-अवग्रह, सामान्य-ईहा, सामान्य-

अवाय और सामान्य-धारणा कहा गया है, विशेष नहीं है। विशेष तो हम लोगों के अन्दर है। समझ आ रहा है? जिसे हम विशेष की स्मृति करते हैं। सामान्य की स्मृति तो पड़ी रहती है, वह तो कोई काम की नहीं होती। जो विशेष की स्मृति होती है, उसी से अपना काम चलता है। उनके अन्दर जो स्मृति इत्यादि होंगे, ये सब सामान्य-रूप से रहेंगे। तभी वह मतिज्ञान होगा और तभी मतिज्ञान पूर्वक वह श्रुतज्ञान होगा, जिस श्रुतज्ञान के माध्यम से वह हित में प्रवृत्ति करने के लिए और अहित से बचने के लिए अपने को तैयार रखेगा।

संज्ञीपन का विशेष कार्य आत्महित है

जैसे ही उस चींटी को लगा कि यहाँ से इस बूरे को हिला दिया गया है, तो वह चींटी उसको छोड़ कर भागने लग जाती है, केवल हिला दिया गया हो। जैसे ही उसको लगा कि इस सारे के सारे इस द्रव्य को, पदार्थ को उठा कर धूप में रख दिया है, वे सब अपने आप तितर-बितर हो जाएँगी, सब छोड़ कर चली जाएँगी क्योंकि उसे लगा अब यह धूप मुझे जला देगी, यह मेरे लिए अहितकारी है। यह सब श्रुतज्ञान उसका किसके साथ? जो सामान्य-अवाय, सामान्य-धारणा नाम का जो उसके अन्दर एक भाव बैठा है, उसके साथ यह श्रुतज्ञान भी काम करता है। आप जाने कि ये विकलेन्द्रिय-जीवों में, एकेन्द्रिय आदि जीवों में भी मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की जो प्रवृत्तियाँ हैं, ये विशेष-रूप से जो चला करती हैं, उन्हें भी हम विचार में शास्त्रों के अनुसार ही लाएँ। जो शास्त्रों में लिखा है वह हमें बिल्कुल सही समझ में आता है। क्या हो गया? **'संज्ञिनः समनस्काः**

अब समनस्क-जीवों का सबसे बड़ी संज्ञा क्या होगी? सबसे बड़ा काम क्या होगा? आत्महित का प्रयोजन होना, यह उनका सबसे ज्यादा संज्ञीपन का विशेष काम होगा। 'संज्ञिनः समनस्काः' इस सूत्र को ध्यान में रखे।

सारांश

1. सूत्र 22 में हमने जाना कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति स्पर्शन इन्द्रिय वाले एक इन्द्रिय जीव होते हैं
    - इस सूत्र में स्थावर की परिभाषा वाले सूत्र 13 पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः में वनस्पति इंगित है
    - अतः वनस्पति है जिसके अंत में वे एक इन्द्रिय वाले जीव हैं

2. हमने जाना कि **एक इन्द्रिय** की उत्पत्ति के लिए
    - स्पर्शन-इन्द्रिय का क्षयोपशम
    - वीर्यान्तराय और मतिज्ञानावरण कर्मों का क्षयोपशम
    - शरीर-नाम-कर्म का उदय और
    - जाति-नाम-कर्म का उदय चाहिए

3. सभी स्थावरों में **स्पर्शन-इन्द्रिय-जन्य ज्ञान** होता है
4. और इनमें स्पर्शन-इन्द्रिय से होने वाली प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं जैसे
    - पृथ्वी आस-पास की पृथ्वी को अपने ही जैसी बना लेती है
    - जल के बिन्दु जल के साथ मिल जाते हैं
    - अग्नि के फुलिंगे दूसरी अग्नि के साथ में जुड़ते चले जाते हैं
    - वायु भी वायु के साथ मिल जाती है और
    - स्पर्शन-इन्द्रिय के माध्यम से वनस्पति की जड़ें कहीं से कहीं तक फैल जाती हैं

5. सूत्र 23 से हमने अन्य इन्द्रियों वाले जीवों के बारे में जाना
6. दो इन्द्रिय जीवों में स्पर्शन और रसना इन्द्रिय होती है
    - जिससे वे स्पर्श और रस का ज्ञान करते हैं
    - जैसे कृमि, शंख और सीप में रहने वाले जीव,
    - कुक्षि, पेट में पड़ने वाले कृमि

7. क्षुल्लक, वराटक नामक दो इन्द्रिय जीवों का ज्ञान हमें प्रतिक्रमण में मिलता है
8. **तीन इन्द्रिय जीवों** में स्पर्श, रस और गंध का ज्ञान आ जाता है जैसे
    - पिपीलिका यानि चींटी,
    - कुन्थु नामक छोटे-छोटे जीव,
    - बालों में होने वाले जुएँ,

- बिच्छू,
- दीमक आदि

9. चार इन्द्रिय जीवों में स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु इन्द्रिय होती हैं जैसे
- भँवरा, पतंगा, डांस मशक यानि मच्छर आदि

10. पाँच-इन्द्रिय जीवों में मनुष्य के अलावा नारकी हैं, देव हैं, पशु हैं, पक्षी हैं
11. एक से चार इन्द्रिय वाले जीव नियम से अमनस्क या मन से रहित हैं
- पंचेन्द्रियों में संज्ञी और असंज्ञी दोनों होते हैं
- संज्ञी-जीव मन से सहित होते हैं और
- असंज्ञी जीव मन से रहित होते हैं

12.सूत्र 24 में हमने जाना के संज्ञी जीव मन सहित अर्थात समनस्क होते हैं
- यहाँ संज्ञा शब्द का अर्थ उसके अन्य उपयोगों से अलग है
- न इसका मतलब **मति-स्मृति-संज्ञा** वाले ज्ञान से है
- और न ही जीवों में होने वाले सामान्य-ज्ञान से है
- न इसका मतलब किसी के नाम से है

13.न इसका मतलब आहार आदि चार संज्ञाओं से है
14. कक्षा के अंत में हमने एक महत्वपूर्ण सवाल की भूमिका को समझा कि
- संज्ञी-जीव समनस्क होते हैं या समनस्क-जीव संज्ञी होते हैं?
- इनमे कोई अंतर है क्या?

15.जो मन से सहित हैं, समनस्क हैं उनको आचार्य ने संज्ञी कहा है
16. हमने संज्ञी और समनस्क में अंतर को समझा
17. समनस्क और संज्ञी दोनों मन से सहित होते हैं लेकिन संज्ञी जीव मन के विशेष-कार्य करते हैं
18. जब कोई **मूर्छित है, गर्भ में है या अण्डों** के अन्दर है तो भी वह मन सहित है, समनस्क है
- लेकिन वह एक तरह से मन से जीवित नहीं है
- यह सामान्य मन हो गया

19. जब वह मन से जीवित हो, उससे कुछ विशेष कार्य करे तो उसे विशेष मन कहते हैं
20. विशेष-मन को वस्तुतः संज्ञी कहत हैं
21. विशेष-मन के कार्य हैं शिक्षा ग्रहण करना, क्रिया करना और आलाप करना
22.शिक्षा मतलब सीख लेना- जो पढ़ाया जाए, सिखाया जाए, उसको समझ पाना

- सीखना और सिखाना विशेष मन से ही होता है
    - जैसे मेरा नाम यह है,
    - ये आपके पापा है,
    - आपका घर वहाँ है आदि

23. अपने ही खुद के अंगों पर अपने मन के अनुसार क्रिया करना भी विशेष मन का ही कार्य है
    - इसे हम मन वचन काय की प्रवृत्ति कहते हैं

24. जब किसी बीमारी में मन को आघात पहुँचता है तो फिर मन फिर कुछ नहीं करता और न संकेत ग्रहण करता है
    - वह सामान्य हो जाता है और क्रियाएँ बंद हो जाती है

25. **Science के अनुसार** भी हमारी सभी क्रियाएँ brain के signal से शुरू होती हैं
    - और शरीर की सभी नसों का connection यहीं से है

26. सिर्फ विचार करने मात्र से शरीर में अपने-आप **enzymes** सही स्थान पर बनने लगते हैं और ग्रंथियों के माध्यम से सही स्थान पर पहुँच जाते हैं, जहाँ पर उनकी जरूरत है
    - जैसे भोजन की इच्छा करते ही, brain को पहला संकेत पहुँचता है कि भोजन करना है, फिर पेट को संकेत पहुँचता है और वहाँ पर भूख पैदा करने वाले रस बनना शुरू हो जाते हैं
    - पर यदि कहीं इस समय किसी की मृत्यु का समाचार आ जाये तो भोजन का रस बनना बंद हो जाता है और भय का, चिंता का रस बनाने लगता है

27. paralysis में भी संकेत देने वाली ग्रंथियाँ का दिमाग से सम्बन्ध थोड़ा-सा disconnect हो जाता है
    - फिर वह हाथ हिलाना चाहेगा तो भी हिला नहीं सकेगा
    - उसे लगेगा ही नहीं यह मेरा हाथ है

28. सब मन से शुरू होता है
29. मन के ही माध्यम से brain सही काम करती है
30. हमने जाना कि भोजन पचाने के लिए भी भी मन शान्त होना जरुरी है
    - यदि परिणामों में किसी-भी तरीके का चिन्ता, भय, उद्वेग होगा तो नियम से मान कर चलो कितना ही अच्छा भोजन किया होगा, उसका digestion ठीक नहीं होगा

31. मन का तीसरा विशेष कार्य **आलाप** यानि शब्द बोलना, कुछ कहना या समझाना होता है
32. जीव **मन के साथ बोलते** हुए ही शब्दों में ज्ञान डाल पाता है
    - वक्ता के भीतर उसके ज्ञान की reel चलती रहती है और उसी के अनुरूप शब्द संरचना होती रहती है
    - यदि कोई भीतर ज्ञान arranged है तो लंबे समय तक सही ढंग से बोल सकते हैं

33. यह सामान्य-मन का काम नहीं है
    - यह सोते हुए, ऊँघते हुए नहीं होगा

34. जो हम दूसरों को ज्ञान देते हैं, उन्हें जो चीजें नहीं आती वो बताते हैं, वो सब उपदेश में आता है
35. अतः शिक्षा, आलाप, क्रिया, उपदेश ये सब चीजें मन के माध्यम से संज्ञी-जीवों में होती हैं
    - 36. विशेष मन के कार्य समझने के पश्चात् हमने मन रहित जीवों की क्रियाओं को समझा, जो देखने में ऐसा लगता है कि बिना मन के संभव ही नहीं हैं
    - जैसे मच्छर बार-बार हटाने पर भी फिर से घूम कर वहीं आकर बैठता है

यदि उसके मन नहीं है तो उसे कैसे याद होगा कि आदमी वहीं होगा

36. हमने समझा कि यह उसका मन नहीं अपितु उसकी धारणा है
    - मतिज्ञान का भेद धारणा अपना काम कर रही है
    - वही मच्छर **धुआँ** या किसी chemical की smell को अहितकारी मानकर दूर भागेगा
    - उसे अपने हित और अहित की कुछ स्मृति तो है

37. इसमें भी **हम शंका कर सकते** हैं कि बिना मन के स्मृति और धारणा भी कैसे होगी?
38. तो आचार्य विद्यानंदी महाराज ने **श्लोकवार्तिक टीका** में इसका निवारण करते हुए लिखा है कि
    - ये प्रवृत्तियाँ मतिज्ञान पूर्वक होने वाली श्रुतज्ञान की प्रवृत्तियाँ होती हैं
    - इन जीवों का मतिज्ञान भी सामान्य-रूप से होता है
        - जिसमें सामान्य सी स्मृति रहती है
        - सामान्य ईहा यानि जानने की इच्छा होती है
        - सामान्य अवाय यानि सामान्य रूप से कुछ निश्चय करना और
        - सामान्य धारणा होती है यानि जिस विषय की ललक है बस उस विषय को पाकर के ही सन्तुष्ट होते हैं

39. संज्ञी जीव में विशेष मतिज्ञान अर्थात विशेष ईहा, अवाय, धारणा होती है
40. मतिज्ञान अवग्रह से शुरू होता है जो सामान्य है
41. श्लोकवार्तिक में सामान्य-विशेष दोनों **मति-श्रुत ज्ञानों** को स्वीकारा है

42. जैसे चींटी बिना confuse हुए नमक और बुरे के ढेर में से हमेशा बूरे से ही चिपकेगी
    - क्योंकि उसके अन्दर भी ईहा, अभिलाषा पड़ी है
    - मगर उसके अन्दर मतिज्ञान की सभी परिणतियाँ सामान्य-रूप हैं
    - सामान्य स्मृति के माध्यम से उसे मतिज्ञान पूर्वक **श्रुतज्ञान** होगा
    - इससे वह हित में प्रवृत्ति और अहित से बचने के लिए तैयार रहेगी

43. जैसे ही बूरे को धूप में रखा जाएगा
    - सामान्य-अवाय, सामान्य-धारणा के साथ उसका श्रुतज्ञान भी काम करेगा
    - और वह वहाँ से इसे अहितकारी जान कर चली जायेगी

44. अतः **विकलेन्द्रिय और एकेन्द्रिय** जीवों में भी मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की प्रवृत्तियाँ विशेष-रूप से चलती हैं
45. उपसंहार में हमने जाना कि संज्ञीपन का सबसे विशेष काम, सबसे बड़ा काम **आत्महित** है

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1. वनस्पत्यन्ताना___! पूर्ण करो
1. मेकसी
2. मेकम्
3. मुस्य
4. मैकसी

Q2. वनस्पति जिनके ___ में हैं, ऐसे सभी जीव, एकम् मतलब एक इन्द्रिय वाले होते हैं
1. मध्य
2. अंत
3. शुरु
4. इनमे से कोई नही

Q3. एक इंद्रिय जीव बताओ।
1. अग्नि
2. जल
3. वायु
4. साँप

Q4. "संज्ञिनः ————"रिक्त स्थान भरिए
1. मनस्काः
2. अमनस्काः
3. समनस्काः



TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q5. हमारे शरीर के सारे संकेत किससे जाते हैं।

1. ब्रेन
2. हार्ट
3. फेफड़े (lungs).
4. पेट

Q6. कौनसे जीव मन के विशेष कार्य करते हैं
1. संज्ञी
2. अमनस्क
3. मनस्क

Q7. विशेष मन कौनसा है ?
1. जो शिक्षा ग्रहण करता है
2. जो मूर्छा में पड़ा है
3. जो गर्भ में पड़ा है

Q8. शरीर में हलन चलन की क्रिया मन से होती है?
1. सत्य
2. असत्य



TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q9. किस ग्रंथ में सामान्य-विशेष दोनों मति श्रुत ज्ञानों को स्वीकारा है ?
1. छहढाला
2. प्रवचनसार
3. श्लोकवार्तिक
4. इनमे से कोई नही

Q10. संज्ञीपन का विशेष कार्य आत्महित है यह कथन कैसा है ?
1. सही
2. गलत

Q11. विकलेन्द्रिय-जीवों में, एकेन्द्रिय मे कौन से ज्ञान की प्रवृत्तियाँ हैं ?
1. मति ज्ञान
2. श्रुत ज्ञान
3. केवल ज्ञान
4. अवधि ज्ञान

Q12. आलाप क्या है ?
1. मन का विशेष कार्य
2. मन का सामान्य कार्य

Q13 . मतिज्ञान का स्वरूप क्या है ?
1. अवग्रह
2. ईहा
3. अवाय
4. धारणा

Q14 “श्लोक वार्तिक “ ग्रंथ किसने लिखा?
1. आचार्य विद्यानंदी महाराज
2. आचार्य पूज्यपाद महाराज
3. आचार्य वीरसेन महाराज

Q15 . मतिज्ञान पूर्वक प्रवृत्तियाँ किस ज्ञान में होती हैं ?
1. अवधि ज्ञान
2. श्रुत ज्ञान
3. केवल ज्ञान

Q16 . विशेष मतिज्ञान किनमें होता है ?
विकलेंद्रिय जीव में
1. संज्ञी जीव में
2. दोनों में

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1. स्पर्शन इंद्रिय जन्य ज्ञान की प्रवृत्ति पांचों स्थावरों में किस प्रकार से दिखने में आती है?
2. कौनसा जीव कितने इंद्रिय है?
   १ . दीमक २ .जूँ ३.कुन्थु ४. चींटी ५. सीप
   ६. नारकी ७. क्षुल्लक ८. वराटक ९. पतंगा
   १०. देव ११. शंख १२. मनुष्य १३ . भंवरा १४. चमगादड़
3. कौनसी इंद्रिय वाले जीव मन रहित होते हैं?
4. सामान्य मन कौनसा होता है?
5. विशेष मन के क्या कार्य है?
6. आलाप कौनसे मन का कार्य है?
7. समनस्क और संज्ञी में क्या अंतर है?
8. चींटी नमक की जगह शक्कर की तरफ क्यों जाती है?
9. मतिज्ञान के चारों भेद मच्छर में किस रूप में होते हैं?
10. खाली स्थान पूरे कीजिए ।

जीवों के दो भेद है ..... और मुक्त । ..... जीव के दो भेद है ..... .और त्रस ।
..... जीव के पांच भेद है ..... जलकायिक , ... वायुकायिक , ...।
वनस्पतिकायिक जीवों के दो भेद है ..... और ..... ।
त्रस के चार भेद है ..... , इंद्रिय , ... पांच इंद्रिय ।
पांच इंद्रिय के दो भेद है ..... अमनस्क ।

प्रवचन 14

जीव की नई आयु का बन्ध पहले ही हो चुका होता है

जीव के भाव, जीव के भेद, इन्द्रियाँ, मन इत्यादि का अच्छा वर्णन होने के बाद में आपको बहुत अब बारीकी की चीजें भी बताई जा रही हैं। जिस वर्णन के बाद आप बहुत सारे अपने भ्रमों को भी हमेशा के लिए छोड़ सकते हैं। जीव का जन्म होता है, मरण होता है, यह बात तो सभी जानते हैं। जन्म से दूसरा भी जन्म हो जाता है, यह भी लोग स्वीकारते हैं। जीव का एक स्थान पर जब मरण हो जाता है, नियम से उसका दूसरे स्थान पर जन्म होता है। एक अकाट्य सत्य हर किसी को अपने दिमाग में रखना है कि जीव की आयु जब समाप्त होती है, तो समाप्त होने से पहले, नये जन्म के लिए, नई आयु का बन्ध भी हो चुका होता है।



यह इतना बड़ा सत्य है कि इसी के माध्यम से आप यह समझ पाएँगे कि किसी भी जीव ने कभी भी इस संसार में, अनन्त काल में अनन्त जन्म-मरण जो किया है, वह कभी एक क्षण के लिए भी आयु कर्म के उदय से रहित नहीं गया। आयु कर्म का उदय कभी भी नहीं टूटा। एक आयु का उदय पूरा होता है, उसी समय पर ही दूसरी आयु का उदय शुरू हो जाता है। यह सत्य जब हमारे ज्ञान में आ जाता है, जब यह सत्य हम जान जाते हैं तब समझ में आता है कि आयु कर्म एक ऐसा कर्म है, जो बदल कर भी नई-नई गतियों में, नया-नया आयु कर्म होकर के भी वह कभी भी इस जीव के द्वारा एक समय के लिए भी नष्ट नहीं हो पाया, टूटा नहीं गया। जीव

इसको छोड़ नहीं पाया, इसकी कभी बन्ध व्युच्छित्ति नहीं हो पाई। कोई न कोई आयु का उदय हर समय पर बना ही रहता है।

जन्म और मृत्यु के बीच के समय में भी आयु कर्म की गिनती होती है



जब जीव का मरण होता है, दूसरी गति में जब वह जाता है, ज्यादातर लोग यह समझते हैं कि जन्म होने के बाद आयु शुरू होती है। कुछ थोड़ा-सा गहराई से सोचेंगे तो उन्हें लगेगा कि गर्भ से ही आयु शुरू हो जाती है लेकिन और जब आप **जैन सिद्धान्त** पढ़ेंगे तब आपको पता पड़ेगा कि गर्भ में आने से पहले और मरण होने के बीच में भी कुछ time लग सकता है, वह भी उसके आयु कर्म में ही count होता है। पुरानी आयु जो आपने पूरी कर ली और नई आयु जहाँ से प्रारम्भ हुई है, जैन दर्शन के अन्दर एक-एक समय की counting है। अगर आपकी आयु जितनी आगे मिलने वाली है, उस आयु में यहीं से कमी होना शुरू हो जाती है, जहाँ से वह जीव ने पिछला मरण किया है और नए जन्म के लिए चल दिया है। अभी वह रास्ते में है, पहुँचा नहीं है, उसमें भी जितना time लगता है, वह time भी आपके आयु कर्म में minus है। एक-एक समय की चर्चा है...इतना सूक्ष्म यह जैन सिद्धान्त है, इसी को पढ़कर के समझ में आता है कि यह सर्वज्ञ के बिना कोई भी इन सब बातों को बताने में सक्षम नहीं हो सकता।

समय की गिनती आगम के अनुसार

इन्हीं बातों से सर्वज्ञता की पुष्टि होती है। ऐसे इस ज्ञान के द्वारा जो हमें आचार्यों ने दिया कि एक समय भी अगर है, दो समय भी यदि है, तो उसकी भी गिनती की जाती है कि यह दो समय कम इसकी आयु, आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम इसकी आयु, इतने वर्ष की है। इस समयों की गिनती भी हमें आगम में बहुत अच्छे तरीके से बताई गयी है। हर एक जीव के गति आदि, परिवर्तन की आयु आदि के किसी भी तरीके से आयु आदि को कहीं पर बिताने की वह पूरी की पूरी समय आदि की भी स्थितियाँ ज्ञात होती हैं। जानने की बात यह है कि जब कोई जीव एक गति को छोड़ कर के दूसरी गति को प्राप्त होता है या उसी गति को भी प्राप्त होता है, तो उस गति में जाते हुए वह जीव जब तक अपने जन्म के स्थान तक नहीं पहुँच जाता तब तक उसका बीच में जो रहना होता है,

- उस बीच में रहने में उसको कौन-सी गति कहा जाता है?
- वहाँ पर किन कर्मों का बन्ध होता है?
- वहाँ पर क्या होता है? यह बीच की चर्चा अब यहाँ से शुरू होती है।

विग्रहगति का संक्षिप्त वर्णन

इस आत्मा के साथ में एक भव से दूसरे भव में जाने पर, एक गति से दूसरी गति में जाने के बीच में जो कुछ होता है, वह यहाँ आपको बताया जा रहा है। इस भूमिका को ध्यान में रखते हुए सूत्र पढ़ें...

विग्रहगतौ कर्म योगः ॥ 2.25 ॥

दूजा तन पाने चले, तब गति-विग्रह होय।
कर्म योग संयोग से, पावत जस तस बोय॥2.25॥

यह जो गति है, उसको विग्रहगति कहा गया है। कौन-सी गति को? जो गति एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को धारण करने के लिये की जा रही है, उस गति को, बीच की गति को, क्या कहा गया? विग्रह गति। गति मतलब गमन है। गमन जीव का हो रहा है, जीव चल रहा है, उस स्थान तक जा रहा है जहाँ उसे जन्म लेना है। उसको पहुँचने में भी कितना क्या समय लग सकता है, वह भी आगे बताया जाएगा। पहले हम यह समझे कि विग्रहगति का अर्थ क्या है? शब्द के अनुसार देखें तो विग्रह का अर्थ होता है- शरीर। विग्रह के लिए जो गति हो रही है, उसको कहते हैं- विग्रह गति अर्थात् शरीर को छोड़ करके अब अगले शरीर की प्राप्ति के लिए वह गमन कर रहा है, अभी उसको शरीर प्राप्त नहीं हुआ। यह प्राप्त करने के लिए जब तक वह शरीर को प्राप्त होने योग्य जो पुद्गल हैं, उनको ग्रहण नहीं कर रहा तब तक बीच की स्थिति का नाम है- **विग्रहगति**।

विग्रहगति के दो अर्थ हैं

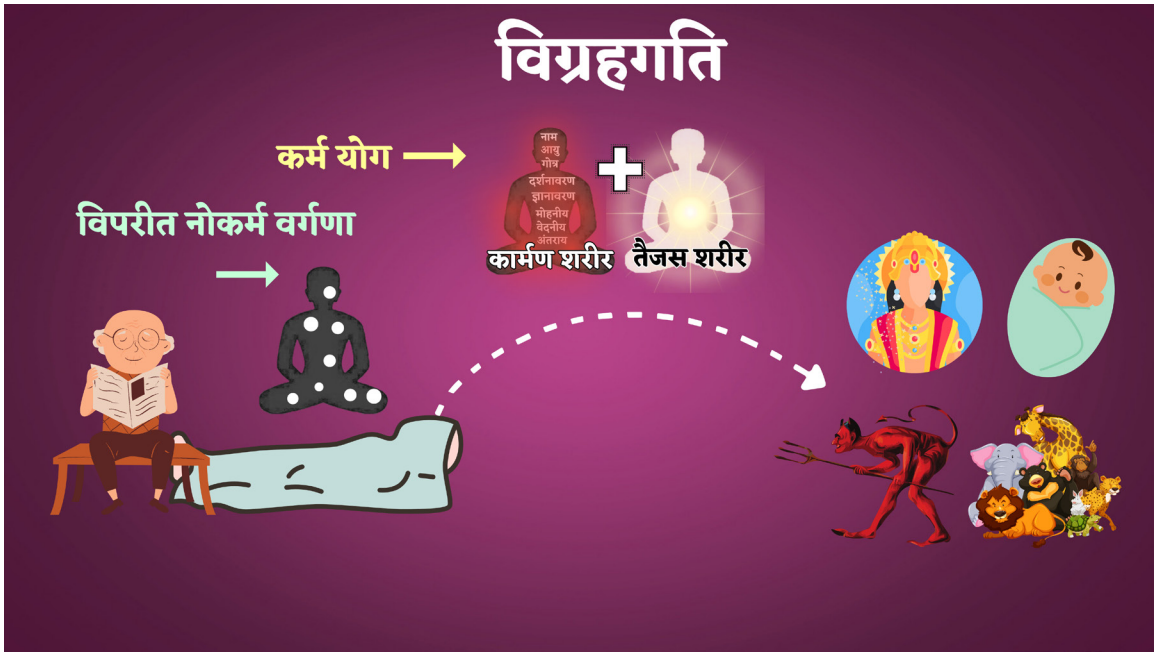
एक तो विग्रह मतलब क्या हो गया? शरीर यानि शरीर के लिए गति करना। एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर की प्राप्ति के लिए जो गमन है, उसका नाम है- विग्रहगति। दूसरा अर्थ- विग्रह का मतलब है कि जो उसके पास में अभी तक शरीर के योग्य पुद्गल वर्गणाएँ आ रही थी, उन सबका अभाव हो गया। वह सब उसके लिए रुक गया और जब वह सब रुक गया...'वि' मतलब विरुद्ध और 'ग्रह' मतलब ग्रहण करना, अब वह जो ग्रहण कर रहा है, वह सब विपरीत ग्रहण कर रहा है। यानि अभी तक नोकर्म पुद्गल वर्गणाओं को ग्रहण करता था, अब वह नोकर्म पुद्गल वर्गणाओं को जहाँ पर ग्रहण न करे, उस गति का नाम कहलाएगा- विग्रहगति, यह दूसरा अर्थ है। समझ में आया? किसको ग्रहण करना? जब शरीर होता है, तो हम क्या ग्रहण करते हैं? नोकर्म पुदगल वर्गणाओं को ग्रहण करते हैं।

नोकर्म वर्गणा और कर्म वर्गणा में अन्तर

शरीर के बनने योग्य जो वर्गणाएँ होती हैं, उन्हें कहते हैं- नोकर्म वर्गणा। कर्म जिनसे बनते हैं, कर्म के बन्ध जिससे होता है, उनको कहते हैं- कर्म वर्गणा। कर्म वर्गणा में और नोकर्म वर्गणा में अन्तर जानना। जो आत्मा में आठ प्रकार के कर्मों का बन्ध हो रहा है, वह कर्म वर्गणाओं से हो रहा है और जो हम शरीर के योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर रहे हैं, इसका नाम है- नोकर्म वर्गणा। जो हम आहार आदि के माध्यम से, हवा-पानी के माध्यम से, अपने शरीर की जो पर्याप्तियाँ बनी हुई हैं उनको चलाने के लिए, श्वासोच्छवास आदि के माध्यम से जो हम शरीर

के अन्दर वर्गणाओं को, पुद्गलों को ग्रहण करते हैं, वह सब कहलाती हैं- नोकर्म पुद्गल वर्गणा।

विग्रहगति में आत्मा के साथ औदारिक शरीर नहीं होता



जीव का जन्म हुआ, नोकर्म पुद्गल वर्गणाओं को उसने ग्रहण करना शुरू कर दिया। जब तक जीव की आयु रहेगी तब तक वह नोकर्म वर्गणाओं को ग्रहण करता रहेगा, कभी भी क्षण भर भी रुकता नहीं। अब जब उसका मरण हुआ तो मरण के बाद अगले जन्म के बीच में अभी शरीर नहीं है। शरीर नहीं है, तो क्या है? आत्मा है। आत्मा है, तो आत्मा के साथ कौन-सा शरीर है? आत्मा के साथ में औदारिक आदि शरीर तो नहीं है लेकिन तैजस और कार्मण शरीर तो है। कौन-सा शरीर? तैजस शरीर और कार्मण शरीर।

जीव विग्रहगति में केवल कर्मों को ग्रहण करता है

आगे इन शरीरों का वर्णन आने वाला है। फिर जो भी जानकारी बीच में आवश्यक है, उतनी लेते हुए आगे बढ़े कि आत्मा के लिए इन दो शरीरों के माध्यम से एक गति में से दूसरी गति की ओर जाना होता है। उसके पास में औदारिक शरीर आदि या वैक्रियिक शरीर आदि के योग्य जो पुद्गल वर्गणाएँ होती हैं, जिन्हें नोकर्म वर्गणा कहते हैं उनका उस समय पर ग्रहण नहीं होता। उस समय पर वह क्या ग्रहण कर रहा है? केवल वह कर्मों को ग्रहण कर रहा है, कर्म वर्गणाओं को ग्रहण कर रहा है। इसलिए कहा- ' विग्रहगतौ ' यानि विग्रहगति में 'कर्मयोग:' कर्म का योग है। कर्म का मतलब कार्मण काय योग है, यह समझना चाहिए। कौन-सा काय योग? यानि

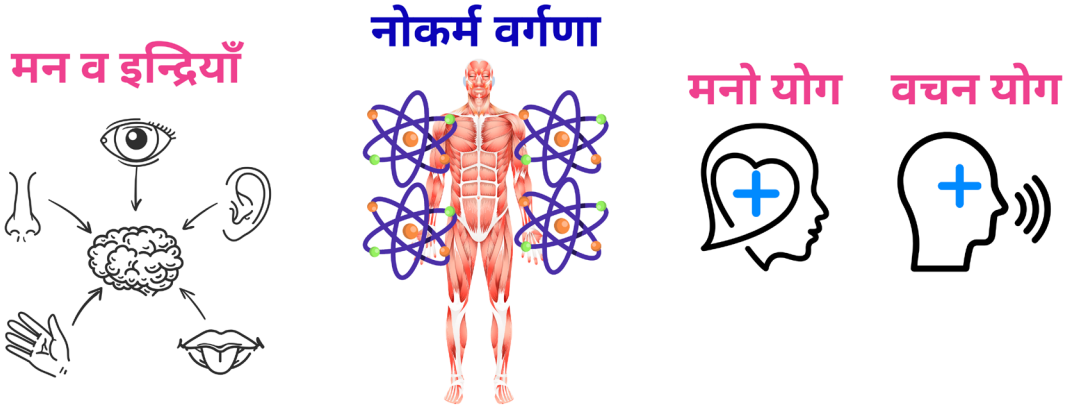
विग्रहगति में कर्म के माध्यम से योग होता है।

तीन प्रकार के योग

अब योग का मतलब यहाँ क्या है? आत्मा के प्रदेशों में परिस्पन्दन होना...इसका नाम है- योग। वह योग जब मन के निमित्त से होता है, मनोवर्गणाओं के निमित्त से होता है, तो **मनोयोग** कहलाता है। जब वचन वर्गणाओं के निमित्त से होता है, तो **वचन योग** कहलाता है और जब इस नोकर्म औदारिक आदि शरीर के निमित्त से होता है, तो वह **काय योग** कहलाता है।

विग्रहगति में कौन-सा योग होता है?

विग्रहगति में निम्न सभी का अभाव होता है



जिस समय पर वह विग्रहगति में है, वहाँ पर उसके लिए यह कुछ भी नहीं है। न मन है, न वचन है, न शरीर है, न इन्द्रियाँ हैं। वहाँ पर क्या है? केवल कर्म का शरीर, जिसे कार्मण शरीर कहते हैं, वह है और उसके माध्यम से होने वाला जो योग है, उसको कहा जाएगा- कर्मयोग। कर्म के माध्यम से आत्मा के प्रदेशों में परिस्पन्दन होना, यह कर्म योग कहलाता है।

विग्रहगति में कर्म बन्ध कैसे?

अब आप समझ ले कि विग्रहगति में भी कर्म का बन्ध होता है या नहीं? पूछते रहते हैं लोग। बिना शरीर के कैसे होता है? शरीर ने जो पहले कर्म का बन्ध कर लिया, आयु आदि कर्मों का उदय हो गया, उसके माध्यम से वह एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर के लिए जाने लगा। लेकिन उस समय पर उसकी आत्मा के साथ में कार्मण शरीर तो है ही, तैजस शरीर है, कार्मण शरीर है। आठ कर्मों का जो बन्ध था, वह तो उसके साथ stock में बँधा ही हुआ है वह सब ले करके जा रहा है। समझ आ रहा है? उसके अन्दर जो fuel पड़ा हुआ है, वह सब तो वह साथ

में लेकर जा रहा है। केवल उसने अपनी body ऊपर वाली छोड़ दी है और वह कर्म के साथ जब चल रहा है, तो वहाँ पर कर्म का योग है यानि कर्मों का तो आदान-प्रदान हो रहा है, बाकी नोकर्म का कुछ नहीं हो रहा। अब बिना शरीर के ही तो हो रहा है, शरीर तो बनेगा वहाँ पहुँचने के बाद में लेकिन बिना शरीर के भी वह जीव कितने समय तक रह सकता है? यह आपको बताया जा रहा है, आगे बताया जाने वाला है। पहले इतना समझ ले...विग्रहगति में कार्मण काय योग के माध्यम से कर्म का बन्ध, उदय, क्षयोपशम आदि सब बने रहते हैं। विग्रहगति में जब यह जीव गमन करता है, तो उस समय पर इसके लिए भी कर्म का बन्ध कराने वाला कोई कारण है, तो वह उसके अपने ही जो प्रत्यय हैं, वह सब प्रत्यय उसके अन्दर कर्म के साथ में जो पड़े हैं, उन्हीं से उसका बन्ध भी हो रहा है।

विग्रहगति में कितने प्राण होते हैं?

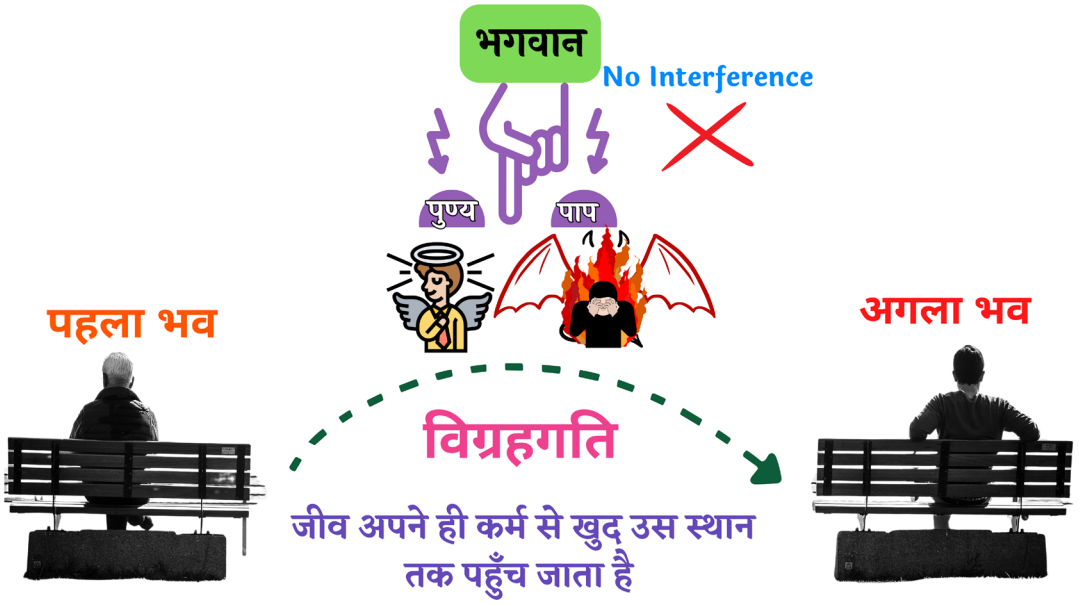


विग्रहगति में भी उस जीव के पास में प्राण इत्यादि बताए गए हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव है, अगर बनने जा रहा है, तो उसके लिए भी विग्रहगति में सात प्राण होते हैं। क्यों होते हैं? किस अपेक्षा से होते हैं? वे प्राण उसके अन्दर जो भी स्पर्शन आदि इन्द्रियों का क्षयोपशम है, वह क्षयोपशम तो यहीं से लेकर जा रहा है...आगे तो उसके अनुसार वह बनाएगा। उस क्षयोपशम की उपलब्धि होने के कारण से, आयु कर्म का उदय होने के कारण से और उसके लिए शरीर नाम कर्म आदि का अभी उदय आने वाला है लेकिन अभी उसके लिए गति आदि के उदय के बिना भी, अभी उसके अन्दर यह जो आयु कर्म के उदय चल रहे हैं, गति आदि कर्म के यह जो उदय चल रहे हैं, उन उदय के साथ में भी वह कर्म का बन्ध करता चला जाता है। यह उसके पास में विग्रहगति में भी बना रहता है। विग्रहगति में आप देखें तीन प्राण नहीं बताये- श्वाच्छोश्वास नहीं है, मन बल नहीं है, वचन बल नहीं है लेकिन काय का बल तो है, पाँच इन्द्रियाँ हैं, आयु हो गई। इन्द्रियाँ अभी बनी नहीं हैं लेकिन उनका क्षयोपशम होना भी उसके लिए वहाँ पर स्वीकार किया गया, उसको भी प्राण कहा गया है।

जन्म लेने के स्थान पर जीव पुद्गल वर्गणा ग्रहण करता है

जिन कर्मों का वह अपने अन्दर क्षयोपशम, उदय आदि लेकर के चल रहा है, वह सब सम्पदा उसकी अपने पास में है। आगे जाकर उसे जिस स्थान पर जन्म लेना है, वहाँ के योग्य पुद्गल वर्गणाओं को वह अपने आप ग्रहण करने लगेगा और जितनी उसकी पर्याप्ति नाम कर्म आदि के उदय के कारण से या जाति नाम, गति नाम कर्म आदि के उदय के कारण से जिस गति में, जिस जाति में, जितनी पर्याप्तियों के साथ, उसे जन्म लेना है, वह सब वहाँ पर बनना शुरू हो जाएगा।

विग्रहगति में भी जीव अपने पुण्य-पाप लेकर चलता है



इसलिए विग्रहगति में भी सब चलता रहता है। जीव अपना पुण्य-पाप लेकर जा रहा है। आप कहते तो हो कि जीव कुछ भी लेकर नहीं जाता, अपना पुण्य-पाप ही साथ जाता है। कभी देखो तो, कहाँ साथ जा रहा है? कैसे साथ जा रहा है? अब दिखाई दे रहा है न कैसे साथ जा रहा है? पुण्य का या पाप का वह जिस भी कर्म का उदय होने वाला है या जिस भी आयु आदि का उदय होना है, वह उसके साथ में पहले से ही fix हो गया, चल रहा है, उसने पहले ही बाँध लिया है। उसी के अनुसार वह उसी direction में जाएगा। समझे न? कोई बीच में भगवान का कोई interference नहीं है, उसे कोई भी interference नहीं है। बीच में कोई दूसरी ब्रह्मा, विष्णु किसी का कोई लेना-देना नहीं है। सब जीव अपने ही कर्म से खुद उस स्थान तक पहुँच जाता है। क्या बनना है?...यह उसके ही कर्म से पहले निर्धारित हो चुका है, अब बीच में कोई भी अदला-बदली, लौटा-पलटी कुछ नहीं हो सकती है। न कोई उसको kidnap कर सकता है, न कोई उसकी किसी भी तरीके की direction को change कर सकता है, कुछ नहीं कर सकता... **'विग्रहगतौ कर्मयोगः'**

जीव जब से गर्भ में आया तब से ज्योतिष को देखना चाहिये

ध्यान रखो! यह **'विग्रहवती च संसारिण:प्राक् चतुर्भ्य: '** जब जीव का जन्म हो जाता है तब लोग समझते हैं कि जीव का जन्म हो गया। जन्मपत्री बनती है, गर्भपत्री क्यों नहीं बनती? मैं ज्योतिषाचार्यों से पूछना चाहता हूँ, जो astrology पढ़ते हैं, उनसे पूछ रहा हूँ कि जन्म का समय देख करके उसका भविष्य देखा जाता है...जबकि यह देखना चाहिए कि इस जीव का गर्भ कब हुआ था? जीवन तो वहीं से शुरू हो गया। चलो विग्रहगति की जो बात है वह तो आपके पकड़ से बाहर है लेकिन महत्व यदि होना चाहिए तो गर्भ का होना चाहिए। कब आया? किन नक्षत्रों का उदय चल रहा था? किन ग्रहों की स्थितियाँ चल रही थी, जब यह जीव उस गर्भ में आया। यह अगर सही ज्योतिष इसके माध्यम से जाना जाएगा तो मुझे लगता है सही ज्योतिष यहाँ से शुरू होता है लेकिन यह बात लोगों को जानने के लिए असम्भव है। इतनी भी असम्भव नहीं है, अगर लोग प्रयास करें तो यह सम्भव भी हो सकती है। जब तीर्थंकरों का गर्भ होता है, रानी को स्वप्न आता है, उन्हें पता पड़ जाता है। कहीं न कहीं गर्भ का पता तो चल ही रहा है कि आज रात्रि में तेरे गर्भ में वह जीव आ गया, राजा सुबह बता रहा है। यह चीज अगर देखी जाए तो उसी से ही यह सब जीव का भविष्य तैयार होना चाहिए।

गर्भ की कुण्डली बनाना चाहिए

तीर्थंकरों की भी कहीं कुण्डलियाँ बनती हैं? मैंने कहीं भगवान महावीर स्वामी की भी कुण्डली देखी थी लेकिन वह सब जन्म के समय की थी। जब गर्भ कल्याणक हुआ है, गर्भ की तिथि निश्चित है, तो तीर्थंकरों के लिए जब गर्भ की तिथि निश्चित होती है, तो गर्भ से ही सब कुछ अनुमान लगाया जाना चाहिए और मैं कहता हूँ अगर ज्योतिषियों को और अपना ज्ञान बढ़ाना है और एक नया ज्योतिष तैयार करना है, तो गर्भ की कुण्डली बनाना शुरू करना चाहिए। बताएगा कोई हमें बात सही है कि नहीं? ऐसी बात तो नहीं कि असम्भव है? तीर्थंकरों के लिए सम्भव हो रहा है। उनके गर्भ कल्याणक की तिथि निश्चित है, तो time भी निश्चित हो जाता है। जैसे उनका गर्भ के कल्याणक की तिथि निश्चित होती है, वैसे सामान्य व्यक्ति भी अगर गौर फरमाएँ तो उसके लिए भी यह सम्भव हो सकता है। ध्यान दे तो! और मेरी दृष्टि में वही महत्वपूर्ण है। क्योंकि यह तो बहुत बड़ा काम है कि जीव किस समय पर गर्भ में आया? जन्म तो आप आगे-पीछे भी कर सकते हो।

आज कल के डॉक्टर जन्म के समय के साथ खिलवाड़ करते हैं



आज तो डॉक्टर लोग खिलवाड़ ही कर रहे हैं। वे तो आपसे date पूछते हैं- भाई! बताओ! आपके लिए कौन-सा दिन अच्छा है. उसी दिन delivery कर दे। फिर यह चीज कहाँ समझ नहीं आती, फिर यह ज्योतिष जो जन्मपत्री के साथ चलता है, यह कैसे fit बैठेगा? अगर हम इस तरीके का जन्म के साथ

खिलवाड़ कर रहे हैं तो ये जन्मपत्रियाँ उस व्यक्ति के भविष्य का निर्धारण कैसे कर पाएँगी? मैं इसलिए कह रहा हूँ कि जन्मपत्रियाँ भी फेल हो सकती है लेकिन गर्भपत्री कभी फेल नहीं हो सकती है। जो कहीं भी ज्योतिष का अध्ययन करने वाले, जो कहीं भी, कहीं भी बन्धु मिले थोड़ा इस बात पर जरूर focus करे कि कहीं न कहीं हमें गर्भ के समय से पत्रिका मिलान करना चाहिए और उन लक्षणों को देखकर के हमें समझना चाहिए कि ये लक्षण इस जातक में perfect दिखाई दे रहे हैं और इसी के माध्यम से इस जातक का हमें सही-सही ज्योतिष का ज्ञान भी हो रहा है।

मुनिश्री का चिन्तन - गर्भ और जन्म के विषय में

ऐसा मेरा अपना अनुमान, मेरा जो विचार है, वह यह कहता है कि जन्मपत्री से ज्यादा गर्भपत्रिका का महत्व होना चाहिए। जीव आया, वही क्षण महत्वपूर्ण है। किसी का जन्म सात महीने में हो जाता है, किसी का आठ महीने में हो जाता है, किसी का नौ में भी हो सकता है, किसी का साढ़े नौ में भी होता है। दस में भी होता है? हो जाता होगा, कम ही होता है लेकिन हो जाता है, सात वाला भी कम ही होता है। लेकिन सुनते हैं श्रीकृष्ण का जन्म सात महीने में ही हुआ था। ऐसा भी है, जन्म को हम आगे-पीछे भी देख पाते हैं। होना था कभी, सहसा भी कभी हो जाता है। जन्म इतना महत्वपूर्ण हमारी समझ में नहीं आता, जितना गर्भ का समय महत्वपूर्ण समझ में आता है और उस समय पर जब यह जीव जन्म ले रहा है मतलब गर्भ में आया है, तो वहाँ से यह जैसे ही उस गर्भ के स्थान पर या जन्म जहाँ उसका होना है उस स्थान पर पहुँचा, उसके प्रथम समय से ही उस जीव के लिए, शरीर के योग्य, पर्याप्तियों के योग्य, जो पुद्गल वर्गणाएँ हैं वह ग्रहण करना शुरू हो जाती हैं, विग्रहगति में कुछ भी नहीं होगा।

गति कर्म के अनुसार ही होती है



विग्रहगति में किसकी वर्गणाएँ आएँगी? केवल कर्म वर्गणा। आत्मा के प्रदेशों में योग चलेगा, किसके निमित्त से? कर्म वर्गणाओं के निमित्त से, कर्म योग इसी का नाम है। कर्म का सद्भाव उसका विग्रहगति में भी नहीं छूटता, यह अपने दिमाग में बहुत अच्छे ढंग से fit कर लेना। जो कर्म आगे उदय में आने वाला है या जिसका क्षयोपशम वह लेकर जा रहा है, जिसकी गति आदि का जैसा उदय है, उसके अनुसार ही वह उसी direction में जा रहा है, यह सब fix है। उड़ान भरने से पहले जैसे pilot देख लेता है कि अपने को किस direction में plane उड़ाना है, ऐसे ही कर्म के अनुसार ही यह गति होती है। कौन-सी गति में, कौन सी जाति में, कितनी इन्द्रियों के साथ, कितनी पर्याप्तियों के साथ, कौन-सा शरीर, क्या? फिर उसके बाद में उस शरीर की पूर्णता या अपूर्णता, विकलांग होना या नहीं होना, ये सब चीजें फिर धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, जैसे-जैसे कर्मों के फल एक दूसरे के ऊपर जुड़ते चले जाते हैं, वैसे-वैसे उस जीव की निर्वृत्ति होती चली जाती है, निर्माण होता चला जाता है। **'विग्रहगतौ कर्मयोगः'** विग्रहगति में कौन-सा योग है?

योग का अर्थ

वहाँ पर भी योग चल रहा है...ध्यान रखना! बिना योग के तो कोई दुनिया में होता ही नहीं है, सब योग कर ही रहे हैं। योग का मतलब क्या है? हलन-चलन होना। अब देखो! कितनी अच्छी बात है, आप शरीर के हलन-चलन का नाम योग समझते हो और यहाँ आत्मा के प्रदेशों के परिस्पन्दन, हलन-चलन का नाम योग है। समझ आ रहा है? आत्मा के प्रदेशों में जो परिस्पन्दन हो रहा है उसका नाम योग है और वह स्पन्दन किसके निमित्त से हो रहा है? वह निमित्त बाहर का कुछ भी हो सकता है। आपके शरीर की चेष्टाएँ, आपके वचन की प्रवृत्तियाँ, आपके मन की विचारधाराएँ या कुछ भी नहीं है, तो विग्रहगति में कर्म का योग तो है ही... उसके निमित्त से भी आत्मा के प्रदेशों में हलन-चलन है। So soul is always in yogic mood. क्या समझ आया?

संसारी आत्मा हमेशा योग में रहता है

आत्मा हमेशा योग में रहता है, आत्मा का योग कभी छूटा नहीं है। जो आप कर रहे हैं, वह सब शरीर का योग है। आत्मा का योग मतलब उसमें परिस्पन्दन बना रहना। इसलिए इसको योग कहा गया। छठवें अध्याय में भी आगे बताया जाएगा...मन, वचन, काय की जो क्रिया का नाम योग क्यों हैं? क्योंकि वह आत्मा को हिला रहा है। इसका मतलब यह हुआ कि हलन-चलन का, हिलने-डुलने का नाम योग है। सिद्ध भगवान को योग कहाँ से हो गया? जिस योग को हम कह रहे हैं, वह तो मन, वचन, काय या कर्म के निमित्त से जो आत्मा के प्रदेशों में परिस्पन्दन होगा, उसका नाम योग है। वहाँ न मन-वचन-काय हैं, न कर्मों का परिस्पन्दन, वहाँ कहाँ परिस्पन्दन? सिद्ध भगवान में कौन-सा योग बनाना है आपको? देखें! योग का मतलब समझ आ रहा है, यह भीतरी अन्तरंग अध्यात्म योग इसको बोला जाता है। यह कर्म का योग

विग्रहगति में भी चल रहा है।

अनुश्रेणी का अर्थ किस प्रकार है?

अब देखो आप! जब यह जीव जाता है, तो किस direction में जाता है? कहाँ से जाता है? इसके लिए भी आचार्य यहाँ निर्धारण कर रहे हैं...

अनुश्रेणि गतिः ॥ 2.26 ॥

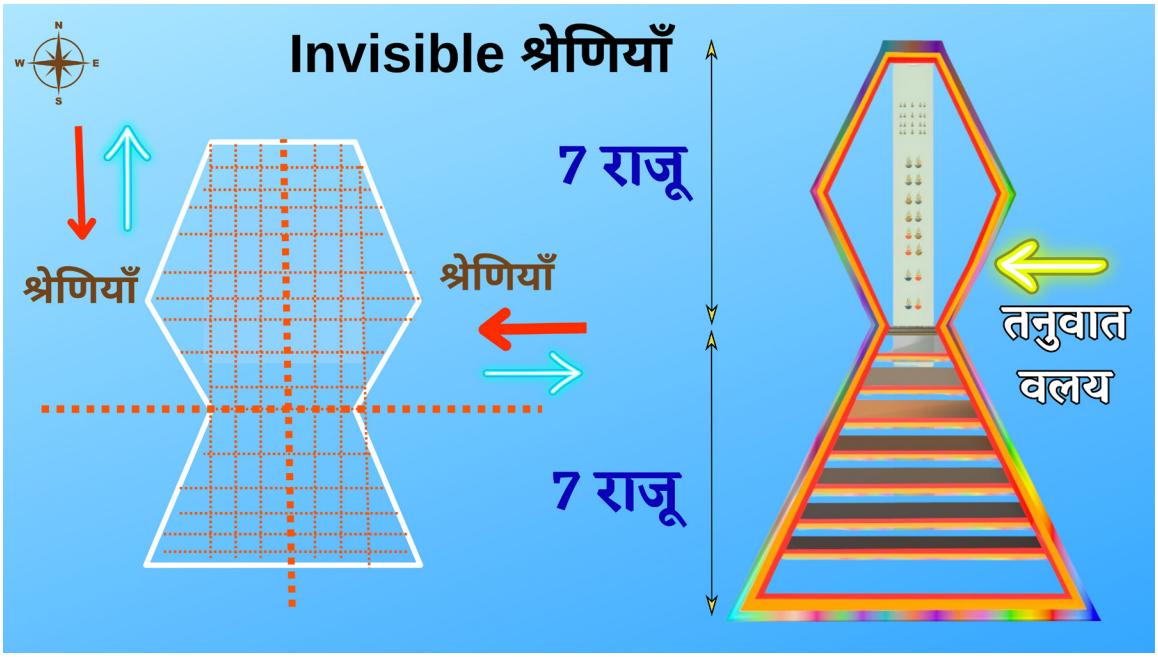
दोहा:-उर्ध्व अधो तिर्यक् दिशा, में जो सरल कतार।
श्रेणी उसको कहत हैं, गति श्रेणी अनुसार॥2.26॥

इस जीव की जब गति होगी, कौन-सी गति? विग्रहगति! उसी का वर्णन चल रहा न! जो विग्रहगति होगी, उस विग्रहगति में यह जीव कैसे चलेगा? अनुश्रेणी। अनु मतलब अनुसार, किसके अनुसार? श्रेणी के अनुसार। श्रेणी का मतलब नसैनी (सीढ़ी जैसे) जैसी समझ लो। जो lining होती है ऐसी समझ लो। जैसे चटाई पड़ी है, यह जो लकड़ी वाली सींक की चटाई होती है, इसमें देखो सब श्रेणियाँ बनी हुई हैं- horizontal भी हैं, vertical भी हैं। समझ आ रहा है? यह vertical, horizontal दो तरह की श्रेणियाँ हैं। ऊपर की ओर और आजू-बाजू, तिरछी। कोई भी कपड़ा आप देखोगे, कपड़ा तो आप देख रहे हो लेकिन उसके जो तन्तु हैं, रेशे हैं उनको आप देखो कि उनका formation किस तरीके चल रहा है? पूरा ऊपर से नीचे, ठीक इसी तरह की lining बनी हुई है, line पर ही चलना है।

विग्रहगति में जीव कैसे चलेगा?

वे lines invisible हैं। जैसे plane की line invisible होती हैं, उसी तरीके से जीव जब एक गति से दूसरी गति में जाता है, तो उस श्रेणी के अनुसार जाता है, इधर-उधर नहीं जाता। उसको उसी line पर चलना होता है। वे lines कहाँ बनी हुई हैं? पूरे आकाश में बनी हुई हैं। कहाँ से शुरू होती हैं? लोकाकाश का जो मध्य भाग होगा वहाँ से शुरू होगी, उनका center हैं। वह इधर भी, उधर भी, उधर भी, इधर भी सभी direction में लेकिन कोई भी line टेढ़ी-मेढ़ी नहीं होगी। विदिशा में कोई line नहीं है, line बिल्कुल straight है। चाहे वह straight ऊपर की ओर हो, चाहे वह straight बिल्कुल इधर-उधर हो तो ऐसी ये जो lining बनी हुई हैं और ये lines उस लोक के मध्य भाग से शुरू होकर नीचे भी और ऊपर तक भी।

पूरे लोक की ऊँचाई कितनी है जानिए



अब देखो आप! पूरे लोक की जो ऊँचाई है वह कितनी है? चौदह राजू है। पूरे लोक की जो ऊँचाई है, कितनी है? चौदह राजू। सबसे नीचे जो नरकों के भी नीचे पृथ्वी के नीचे जो बिल्कुल bottom है, जिसको अन्तिम स्थान बोलते हो, तनुवात वलय होता है और ऊपर भी इसी तरीके से तीन वात वलय का सबसे last का वात वलय तनुवात वलय तो चौदह राजू की इस ऊँचाई में मध्य में जो केन्द्र है, वहाँ से ये सात-सात राजू में divide हो जाते हैं, इनको बोलते हैं- श्रेणी। एक श्रेणी सात राजू की होती है। लोक के मध्य भाग से चारों ओर ये श्रेणियाँ divide हो जाती हैं और वे होंगी बिल्कुल इसी तरीके से horizontal या vertical किसी भी ओर, विदिशा टेढ़ी दिशा में नहीं होंगी।

जीव का एक गति से दूसरी गति में गमन

इन्हीं श्रेणियों के अनुसार ही जीव का गमन चलता रहता है। मतलब यह पूरी line है, जैसे four line आप देखते हो न, ऐसी line बनी हुई है। जीव जा रहा है, मरने के लिए जा रहा है, उसी में से वह जीव जीने के लिए, जन्म लेने के लिए आ रहा है। मतलब ये सब lines बिल्कुल भरी रहती हैं, full रहती हैं। क्यों नहीं होंगी full? हर जगह ये जीव हैं और हर जगह पर उस जीव के गमन करने के लिए बिल्कुल ये pathways बने हुए हैं। क्या समझ आ रहा है? आप समझो! आपको जो यह traffic दिखाई दे रहा है, इससे ज्यादा traffic तो हमें चारों

और दिखाई देता है। क्यों नहीं होगा? अब कितने ही जीव ऐसे हैं, जिनकी आयु अन्तर्मुहूर्त है, उससे भी कम है। वे तो हमेशा हर अन्तर-अन्तर्मुहूर्त में मर रहे हैं और अनन्त जीव इस प्रकार की संख्या वाले, कोई कहाँ से कहीं पर, कहीं से कहीं पर, कहीं से कहीं पर, सब जा रहे हैं, सब lines बिल्कुल भरी रहती हैं। कोई जीव line के विरुद्ध नहीं हटता, कहीं नहीं जाएगा, line पर ही जाएगा, line के through ही जाएगा। अगर उसे कहीं मान लो वहाँ से उधर जाना है, तो पहले वह वहाँ से यहाँ आएगा, फिर यहाँ से वहाँ जाएगा...linear position से जायेगा, linear motion होगा उसका। समझ आ रहा है? मतलब ऐसा नहीं वह direct (टेढ़ा नहीं) वहाँ से वहाँ चला जाए। जैसे triangle बनाया जाता है, तो उसमें एक आधार होता है, एक लम्ब होता, एक कर्ण होता है। कर्ण वाली position में कुछ नहीं होगा। इस-इस तरह से यह श्रेणियाँ बनी हुई हैं।

जीव गमन श्रेणी में ही चलता है



आप देखो ! अनन्त जीव हैं और चार गतियों में जीवों का हमेशा जन्म-मरण चल रहा है। किसी time पर किसी की आयु पूरी हो रही है, कितने जीवों की किसी time पर जन्म के लिए शुरू हो रहे हैं। कोई जन्म पूरा कर रहा है, कोई आयु पूरी कर रहा है...अनन्त जीवों के साथ कुछ भी चल रहा है और यह सारा का सारा traffic इसी श्रेणी में चलता हुआ विग्रहगति से हमारे भी आसपास से गुजर रहा है और तुम्हें पता भी नहीं है। श्रेणी तो यहाँ भी बनी है न, जहाँ हम बैठे हैं। आकाश का कोई भी प्रदेश बाकी तो है नहीं, श्रेणी तो सब जगह बनी हुई है। यहाँ भी जीव आ रहा है, जा रहा है, मर रहा है, pass हो रहा है। कैसे महसूस होगा आपको? जीव तो कुछ पता नहीं पड़ेगा। फिर यह क्या है? 'अनुश्रेणी गतिः' ढंग से समझो तो जल्दी क्या पड़ी है? जब भगवान ने अपने को ज्ञान दिया है, तो हम भी भगवान के दिए हुए ज्ञान को ढंग से समझ कर आगे बढ़े। जल्दी क्या पड़ी है?

अविग्रह गति का मतलब

यह जो गति है, इस गति को जानने के बाद में अब आचार्य आगे कहते हैं...

अविग्रहा जीवस्य ॥ 2.27 ॥

दोहा:- सर्व अर्थ को सिद्धकर, सिद्धशिला जब जात।
श्रेणी के अनु हो गती, बिना मोड़ ही जात ॥2.27 ॥

क्या कहते हैं? अब देखो! क्या कह रहे हैं? सबसे पहले यहाँ बता रहे हैं कि जो जीव है, उस जीव की जो गति है, वह विग्रह से रहित है। अब यहाँ पर विग्रह का मतलब दूसरा आ गया। 'अविग्रहा जीवस्य' यहाँ पर विग्रह मतलब आ गया मोड़ा। मोड़ लेना, turn होना, curve आना, इसको बोलते हैं- मोड़। यहाँ यह बताया जा रहा है कि जो सिद्ध जीव होते हैं, उनकी गति

तो नियम से अविग्रहा होगी मतलब विग्रह से रहित होगी, उन्हें कहीं turn नहीं लेना पड़ेगा। क्या आया समझ में? मोड़े से रहित सीधी गति जिसको ऋजुगति बोलते हैं।

अविग्रह गति किस जीव की होती है?



मुक्त जीवों की जो गति है, वह विग्रह से रहित होती है यानि उनके लिए कहीं पर भी मोड़ा नहीं होता। जहाँ से उनकी आयु, मुक्त जीवों की पूर्ण हो गई, वहीं से उनका सीधा समान्तर ऊपर की ओर, उसी श्रेणी से गमन होकर के लोक के अन्त भाग पर जाकर के तनुवात वलय में विराजमान हो जाना होता है और इधर-उधर जीव कहीं नहीं जाएगा। अभी आगे आने वाले सूत्र में संसारी जीवों की बात भी करेंगे। अभी यहाँ किसकी बात कर रहे हैं? जो नियम से विग्रह से रहित हैं...विग्रह से रहित संसारी जीव भी होते हैं, सीधे जाने वाले संसारी जीव भी होते हैं लेकिन जो नियम से विग्रह से रहित है वे मुक्त जीव ही होते हैं। संसारी जीवों के लिए नियम नहीं है। मुक्त जीवों की गति विग्रह से रहित होती है और वह अविग्रहा गति कहलाती है। देखा जाए तो अगर हम यह भी लगाएँ कि विग्रह मतलब शरीर है, तो अविग्रह मतलब शरीर से रहित।

अविग्रह गति बिलकुल सीधी होती है

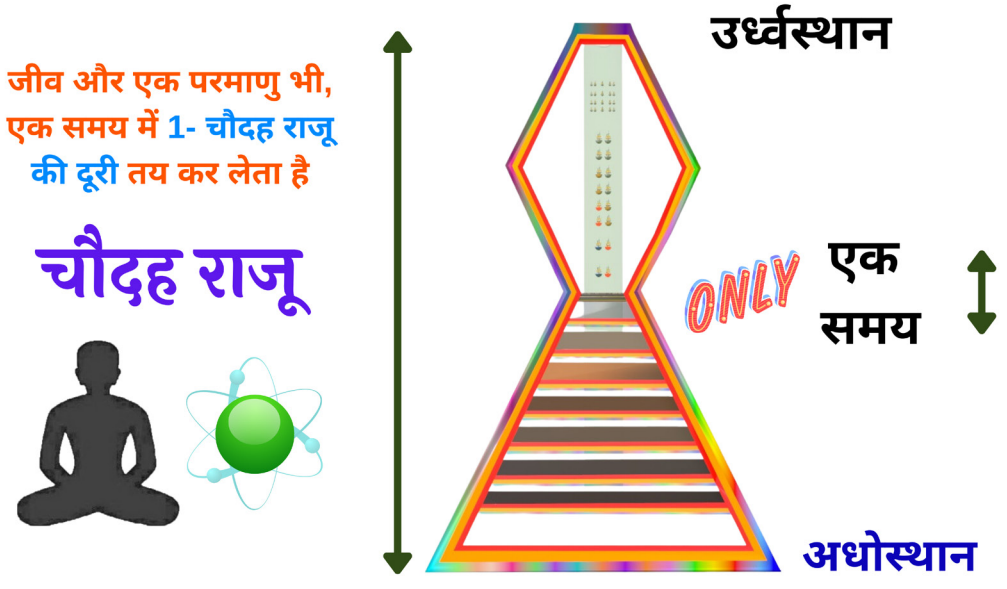
'अविग्रहा जीवस्य' शरीर से जो रहित हुआ है, उस जीव की गति कैसी होगी? वह बिल्कुल सीधी होगी। उसमें कहीं पर भी turn नहीं होगा। अब मुक्त जीव भी हो सकता है, संसारी जीव भी हो सकता है। अगर संसारी जीव होगा तो वह भी सीधा ही जाएगा, अगर विग्रह से रहित हो कर जा रहा है। आप यह समझो कि यह जो अविग्रह गति होती है, इतनी तीव्र गति होती है कि अविग्रह गति में संसारी जीव चौदह राजू एक समय में नाप सकता है।

अविग्रह गति एक समय में पूरी होती है

SCAN TO WATCH

एक समय! **'समय'** जानते है न? वही काल की सबसे सूक्ष्मतम इकाई, जिसका हम अनुमान भी नहीं लगा सकते। इतने सूक्ष्म समय में एक जीव चौदह राजू तक अपनी गति कर सकता है। चौदह राजू मतलब कि अगर वह जीव अधोलोक में सबसे नीचे के स्थान पर जो सबसे नीचे तनुवात वलय का स्थान है, वहाँ से मरे और उसे जाना हो जन्म लेने के लिए, कहाँ पर? ऊपर ऊर्ध्वलोक में जो तनुवात वलय बने हैं, उन एकेन्द्रिय जीवों में उसको जाना हो, वहाँ तो और कुछ है ही नहीं न, एकेन्द्रिय तो होंगे...उन्होंने वहाँ जन्म लेने जाना हो तो वह नीचे वाला जीव, एकेन्द्रिय जीव मरण करके ऊपर एकेन्द्रिय जीव में जन्म लेने वहाँ उस स्थान तक पहुँचने में चौदह राजू एक समय में पूरा कर लेगा।

जो गति हो रही है वह उस द्रव्य पर निर्भर है समय में अन्तर नहीं है



एक समय! अब देखो समय का बँटवारा नहीं होता। अब आप देखो गणित लगाने बैठ जाए, कोई mathematics जानता हो, बोले...जब यहाँ मध्यलोक में कोई जीव बैठ करके, यहाँ से कोई जन्म-मरण करके और जन्म लेने के लिए जब ऊर्ध्वलोक में जाता है, तो सात राजू तय करता है तब भी एक समय लग रहा है। जो जीव नीचे बिल्कुल अधोस्थान से ऊपर स्थान में जन्म ले रहा है- चौदह राजू तो उसमें भी एक समय लग रहा है। यह आपका गणित समझ में नहीं आता? यह आपको समझना पड़ेगा, आप समय के fraction नहीं कर सकेंगे। time की यह जो unit है, इसका कोई फिर और दूसरा fraction है ही नहीं। इसलिए इस time में ही वह सात राजू भी तय करेगा और इसी एक समय में वह चौदह राजू भी तय कर लेगा और इसी एक समय में अगर मान लो किसी को सीधा जाकर केवल एक राजू ही जाकर के जन्म लेना है, तो वह भी एक राजू में ही जन्म ले लेगा। एक योजन भी जब दूर जाकर के जन्म लेना है, तो वह भी कर लेगा। सुन रहे हो? एक समय में किसी की भी जो गति हो रही है, वह उस द्रव्य पर निर्भर है, समय में अन्तर नहीं है। द्रव्य की वह योग्यता कि उसे सात राजू जाना कि चौदह राजू जाना। बस! वह सात राजू भी उतने समय में जाएगा और चौदह राजू भी उसी समय में जाएगा।

जीव की भी गति होती है और पुद्गल की भी

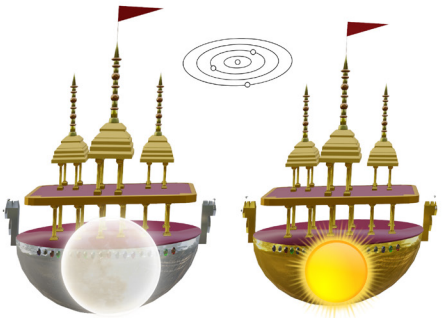
यह जीव की भी गति होती है, तो आचार्य कहते हैं- पुद्गल की भी होती है। एक परमाणु भी एक समय में चौदह राजू की दूरी तय कर लेता है। एक परमाणु नीचे से बिल्कुल अधोस्थान से ऊपर के उर्ध्वस्थान के अन्तिम भाग तक भी केवल एक समय में चौदह राजू तक भी जा सकता है। बस! दो चीजों की गति होती है- जीव की और पुद्गल की। जो गति हमारे लिए निर्धारित है, उसकी यहाँ चर्चा है। निर्धारित किस रूप में? जैसे कोई जीव एक भव को छोड़कर दूसरे भव में जाता है, तो उसके लिए यह निर्धारण है कि वह इसी तरीके से जाएगा। कोई जीव को एक समय से दूसरे समय में कहीं पहुँचना है, तो उसका निर्धारण है कि वह इसी समय, इसी तरीके से, गति के अनुसार ही जाएगा, श्रेणी के अनुसार ही जाएगा। गति जो होती है, वह श्रेणी के अनुसार होती है और वह गति जीव और पुद्गलों की होती है। लेकिन जिनके लिए निर्धारित है, उनकी ही इस गति को यहाँ पर लगाना अन्यथा और कोई भी जीवों की गति तो किसी भी रूप में हो सकती है।

यह नियम सिर्फ विग्रहगति के लिए है

जैसे हम और आप हैं, कहीं भी भाग सकते हैं। इस कोने से उस कोने में भी जा सकते हैं, उस कोने से इस कोने में भी जा सकते हैं। उस गति का यहाँ पर लेना-देना नहीं। किसका? जो विग्रह के लिए हो रही है, विग्रह गति की बात है, उसके लिए यह नियम है। विद्याधर होते हैं वे भी कहीं से कहीं तक जाते हैं। सूर्य, चन्द्रमा की गति है वह भी गोलाकार चलती रहती है। इन गतियों वाले जीवों का नियम नहीं है। यह नियम किसके साथ है? जो विग्रहगति के लिए तैयार

हो रहे हैं, उन्हीं के लिए यह नियम है। इस तरह से आप अभी यह जो बीच की विग्रहगति का जो वर्णन चल रहा है, इसमें थोड़ा-सा वर्णन अभी और बचा है, उसके बाद में आपको जन्म आदि का वर्णन सुनने को मिलेगा। ये सब चीजें हमारे लिए जानना बहुत ही आवश्यक भी हैं और बहुत अच्छी चीजें हैं, जिन्हें केवल जैन सिद्धान्तों में ही लिखा है, अन्य कहीं भी आपको ये सब चीजें जानने को नहीं मिलेंगी।

सूर्य, चन्द्रमा की गति भी गोलाकार चलती रहती है



चन्द्रमा सूर्य

विद्याधर कहीं से भी कहीं तक जाते हैं



सारांश

1. हमने जाना कि जीव एक समय के लिए भी आयु कर्म के उदय से रहित नहीं होता
2. एक आयु का उदय पूरा होता है, उसी समय पर ही दूसरी आयु का उदय शुरू हो जाता है
3. गर्भ में आने से पहले और मरण होने के बीच का समय भी आयु कर्म में ही count होता है
4. जैन सिद्धान्त में **एक-एक समय** की counting है
5. सर्वज्ञ के बिना कोई भी इन सब बातों को बताने में सक्षम नहीं हो सकता
6. सूत्र 25 में हमने विग्रहगति को समझा
    - विग्रह का अर्थ है - शरीर
    - और गति का अर्थ है - गमन

7. अतः जो गति विग्रह अर्थात शरीर के लिए हो रही है उसे विग्रहगति कहते हैं
8. यह आत्मा के एक भव से दूसरे भव में जाने के बीच की गति है
9. विग्रह का एक और अर्थ है - 'वि' यानि विरुद्ध और 'ग्रह' मतलब ग्रहण करना
    - अर्थात ग्रहण नहीं करना
    - अतः जिस गति में शरीर के योग्य नोकर्म पुद्गल वर्गणाओं को ग्रहण न करें उसे विग्रहगति कहते हैं

10. कर्म वर्गणा से आत्मा में कर्मों का बन्ध होता है
11. आहार आदि, हवा पानी के माध्यम से शरीर की जो पर्याप्तियाँ बनी हुई है, श्वासोच्छवास आदि के माध्यम से जो हम शरीर के अन्दर पुद्गल वर्गणाओं को करते हैं उन्हें नोकर्म पुद्गल वर्गणा कहते हैं
12. विग्रहगति में आत्मा के साथ तैजस और कार्मण शरीर होते हैं, औदारिक शरीर नहीं
13. अतः इस समय पर औदारिक या वैक्रियिक शरीर के योग्य वर्गणाएँ ग्रहण नहीं होती
14. हमने जाना कि आत्मा के प्रदेशों में परिस्पन्दन को योग कहते हैं
15. योग तीन प्रकार के होते हैं
    - मन या मनोवर्गणाओं के निमित्त से मनोयोग
    - वचन वर्गणाओं के निमित्त से वचनयोग और
    - नोकर्म औदारिक आदि शरीर के निमित्त से काययोग

16. विग्रहगति में कर्म के माध्यम से आत्मा के प्रदेशों में परिस्पन्दन होता है इसे कर्म योग या कार्मण काय योग कहते हैं
17. कार्मण काय योग के माध्यम से कर्म का बन्ध, उदय, क्षयोपशम आदि सब बने रहते हैं
18. विग्रहगति में तीन प्राण - श्वाच्छोश्वास, मन बल और वचन बल नहीं होते

19. अतः संज्ञी पंचेन्द्रिय के विग्रहगति में दस के स्थान पर सात प्राण होंगे
20. यहाँ इन्द्रियाँ अभी बनी नहीं हैं लेकिन उनका क्षयोपशम होना से उन्हें यहाँ प्राण स्वीकारा है

21. वर्तमान प्रकरण में हम जीव के मरण और जन्म के बीच की अवस्था - विग्रहगति को सिद्धांततः समझ रहे हैं
22. विग्रहगति में जीव अपने पुण्य-पाप लेकर चलता है
    - जिससे उसका direction कि उसे किस गति आदि में जाना है पहले से ही fix हो जाता है
    - और इसमें किसी भगवान आदि का कोई interference नहीं होता है

23. जीव अपने ही कर्म से खुद गंतव्य तक पहुँच जाता है
24. हमने मुनि श्री के चिंतन को समझा कि जन्मपत्री तो जन्म के समय से बनती है
    - मगर जीवन तो गर्भ से ही शुरू हो जाता है
    - अतः ज्योतिष को जीव के गर्भ में आने के समय को देखना चाहिये
    - उसकी **गर्भ-पत्रिका** बनानी चाहिए
    - क्योंकि वह क्षण महत्वपूर्ण है

25. तीर्थंकरों के गर्भ का अनुमान, रानी के स्वप्न से पता चल जाता है
    - कि आज रात्रि में उनके गर्भ में वह जीव आ गया
    - जब गर्भ कल्याणक हुआ है तो गर्भ की तिथि से ही सब कुछ अनुमान लगाना चाहिए

26. हमने देखा कि आजकल डॉक्टर अच्छा मुहूर्त देखकर delivery कर देते हैं
    - विचारणीय है कि जन्म के तरीके से इस तरह खिलवाड़ करके जन्मपत्री उस व्यक्ति के भविष्य का निर्धारण कैसे कर पायेगी?

27. हमने जाना कि कर्मों के क्षयोपशम, उदय आदि के कारण जीव आगे जाकर जिस स्थान पर जन्म लेगा, वहाँ के योग्य पुद्गल वर्गणाओं को वह अपने आप ग्रहण करने लगेगा
    - जैसे एक pilot को plane की दिशा का पता होता है उसी प्रकार कर्मों के कारण जीव कौन-सी गति में, जाति में जायेगा; कितनी इन्द्रियों के साथ, पर्याप्तियों के साथ होगा; कौन-सा शरीर मिलेगा आदि सभी fix होते हैं
    - शरीर की पूर्णता या अपूर्णता, विकलांग होना या नहीं होना आदि सब चीजें धीरे-धीरे अन्य कर्मों के फल से ऊपर जुड़ते चले जाते हैं और उस शरीर का निर्माण

होता चला जाता है

28. हमने जाना कि विग्रहगति में भी **कर्म योग** होता है क्योंकि वहाँ केवल कर्म वर्गणाएँ ही आती हैं

29. योग का मतलब है **मन, वचन, काय या कर्म** के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में परिस्पन्दन, हलन-चलन होना

30. अक्सर लोग सिर्फ शरीर के हलन-चलन का नाम योग समझते हैं

31. हमने जाना कि संसारी आत्मा हमेशा योग में रहता है

32. सिद्ध भगवान मन-वचन-काय और कर्म रहित हैं
    - वहाँ योग का मतलब भीतरी अन्तरंग अध्यात्म योग है

33. सूत्र 26 में हमने जाना कि विग्रहगति में जीव श्रेणी के अनुसार गति करेगा
    - श्रेणी का मतलब नसैनी - एक सीढ़ी जैसी
    - जैसे सीक की चटाई में vertical, horizontal दो तरह की line होती हैं
    - वे श्रेणियाँ हैं
    - और जीव इन्हीं line पर ही चलेगा

34. विग्रहगति में जीव जैसे plane की line invisible होती हैं, उसी तरीके से एक गति से दूसरी गति में श्रेणी के अनुसार जाता है
    - चौदह राजू ऊँचे इस तीन लोक के मध्य से ऊपर और नीचे तनुवात वलय तक सात राजू की श्रेणी होती है
    - लोक के मध्य भाग से चारों ओर, पूरे आकाश में ये श्रेणियाँ horizontal या vertical lines के रूप होती हैं
    - ये टेढ़ी-मेढी नहीं होती हैं
    - इन्हीं श्रेणियों के अनुसार ही जीव सीधा गमन करता है

35. श्रेणियों में जीव का बहुत सारा traffic आस-पास से भी गुजर रहा है लेकिन हमें पता नहीं है

36. कितने ही जीव ऐसे हैं, जिनकी आयु अन्तर्मुहूर्त है, वे तो हमेशा हर अन्तर-अन्तर्मुहूर्त में मर रहे हैं और श्रेणी पर गमन कर रहे हैं

37. सूत्र 27 में हमने अविग्रह गति का समझा

38. विग्रह मतलब शरीर है, तो अविग्रह मतलब शरीर से रहित

39. अविग्रह गति बिलकुल सीधी होती है उसमें कहीं पर भी turn या मोड़ा नहीं होगा

40. जो सिद्ध जीव होते हैं उनकी गति नियम से अविग्रह होती है

41. इसे ऋजुगति भी बोलते हैं
42. मुक्त जीव आयु पूर्ण होने पर, उसी जगह से सीधा समान्तर ऊपर की ओर श्रेणी से गमन करके लोक के अन्तर्भाग पर जाकर के तनुवात वलय में विराजमान हो जाते हैं
43. सीधे जाने वाले संसारी जीव भी होते हैं
44. अविग्रह गति में संसारी जीव चौदह राजू एक समय में नाप सकता है
45. समय- काल की सबसे सूक्ष्मतम इकाई, जिसका हम अनुमान भी नहीं लगा सकते
46. इस **इकाई का कोई fraction** या विभाजन **नहीं** है
47. किसी भी दूरी को तय करने में जीव को एक ही समय लगेगा
    - चाहे वो मध्यलोक से सात राजू तय कर ऊर्ध्वलोक में जन्म लेने जाये
    - या केवल एक राजू दूर जन्म ले
    - या एक योजन दूर जन्म ले

48. एक समय में जो गति हो रही है वह द्रव्य की योग्यता पर निर्भर है, समय में अन्तर नहीं है
49. हमने जाना कि जीव की जो गति होती है वह पुद्गल की भी होती है
    - **एक परमाणु** बिल्कुल अधोस्थान से उर्ध्वस्थान के अन्तिम भाग तक एक समय में चौदह राजू तक जा सकता है

50. यह नियम सिर्फ विग्रहगति के लिए है
51. विद्याधर, सूर्य, चन्द्रमा आदि की गति के लिए यह नियम नहीं है

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1. अगले भव की आयु का बंध कब होता है?
1. इस भव की आयु समाप्त होने से पहले
2. इस भव की आयु समाप्त होने के बाद
3. दोनों तरह से हो सकता है

Q2. इस भव की आयु समाप्त होने के पहले ही आगामी भव की आयु का उदय हो जाता है यह कथन?
1. सही
2. गलत

Q3. आयुकर्म का उदय हर समय नहीं रहता है यह कथन?
1. सही
2. गलत

Q4 . देव मरकर मनुष्य हुआ, मनुष्यायु का उदय कब होगा?
1. गर्भ में आने पर
2. जिस समय देवायु का व्यय हुआ उसी समय पर
3. गर्भ में आने के 9 माह बाद
4. देवायु समाप्त होने के अन्तर्मुहूर्त पहले

Q5. विग्रह गति में जीव का गमन होता है - .
1. वर्तुलाकार
2. वक्राकार
3. श्रेणी के अनुसार

Q6. औदारिक शरीर के अभाव में भी जीव को कर्म बंध होता है।
1. हाँ
2. नहीं

Q7. संज्ञी पंचेन्द्रिय के विग्रह गति में कितने प्राण होते हैं?
1. 3
2. 5
3. 7
4. 10

Q8. पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल वर्गणाओं का ग्रहण कब से शुरु होता है?
1. जन्म के अन्तर्मुहूर्त पश्चात्
2. जन्म के प्रथम समय से
3. विग्रह गति में
4. पूर्व भव समाप्त होते ही

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q9. सिद्धों में भी योग होता है यह कथन?

1. हाँ
2. नहीं

Q10. श्रेणी की पंक्ति कहाँ से शुरू होती है ?

1. अधोलोक से
2. सिद्ध शिला के ऊपर से
3. लोकाकाश के मध्य भाग से

Q11. अनुश्रेणी ... .. । सूत्र पूरा कीजिए।

1. गति
2. गतिः
3. विग्रह गति
4. गतौ

Q12. संसारी जीवों की कौनसी गति होती है?

1. केवल विग्रह
2. केवल अविग्रह
3. दोनों हो सकती है

Q13. पूरे लोक की ऊँचाई कितने राजू है?

1. तीन
2. चौदह
3. सात
4. बारह

Q14. श्रेणी कितने राजू की होती है?

1. तीन
2. दस
3. सात
4. बारह

Q15. विग्रह गति में जीव linear position में ही गमन करेगा यह कथन कैसा है ?
1 point

1. सही
2. गलत

Q16. अविग्रहा _____ । पूर्ण करो

1. जीव
2. जीवत्व
3. जीवस्य
4. अजीवत्व

Q18. अविग्रहा जीवस्य। इस सूत्र मे अविग्रह का क्या अर्थ है ?

1. मोड़ रहित
2. मोड़ सहित
3. टर्न होना

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1 . नयी आयु का प्रारम्भ कब से होता है?
2 . विग्रह गति किसे कहते हैं?
3 . विग्रह शब्द का अर्थ बताइये।
4 . कर्म वर्गणा और नोकर्म वर्गणा में अंतर बताइये ।
5 . विग्रह गति में कौनसे शरीर होते हैं?
6 . विग्रह गति में कौनसी वर्गणाओं का ग्रहण होता है?
7 . विग्रह गति में कौनसा योग होता है?
8 . योग किसे कहते हैं?
9 . विग्रह गति में जीव की गति किसके अनुसार होती है?
10 . विग्रह गति के बारे में जानने से आत्मा के भटकने और पितृ तर्पण संबंधी भ्रांतियां कैसे दूर होती है?

प्रवचन 15

विग्रहगति क्या है?

विग्रहगतौ कर्म योगः ॥ 2.25 ॥



विग्रह गति का मतलब समझना यह चाहिए कि जब यह जीव, एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को प्राप्त करने के लिए जाता है, तो उस समय पर उसकी दो प्रकार की गति होती है। एक गति होती है- ऋजुगति और एक गति होती है- **विग्रहगति**। यहाँ पर यह ध्यान रखना है कि ऋजुगति का वर्णन नहीं किया जा रहा है विग्रहगति का वर्णन किया जा रहा है। ऋजुगति का अर्थ है- जो जीव एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए श्रेणी के अनुसार सीधा ही जाकर उत्पन्न हो जाए। बीच में उसे कहीं पर भी कोई भी turn न लेना पड़े। कोई भी मोड़ा जिसमें न आता हो उसको बोलते हैं- **ऋजुगति**। अगर वह कोई एक भी turn लेगा एक मोड़ा, दो मोड़ा, तीन मोड़ा तो वह उसके लिए विग्रहगति कहलाएगी। यह आपको सरलता से समझने के लिए बताया जा रहा है। विग्रह गति में ही कर्म योग होता है। ऋजुगति में क्या होगा? वह आगे चर्चा करेंगे लेकिन यहाँ पर यह ध्यान में रखना है कि विग्रह गति में ही कर्मयोग है क्योंकि कार्मणकाय योग जो होता है, वह तब होता है जब जीव आहारक नहीं होता, अनाहारक हो। आहारक, अनाहारक की चर्चा भी आगे आने वाली है, जिसका सम्बन्ध हमारे कर्म पुद्गलों के ग्रहण करने से नहीं किन्तु नोकर्म पुद्गलों के ग्रहण करने से है।

आहारक, अनाहारक में अन्तर

जो जीव नोकर्म पुद्गलों को ग्रहण करता है- वह आहारक कहलाता है और जो जीव केवल कर्म पुद्गलों को ग्रहण करता है- वह अनाहारक कहलाता है। इसकी चर्चा भी आगे होगी। यहाँ पर जो पहले आपको सूत्र में यह बताया था कि विग्रह गति में कर्मयोग है, तो इससे यह समझना कि ऋजुगति में कर्म योग नहीं होता है। यह शर्त केवल विग्रह गति के है और विग्रह गति से मतलब क्या है? जो मोड़े वाली गति होती है, उसको विग्रह गति कहते हैं। शुद्ध सरल भाषा में इतना समझना क्योंकि कई बार हम सभी सूत्रों का अर्थ तो पढ़ लेते हैं लेकिन शुद्ध सरल भाषा में कुछ भी समझ नहीं आता है। अतः विग्रह गति में कर्मयोग है, यह एक सूत्र हुआ **'विग्रहगतौ कर्म-योगः'**,अनुश्रेणि गतिः जब कर्मयोग होगा तो विग्रह गति में जो जीव जाएगा वह श्रेणी के अनुसार जाएगा। **"अनुश्रेणिः गतिः"** विग्रह गति में या ऋजुगति में जब भी गति होगी तो श्रेणी के अनुसार होगी। यह सूत्र दोनों गतियों के लिए बैठेगा।

फिर आगे का सूत्र आया- **'अविग्रहा जीवस्य'** अर्थात् यहाँ पर जो विग्रह से रहित। यहाँ पर अविग्रह का अर्थ है- मोड़े से रहित या यूँ कहे कुटिलता से रहित, जो गति होती है...उसको अविग्रहा कहा जाता है; अविग्रह गति! वह जीव की होगी (यहाँ पर केवल जीव लिखा है) तो जीव लिखने से हम यहाँ पर भी संसारी जीव को ग्रहण कर सकते हैं, मुक्त जीव को ग्रहण कर सकते हैं और सूत्र के अनुसार देखें तो यहाँ पर मुक्त जीव को ग्रहण किया जा सकता है क्योंकि आगे का जो सूत्र है वह संसारी जीवों के लिए आ रहा है...

विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥ 2.28 ॥

मोड़ रहित या मोड़ सह, गति संसारी जीव।
चार समय के पहिल ही, पुनः जन्म की नींव ॥2.28 ॥

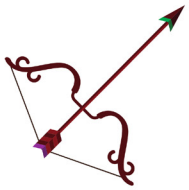
इस सूत्र में **'विग्रहवती च'**, यह जो 'च' आया है यह इसलिए आया है कि जो ऊपर वाला सूत्र था उसमें अविग्रहा वाली गति बताई गई थी और यहाँ पर विग्रह वाली गति। अविग्रहा मतलब बिना विग्रह वाली गति जिसे हम ऋजुगति कह सकते हैं और वही है। 'संसारिणः' मतलब वह संसारी जीवों के ही होती है। संसारी जीवों के दोनों प्रकार की गति होगी। विग्रह वाली भी होगी और बिना विग्रह वाली होगी अर्थात् मोड़े वाली गति भी होगी और बिना मोड़ वाली भी होगी जिसे हम ऋजुगति भी कहते हैं। यह संसारी जीवों के लिए है। **'प्राक् चतुर्भ्यः'** इसका time दिया है कि यह चार समय से पहले पहले तक ही होती है। कितने समय से? चार समय से मतलब तीन समय में ही यह गति पूर्ण हो जाएगी। चौथे समय में जीव नियम से आहारक हो जाता है और वह जीव नोकर्म वर्गणाओं को ग्रहण करने लग जाता है। यहाँ पर यह जानना है कि यह जो विग्रह वाली गति है, वह चार समय से जो पहले-पहले होती है, तीन समय वाली

होती है...वह कैसे होती है?

गति से गत्यान्तर की गतियों के प्रकार

गति को समझने के लिए, गति से गत्यान्तर जब कोई जीव होता है, तो उसे चार प्रकार की गति समझना।

1. इषु गति 2. पाणिमुक्ता गति 3. लाँगलिका गति 4. गोमूत्रिका गति






1. इषु गति- एक गति होती है- इषु गति। क्या बोलते हैं? इषु मतलब होता है- बाण। बाण का मतलब तीर! जैसे आपने रामायण में राम-रावण के बाण देखे होंगे न। वे कैसे जाते हैं? जिस direction में उनको भेजा जाता है, उसमें सीधे जाते हैं। उनमें curve नहीं होता, कहीं पर turn नहीं होता, bending नहीं होती। जिस तरह बाण की गति है उसी तरह से गति जीव की होती है, जो सीधा श्रेणी से गया और सीधा अपने स्थान पर जाकर के उत्पन्न हो गया। उसको कहा जाता है- इषु गति। क्या बोलते हैं? इषु गति। इस गति में एक समय लगता है। कितना? एक समय।

SCAN TO WATCH

2. पाणिमुक्ता गति- दूसरी गति होती है- पाणिमुक्ता गति। कौन सी गति? पाणिमुक्ता गति। पाणि तो आप जानते ही हो, पाणिग्रहण संस्कार करते ही हो, वही पाणि है। पाणि का मतलब हाथ होते हैं। हाथ पर जैसे मुक्ता रखा हो, मुक्त मतलब होता है- मोती और वह मुक्ता मोती हाथ से यूँ गिरे तो कैसे गिरेगा? यहाँ से आता हुआ हाथ से नीचे गिरकर के एक curve, एक turn लेगा। यहाँ से नीचे गिरेगा तो जो angle बना, उसे कहते हैं- एक मोड़ा। यह क्या हो गया? यह एक मोड़ा वाली गति है। कौन सी गति? पाणिमुक्ता गति, इस पाणिमुक्ता गति में यह जो एक मोड़ा वाली गति है, अब इसमें समय कितना लगा? दो समय लगे। एक समय उसका लगा जो देखा जाए तो यह समय उसका अनाहारक का काल है, जो पहला समय है। दूसरे समय में तो वह मोड़ा लेकर के उसमें जन्म ले लिया। दूसरे समय में आहारक हो जाएगा। एक समय के लिए ही वह कर्म योग वाला हुआ। कार्मण काय योग उसके लिए कितने समय के लिए रहा? एक समय के लिए। अनाहारक कितने समय के लिए रहा? एक समय के लिए। लेकिन गति में समय कितने लगे? दो। अतः पाणिमुक्ता गति दो समय वाली होगी। लेकिन उसमें मोड़ा

कितना होगा एक होगा अर्थात् एक मोड़े वाली गति में दो समय लगेंगे।

3. लाँगलिका गति– तीसरी गति होती है- लाँगलिका गति। कौन सी? लाँगलिका गति का मतलब होता है- हल के समान। जो किसान का हल होता है न! उसके समान उसमें दो मोड़े होते हैं। दो मोड़े हुए तो एक बार मोड़ा लेने में उसे दो समय लगे तो दो मोड़े में उसे तीन समय लगेंगे। समझ आ रहा है? लेकिन तीन समय में दो समय तो वह अनाहारक होगा और तीसरे समय में वह आहारक हो जाएगा।

4. गोमूत्रिका गति– फिर चौथी गति होती है- गोमूत्रिका गति। क्या बोलते हैं? गाय के मूत्र के समान उसकी गति में कई प्रकार के turn होते हैं। इसलिए उसको गोमूत्रिका नाम दिया गया। इस गति में समय कितना लगेंगे? चार। लेकिन गति कितने समय, मोड़े कितने लगेंगे? तीन। मोड़े लगेंगे तीन, समय लगेंगे चार और उन तीन में तीन समय तक तो वह अनाहारक होगा और चौथे समय में आहारक हो जाएगा। बस! इससे ज्यादा कुछ नहीं होता।

फिर से revise करे!

एक समय वाली गति कौन सी? इषु गति। दो समय वाली गति कौन सी? पाणिमुक्ता गति, तीन समय वाली गति? लाँगलिका गति और चार समय वाली गति? गोमूत्रिका। यह समय की अपेक्षा से हो गया। अब इन समय में कितने मोड़े वाले वाली गति? आपसे पूछा जाए एक मोड़ा वाली गति कौन सी है? पाणिमुक्ता गति। दो मोड़े वाली गति कौन सी? लाँगलिका गति और तीन मोड़े वाली गति कौन सी? गोमूत्रिका।

कार्मण काय योग क्या है?

विग्रह गति में जीव के लिए कर्म योग होता है, जो पहला सूत्र था 'विग्रहगतौ कर्मयोग:' अब इससे आप समझो कि कर्म योग का मतलब कार्मण काय योग और कार्मण काय योग का भी मतलब क्या? वहाँ पर जो योग है, वह आत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्दन और वह किसके निमित्त से होना है? वह कर्म के निमित्त से होना है। कर्म के निमित्त से जो आत्मा के प्रदेशों में परिस्पन्दन होगा उसको बोलेंगे- कार्मण काय योग या काय योग या कर्म योग। यह जो कार्मण काय योग है, यह वस्तुत: अनाहारक अवस्था में हो रहा है या मोड़े की अवस्था में हो रहा है। जो विग्रह गति वाली गति होगी, उसमें होगा। विग्रह गति में कर्म योग होता है इसका मतलब क्या हो गया? जो एक मोड़े वाली गति होगी उसमें कार्मण काय योग होगा। दो मोड़े वाली गति होगी उसमें कार्मण काय योग होगा और तीन मोड़े वाली गति होगी उसमें भी कार्मण काय योग होगा लेकिन जो पहली इषु गति होगी उसमें कोई मोड़ा नहीं है। उसमें कार्मण काय योग नहीं होगा। क्या होगा? वह जीव हमेशा कर्म योग वाला नहीं होगा, वह जीव अगर एक समय में दूसरी जगह उत्पन्न हो रहा है, तो वह नोकर्म वर्गणाओं को ग्रहण करता हुआ ही उत्पन्न

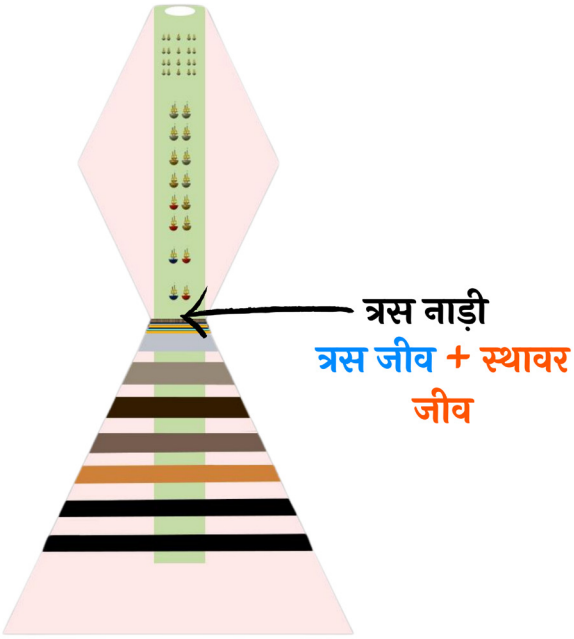
होता है, तो उसको कर्म योग करने के लिए समय भी नहीं मिला। यहाँ पर भी वह शरीर की वर्गणाओं को ग्रहण कर रहा था। अगले समय में जहाँ जन्म लिया वहाँ पर पुनः शरीर की योग्य वर्गणाओं को ग्रहण करने लग जाता है, तो उसके लिए कर्मयोग नहीं बनता।

इषु गति	मोड़े नहीं	1 समय	अनाहारक नहीं रहता
पाणिमुक्ता गति	1 मोड़े वाली	2 समय	1st समय - अनाहारक का काल 2nd समय से - आहारक
लाँगलिका गति	2 मोड़े वाली	3 समय	2 समय तक - अनाहारक का काल 3rd समय से - आहारक
गोमूत्रिका गति	3 मोड़े वाली	4 समय	3 समय तक - अनाहारक का काल 4th समय से - आहारक

मोड़े और समय को समझे

यह ध्यान में रखते हुए यह आगे आपको पढ़ना है कि यह जो संसारी जीवों की चार समय से पहले पहले ही अधिकतम गति होती है। **'प्राक् चतुर्भ्यः'**, **'प्राक्'** का अर्थ होता है- पहले, चौथे समय को नहीं लगाना। चार समय की नहीं है लेकिन चार समय से पहले-पहले ही उसके लिए विग्रह होंगे या बिना विग्रह वाली भी गति होगी तो वे तो एक समय की होगी। विग्रह वाली होगी तो दो, तीन और चार समय की होगी लेकिन वह चार समय से पहले ही उसके मोड़ा पूरा हो जाएगा और चौथे समय में उसकी उत्पत्ति जहाँ होना है, वहाँ हो जायेगी। अर्थात् जो अन्तिम गोमूत्रिका गति है उसको समझे कि उसमें चार समय तो हैं लेकिन चार समय में विग्रह जो है, वह केवल तीन समय के लिए है और मोड़े कितने हैं? तीन।

लोक का आकार

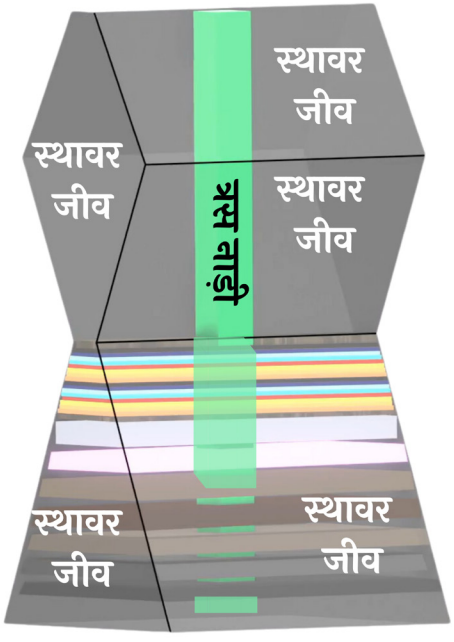


इसका मतलब यह समझना कि इस लोक में, लोक जानते हो पूरा लोक है। उसमें बीचों बीच में त्रसनाड़ी है, वह **चौदह राजू प्रमाण** है। त्रस नाड़ी के बाहर भी लोक बचा रह जाता है। कभी देखा है लोक का नक्शा जो तीन प्रकार से turn लेकर के लोक की रचना होती है। उस लोक रचना में बीचों बीच में एक त्रस नाड़ी आपको चौकोर आकार की दिखाई देती है, रेखांकित की हुई रहती है, वह तो हुई त्रस नाड़ी। मान लो नीचे के नरक की हमने ऐसी स्थिति बताई कि नीचे नरक सात राजू जैसे फैला हुए पृथ्वी तक तो उसमें ऐसी shape बन रही है और लोक नाड़ी है वह इसके बीचों बीच में जा रही है, तो जो स्थान बच रहा है इधर उधर ये सब लोक का स्थान है। इसमें भी जीव होते हैं लेकिन इसमें स्थावर जीव होंगे।

त्रस जीव त्रस नाड़ी में ही रहते है

SCAN TO WATCH

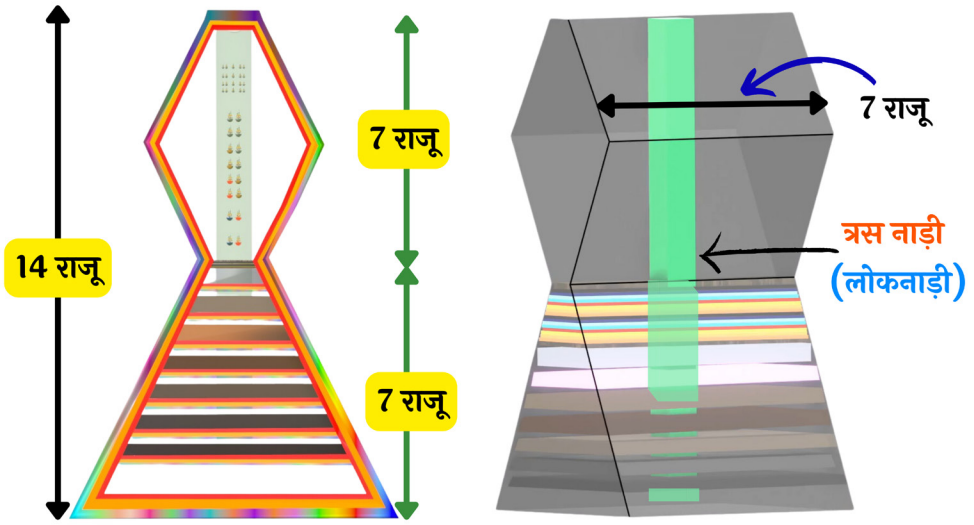
त्रस नाड़ी को त्रस इसलिए कहा जा रहा है क्योंकि उसमें केवल त्रस जीव ही रहते हैं। जीवों का जो जन्म-मरण होता है, वह स्थावर से त्रस में भी होता है, त्रस से स्थावर में भी होता है। स्थावर से भी स्थावरों में होता है। त्रस से भी त्रस में होता है। कोई भी जीव त्रस नाड़ी के बाहर है, तो वहाँ से भी आकर के वह त्रस नाड़ी के अन्दर जन्म ले सकता है अथवा त्रस नाड़ी में जन्म लेने के बाद भी वह और अगले रूप में अगली स्थान पर जाकर के त्रस नाड़ी के अन्दर त्रस से त्रस भी बन सकता है। इस तरह से जीवों का जो एक जन्म से दूसरे जन्म के बीच की जो गति होती है, वह त्रस नाड़ी में भी वह



हो सकती है। त्रस नाड़ी के बाहर से भी शुरू हो कर के बाहर जाकर के पूर्ण भी हो सकती है।

लोक में कहीं भी जन्म लेने में तीन विग्रह या चार समय से अधिक नहीं लगता

343 घन राजू प्रमाण लोक में जीव, चौथे समय में तो नियम से कहीं ना उत्पन्न हो जाएगा



एक छोटी सी बात समझने की यह है कि इस लोक में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है, जहाँ पर इस जीव को तीन विग्रह से ज्यादा लेने पड़े या चार समय से ज्यादा उसे कहीं पहुँचने में लगे। चार समय से पहले पहले ही उसके लिए विग्रह होंगे। चौथे समय में तो वह जीव कहीं न कहीं जन्म ले लेगा। इस सूत्र का यह अर्थ निकालना, पूरे लोक में। मतलब तीन सौ तैंतालीस घन राजू प्रमाण लोक है। चौदह राजू लोक की ऊंचाई है और उसमें कुछ कम चौदह राजू की त्रस नाड़ी है और उसमें जो ऊँचाई दिखाई दे रही है 14 राजू की, उसके साथ-साथ लोक की गहराई उत्तर दक्षिण में सात राजू होती है और इतने विशाल लोक के क्षेत्र में कहीं पर भी जीव, कहीं से भी कहीं जाकर के उत्पन्न होगा तो वह चौथे समय में नियम से कहीं न कहीं उत्पन्न हो जाएगा, इस सिद्धान्त को याद रखो। **'प्राक् चतुर्भ्यः'** तीन समय से पहले ही विग्रह होंगे, चौथे समय में तो वह उत्पन्न हो जाएगा अर्थात् अगर वह एक जन्म से दूसरे जन्म के बीच में कहीं रहेगा तो उसे अधिक से अधिक कितने समय तक रहना पड़ेगा? चौथे समय में तो उत्पन्न हो गया वह तो वहाँ जन्म ले ही लेगा। बीच में रहने का time कितना हुआ? तीन समय।

समय की सूक्ष्मता का ज्ञान

तीन शब्द को कहने में भी असंख्यात समय हो जाते हैं। अब इतने में आप समझो कि एक समय कितना छोटा हो सकता है। आप अन्दाजा भी नहीं लगा सकते कि एक समय इतना छोटा होता है। उस एक समय के जैसे एक दो तीन समयों में यह जीव उत्पन्न हो जाता है- दूसरी जगह पर, इससे ज्यादा कहीं आत्मा बिना शरीर के रह नहीं सकती है। सुन रहे हो? खास तौर से जैन लोगों!

जैन लोग मरने के बाद आत्मा भटकती है ऐसी मिथ्या धारणा को दूर करे



जब जैन लोग भी मिथ्या दृष्टियों जैसी बातें करते हैं तो थोड़ा सा लगता है कि अब इनके साथ क्या करे? अब कुछ कर तो सकते नहीं हैं लेकिन जब ये बातें करते हैं कि महाराज! आत्मा भटक रही है, आत्मा कब तक भटकती रहती है? मेरे पिताजी की आत्मा कहीं भटक तो नहीं रही, मेरी माँ की आत्मा कहीं भटक तो नहीं रही, मेरे घर में वह आत्मा दिखाई देती रहती है, उनका train से कट कर मरण हो गया। अकाल मृत्यु हो गई, अब उनकी आत्मा भटकती रहेगी कि उनको कोई नया जन्म मिल जाएगा। जैन लोग आकर ऐसी बातें करते रहते हैं, अब उस समय पर तो तत्त्वार्थ सूत्र सिखाया नहीं जा सकता। न उन्हें कोई यह समझने की कोई क्षमता होती है और न इस तरह की बातें सुनने की उनकी कोई मानसिकता होती है। यह समझ लो आप जितने भी लोग सुन रहे हैं, कम से कम उतने ही लोग भ्रम से दूर हो जाएँ, भ्रम मुक्त हो

जाएँ। उतने ही लोग एक सही ज्ञान रखने लगे तो बहुत सारे लोगों को आप भी ज्ञान दे सकते हो। जब भी कोई लोग ऐसी बातें करते हैं कि आत्मा भटक रही है, आत्मा न जाने कब से कितने समय तक भटकती रहेगी? उसकी आयु पूरी नहीं हो पाई तो अब उतनी आयु तक क्या भटकती रहेगी? क्योंकि अकाल में मर गई ऐसा-वैसा, कहते हो कि नहीं! तुम भी तो कहते रहते होंगे, अब नहीं कहना। भूल-चूक माफ, अब हमारे सामने ऐसी बातें नहीं करना है।

कोई भी जीवात्मा अधिक से अधिक तीन समय तक बिना शरीर के रह सकती है

SCAN TO WATCH

आत्मा अधिक से अधिक कितने समय तक भटक सकती है, इस सिद्धान्त को जानो...बस! तीन समय के आगे चौथे समय में तो वह कहीं न कहीं जन्म ले ही लेगा। इससे ज्यादा उसे बीच में कहीं भटकना होता ही नहीं, रहना होता ही नहीं है। शरीर उसको अगर नहीं मिला तो कितने समय तक नहीं मिला? तीन समय तक बस! चौथे समय में उसे शरीर मिलेगा ही, लोक में ऐसा कोई स्थान ही नहीं है जहाँ पर कि वह तीन समय का उल्लंघन कर पाए या चौथे समय में उसके लिए जन्म न हो पाए और वह कहीं और रह जाए, पूरे लोक में ऐसा सम्भव ही नहीं है। समझ आ रहा है? यह तीन समय भी मतलब किन्हीं विशेष जीवों के साथ ही, तीन समय घटित होते हैं। अन्यथा जीव दो समय ही...त्रस नाड़ी के अन्दर जिसको त्रस बनना है, तो दो समय से ज्यादा तो कभी लग ही नहीं सकते। ज्यादातर एक समय में ही हो जाएगा क्योंकि त्रस नाड़ी के अन्दर उसे एक मोड़ा लेना है। ऊपर तक गया, जहाँ उसको side से जन्म लेना है, एक मोड़ा हो गया। दो मोड़े लेना है, नीचे से जिस स्थान तक गया वहाँ एक मोड़ा, फिर वहाँ से मुड़ कर के फिर दूसरे स्थान तक गया तो दूसरा मोड़ा हो जाएगा।

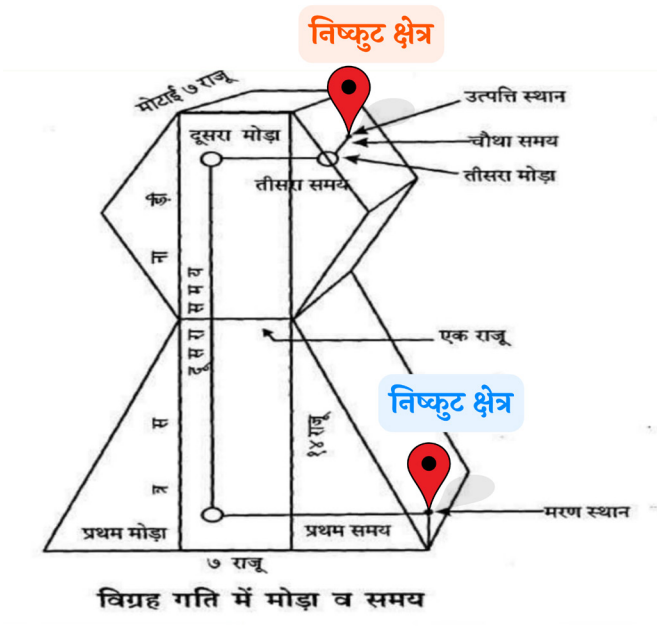
निष्कुट क्षेत्र त्रस नाड़ी के बाहर के स्थानों को कहते हैं

तीन मोड़ा भी बहुत कम स्थिति में बनता है। जिससे आचार्यों ने कहा एक **निष्कुट क्षेत्र** होता है। इसको क्या बोलते हैं? निष्कुट क्षेत्र! एक ऐसा क्षेत्र होता है कि जैसे त्रस नाड़ी के बाहर का स्थान है और यह स्थान बड़ा तिरछा type का और जो सात राजू तक अन्दर, उत्तर दक्षिण में लोक फैला हुआ रहता है उसमें कहीं इस तरीके का स्थान होता है, जहाँ से वह जीव मरे और मर कर के मतलब लोक में निचले स्थान से मर कर के अगर कहीं ऊपर स्थान पर या ऊपर से मरकर के कहीं निचले स्थान में निष्कुट क्षेत्र से ही निष्कुट क्षेत्र में अगर उसको जन्म लेना पड़े तब जाकर के तीन मोड़े लगेंगे।

सिर्फ निष्कुट क्षेत्र में जन्म के लिए तीन मोड़ लगते हैं

मतलब यह है कि निष्कुट क्षेत्र त्रस नाड़ी के बाहर का लोक का एक आड़ा-तिरछा स्थान है। पहले क्या समझना? नाड़ी के बाहर है, त्रस नाड़ी के अन्दर नहीं है। त्रस नाड़ी के अन्दर तो एक समय, दो समय में सब काम हो जाएगा। मानो यह धरातल है, यह सातवीं पृथ्वी के नीचे अधोलोक का नीचे धरातल, त्रस नाड़ी के बाहर का एक स्थान है। जिसमें से जीव जन्म-मरण कर के, उसको जन्म लेना है लोक के ऊपर, सबसे ऊपर स्थान पर और वह भी निष्कुट क्षेत्र में जैसे यहाँ निष्कुट क्षेत्र है, वैसे ही वहाँ जा कर के जन्म लेना है। उसके लिए आचार्यों ने कहा है कि सीधी उसके लिए आनुपूर्वी नहीं बनती। सीधी अनुश्रेणी उसके लिए नहीं बनती।

निष्कुट क्षेत्र से निष्कुट क्षेत्र में जन्म लेने की प्रक्रिया



विग्रह गति में मोड़ा व समय

वह इतना कहीं गहराई में ऐसा स्थान होता है कि वहाँ तक पहुँचने के लिए उसे पहले तो त्रस नाड़ी के अन्दर आना पड़ेगा। फिर त्रस नाड़ी से ऊपर जाना पड़ेगा। एक मोड़ा यह हो गया, फिर वह उस क्षेत्र के पास तक जाने के लिए लोक से बाहर निकलने के लिए एक मोड़ा लेगा, यह दूसरा हो गया और फिर लोक से मतलब जो त्रस नाड़ी है, उस त्रस नाड़ी से बाहर निकल कर के उस निष्कुट स्थान तक पहुँचने के लिए फिर एक मोड़ा लेगा तो उसके तीन मोड़े बनेंगे। इसके अलावा और कोई condition नहीं बनती, जब जीव को तीन मोड़े भी लगे। समझ आ रहा है? कहने का मतलब यह है अधिकतर जो त्रस से त्रस में जन्म ले रहे हैं, उनके लिए तो दो मोड़े और तीन समय, तीसरे समय में तो उनकी उत्पत्ति हो ही जाएगी। यह जानने के लिए कि कोई भी जीव अगर कभी भी शरीर से रहित रहता है, तो उसके लिए अधिक से अधिक time तीन समय का ही है।

अविग्रह गति किसे कहते हैं?

एक-समया-विग्रहा ॥2.29॥

एक-समया+अविग्रहा

बिना मोड़ की गति में, एक समय की बात।
काल कहा कालज्ञ ने, ऋजुगति जो कहलात॥2.29॥



SCAN TO WATCH

अब यहाँ समय बताया जा रहा है। जो विग्रह से रहित गति है, उसको बोलते हैं- अविग्रह गति। वह कितने समय की होगी? एक समय वाली होगी। उसमें केवल एक...one instant, बस! एक समय लगेगा, बस! उसके अन्दर, इससे ज्यादा और कुछ नहीं होगा। मतलब जो गति मुक्त जीवों की होती है, उसमें भी एक समय लगता है और जो गति संसारी जीवों की होती है, बिना विग्रह वाली, उसमें भी एक समय ही लगेगा। जीव तो दो ही प्रकार के होंगे- मुक्त जीव या संसारी जीव। मुक्त का मतलब जो मुक्त हो गए, उनकी नहीं, जो यहाँ से मुक्त हो रहे हैं उनकी बात की जा रही है। जिस समय पर यह जीव अपने शरीर को हमेशा के लिए छोड़ देता है, कर्म से मुक्त हो कर के, जब यह ऊर्ध्व लोक के लिए प्रस्थान करता है तब इसकी गति सीधी अविग्रह वाली गति ही होती है। उस गति में उसके लिए केवल एक समय ही लगता है। यह पहले भी आपको बताया था और कोई जीव संसारी भी है, वह भी अगर एक जन्म को छोड़कर

दूसरा जन्म लेता है और वह भी सीधा ले रहा है। कोई किसी स्थान पर अधोलोक से आकर के मध्य लोक में सीधा जन्म ले रहा है, वह स्थान वहीं पर है जहाँ पर उसको जन्म लेना है और वह बिल्कुल श्रेणी में ही हैं तो उसको सीधा ही एक समय में उसका जन्म हो जाएगा। **'अविग्रहा'** एक समय वाली वह गति कहलाएगी क्योंकि उसमें कहीं उसको भी मोड़ा नहीं लेना पड़ा।

एक समय में १४ राजू तक की दूरी भी तय हो जाती है

एक समय वाली गति जीवों की भी होती है और पुद्गलों की भी होती है। यह भी पहले आपको बताया था। पुद्गलों की भी होगी तो ऐसे परमाणु आदि की गति होती है जो सीधे चौदह राजू तक गमन कर सकते हैं। एक समय में नीचे से कोई भी परमाणु ऊपर तक जा सकता है। जीव भी नीचे से ऊपर तक पूरे चौदह राजू एक समय में नाप सकता है। अधोलोक में नीचे तनु वातवलय में जहाँ पर वायुकायिक जीव हैं, जलकायिक जीव हैं, स्थावर जीव तो लोक में सब जगह हैं तो तनु वातवलय बिल्कुल निचला स्थान है, वहाँ से कोई जीव मरण कर के और वहाँ से एक इन्द्रियों में फिर जन्म लेना उसको ऊर्ध्वलोक के तनु वात वलय में जा करके तो वहाँ पर वह जीव जन्म लेगा। वह एक समय में अपनी पूरी गति कर लेगा और जो मध्य लोक से ऊर्ध्वलोक में जाकर के उसी तनु वात वलय में बैठने वाले जो सिद्ध भगवान हैं, जो मध्य लोक में से जा रहे हैं तो उन्हें सात राजू तय करना है, सात राजू वह एक समय में ही तय कर लेते हैं। इस प्रकार एक समय में सात राजू की गति भी हो जाती है और एक समय में चौदह राजू की गति भी हो जाती है। इससे भी कम हो सकती है लेकिन चौदह राजू से ज्यादा नहीं हो सकती। इस तरह की यह गति जीव की भी है और पुद्गल की भी है। यह कहलाती है- अविग्रह गति। इसको हमेशा जानना कि जो यह **सीधी ऋजुगति है उसका नाम ही यहाँ पर अविग्रह गति है।**

जीव एक, दो और तीन समय तक अनाहारक रहता है

एकं द्वौ त्रीन्वानाहारक: ॥2.30॥

एकं द्वौ त्रीन्+वा+अनाहारक:

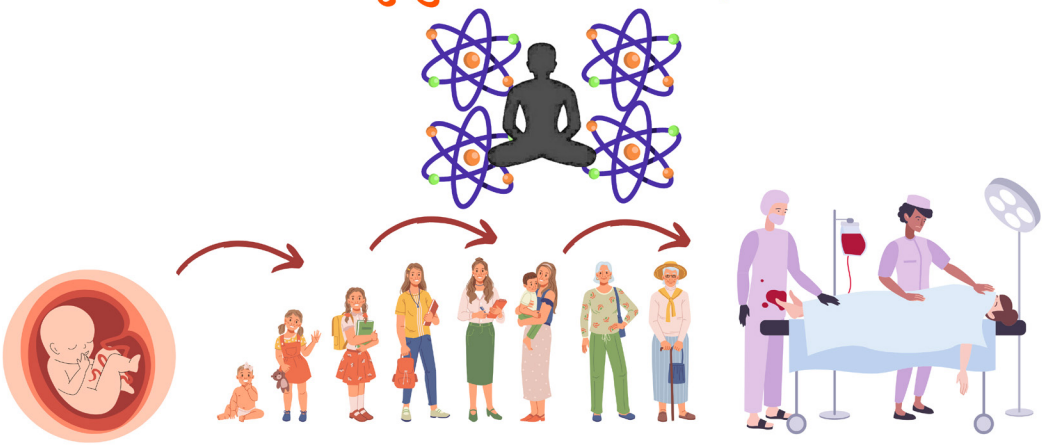
ग्रह गति में जीव के , नोकर्मा आहार ।
इक दो-त्रय के समय में, रुकता विविध प्रकार॥2.30॥



इसमें लिखा हुआ है- आहारक और अनाहारक की बात यहाँ आती है। अनाहारक अगर कोई जीव होता है, तो वह एक, दो अथवा तीन समय तक ही होता है। अब यहाँ आनाहारक से मतलब क्या समझना? आहार का अभाव और आहार का मतलब क्या समझना? आपका कवलाहार नहीं, ग्रास नहीं। आहार का मतलब है- शरीर के योग्य पुद्गल वर्गणाओं का जहाँ से ग्रहण होना शुरू हो गया, उसका नाम ही आहार है और यह आहार हमेशा होता रहता है। जीव ने जिस गति

में जिस समय पर जन्म लिया उसी समय से उसका आहारकपना शुरु हो जाता है अर्थात् जिस क्षण यह जीव गर्भ में जिस समय पर आया, वहीं से आहारक हो गया और तब से लगातार मृत्यु पर्यन्त तक आहारक बना ही रहेगा, बीच में अनाहारक नहीं हो सकता। अनाहारक कब होगा? जब मृत्यु के उपरान्त अन्य गति में जाने के लिए अगर एक मोड़े से जाएगा तो एक समय के लिए अनाहारक होगा। दो मोड़े से जाएगा तो दो समय के लिए और तीन मोड़े से जाएगा तो तीन समय के लिए अनाहारक होगा। इससे ज्यादा वह अनाहारक नहीं हो सकता। **"एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारक:"**

गर्भ से मृत्यु पर्यन्त तक आहारक



मृत्यु के उपरान्त अन्य गति में जाने के लिए मोड़े वाली गति में 1-3 समय के लिए अनाहारक होगा

आयु कर्म को छोड़कर सात कर्मों का बन्ध प्रति क्षण होता रहता है

विग्रह गति में यह जीव जब जाता है, तो इसके साथ में इसके भाव भी रहते हैं, इसके गुणस्थान भी रहते हैं। यह भी जानना। जब जीव एक गति से दूसरी गति में जाता है, तो वह भाव तो कहीं छोड़ नहीं देगा न, उसके अन्दर कर्मों का उदय भी चल रहा है, कर्मों का बन्ध भी हो रहा है। कर्मों का सत्त्व भी रखा हुआ है। उसके अन्दर सब कुछ है कि नहीं। कहाँ चला जाएगा? जो कर्म बंधे हुए हैं वह भी रहेंगे, जो कर्म बन्ध रहे हैं वह भी बन्ध रहे होंगे। क्यों बन्ध रहे होंगे? कार्मण काय योग वहाँ पर भी है। उससे आस्रव हो रहा है। आस्रव है, तो बंध भी है। कार्मण काय योग के माध्यम से आस्रव होगा, उससे कर्म का बंध वहाँ पर भी होगा और आठ प्रकार के कर्मों में से बस केवल एक आयु कर्म का बन्ध नहीं होगा। बाकी सातों प्रकार के कर्मों का बन्ध होगा। विग्रह गति में भी फिर उदय भी होगा कर्मों का।

विग्रह गति में जीव के साथ उसके भाव, कर्म गुणस्थान आदि सब होते हैं



यहाँ से जो जीव मिथ्यात्व के साथ मरा तो वहाँ पर भी विग्रह गति में क्या होगा? मिथ्यात्व का उदय यहाँ पर भी था और वही मिथ्यात्व कर्म का उदय वहाँ पर भी चल रहा है। वहाँ पर कर्म का उदय भी होगा। कर्म का उदय कहाँ चला जाएगा? अगर कर्म का उदय चला गया, फिर तो कम से कम आदमी मरने के बाद या कोई जीव मरने के बाद, चलो! कम से कम उस कर्म के फल से तो मुक्त हो गया। फिर क्या हो जाएगा? फिर मिथ्यात्व के उदय ही न रहे मिथ्या दृष्टि जीव को तो उतने समय के लिए क्या हो जाएगा? फिर मिथ्यात्व का अभाव होने का मतलब तो सम्यक्त्व होता है। अगर कर्म का उदय नहीं होगा तो बीच-बीच में मरने के बाद में सभी सम्यग्दृष्टि होते रहेंगे। कर्म का उदय तो बना ही रहता है। जो भी कषायें हैं, उन कषायों का उदय बना रहेगा। जिस कषाय के साथ मरा है, वह कषाय का उदय उसके लिए विग्रह गति में भी रहेगा। अनन्तानुबन्धी है, तो अनन्तानुबन्धी के साथ होगा। अन्य कषायें कहाँ तक सम्भव है? वह गुणस्थान के अनुसार आप जान सकते हो।

विग्रहगति में जाने वाले जीव के गुणस्थान

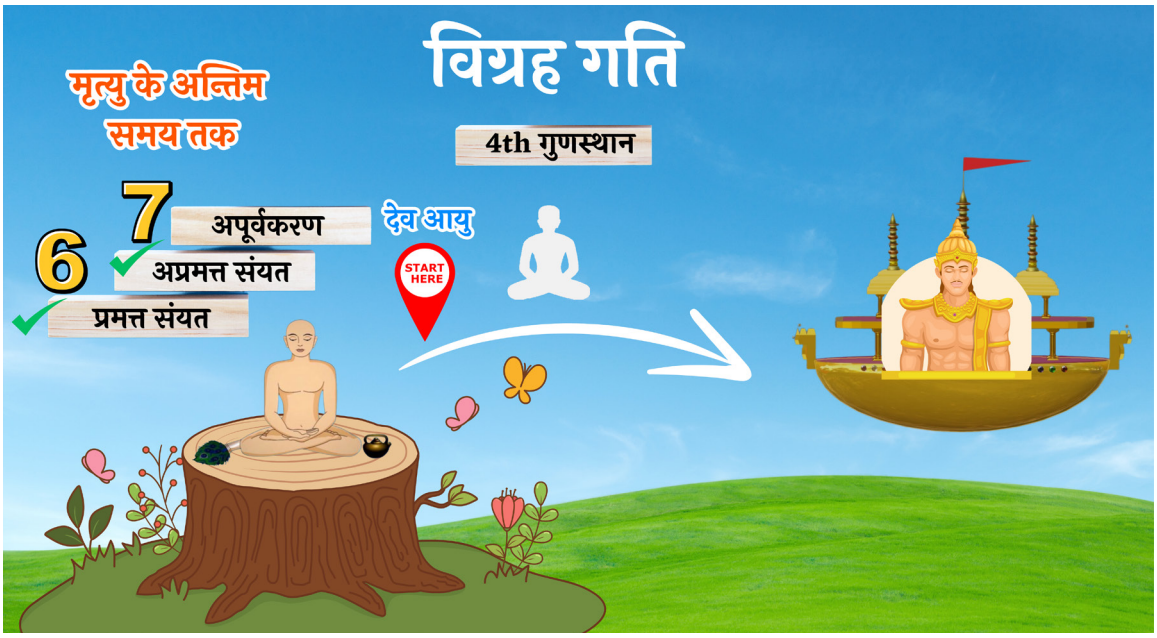
विग्रह गति में जो जाने वाला जीव है उसके गुणस्थान कितने-कितने हो सकते हैं और किन किन दशाओं में वह जीव विग्रह गति में हो सकता है? पहले गुणस्थान में भी जीव विग्रह गति में हो सकता है क्योंकि मिथ्या दृष्टि जीव मिथ्यात्व के साथ में जा रहा है, तो पहले गुणस्थान

होता है। चौथे गुणस्थान के साथ भी जीव का सम्यक्त्व के साथ मरण होता है, तो चौथा गुणस्थान भी जीव के साथ विग्रह गति में रहेगा। वहाँ से भी मरण करके जहाँ पर उत्पन्न होगा तो वह सम्यग्दर्शन के साथ विग्रह गति में भी रहेगा। सम्यक्त्व कहाँ छूट जाएगा? चौथे से आगे का कोई गुणस्थान आपको विग्रह गति में नहीं मिलेगा। पाँचवाँ, छठवाँ, सातवाँ, आठवाँ, नौवाँ, दसवाँ कोई गुणस्थान विग्रह गति में नहीं होगा। जब भी चौथे से ऊपर किसी भी गुणस्थान वाला जीव मरण को प्राप्त होगा तो उसका गुणस्थान मरते ही नियम से देव आयु में ही जा रहा होगा।

SCAN TO WATCH

देव आयु के उदय होते ही गुणस्थान चौथा ही हो जायेगा

जैसे ही देव आयु का उदय आया वैसे ही उसका गुणस्थान चौथा हो जाएगा। चाहे यहाँ पर पाँचवें गुणस्थान में मरा हो, चाहे सातवें गुणस्थान में मरा हो या दसवें ग्यारहवें गुणस्थान में भी मरण होता है। वहाँ पर भी जैसे ही मरण होगा क्योंकि जीवन का जो आयु क्रम है तब तक उसके साथ गुणस्थान है। अब यह मनुष्य जीवन तो छूट गया, जैसे ही उसको आगे देव गति की आयु मिलेगी, देव आयु का जैसे ही उदय आएगा तो वह देव आयु का उदय तो उसी समय हो जाएगा। जिस समय मनुष्य आयु का उदय समाप्त, देव आयु का उदय प्रारम्भ। उसमें कोई बीच में continuity का break तो होता ही नहीं। जैसे ही मनुष्य आयु समाप्त, देव आयु शुरू और देव आयु के साथ में चौथा गुणस्थान ही होता है क्योंकि सम्यग्दृष्टि यदि है, तो एकदम से उसके साथ पाँचवाँ गुणस्थान तो हो नहीं सकता। उसका गुणस्थान जैसे देव आयु प्रारम्भ हुई, दसवें में मरण होगा या ग्यारहवें में भी होगा तो भी वह सीधा चौथे में आ जाएगा।



मुनि महाराजों का भी देव गति में चौथा ही गुणस्थान होगा

इस प्रकार चौथे से ऊपर गुणस्थान वाला कोई भी जीव श्रेणी में भी अगर मरण होता है, उपशम श्रेणी में तो वहाँ से भी उसका गुणस्थान जैसे ही देव आयु शुरू हुई उसका गुणस्थान चौथा हो गया। मनुष्य आयु रहेगी तब तक उसका गुणस्थान संयम वाला बना रहेगा। कोई मुनि महाराज भी हैं, उनका छठवाँ - सातवाँ गुणस्थान कब तक रहेगा ? मृत्यु के अन्तिम समय तक रहेगा लेकिन जैसे ही उनकी यह मनुष्य आयु पूर्ण हुई, देव आयु प्रारम्भ हुई, जीव निकल गया तभी से देव आयु प्रारम्भ होगी। बस जैसे ही इस जीव ने शरीर छोड़ा, देव आयु प्रारम्भ हुई, कोई भी जीव हो उसका गुणस्थान सातवें से convert हो कर चौथे में आ जाएगा।

विग्रह गति में पहला, दूसरा और चौथा गुणस्थान ही होगा

विग्रह गति में आपको दो ही गुणस्थान मुख्य रूप से मिलेंगे। एक पहला और एक चौथा। एक और बीच की condition है जो पहले से चौथे गुणस्थान के बीच में एक दूसरा गुणस्थान भी होता है, उसमें भी यह जीव मरण कर सकता है और विग्रह गति में मरण कर के उस जीव के साथ में वह गुणस्थान भी जा सकता है। कौन सा? दूसरा **सासादन गुणस्थान।** क्योंकि जिस गुणस्थान में मरण होगा और उस गुणस्थान का time बचा हुआ है, तो उस गुणस्थान के साथ में उसका मरण होने के बाद विग्रह गति में भी वह गुणस्थान मिल जाएगा। विग्रह गति में पहला गुणस्थान भी हो सकता है, दूसरा भी हो सकता है और चौथा होगा। गुणस्थान की अपेक्षा से यह व्यवस्था विग्रह गति में है।

अनाहारक अवस्था विग्रह गति के बिना भी, समुद्घात में होती है

एक छोटी सी बात और जानने की योग्य है कि विग्रह गति में अनाहारक दशा होती है। अनाहारक अवस्था होती है यह बात पक्की है लेकिन यह अनाहारक अवस्था विग्रह गति के बिना सयोगी केवली जीवों में भी पाई जाती है। अनाहारक अवस्था सयोगी केवली जीवों में जब वह समुद्घात करते हैं, केवली भगवान तब उनके साथ भी यह अनाहारक अवस्था घटित होती है और तब भी कार्मण काय योग उनके साथ होता है लेकिन वह विग्रह गति नहीं कहलाती, इतना ध्यान रखना। क्या कहलाएगी? वह कहलाएगा- समुद्घात।

प्रतर और लोक पूरण समुद्घात में अनाहारक अवस्था होती है



केवली भगवान के चार प्रकार के समुद्घात होते हैं, द्रव्य संग्रह में पढ़ चुके होंगे। दण्ड समुद्घात, कपाट समुद्घात, प्रतर समुद्घात और लोक पूरण समुद्घात। इनमें से जो प्रतर समुद्घात और लोक पूरण समुद्घात हैं इनमें कार्मण काय योग होता है। **जिस समय पर केवली भगवान के लिए प्रतर समुद्घात और लोक पूरण समुद्घात होगा उस समय पर कार्मण काय योग ही होगा।** कार्मण

काय योग होने का मतलब ही है कि वह उस समय पर अनाहारक हो गए। उनके लिए वह शरीर सम्बन्धी वर्गणाओं का ग्रहण नहीं होगा और वहाँ पर भी केवल कार्मण काय योग ही रहेगा। अब यह लोकपूरण समुद्घात, कार्मण काय योग कितने समय तक चलेगा तो इसमें भी तीन समय घटित होते हैं। क्योंकि जब समुद्घात होता है तब दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण एक-एक समय के लिए होता है। दण्ड, कपाट प्रतर और लोकपूरण और फिर लोक पूरण से लौटना होता है। जैसे इसका फैलना होता है वैसे ही फिर संकुचन भी होता है। फिर प्रतर आता है, तो प्रतर दो बार आया। दो समय हो गए प्रतर के और एक समय हो गया लोक पूरण का, इस प्रकार **तीन समय तक केवली भगवान के लिए अनाहारक अवस्था आएगी। अगर वे समुद्घात करते हैं तो।**

अरिहन्त भगवान कार्मण काय योग में अनाहारक होते हैं

चार समय जाने के होते हैं फैलने के समुद्घात में और चार समय वापिस लौटने के होते हैं। चौथे समय में जीव के प्रदेश पुनः उसके शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। **आठ समय का यह total समुद्घात का समय होता है।** उनमें से तीन समय तक यह जीव कार्मण काय योग के साथ में अनाहारक रहेगा। यह विशेष ध्यान रखना कि विग्रह गति में तो जीव जो रहता है, वह तो संसारी जीव होगा। लेकिन जो अनाहारक अवस्था, विग्रह गति के अलावा अगर कहीं मिलेगी तो कहाँ मिलेगी? वह अरिहन्त भगवान में जब वे समुद्घात करेंगे उस अवस्था में, (समुद्घातगत केवली भगवान में) मिलेगी। अतः विग्रह गति में तो जीव अनाहारक होता है। इसके अलावा अगर होगा तो वह केवल केवली भगवान के साथ होगा।

अनाहारक और आहारक अवस्था का सूक्ष्म वर्णन है

केवली भगवान के साथ में अनाहारक अवस्था जो बनेगी, वह विग्रह गति नहीं कहलाएगी। विग्रह गति में भी कर्मयोग होता है और कर्मयोग अगर देखा जाए तो और कहाँ होता है? केवली भगवान में भी होता है। पहले यह समझ लो। केवली भगवान में क्या-क्या होगा? अनाहारक दशा होगी। इसलिए वहाँ पर कर्मयोग होगा अर्थात् कार्मण काययोग होगा लेकिन विग्रह गति नहीं होगी। अनाहारक अवस्था और आहारक अवस्था का वर्णन है, थोड़ा सा सूक्ष्म है। इसके बाद में तो बस! अब जीव जहाँ योनियों में पहुँच गया, उसके बाद में उसके जन्म की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी।

सारांश

1. वर्तमान प्रकरण में हम जीव के मरण के उपरान्त और जन्म से पहले की गति को सिद्धांततः समझ रहे हैं
2. ये गति दो प्रकार की होती हैं
    - पहली **ऋजुगति** जिसमें जीव एक स्थान से दूसरे स्थान पर सीधे श्रेणी के अनुसार, बिना मोड़ा के ही जाकर उत्पन्न हो जाता है
    - और दूसरी **विग्रहगति** जिसमें जीव एक, दो या तीन मोड़े या turn ले सकता है
3. हमने जाना कि **आहारक जीव** नोकर्म पुद्गलों को ग्रहण करता है
    - और **अनाहारक जीव** केवल कर्म पुद्गलों को ग्रहण करता है
    - इसी अवस्था में कार्मण योग होता है
4. कर्म योग विग्रहगति में ही होता है ऋजुगति में नहीं
5. सूत्र 26 **"अनुश्रेणि गतिः"** विग्रहगति और ऋजुगति दोनों में घटित होता है क्योंकि दोनों में ही गति श्रेणी के अनुसार होती है
6. सूत्र 27 **"अविग्रहा जीवस्य"** में अविग्रहा अर्थात् विग्रह से रहित यानि मोड़े से रहित, कुटिलता से रहित गति को मुक्त जीव के लिए ग्रहण किया है
7. इसे ऋजुगति भी कहते हैं
8. सूत्र 28 में **'च'** शब्द संसारी जीव के लिए सूत्र 27 की अनुवृत्ति के लिए आया है
    - अर्थात संसारी जीव में अविग्रहा और विग्रह वाली दोनों गतियाँ होती हैं
9. हमने गति से गत्यान्तर में चार प्रकार की गति को समझा
    - पहली **इषु गति** यानि बाण की तरह गति
        - जीव एक समय में सीधा श्रेणी से जाकर अपने स्थान पर उत्पन्न हो जाता है
    - दूसरी **पाणिमुक्ता गति** मतलब हाथ पर रखे मोती के समान गति जो एक curve या मोड़ा लेकर नीचे गिरेगा
        - इसके एक मोड़े में दो समय लगते हैं
        - पहला समय अनाहारक या कर्म योग वाला होगा
        - और दूसरे समय में वह एक मोड़ा लेकर, जन्म लेकर आहारक हो जाएगा
10. तीसरी **लाँगलिका गति** जो हल के समान दो मोड़े वाली होती है
    - इसके दो मोड़े में तीन समय लगेंगे
    - पहले दो समय जीव अनाहारक होगा
    - और तीसरे समय में वह आहारक हो जाएगा
11. और अंतिम गोमूत्रिका गति मतलब गाय के मूत्र के समान गति
    - इसके तीन मोड़ों में चार समय लगेंगे

- पहले तीन समय वह अनाहारक होगा
- और चौथे समय में आहारक हो जाएगा

12. हमने जाना कि कार्मण काय योग वस्तुत: अनाहारक अवस्था में या मोड़े की अवस्था में ही होता है

13. 'प्राक् चतुर्भ्य:' के अनुसार चार समय से पहले ही यानि तीन समय तक ही विग्रहगति होती है

- उसके पश्चात् जीव नियम से आहारक होकर नोकर्म वर्गणाओं को ग्रहण करने लग जाता है

14. पहली **इषु गति** में कोई मोड़ा नहीं है इसलिए इसमें कार्मण काय योग नहीं होगा
- जीव एक समय में दूसरे जन्म में नोकर्म वर्गणाओं को ग्रहण करता हुआ ही उत्पन्न होता है

15. हमने जाना कि गति के अंतिम समय में जीव की उत्पत्ति हो चुकी होती है
- एक, दो और तीन मोड़े वाली गति में जीव को दो, तीन और चार समय लगते हैं
- परन्तु उनकी विग्रह रहित अवस्था सिर्फ मोड़े के दौरान अर्थात एक, दो और तीन समय ही रहती हैं

16. विग्रहगति को समझते हुए हमने **तीन लोक के नक़्शे हो भी समझा**

17. तीन सौ तैंतालीस घन राजू प्रमाण लोक की रचना तीन turn लेकर के बनती है

18. जिसके बीचों बीच में चौदह राजू प्रमाण की चौकोर आकार की त्रस नाड़ी है
- **त्रस जीव केवल** त्रस नाड़ी में ही रहते हैं

19. इसके के बाहर का स्थान **लोक का स्थान** है
- जिसमें स्थावर जीव होते हैं

20. हमने जाना कि जीवों का जन्म-मरण त्रस नाडी और लोक के स्थान में कहीं से कहीं भी हो सकता है

21. जीव **लोक में कहीं भी** अधिक से अधिक तीन विग्रह या चार समय में जन्म ले लेगा
- कोई भी जीव अधिक से अधिक तीन समय तक बिना शरीर के रह सकता है
- तीन समय भी किन्हीं विशेष जीवों के साथ ही घटित होते हैं
- अन्यथा त्रस नाड़ी के अन्दर जन्म-मरण में तो दो समय से ज्यादा नहीं लग सकते
    - जैसे त्रस नाड़ी के अन्दर ऊपर तक गया और वहाँ से एक मोड़ा लेकर जहाँ side में उसको जाना है गया
    - दो मोड़े के लिए पहले मोड में नीचे जिस स्थान तक जाना है आया और फिर दूसरे मोड़े में side में गया

22. हमने जाना कि **निष्कुट क्षेत्र** त्रस नाड़ी के बाहर गहराई वाला एक आड़ा-तिरछा स्थान है
- सिर्फ निष्कुट क्षेत्र से निष्कुट क्षेत्र में जन्म लेने के लिए ही तीन मोड़े लेने पड़ते हैं

- जैसे सातवीं पृथ्वी के नीचे अधोलोक के धरातल के निष्कुट क्षेत्र से यदि लोक के ऊपर के निष्कुट क्षेत्र में जन्म लेना है तो सीधी अनुश्रेणी नहीं बनती
    - पहले मोड़े में जीव त्रस नाड़ी में आकर उसके ऊपर जायेगा
    - फिर वह उस क्षेत्र के पास जाने के लिए एक मोड़ा लेगा
    - और अंतिम मोड़े में वह त्रस नाड़ी से बाहर निकल कर निष्कुट स्थान तक पहुँचेगा

23. इस सिद्धांत को जानकर कम से कम जैन लोगों को इस मिथ्या धारणा से दूर रहना चाहिए कि मरने के बाद आत्मा भटकती है
24. हमने जाना कि विग्रह या मोड़े से रहित गति को **अविग्रहगति** कहते हैं
    - यह संसारी और मुक्त दोनों जीवों के होती है
    - और एक समय वाली होती है
25. जीव कर्म से मुक्त होकर जब सिद्ध शिला में जाता है तब उसकी अविग्रहगति होती है
26. इसी प्रकार जब संसारी जीव भी एक जन्म को छोड़कर बिल्कुल श्रेणी में ही दूसरा जन्म लेता है तो उसकी भी अविग्रहगति होती है
27. इस एक समय में जीव और पुद्गल परमाणु 14 राजू तक तय कर सकते हैं
28. सूत्र 30 **एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः** में हमने जाना कि जीव एक, दो और तीन समय तक अनाहारक रह सकता है
29. आहार का अर्थ यहाँ शरीर के योग्य पुद्गल वर्गणाओं को ग्रहण करने से है
    - जो जीव गर्भ से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक हमेशा करता रहता है
    - अर्थात आहारक रहता है
30. आनाहारक का मतलब है आहार का अभाव
31. मृत्यु के उपरान्त जीव अन्य गति में जाने के लिए जितने मोड़े लेगा उतने समय के लिए वह अनाहारक होगा
    - एक, दो और तीन मोड़े में क्रमशः एक, दो और तीन समय के लिए
32. तीन समय से ज्यादा वह अनाहारक नहीं हो सकता
33. जब जीव एक गति से दूसरी गति में जाता है, तो उसके अन्दर भाव, कर्मों का उदय, बन्ध, सत्त्व सभी रहते हैं
34. क्योंकि विग्रहगति में कार्मण काय योग भी है
    - और उस कारण से आस्रव भी है और बंध भी
    - यहाँ आयु कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का बन्ध होता है
35. हमने जाना कि विग्रहगति में जीव के साथ उसके भाव, कर्म, गुणस्थान आदि सब होते हैं
    - जो जीव मिथ्यात्व के साथ मरते हैं, वहाँ भी उनके मिथ्यात्व कर्म का उदय रहता है
    - अगर विग्रहगति में मिथ्यात्व का अभाव हो जाता तो सभी जीव मरने के बाद में सम्यग्दृष्टि

हो जाते
- जीव जिस कषाय के साथ मरा है, उस कषाय का उदय विग्रहगति में भी रहेगा

36. विग्रहगति में जाने वाले जीव के **मुख्यतः दो गुणस्थान** होते हैं
- मिथ्यादृष्टि जीव का **पहला गुणस्थान**
- और सम्यक्त्व के साथ मरण करने वाले जीव का **चौथा गुणस्थान**

37. इसके अलावा जीव दूसरे गुणस्थान यानि सासादन गुणस्थान में भी मरण कर के, विग्रहगति में इस गुणस्थान में रह सकता है
38. चौथे गुणस्थान से आगे के गुणस्थान विग्रहगति में नहीं होंगे
- गुणस्थान आयु क्रम तक ही होता है
- अतः मनुष्य आयु समाप्त होते ही संयम का गुणस्थान समाप्त हो जाता है
- देव आयु शुरू होते ही चौथा गुणस्थान हो जाता है

39. हमने जाना विग्रहगति में संसारी जीव ही होगा
40. अनाहारक दशा विग्रहगति के अलावा सयोगी केवली में भी पाई जाती है
- जब केवली भगवान समुद्धात करते हैं

41. केवली भगवान के चार प्रकार के समुद्धात होते हैं दण्ड, कपाट, प्रतर और लोक पूरण
42. समुद्धात के कुल आठ समय में चार समय फैलने के और चार समय वापिस लौटने के होते हैं
- चौथे समय में जीव के प्रदेश पुनः शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं

43. प्रतर और लोक पूरण समुद्धात में अनाहारक अवस्था और कार्मण काय योग होता है
- लोकपूरण समुद्धात में कार्मण काय योग तीन समय में घटित होते हैं
- जब जीव अनाहारक रहता है

44. अतः जीव कभी भी तीन से अधिक समय अनाहारक नहीं रहता चाहे विग्रागति में हो या समुद्धात में

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1.कौन सी गति मोड़े वाली होती है?
1. विग्रह गति
2. ऋजु गति
3. कोई भी नहीं

Q2.कौन सी गति में जीव श्रेणी के अनुसार सीधा जाकर उत्पन्न होता है?
1. विग्रह गति
2. ऋजु गति
3. दोनों

Q3.एक गति से दूसरी गति में जाने के लिए जीव अधिकतम कितने मोड़े लेता है?
1. एक
2. दो
3. तीन

Q4.क्या विग्रह गति में कर्म योग होता है?
1. हां
2. नहीं

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q5.त्रस नाड़ी के बाहर के स्थान को क्या कहते हैं?
1. सिद्ध क्षेत्र
2. निष्कुट क्षेत्र
3. दोनों

Q6.ऊपर से नीचे या नीचे से ऊपर निष्कुट क्षेत्र से निष्कुट क्षेत्र में जन्म लेने के लिए जीव कितने मोडे लेगा?
1. दो मोड़े
2. तीन मोड़े
3. एक भी मोड़ा नहीं

Q7.क्या निष्कुट क्षेत्र से निष्कुट क्षेत्र में ऊपर से नीचे जन्म लेने के लिए सीधी अनुश्रेणी बनेगी?
1. हां
2. नहीं

Q8.त्रस नाड़ी के बाहर का जीव त्रस नाड़ी में जन्म नहीं ले सकता
1. सही
2. ग़लत

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

Q9.विग्रह गति में जीव गुणस्थान रहित हो जाता है?
1. सही
2. गलत

Q10.सम्यग्दृष्टि देव के चौथे गुणस्थान से ऊपर के गुणस्थान क्यों नहीं होते ?
1. देव आयु में देश संयम नहीं होता
2. देव आयु में सकल संयम नहीं होता
3. दोनों सही है
4. दोनों गलत है

Q11.विग्रह गति में कौन-कौन से गुणस्थान हो सकते हैं?
1. पहला
2. दूसरा
3. तीसरा
4. चौथा

Q12.दूसरे गुणस्थान का क्या नाम है?
1. मिश्र
2. सासादन
3. मिथ्यात्व

Q13.जीव के अनाहारक दशा किस अवस्था में होती है?
1. विग्रह गति
2. समुद्घात
3. दोनों

Q14.केवली भगवान के समुद्घात कितने प्रकार से होता है?

1. दो
2. तीन
3. चार

Q15.किस समुद्घात में केवली भगवान का जीव अनाहारक होगा?
1. दंड
2. कपाट
3. लोक पूरण
4. प्रतर

Q16.केवली भगवान के समुद्घात में कितने समय तक अनाहारक अवस्था रहेगी?
1. दो समय
2. तीन समय
3. चार समय

Q17.केवली भगवान के पूरे समुद्घात में कितना समय लगता है?
1. चार समय
2. छः समय
3. आठ समय

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1. संसारी जीवों की गति कैसी होती है?
2. अधिकतम कितने समय में जीव आहारक हो जाता है?
3. पाणिमुक्ता गति को समझाइये ।
4. लांगलिका गति में कितने मोड़े व समय लगते हैं ?
5. एक समय वाली गति कौनसी है?
6. त्रसनाड़ी में कौनसे जीव रहते हैं?
7. सम्पूर्ण लोक का घनफल ..... है।
8. जीव अधिकतम कितने समय तक अनाहरक रहता है?
9. केवली भगवान कब व कितने समय तक अनहारक रहते हैं?
10. विग्रह गति में कौनसे गुणस्थान हो सकते हैं?

प्रवचन 16

योनि किसे कहते हैं?

जब जीव विग्रह-गति के बाद में जिस स्थान पर जन्म लेना होता है, वहाँ पहुँचता है, तो उस स्थान को योनि कहा जाता है। योनि का मतलब है कि जहाँ पर जीव जन्म लेता है और जो जीव जन्म लेता है, उस जन्म को अलग तरह से समझा जाता है और जो योनि है, उसको अलग तरह से समझा जाता है। जहाँ पर जीव का जन्म होना है, पहले उस जन्म की चर्चा की जाती है। उसके बाद में जीव का किस योनि में किस तरह से जन्म होता है? उस योनि की भी चर्चा आएगी।

जन्म के भेद

आचार्य कहते हैं- जन्म के विषय में, किन जीवों का कौन-सा जन्म होता है, इसके लिए यह अगला सूत्र आ रहा है-

सम्मूर्च्छन-गर्भोपपादा जन्म ॥ 2.31॥

सम्मूर्च्छन-गर्भ+उपपादा जन्म

विविध योनि में जन्म के, भेद तीन ही देख।
सम्मूर्छन गर्भज तथा, उपपादा में पेखा॥2.31॥

1. सम्मूर्च्छन-जन्म वाले जीव







सम्मूर्च्छन जन्म का science में अभी तक कोई नाम नहीं है



जन्म 3 प्रकार के होते हैं। कितने प्रकार के? दुनिया में जितने भी जीव हैं, सभी जीवों के जो भी जन्म होते हैं, चार गतियों में, उन सभी जीवों के जन्म इन 3 भेदों में ही गर्भित हो जाते हैं-
1.सम्मूर्च्छन जन्म 2.गर्भ जन्म और 3.उपपाद जन्म।

1) सम्मूर्च्छन-जन्म

आज का व्यक्ति या आज का विज्ञान, जो चीजें देखने में आती हैं, उन्हीं से परिचित रहता है, उन्हीं का नाम जानता है। गर्भ-जन्म तो देखने में आता है, गर्भ-जन्म को तो स्वीकार कर लेता है। अन्य जो हमें जीव-जन्तु दिखाई देते हैं, इनका जो जन्म होता है, आज तक विज्ञान ने इसका न कोई नाम बताया, न कोई कारण बताया। science ने इन कीट-पतंगों का, चीटें-चींटियों का, एकेन्द्रिय आदि जीवों का, कौन-सा जन्म है? क्या जन्म है? इस तरह का कोई science में अभी तक नाम नहीं दिया है। **वह jain science में नाम आता है, जिसका नाम है- सम्मूर्च्छन जन्म।** यह शब्द सभी लोगों को ध्यान में रहना चाहिए। सम्मूर्च्छन का मतलब होता है- सभी तरह से, सभी ओर से, जो पुद्गल परमाणु हैं, वे आकर के उस जीव के लिए घिर जाए, उस जीव के लिए प्राप्त हो जाए और उससे जो है उसका शरीर आदि बनने लग जाए, उसका नाम होता है- सम्मूर्च्छन-जन्म। इसमें क्या होता है? जहाँ जीव का जन्म होना होता है या जहाँ जीव जाकर के पहुँच जाता है, वहाँ पर बिना किसी गर्भ आदि की क्रियाओं के यह जीव स्वयं ही अपने शरीर के योग्य पुद्गल वर्गणाओं को चारों ओर से ग्रहण कर लेता है, इसलिए इस जन्म को सम्मूर्च्छन-जन्म कहते हैं। किन-जीवों के कौन-सा जन्म होता है? यह भी आगे बताया जाएगा। अभी केवल इन जन्मों का स्वरूप समझे। जो भी हम जीवों के जन्म देखते हैं, वे इन्हीं 3 प्रकार के जन्मों के माध्यम से जाने जाएँगे।

2) गर्भ-जन्म

गर्भ-जन्म, जो प्रकट मनुष्यों में दिखाई देता है, तिर्यंचों में भी दिखाई देता है, उसको बोलते हैं- गर्भ-जन्म। ऐसे तिर्यंचों में जिनमें मनुष्य की तरह ही गर्भाधान की क्रिया की जाती है, उसको बोलते हैं- गर्भ-जन्म। गर्भ में क्या होता है? गर्भ में माता-पिता दो का संयोग होता है। माता के उदर में वह जीव की जब उत्पत्ति होती है, तो उस गर्भ में ही होती है और उस गर्भ में ही वह शुक्र और शोणित के गरण का कार्य किया जाता है, होता है, इसलिए उसका नाम है-

2. गर्भ-जन्म वाले जीव



3. उपपाद-जन्म वाले जीव



गर्भ-जन्म। गरण मतलब होता है- मिलना तो इसलिए इसको गर्भ-जन्म कहा जाता है। इससे तो सभी लोग परिचित हैं, मनुष्यों में यही जन्म होता है।

3) उपपाद-जन्म

तीसरा होता है- उपपाद-जन्म। जो उपपाद-जन्म है, यह मुख्य रूप से जो देव और नारकी हैं, उनका जन्म उपपाद-जन्म कहलाता है। उपपाद-जन्म इसलिए कहलाता है क्योंकि उनका जहाँ जन्म होता है, उस स्थान को उपपाद-शैय्या कहा जाता है। क्या कहते हैं? अब शैय्या भी जो होती है वह देखा जाए तो देवों के लिए ही प्रयुक्त होने वाला शब्द है, उपपाद-शैय्या देवों की होती है। नारकियों के लिए तो कोई शैय्या मिलेगी नहीं। शैय्या का मतलब जो बहुत अच्छा bed type का पड़ा हुआ हो, शैय्या मतलब सोने का स्थान, वहाँ पर जीव जाए और एकदम से जन्म लेकर के युवा की तरह बैठ जाए। ऐसा नारकियों में नहीं होता, देवों में होता है। देवों में उपपाद-शैय्या के कारण से उसको उपपाद-जन्म कहा जाता है और नारकियों में उपपादों के जो स्थान होते हैं, जो बिल आदि होते हैं, उनमें भी उपपाद तो इसी तरह का होता है लेकिन वह उपपाद-स्थान भी बड़े क्लेशदायी होते हैं। वहाँ शैय्या जैसी कोई चीज नहीं समझना, वहाँ केवल उपपाद-स्थान है, इतना जानना। इसलिए दोनों का जो जन्म है, वह उपपाद-जन्म हैं।

सम्मूर्च्छन-जन्म का महत्त्व है

अब आप देखे कि देव और नारकी के लिए तो उपपाद-जन्म हो गया, मनुष्यों में गर्भ-जन्म हो गया, कुछ तिर्यंचों में गर्भ-जन्म हो गया। अब यह जो सम्मूर्च्छन-जन्म है, यह अपने आप में बहुत महत्त्व रखता है। इस सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपाद, आचार्य अकलंक देव ने इस सूत्र में व्याख्या करते हुए यह भी बताया है कि इस क्रम को क्यों रखा गया? सबसे पहले सम्मूर्च्छन को क्यों रखा गया? रखना था तो पहले गर्भज को रखते या सुख की अपेक्षा से रखते तो उपपाद-जन्म वालों को भी रख सकते थे। सम्मूर्च्छन को सबसे पहले रखने के उन्होंने कुछ हेतु दिए और वे कुछ fit बैठते भी हैं, अच्छे हेतु हैं।

सम्मूर्च्छन को शुरू में रखने के कारण-

1.अवगाहना- जो सम्मूर्च्छन-जन्म वाले जीव होते हैं, उनकी जो अवगाहना होती हैं वह एक तरह से अधिक होती है। सम्मूर्च्छन-जन्म वालों की जो अवगाहना होती है, अन्य गर्भज से ज्यादा होगी। जैसे कि सम्मूर्च्छन-जन्म हो गए, कोई भी एकेन्द्रिय-जीव है, सबसे बड़ा कमल माना जाता है या जो महामत्स्य होता है, वह भी सम्मूर्च्छन-जन्म वाला माना जाता है। उसकी 1000 योजन की अवगाहना होती है। कितनी? 1000 योजन की। इसकी अवगाहना बहुत ज्यादा हो गई, ये बहुत स्थूल शरीर वाले होते हैं। सम्मूर्च्छन-जीव जो होते हैं वे स्थूल-जीव कहलाते हैं, बड़ी अवगाहना वाले होते हैं। गर्भज-जीव जो होंगे अगर हम देखे तो सबसे बड़ी अवगाहना गर्भजों की कहाँ मिलेगी? कर्मभूमियों में तो तलाशना मत, भोगभूमि में चलते हैं, वही पर होती है सबसे बड़ी अवगाहना जैसे- 1 कोस, 2 कोस, 3 कोस। उत्तम भोगभूमि में 3 कोस का मनुष्य होता है। 3 कोस जो है, यह भी 1000 योजन की अपेक्षा से तो बहुत छोटा

है, इनकी अवगाहना थोड़ी ही है और उपपाद-जन्म वालों की देखे तो अवगाहना नारकी की मिलेगी, देवों की तो छोटी-छोटी अवगाहना होती हैं। सातवें नरक के नारकी की अवगाहना 500 धनुष की है, तो यह अवगाहना भी जो 1000 योजन की अवगाहना है, उससे कम ही है।

सम्मूर्च्छन आदि जीवों के अवगाहना का क्रम-

इस तरह यदि हम देखे तो अवगाहना का यह क्रम सम्मूर्च्छन-जीवों में सबसे बड़ा है, स्थूल शरीर उनका है। उससे छोटा गर्भजों का होता है, अधिक से अधिक शरीर देखें और उससे भी छोटा नारकियों में उपपाद-जन्म वालों का हो जाता है। एक यह भी कारण बताया गया है।

2.जघन्य आयु - इनकी जो उम्र होती है, आयु- जघन्य और उत्कृष्ट, दोनों ही तरीके की देखे तो उसमें भी यह बात fit बैठती है। कैसे? सम्मूर्च्छन-जन्म वालों की आयु से अब आयु कितनी होगी? इनकी आयु कम होगी, सम्मूर्च्छन जन्म वालों की आयु कम होगी। शरीर स्थूल होगा, आयु कम होगी। कहीं ऐसा गणित तो नहीं है स्थूल शरीर वालों की आयु कम होती है? यही गणित इससे लग सकता है। जिनकी अवगाहना ज्यादा होती है, उनकी आयु भी जो है, अन्य की अपेक्षा से कम हो सकती है, होती है। इसलिए भी कहा जाता है भाई! ज्यादा मोटे मत हो जाओ, पतले रहो, fit रहो।

उत्कृष्ट आयु उपपाद-जन्म वालों की है



देखो! अब इससे भी कुछ ऐसा लगता है अगर हम देखें तो सम्मूर्च्छन-जन्म लेने वाले जीवों में अधिकतम जो आयु होती है, वह 1 पूर्व कोटि की आयु होती है। कितनी? 1 पूर्व कोटि। गर्भज-जन्म वाले जो जीव होंगे, अगर हम उन्हीं मनुष्यों की अपेक्षा से देखे तो उनकी 3 पल्य की आयु हो जाती है। इधर उपपाद-जन्म वालों की आयु देखें तो 33 सागर की उत्कृष्ट आयु हो जाती है। आयु तो इनकी कम है, उत्तरोत्तर आयु बढ़ती हुई है, इस अपेक्षा से भी यह सूत्र उत्कृष्ट आयु की अपेक्षा से भी सही बैठता है। अगर जघन्य आयु की अपेक्षा से देखें तो देखो! उपपाद-जन्म वालों की जघन्य आयु 10 हजार वर्ष की होती है।

गर्भज जन्म वालों की आयु कम से कम अन्तर्मुहूर्त की होगी

गर्भज-जन्म वालों की जो आयु होगी वह कम से कम अन्तर्मुहूर्त की होगी। मनुष्य भी अगर जन्म लेता है, तो एक अन्तर्मुहूर्त तक का जीवित रह कर के भी मरण को प्राप्त हो सकता है, गर्भ में ही उसका मरण हो सकता है। एक अन्तर्मुहूर्त की उसकी जघन्य आयु होती है और तिर्यंचों की, सम्मूर्च्छन-जन्म वालों की जो आयु होती है अगर हम देखें तो वही जो सबसे जघन्य आयु है...एक श्वास में आठ-दस बार, यह जघन्य आयु भी सम्मूर्च्छन-जन्म वालों की होती है।

सम्मूर्च्छन आदि जीवों की जघन्य एवं उत्कृष्ट आयु का क्रम-

सूत्र में जन्मों के क्रम के कारण

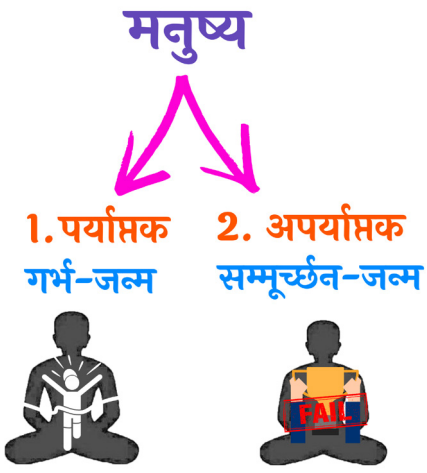
जन्म	अवगाहना	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु
सम्मूर्च्छन-जन्म	1000 योजन	1 पूर्व कोटि	एक श्वास में आठ-दस बार
गर्भ-जन्म	3 कोस	3 पल्य	अन्तर्मुहूर्त
उपपाद-जन्म	500 धनुष	33 सागर	10 हजार वर्ष

इस तरह से देखे तो आयु सम्मूर्च्छन-जन्म वालों की जघन्य भी कम है, उत्कृष्ट भी कम है। गर्भ-जन्म वालों की उससे अधिक है और उपपाद-जन्म वालों की उससे अधिक है। लेकिन अवगाहना देखते हैं तो सम्मूर्च्छन-जन्म वालों की अधिक है और गर्भ-जन्म वालों की उत्तरोत्तर कम-कम होती जाती है। इस दृष्टिकोण से आचार्य अकलंक देव ने जो यह तर्क दिया है कि यह इसलिए सूत्र में यह क्रम रखा गया है। अब यह क्रम इस दृष्टिकोण से तो fit बैठ जाता है। बाकी सूत्रकार ही जाने कि इस तरीके से सूत्र को लिखने का एक अभिप्राय क्या हो सकता है? सम्मूर्च्छन-जन्म वाले, फिर गर्भ-जन्म वाले और फिर उपपाद-जन्म वाले। यही चीज इसमें fit बैठती है, बाकी और कोई चीज fit बैठती नहीं है।

चार गति के जीवों में यही 3 प्रकार का जन्म रहता है

इस तरीके से यह जो जीवों के 3 प्रकार के जन्म हैं, इसके बारे में इतनी-सी जानकारी सबको होनी ही चाहिए कि दुनिया में जो 4 गति के जीव हैं। उन 4 गति के जीवों में यही 3 प्रकार का जन्म ही रहता है। अगर आपको गति के हिसाब से भी पूछा जाए तो आपको तुरन्त बोलने में अब आ जाना चाहिए। नरक-गति में जीवों का जन्म कौन-सा? उपपाद। देव-गति में जीवों का जन्म कौन-सा? उपपाद। मनुष्य-गति में जीवों का जन्म कौन-सा? गर्भ-जन्म और तिर्यंच गति में जीवों का जन्म कौन-सा? गर्भ भी है और सम्मूर्च्छन भी है।

मनुष्य के प्रकार



अब आप सिद्धान्त पढ़ रहे हैं, थोड़ा-सा और बारीकी से ध्यान दे कि मनुष्य में भी 2 प्रकार के मनुष्य होते हैं- 1.पर्याप्तक मनुष्य होते हैं। 2.लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य होते हैं।

लब्धि-अपर्याप्तक मनुष्य गर्भज नहीं होते

लब्धि-अपर्याप्तक- जिनके बारे में पहले बताया जा चुका है, जो अपर्याप्तक-नाम-कर्म के उदय से अपर्याप्त ही होंगे और वह एक श्वास के अठारहवें भाग में उनका भी जन्म-मरण होता है, ऐसे **लब्धि-अपर्याप्तक मनुष्य जो होते हैं, वे गर्भज नहीं होते, वे सम्मूर्च्छन होंगे।** गर्भज कौन होंगे? जो पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक-जीव होंगे, वही गर्भज होंगे। मनुष्य में होते तो सभी पंचेन्द्रिय ही है लेकिन पर्याप्तक भी होते हैं और अपर्याप्तक भी होते हैं, ऐसा जानना। जो पर्याप्तक होंगे, वे गर्भ-जन्म वाले होंगे और जो अपर्याप्तक होंगे वे सम्मूर्च्छन-जन्म वाले होंगे तो इस दृष्टिकोण से मनुष्यों में गर्भ-जन्म वाले भी होते हैं और सम्मूर्च्छन-जन्म वाले भी होते हैं। तिर्यञ्च-गति में भी गर्भ-जन्म वाले भी होते हैं और सम्मूर्च्छन-जन्म वाले भी होते हैं।

योनियों के भेद

इसी के आगे अब यहाँ पर योनियों का वर्णन प्रारम्भ होता है-

सचित्त-शीतसंवृताःसेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनय: ॥ 2.32 ॥

सचित्त - शीत+ संवृता: सेतरा मिश्रा:+ च+ एकश:+ तद्+ योनय:

सचित शीत संवृत इतर, करके इनका मेल।
नव योनी आवास हैं, मत इनमें अब खेल॥ 2.32॥

जन्म और योनि, इन दोनों में अन्तर समझ में आ रहा है? जन्म तो योनि के आधार से होने वाला कार्य है अर्थात् योनि तो एक हो गया आधार और जन्म होना उसके ऊपर होने वाला कार्य है।

यह जन्म कहाँ होता है? आचार्य कहते हैं- इन योनियों में जन्म होता है। अब देखो! यहाँ योनियों को किस तरीके से व्याख्यायित किया गया है? योनियों में आचार्य यहाँ बताते हैं-

1. सचित्त योनि – सचित्त योनि होती है, कुछ योनियाँ कैसी होती हैं? सचित्त। सचित्त का मतलब होता है- जिसमें जीव का संयोग हो, चैतन्य-परिणाम जिसके साथ जुड़ा हुआ हो, जो चित्त से सहित मतलब चेतना से सहित जो योनि हो, उसको बोलेंगे- सचित्त।



2. शीत योनि– शीत का अर्थ? मतलब योनि के जो पुद्गल प्रदेश हैं, वे शीत प्रकृति के होंगे। वह क्या कहलाएगी? शीत योनि।

3. संवृत योनि– संवृत का मतलब होता है- ऐसे योनि स्थान जो देखने में न आये, जो देखने में दुरुह हो, कठिन हो, दुरुपलक्ष प्रदेश जो होते हैं, उन्हें संवृत कहा जाता है।

अब आचार्य आगे कहते हैं- **"सेतराः"** इन्हीं का आप उल्टा भी कर लेना अर्थात् सचित्त का उल्टा करना तो क्या हो जाएगा? अचित्त।

4. अचित्त योनि– कुछ योनियाँ ऐसी भी होती हैं, जिनमें जीव नहीं होता, चैतन्य परिणाम जीव का नहीं जुड़ा होता तो भी वह योनि स्थान होता है, उसको बोलते हैं- अचित्त योनि। शीत का उल्टा करेंगे तो उष्ण कहलाएगा।

5. उष्ण योनि– उष्ण स्थान भी योनि स्थान होते हैं, उष्ण स्थानों पर भी जीवों के जन्म होते हैं। संवृत का उल्टा करेंगे, तो होगा विवृत।

6. विवृत योनि– ऐसे प्रदेश जो खुले हुए हो, देखने में आए। संवृत अर्थात् एक तरह से ढके हुए, दिखाई न दे और विवृत मतलब खुले हुए। इस तरह से यह 3 के उल्टे 3 योनियों के भेद और जानना। अब इसका मिश्र करना। मिश्र का मतलब अब 3 जो है, इन दोनों को जोड़ कर के भंग बनाना।

7. सचित्ताचित्त योनि– मिश्र योनि होगी, ऐसी जो सचित्त भी है, अचित्त भी है।

8. शीतोष्ण योनि– शीत भी है, उष्ण भी है। दोनों तरह की है।

9. संवृत-विवृत योनि– संवृत भी है और विवृत भी है।

इस तरीके से ये योनियों के 9 भेद हो जाते हैं।

देव और नारकियों के योनि-स्थान – अचित्त





साधारण-वनस्पतिकायिक योनि स्थान – सचित्त





पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव – गर्भ जन्म – मिश्र योनि



शेष सचित्त / अचित्त / मिश्र भी हो सकते हैं

किसकी कौन-सी योनि होती है?

थोड़ा-सा समझने के लिए जैसे जो ऊपर जन्म का सूत्र आया है, इसी के अनुसार अगर समझते हैं तो सचित्त-योनि और अचित्त-योनि और सचित्ताचित्त योनि, इसके विषय में यदि विचार करें तो

1. देव और नारकियों के जो योनि-स्थान होते हैं, वे सभी अचित्त बताए गए हैं।
2. साधारण जो जीव होते हैं वनस्पतिकायिक, साधारण-वनस्पतिकायिक उनका जो योनि-स्थान है, उसको केवल सचित्त-योनि-स्थान कहा गया है। क्योंकि वहाँ पर एक दूसरे के आश्रय से ही जीव रहते हैं, एक ही स्थान पर अनन्त जीवों का एक दूसरे के आश्रय से मिलकर के एक दूसरे में उत्पन्न होकर के रहना होता है, इसलिए वह सचित्त योनि कही गई। चित्त मतलब चेतना या जीव से सहित योनि-स्थान, वह सचित्त है।
3. बाकी के जो जीवों के स्थान हैं, आचार्य कहते हैं- किन्हीं के सचित्त भी हो सकते हैं, किन्हीं के अचित्त भी हो सकते हैं और किन्हीं के मिश्र भी हो सकते हैं।
4. मिश्र के रूप में अगर बताया गया तो गर्भ-जन्म वाले जो जीव होते हैं, उनको जो है मिश्र योनि के रूप में बताया गया है। उसमें भी यह बताया गया कि जो शुक्र और शोणित होता है, यह तो हो है- अचित्त लेकिन जिस माता के उदर में यह होता है, वह माता के जीव से सहित होने के कारण से वह कहलाता है सचित्त तो सचित्त और अचित्त का इस तरह से मिश्रण होने के कारण उसे मिश्र योनि कहा जाता है, यह ध्यान रखना। यह सचित्त के विषय में बताया। इसी तरीके से शीत उष्ण और शीतोष्ण के विषय में अगर जानना चाहे तो देखो!

शीत, उष्ण, शीतोष्ण योनि स्थान के उदाहरण

1. देव और नारकियों के जो उपपाद-स्थान होते हैं, उनमें से किसी के शीत होते हैं और किसी के उष्ण भी होते हैं। अब नारकियों में तो हम यह प्रत्यक्ष प्रकट रूप से जानते ही हैं कि जो ऊपर के बिलों में रहने वाले नारकी हैं, वे सभी उष्ण-योनि वाले होते हैं, उष्ण-स्थान होते हैं और नीचे के जो बिल होते हैं, उनमें शीत प्रकृति वाले, शीत के साथ में रहने वाले होते हैं तो वहाँ पर शीत-स्थान भी होते हैं और उष्ण-स्थान भी होते हैं। देवों में कहाँ किसका शीत है? कहाँ किसका उष्ण है? ऐसा कोई स्पष्टीकरण तो नहीं मिलता लेकिन फिर भी यह जानना कि देवों में भी किन्हीं के शीत-योनि-स्थान और किन्ही उष्ण-स्थान।
2. इसके अलावा एकान्त रूप से केवल शीत-योनि-स्थान अगर होगा तो वह जलकायिक-जीवों का होगा।
3. उष्ण-योनि-स्थान होगा तो वह केवल अग्निकायिक-जीवों का होगा।
4. बाकी सब जीवों का मिश्र होगा। इतना इसका थोड़ा-सा detail जानना और इसी

तरीके से संवृत, विवृत और मिश्र के विषय में भी है।



एकान्त रूप से शीत-योनि-स्थान जलकायिक-जीव

उष्ण-योनि-स्थान अग्निकायिक-जीव







किन्हीं के शीत-योनि-स्थान और किन्ही उष्ण-स्थान

संवृत, विवृत, मिश्र

1. देव-नारकियों के और एकेन्द्रियों के जो योनि-स्थान होते हैं, ये सभी संवृत बताए गए हैं। ये कैसे होते हैं? संवृत।
2. विकलेन्द्रिय के जो होते हैं, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय आदि जो विकलेन्द्रिय हैं, इनके होते हैं- विवृत।
3. बाकी सब जीवों के मिश्ररूप होते हैं। इस तरीके से इन योनि-स्थानों की यह जानकारियाँ हमें जो शास्त्रों में मिलती हैं, वह आपको बता दी गई है। इसके अलावा इसमें "च" शब्द भी आता है, देखने में आ रहा है? **"मिश्राश्-चैकशः"** 'च' आया न! 'च-ऐकशः', एक-एक करके इनको मिलाना तब जो है योनि-स्थान बन जाते हैं। आचार्यों ने यहाँ पर 'च' शब्द से 84 लाख योनियों का भी वर्णन बताया हैं, यह जान लेना। जो सुनते रहते हो न! कितनी योनियाँ होती है? 84 लाख। यहाँ तो कितनी बताई? यहाँ तो 9 प्रकार की।

84 लाख योनियों का गणित

अब इन्हीं 9 के भेद कर लेना तो कितने हो जाएँगे? 84 लाख हो जाते हैं। जानना चाहोगे कैसे होते हैं? एक-बार तो जान ही लो। बार-बार पूछते रहते हो, 84 लाख योनियों में मनुष्य जन्म कितनी-बार होता है? कहाँ होता है? देखो! पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक, नित्य-निगोद, इतर-निगोद कितने हो गए? गणित करते रहो 6 हो गए,



सबकी 7-7 लाख योनियाँ होती हैं। कितनी? 7-7 लाख। कितने हो गए? 42 लाख योनियाँ हो गयी। हर एक के कितने योनि-स्थान होते हैं? 7-7 लाख मतलब पृथ्वीकायिक की योनियाँ 7 लाख, जलकायिक की 7 लाख, अग्निकायिक की 7 लाख, वायुकायिक की 7 लाख और नित्य-निगोद, इतर-निगोद। जो साधारण-वनस्पतिकायिक होते हैं, उनके 2 भेद हो जाते हैं, एक नित्य-निगोद और एक इतर-निगोद। इनकी भी 7 लाख-7 लाख अलग-अलग योनियाँ होती हैं। कितने हो गए? 42 लाख हो गए। 42 ही और बचे हैं। अब देखो! क्या बचा? विकलत्रय। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, इनकी 2-2 लाख योनियाँ होती हैं। कितने हो गए? 6। बीच में साधारण-वनस्पतिकायिक के लिए तो बता दिया। अब जो और प्रत्येक वनस्पतिकायिक होते हैं, उनकी 10 लाख योनियाँ होती हैं। कितनी? 10 लाख।

'देव, नारकी और पंचेन्द्रिय जीव, उसमें भी पंचेन्द्रिय तिर्यंच ही, उनकी 4-4 लाख होती हैं। कितनी? 4-4 लाख। 4 × 3 = 12 लाख जोड़ते जाओ। जो मनुष्य हैं, उनकी 14 लाख योनियाँ होती हैं। 42 तो ये हो ही चुके थे। प्रत्येक-वनस्पतिकायिक की 10 लाख और 2, 4, 6 विकलत्रय की 6 लाख, 10+6=16 और मनुष्यों की 14 तो 16+14=30 और 12 वह हो गए, देव, नारकी और तिर्यंचों के 4-4 लाख तो 30+12=42 ये हो गए और 42 वे थे,

42+42=84, हो गया। 84 लाख योनियाँ इस तरह से जानना। हमेशा ध्यान रखना, अब भूलना नहीं। अब आप देखो! आप पूछते हो, 84 लाख योनियों में मनुष्य जन्म कितनी-बार मिलता है? अब आपको यही नहीं पता, इसमें जन्म की बारी नहीं बताई गई, ऐसा कहीं नहीं है आगम में कि मनुष्य जन्म कितनी-बार मिलता है, वह fix होता है।

जीव	योनियाँ
पृथ्वीकायिक	7 लाख
जलकायिक	7 लाख
वायुकायिक	7 लाख
अग्निकायिक	7 लाख
नित्य-निगोद	7 लाख
इतर-निगोद	7 लाख
TOTAL	42 लाख

जीव	योनियाँ
दो इन्द्रिय	2 लाख
तीन इन्द्रिय	2 लाख
चार इन्द्रिय	2 लाख
प्रत्येक वनस्पतिकायिक	10 लाख
TOTAL	16 लाख

मनुष्य के 14 लाख योनि स्थान fix हैं






जीव	योनियाँ
देव	4 लाख
नारकी	4 लाख
पंचेन्द्रिय जीव (तिर्यंच)	4 लाख
मनुष्य	14 लाख
TOTAL	26 लाख

42 लाख
16 लाख
26 लाख
84 लाख योनियाँ

योनियाँ fix हैं, मनुष्य की योनियाँ कितनी है? 14 लाख योनि-स्थान हैं। 14 लाख प्रकार के योनियाँ हैं मतलब इतने प्रकार से मनुष्य हैं, जिनमें अलग-अलग उन योनियों के कारण से उनके स्थानों को अलग-अलग व्याख्यायित किया गया है। यह जानने की विशेष चीज है, **84 लाख योनियों में कहीं पर भी किसी भी योनि में किसी भी जीव का जन्म कितनी ही बार सम्भव है। इसका ऐसा कोई नियम नहीं है कि कितनी-बार मनुष्य होता है? क्या होता है? मनुष्य भी कई-बार होता है, नारकी-देव भी कई-बार होता है और तिर्यंच भी कई-बार होता रहता है।** यही है योनियों का प्रकरण इस तरीके से आचार्यों ने यहाँ बताया है, जिनके आधार पर यह जन्म होता है। अब इसके आगे जो वर्णन आता है, वह थोड़ा और सुनना चाहोगे? बता दूँ? यह योनियों का वर्णन भी बताया है, इसके साथ-साथ कुछ और विशेष चीज एक और जान सकते हो।

आकृति के अनुसार योनियों का वर्णन

मनुष्यों के लिए या अन्य जन्म लेने वाले जो जीव हैं, उनमें भी एक आकृति के अनुसार भी योनियों का वर्णन आता है। किसके अनुसार? योनियों की 3 प्रकार की आकृतियाँ बताई हैं, जहाँ पर ये जीव जन्म लेते हैं।

1. **शंखावर्त योनि-** शंख के सामान जिसमें आवर्त्त होते हैं, उस योनि को बोलते हैं- शंखावर्त योनि।

2. **कूर्मोन्नत योनि-** कूर्म बोलते है कछुए की पीठ के समान ऊपर उठी हुई योनि होती है, उसको बोलते हैं- कूर्मोन्नत योनि।

3. **वंशपत्र योनि-** बाँस का पत्ता जैसा होता है, उसकी तरह जिसकी योनि होती है, उसको बोलते हैं- वंशपत्र योनि।

अब इसमें एक विशेषता यह बताई गई कि जो शंखावर्त-योनि होती है, इसमें कभी गर्भ ठहरता नहीं या उसमें जीव उत्पन्न होगा तो मर जाएगा, विवर्जित हो जाता है मतलब उसमें गर्भ ठहरता नहीं। इससे भी यह आप समझ सकते हो कि योनियों के अगर आकार इस प्रकार के हैं तो उसमें जीव नहीं ठहर सकता है। शंखावर्त-योनि में जीव नहीं ठहरता।

सभी महापुरुष कूर्मोन्नत योनि में उत्पन्न होते हैं



जितने भी महापुरुष उत्पन्न होते हैं, वे सब कूर्मोन्नत-योनि में उत्पन्न होते हैं। जो तीर्थंकर हैं, बलदेव हैं, वासुदेव हैं, चक्रवर्ती हैं, इनके पुत्र हैं, ये सभी जो जितने भी बड़े-बड़े लोग होते हैं, ये सभी कूर्मोन्नत-योनि में जन्म लेते हैं। अन्य जो योनियों में जन्म लेने वाले वंशपत्र-योनि वाले जीव होते हैं। इतना और आकृति के आधार से बताया गया है। ये jain-science में जितनी बातें हैं, वे आपको बता दी इसलिए क्योंकि बहुत से लोग science भी पढ़े-लिखे होते हैं तो उनको भी कुछ न कुछ knowledge इस तरह से होना चाहिए कि वे समझ सके कि जैन-दर्शन में किन चीजों का कितना व्याख्यान है? आगे बढ़ते हैं...

गर्भ-जन्म के भेद

जरायु-जाण्डज-पोतानां गर्भः ॥ 2.33॥

जरायुज्+अण्डज-पोतानां गर्भः

जेर अण्ड से पोत वा, होते जो उत्पाद।
गर्भज के ये भेद सुन, कर अतीत को याद॥2.33॥

अब देखो! यहाँ पर यह बताना चाह रहे हैं कि गर्भ-जन्म कितने प्रकार के होते हैं? अब देखो! पहले जन्म बताए!, जन्म कितने प्रकार के? 3 प्रकार के। उसमें उपपाद-जन्म है, वह तो सब एक ही तरीके का है, आगे बता दिया जाएगा। सम्मूर्च्छन-जन्म है, वह भी एक तरीके का ही समझना। गर्भ में 3 भेद होते हैं, गर्भ सबके एक जैसे नहीं होते हैं। गर्भ-जन्म के 3 भेद यहाँ बताते हैं- जरायु, जरायुज 'ज' शब्द जोड़ना इसमें।

1.जरायुज 2.अण्डज और 3.पोत, ये 3 भेद हैं। कौन-कौन से? पोत के साथ में 'ज' मत

जोड़ना, केवल पोत लिखा है। "जरायुजांडज पोतानां" जरायुज, अण्डज और पोत जन्म के भेद से गर्भ-जन्म तीन प्रकार का होता है। जरायुज का मतलब क्या है?

1. **जरायुज-** जरायु, 'ज' शब्द व्याकरण के अनुसार उत्पत्ति के अर्थ में होता है, तो जरायु से जो उत्पन्न होते हैं, उन्हें कहते हैं- जरायुज।
2. **अण्डज-** अण्डे से जो उत्पन्न होते हैं, उन्हें कहते हैं- अण्डज।
3. **पोत-** पोत अपने आप में जन्म ही है।

तीनों गर्भ जन्म में अन्तर



अब इसमें क्या अन्तर होता है? जैसे जरायु है- जन्म के समय पर जरा जिसके ऊपर लगी हुई रहती है और जरा से जिसका जन्म होता है, वह जरा क्या कहलाती है? आप सब तो जानते ही होंगे। हाँ! जब भी मनुष्य का या किसी पशु के भी किसी गाय, बैल आदि के किसी भी मतलब गाय, भैंस आदि के किसी भी बच्चे का जन्म होता है, तो एक ऊपर एक झिल्ली जैसा, आवरण जैसा पड़ा रहता है, वह आवरण में माँस भी होता है और शोणित मतलब होता है- रक्त, ये दोनों चीजों का वह आवरण होता है। इस तरीके के आवरण को 'जरा' बोलते हैं। जब जन्म होता है, वह हटाया जाता है। उस जरा के साथ में जिसका जन्म होता है, उसको बोलते हैं- जरायुज। सुन रहे हो? अब ऐसे जन्म वाले मनुष्य भी होते हैं, मनुष्य तो सब इसी प्रकार के गर्भ-जन्म वाले हैं- जरायुज। इसके अलावा जो और भी गाय, भैंस इत्यादि इनके भी जो जन्म होते हैं, ये इसी तरीके के जरायु-जन्म वाले कहलाते हैं, जिनके ऊपर जरा जन्म के समय पर लगी हुई मिले, वे जरायुज कहलाएँगे। देखो! कितना सूक्ष्मता से जैन-दर्शन में हर चीज का वर्णन किया गया। गर्भ के नाम पर भी हम यह जाने कि गर्भ जब भी होगा, स्त्री और पुरुष के संयोग से ही होगा। ये जो 3 भेद बनेंगे, इनमें भी स्त्री और पुरुष, नर और मादा का संयोग होगा।

अण्डज भी गर्भ जन्म वाले कहलाते हैं



अब देखो! इसमें एक अण्डज भेद आ रहा है। क्या बोल रहे हैं? अण्डज। अण्डज भी गर्भ-जन्म वाले कहलाते हैं तो अण्डे से जन्म लेने वाले जीव गर्भ-जन्म वाले कहलाएँगे और अण्डे उन्हीं के होंगे जो नर और मादा के संयोग से हो रहे हैं। हर किसी की अण्डे नहीं होते। तुम चींटी के अण्डे लेकर नहीं बैठ जाना। चींटी के अण्डों से कभी चींटियाँ उत्पन्न नहीं होती है। ये science वाले तुम्हें बेवकूफ बनाया करते हैं, चींटी के कोई अण्डे नहीं होते हैं। चींटियाँ कुछ भी जहाँ पर उत्पन्न

हो जाती हैं या जहाँ पर बहुतायत में हो जाती हैं, वहाँ पर वे अपने मुँह में कुछ भी लेकर के जो छोटी-छोटी-सी कोई वहाँ पर सफेद-सफेद से कण से पैदा हो जाते हैं, उसको लेकर के मुँह में लेकर के दौड़ लगाने लग जाती हैं तो science के लोग समझने लग जाते है ये अण्डों से उत्पन्न हुई थी। अण्डे मुँह में लेकर जा रही हैं। ऐसे तो ये लोग थोड़ी स्थूल बुद्धि वाले लोग हैं, इन्हें सूक्ष्मता से तो कुछ दिखाई देता नहीं।

चींटियों का जन्म अण्डे से नहीं होता

चींटियों के अण्डे तो हो सकते हैं लेकिन चींटियों का जन्म अण्डे से नहीं होता, यह ध्यान रखना। **अण्डे का मतलब यह नहीं है कि उसमें से कोई चींटियाँ निकल रही हो, ऐसा कोई भी science ने नहीं देखा।** कहा जाता है बस, चींटी के अण्डे होते हैं। वास्तव में अण्डे उसी के होंगे जिनके साथ में नर और मादा का संयोग होगा। अण्डे तो मादा से निकलेंगे लेकिन वह नर और मादा के संयोग से ही उस अण्डे में जीव की उत्पत्ति होगी तो जितने भी आपको पक्षी हैं, अन्य भी; कई तरीके के सर्प होते हैं, छिपकली वगैरह भी हैं, ये भी इस तरह के जन्म वाले होते हैं। अण्डे में से जिसका जन्म होगा उसको अण्डज कहा जाएगा और वह गर्भ-जन्म वाला होगा। यह बहुत सही बात है, इसको हमेशा ध्यान में रखो। science को तो रखो किनारे, इसको ध्यान में रखो। जिस-जिसको आपको दिखाई दे कि अण्डे से उत्पन्न हो रहा है, समझना कि इसका गर्भ हुआ और गर्भ कभी भी अकेले का नहीं होता, अकेले से नहीं होता, गर्भ में संयोग हुआ।

सम्मूर्छन जन्म नर मादा के बिना अकेले होगा

सम्मूर्च्छन-जन्म अकेले से होगा। कहीं पर भी चींटी की उत्पत्ति हो सकती है, कहीं पर भी मकड़ी आदि की उत्पत्ति हो सकती है। दीमक लग सकती है, उसमें कुछ संयोग की जरूरत नहीं है। जैसा योनि-स्थान होगा उसके अनुसार जीव की उत्पत्ति हो जाती है, इसको बोलते हैं- सम्मूर्च्छन। लेकिन जहाँ पर जीव की अण्डों से उत्पत्ति अगर हो रही है, तो नियम से उसको आप गर्भज जानना। आप किसी भी तरीके से कोई भी scientist हो या कोई science को अच्छे ढंग से जानने वाला हो, यह prove कर के दिखा दे कि अण्डे से चींटी उत्पन्न होती हैं, challenge दे रहा हूँ। जो कुछ भी छोटा-छोटा होता है, वह सब अण्डा नहीं होता है। वह तो हम कहने के लिए अण्डे कह देते हैं। कुछ भी हो सकता है, वह अण्डे से ही उत्पन्न नहीं हो रहा है। जीव की उत्पत्ति तो बिना अण्डे के कहीं भी, जो है सम्मूर्च्छन रूप में हो जाती है। आप देख ले! कहीं पर भी थोड़ा-सा दीवाल में भी कई सन्धि-स्थान रह जाता है, फर्श में भी कहीं थोड़ी-सी जगह रह जाती है, कहीं पर भी गन्दगी लग जाती है या कहीं पर भी थोड़ा-सा मैल रह जाता है, वहीं पर ही जीव उत्पत्ति हो जाती है। तरह-तरह के जीव उत्पन्न हो जाते हैं तो ये सब सम्मूर्च्छन-जन्म वाले होते हैं। गर्भज-जन्म वाले जीव जो होते हैं, वे एक तो जरायुज वाले हो गए, एक अण्डज वाले हो गए और विशेष रूप से जितने भी पक्षी हैं- तोता, मैना, कोयल

या कबूतर, चिड़िया वगैरह सभी क्या होते हैं? ये सभी अण्डों से उत्पन्न होते हैं इसलिए इनके अण्डे होते हैं, इनके चूजे होते हैं। इनसे जीव उत्पन्न होते हुए देखने में आते हैं, इसलिए ये सभी गर्भ-जन्म वाले होते हैं और इनके गर्भ की प्रक्रिया नर और मादा के संयोग के बिना नहीं होती।

पोत जन्म वाले जीव



फिर पोत -जन्म वाले...पोत का मतलब होता है कि जो जन्म लेते ही जिनके अवयव पूर्ण हो यानि उन्हें time नहीं लेना पड़े कि अभी धीरे-धीरे रेंगेंगे कि फिर धीरे-धीरे घुटनों के बल चलेंगे कि फिर धीरे-धीरे उठेंगे जैसे मनुष्यों में होता है। ऐसा नहीं! जन्म के समय ही जिनके अवयव पूर्ण हो और जन्म लेते ही जो दौड़ने लग जाएँ, कूदने लग जाएँ, ऐसे भी जीव होते हैं। अब देखो आप, कोई science इसका कोई अलग-अलग से किसी भी तरीके से classification नहीं कर सकती। जबकि सब logic है, ऐसे जन्म वाले जैसे कि हिरण है, शेर है, इनके जो बच्चे होते हैं, इनमें जरायु होता है। न ये अण्डे से होते हैं और जन्म लेते ही ये कूदने लग जाते हैं...बिल्कुल फुर्तीले, पूर्ण अवयव वाले होते हैं। सुन रहे हो? इनको क्या बोलते हैं? पोत-जन्म वाले जीव। ऐसे ये तीनों ही भेद गर्भज जीवों के हैं, गर्भ-जन्म वालों के हैं। इस तरह से आप इस विज्ञान को समझ कर के जहाँ-जहाँ जीवों की जैसी उत्पत्ति होती है, उसको सही रूप में जान सकते हो। अब दुनिया में कहीं पर भी कोई भी आपको पूछे तो आप इसी से ही, इन्हीं सूत्रों को अपनी दृष्टि में रख कर के ही सब ज्ञान कर सकते हो कि ये जीव कौन से जन्म वाला है? गर्भज है, तो किस भेद वाला है? गर्भज नहीं है, तो सम्मूर्च्छन होगा क्योंकि मनुष्य और तिर्यंचों में इसके अलावा और कोई जन्म नहीं होता है। अब आगे कहते हैं-

उपपाद-जन्म के स्वामी

देव-नारकाणामुपपादः ॥2.34॥

देव-नारकाणाम्+उपपादः

देव नारकी जन्म का, थल उपपाद कहाय।
अल्प बहुत ही काल में, बल पूरण हो जाय॥2.34॥

उपपाद-जन्म किसका होता है? आपको पहले 3 जन्म बताये थे, अब उनमें तीनों का खुलासा करते हुए बता रहे हैं, किस-किसका कौन-कौन-सा जन्म होता है? उपपाद-जन्म वाले कौन होते हैं? यहाँ इस सूत्र से clear होता है...देव और नारकियों का उपपाद-जन्म होता है। **'देव-नारकाणां-उपपादः'** उपपाद-जन्म हमेशा किसका होगा? देव और नारकी-जीवों का।

सम्मूर्च्छन-जन्म के स्वामी

शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥ 2.35॥

शेष जीव का जन्म तो, सम्मूर्छन कहलाय।
विविध-विविध परमाणु मिल, लेते देह बनाय॥2.35॥



बस! यह सूत्र हो गया। अब क्या कहते हैं? शेष जो बचे, वे सभी सम्मूर्च्छन-जन्म वाले हैं। यह बिल्कुल अटल सिद्धान्त हैं। उपपाद-जन्म वालों को छोड़ दिया, गर्भ-जन्म वालों को छोड़ दो और जो शेष बचे वे सब क्या बचे अब? सम्मूर्च्छन-जन्म वाले। जो अपने लिए इस जगत में प्रत्यक्ष देखने में आने वाले जो जीव हैं, वे या तो गर्भज होंगे या सम्मूर्च्छन होंगे। गर्भजों के अगर 3 भेद में से कोई भेद दिखाई दे तो वह गर्भज है। नहीं तो वह क्या है? सम्मूर्च्छन-जन्म वाला जीव है। शेष जीव जो बचे, शेष में क्या-क्या बचा? देव-नारकियों के अलावा क्या बचा? मनुष्य और तिर्यंच बचते हैं लेकिन उन मनुष्यों और तिर्यंचों में भी जो गर्भज-जीव हैं, उनको छोड़कर के जो जीव बचे, वे सभी शेष जीवों में आ गए। अब गर्भ होगा तो वह केवल पंचेन्द्रिय में ही होगा। मनुष्यों में तो गर्भज हो गए लेकिन जो अपर्याप्त-मनुष्य हैं वे भी इसमें आ गए और उसके अलावा जो तिर्यंचों में भी पंचेन्द्रिय के अलावा एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, ये सभी भी इसी में आ गए, ये सभी सम्मूर्च्छन-जन्म वाले कहलाए। इस तरह से यह जन्म का वर्णन और योनि का वर्णन, एक साथ इतने सूत्रों में यह पूर्ण हो जाता है।

सूत्रों का क्रम scientific है

इसके आगे अब शरीर बनना शुरू होगा तब शरीर का वर्णन शुरू होगा। देखो! कितने बिल्कुल scientific तरीके से सूत्र लिखे गए हैं, क्रम-क्रम से बिल्कुल। जीव का पहले विग्रह-गति का वर्णन किया, फिर योनि का, जन्म का और फिर योनि का और फिर अब उससे बनने वाला जो शरीर है, उसकी विविधता के बारे में अब आगे बताया जाएगा।

सारांश

1. विग्रहगति समझने के बाद अध्याय दो में हम अब जन्म के भेद और जन्म-स्थान यानि योनी के भेदों के बारे में जान रहे हैं
2. सूत्र इक्कतीस में हमने जाना कि **चार गतियों** के सभी जीव तीन तरह से ही जन्म लेते हैं
   - **सम्मूर्च्छन जन्म** यानि जीव बिना गर्भ आदि की क्रियाओं के स्वयं ही शरीर योग्य पुद्गल वर्गणाओं को चारों ओर से ग्रहण कर लेता है
     - इसलिए इस जन्म को सम्मूर्च्छन-जन्म कहते हैं
     - यह जीव-जन्तु जैसे- कीट-पतंगों, चीटें-चींटियों, एकेन्द्रिय आदि जीवों के होता है
   - **गर्भ जन्म** में गर्भ में माता-पिता के संयोग से जीव की उत्पत्ति होती है
     - शुक्र और शोणित के गरण यानि मिलने से यह कार्य होता है
     - जहाँ गर्भाधान की क्रिया की जाती है
     - यह मनुष्यों और तिर्यंचों में दिखाई देता है
   - और देव और नारकी के होने वाला **उपपाद जन्म** जिसमें उपपाद-शैय्या या उपपाद-स्थान पर उनका जन्म होता है
     - उपपाद-शैय्या पर **देव** एकदम से जन्म लेकर के युवा की तरह बैठ जाते हैं
     - **नारकी** बिल में जन्म लेते हैं और ये बिल बड़े क्लेश दाई होते हैं
3. हमने जाना कि आचार्य अकलंक देव ने इस सूत्र की व्याख्या में जन्मों के क्रम - **सम्मूर्च्छन, गर्भ और अंत में उपपाद,** के कारणों को समझाया है
4. पहला कारण है **अवगाहना** के घटने का क्रम
   - सम्मूर्च्छन जीव बहुत स्थूल शरीर वाले होते हैं और इनकी अवगाहना 1000 योजन तक हो सकती है जैसे महामत्स्य
   - गर्भजों की अवगाहना सम्मूर्च्छनों से कम होती है
     - जैसे योजन की अपेक्षा में **उत्तम भोगभूमि** में 3 कोस का मनुष्य
   - उपपाद-जन्म वाले नारकियों और देवों का शरीर और भी छोटा होता है
     - सातवें नरक के नारकी की अवगाहना मात्र 500 धनुष की होती है
5. दूसरा कारण है **जघन्य आयु** का बढ़ता क्रम
   - सम्मूर्च्छन जीव की जघन्य आयु श्वास का अठारहवाँ भाग होती है
   - वहीं गर्भाजों की अन्तर्मुहूर्त
   - और उपपाद-जन्म वालों की **दस हजार वर्ष** होती है
6. तीसरा कारण है **उत्कृष्ट आयु** का बढ़ता क्रम
   - सम्मूर्च्छन जीव की अधिकतम आयु 1 पूर्व कोटि की होती है
   - वहीं गर्भजों की 3 पल्य

- और उपपाद-जन्म वालों की 33 सागर होती है

7. हमने जाना कि आयु का क्रम और अवगाहना का क्रम विपरीत है
8. तिर्यंच गति जन्म और सम्मूर्च्छन दोनों जन्म होते हैं
9. हमने जाना कि **मनुष्य पर्याप्तक** और लब्धि अपर्याप्तक होते हैं
10. इसमें पर्याप्तक मनुष्य ही गर्भज होंगे
11. और लब्धि अपर्याप्तक सम्मूर्च्छन होंगे
    - वे अपर्याप्तक-नाम-कर्म के उदय से अपर्याप्त ही होंगे
    - वे श्वास के अठारहवें भाग में मृत्यु को प्राप्त होंगे
12. सूत्र बत्तीस **सचित्त-शीत-संवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः** में हमने जाना कि जन्म इन योनियों में होता है
    - योनि आधार है
    - और जन्म होना उसके ऊपर होने वाला कार्य है
13. योनियों के 9 भेद होते हैं
    - पहला सचित्त योनि - जिसमें जीव का संयोग हो
    - दूसरा शीत योनि - जिसमें योनि के पुद्गल प्रदेश शीत प्रकृति के हों
    - तीसरा संवृत योनि - जिसमें योनि स्थान संवृत हों अर्थात देखने में न आये
14. अगले तीन भेद इन्हें उल्टा करने से आते हैं जैसे
    - चौथा अचित्त योनि - जिनमें जीव नहीं होता
    - पाँचवाँ उष्ण योनि - जिसमें योनि के पुद्गल प्रदेश उष्ण प्रकृति के हों
    - छटवाँ विवृत योनि - जिसमें योनि स्थान विवृत हों अर्थात जो खुले हुए हों, देखने में आयें
15. और अंतिम तीन भेद इन दोनों का भंग करने से मिलते हैं जैसे
    - सातवां सचित्ताचित्त योनि - ऐसी मिश्र योनि जो सचित्त भी है और अचित्त भी
    - आठवाँ शीतोष्ण योनि - जो शीत भी है और उष्ण भी
    - नौवां संवृत-विवृत योनि - जो संवृत भी है और विवृत भी
16. हमने जाना कि
    - देव और नारकियों के योनि-स्थान अचित्त होते हैं
    - साधारण-वनस्पतिकायिक के योनि-स्थान सचित्त होते हैं क्योंकि वहाँ पर एक दूसरे के आश्रय से ही जीव रहते हैं
    - बाकी के जीवों के स्थान सचित्त, अचित्त या मिश्र हो सकते हैं
17. हमने जाना कि शुक्र और शोणित अचित्त होता है
    - लेकिन जिस उदर में यह होता है उस माता के यह सचित्त है
    - अतः गर्भ जन्म वाली योनि मिश्र योनि होती है
18. नरक में ऊपर के बिल उष्ण योनि और नीचे के बिल शीत योनि होते हैं

19. देवों में भी शीत और उष्ण दोनों ही स्थान होते हैं
    - लेकिन कहाँ कौनसा है इसका स्पष्टीकरण नहीं मिलता

20. एकान्त रूप से
    - शीत स्थान केवल जलकायिक जीवों का होगा
    - उष्ण स्थान केवल अग्निकायिक जीवों का होगा
    - बाकी सब जीवों का मिश्र होगा

21. इसी तरह
    - देवों, नारकियों और एकेन्द्रियों के योनि स्थान संवृत होते हैं
    - विकलेन्द्रियों के विवृत होते हैं
    - शेष मिश्ररूप होते हैं

22. च-ऐकशः - इसमें आचार्यों ने "च" शब्द से 84 लाख योनियों का भी वर्णन बताया हैं
    - एक-एक करके इनको मिलाने से नौ प्रकार के योनि-स्थान बन जाते हैं
    - जिनके भेद करने से चौरासी लाख प्रभेद बनते हैं
    - पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और साधारण वनस्पति के नित्य-निगोद और इतर-निगोद में प्रत्येक के 7 लाख योनि स्थान होने से व्यालीस लाख
    - विकलेन्द्रिय के 2-2 लाख योनियाँ होने से कुल छः लाख
    - प्रत्येक वनस्पतिकायिक के दस लाख
    - देव, नारकी और पंचेन्द्रिय तिर्यंच के 4-4 लाख स्थान होने से बारह लाख
    - और मनुष्य के **चौदह लाख**

23. अक्सर हम सोचते हैं कि मनुष्य जन्म कितनी बार मिलेगा
    - मगर आगम में यह fix नहीं है
    - केवल योनि स्थान fix हैं

24. चौरासी लाख योनियों में कोई भी जीव कितनी बार भी किसी भी योनि में जन्म ले सकता है

25. सूत्र बत्तीस के व्याखान में हमने आकृति के अनुसार योनियों को जाना

26. शंखावर्त योनि में शंख के सामान आवर्त्त होते हैं
    - इसमें कभी गर्भ ठहरता नहीं है
    - और उसमें उत्पन्न होने वाला जीव मर जाता है

27. कूर्मोन्नत योनि कछुए की पीठ के समान ऊपर उठी हुई योनि होती है
    - तीर्थंकर, बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती आदि जैसे सभी महापुरुष कूर्मोन्नत योनि में उत्पन्न होते हैं

28. वंशपत्र योनि की आकृति बाँस के पत्ता जैसी होती है

29. सूत्र तेतीस **जरायुजांडज-पोतानां-गर्भः** में हमने गर्भ जन्म के तीन भेदों को जाना
    - "ज" शब्द व्याकरण के अनुसार उत्पत्ति के अर्थ में होता है

- जो **जरायु** से उत्पन्न होते हैं, उन्हें जरायुज कहते हैं
    - जन्म के समय पर जिनके जरा अर्थात माँस और रक्त की एक झिल्ली जैसा आवरण ऊपर लगा रहता है और इसे बाद में हटाया जाता है उन्हें जरायुज कहते हैं
    - जैसे मनुष्य, गाय, बैल etc
- जो अण्डे से उत्पन्न होते हैं उन्हें अण्डज कहते हैं
    - अण्डे नर और मादा के संयोग से ही होते हैं
    - जैसे तोता, मैना, कोयल, कबूतर आदि
- जन्म लेते ही जिनके अवयव पूर्ण हो यानि
    - जो जन्म लेते ही जो दौड़ने लग जाएँ, कूदने लग जाएँ
    - और जिनमें जरायु होती है
    - उन्हें पोत जन्म वाला जीव कहते हैं
    - जैसे कि हिरण, शेर आदि

30. हमने जाना कि चींटी आदि के अण्डे नहीं होते हैं
    - वास्तव में अण्डे उसी के होंगे जिनके साथ में नर और मादा का संयोग होगा
    - चींटी, मकड़ी, दीमक आदि का सम्मूर्छन जन्म होता है
        - जिसमें नर मादा के संयोग की जरूरत नहीं है
        - इनकी उत्पत्ति कहीं पर भी दीवाल, फर्श आदि के सन्धि-स्थान, गन्दगी या मैल आदि में बिना अण्डे के, सम्मूर्च्छन रूप में हो जाती है
31. सूत्र चौंतीस देव-नारकाणामुपपाद: से हमने जाना कि देव और नारकियों का उपपाद जन्म होता है
32. सूत्र पैंतीस शेषाणां सम्मूर्च्छनम् के अनुसार शेष बचे हुए सभी जीव सम्मूर्च्छन जन्म वाले हैं
33. जो जीव हमें जगत में प्रत्यक्ष दिखते वे गर्भज या सम्मूर्च्छन होते हैं
34. हमने देखा कि सूत्रों का क्रम scientific है
    - पहले विग्रह-गति
    - फिर योनि
    - और फिर जन्म
    - आगे आएगा जन्म के बाद मिलने वाले शरीर का वर्णन

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1.सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा ____! पूर्ण करो
1. मरण
2. जन्म
3. उत्पाद
4. योनि

Q2. जन्म कितने प्रकार के बताये गए है सूत्र 31 मे?
- 2
- 1
- 3
- 6

Q3.जन्म के भेद पहचानिए।
1. सम्मूर्च्छन जन्म
2. गर्भ जन्म
3. उपपाद जन्म
4. वैक्रियक जन्म

Q4.जब जीव विग्रह-गति के बाद में जिस स्थान पर जन्म लेना होता है, वहाँ पहुँचता है, तो उस स्थान को योनि स्थान बोलते है? यह कथन कैसा है?
1. सही
2. गलत

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

SCAN TO WATCH

Q5.शीत का मतलब योनि के जो पुद्गल प्रदेश हैं, वे उष्ण प्रकृति के होंगे। यह कथन कैसा है?
1. सही
2. गलत

Q6.सेतराः मे क्या गर्भित है?
1. अचित्त
2. शीत
3. उष्ण
4. विवृत

Q7.अचित्त योनि के विषय मे सही चुने?
1. चैतन्य-परिणाम जिसके साथ जुड़ा हुआ हो
2. जीव का संयोग न हो
3. जो चित्त से सहित हो
4. जो चेतन से रहित हो

Q8.उष्ण स्थानों पर जीवों के जन्म स्थान को उष्ण योनि कहते हैं यह कथन कैसा है?
1. सही
2. गलत

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड स्कैन करें प्रश्न पत्र हल करें

SCAN TO WATCH

अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1. कितने प्रकार के जन्म होते हैं?
2. उपपाद जन्म किनका होता है?
3. सम्मूर्च्छन , उपपाद तथा गर्भ जन्म वालों की जघन्य तथा उत्कृष्ट आयु बताइये।
4. मनुष्य कितने प्रकार के होते हैं तथा उनका कौन- कौन सा जन्म होता है?
5. सम्मूर्च्छन जन्म किस गति में तथा कितने इंद्रिय वाले जीवों के होता है?
6. पंचेन्द्रिय जीवो के कितने प्रकार के जन्म होते हैं?
7. देव तथा नारकियों के योनि स्थान किस प्रकार का होता है?
8. मरुदेवी की योनि किस प्रकार की थी?
9. शंखावर्त अथवा कूर्मोन्नत अथवा वंशपत्र
10. किस जन्म वाले की अवगाहना सबसे अधिक होती है?
11. निम्नलिखित में जन्म का प्रकार बताइये ।

    चींटी , चिड़िया , मधुमक्खी , मनुष्य , चूहा , बिच्छू , देव , हाथी , बिल्ली , हिरण

प्रवचन 17

योनि-स्थान, गर्भ का प्रकरण और जन्म का प्रकरण, यह सब बताने के बाद अब, जब जीव का जन्म होता है, तो वह शरीर को धारण करता है। वह शरीर एक प्रकार का नहीं होता, अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग प्रकार के जीव, शरीर प्राप्त करता है। विभिन्न नाम-कर्मों के उदय के कारण से जीव को अलग-अलग तरह के शरीरों की भी प्राप्ति होती है और उन सब शरीरों में कौन-सा शरीर जीव के साथ हमेशा रहता है? कौन-सा बदलता रहता है? यह सब ज्ञान हमें आगे सूत्रकार गृद्धपिच्छ-आचार्य स्वयं दे रहे हैं। सूत्र पढ़ते हैं...

जिनागम के अनुसार जीव के शरीर की व्याख्या :-

औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणानिशरीराणि॥ 2.36॥

औदारिक-वैक्रियिक+आहारक-तैजस-कार्मण+आनि+शरीर+आणि

दोहा:- औदारिक वैक्रिय तथा, आहारक वपु नाम।
तैजस कार्मण देह ये, पँच न निज के धाम॥2.36॥

यह सूत्र हमें शरीरों की संख्या भी बता रहा है और शरीरों के नाम भी बता रहा है।

1. औदारिक शरीर,
2. वैक्रियिक शरीर,
3. आहारक शरीर
4. तैजस शरीर और
5. कार्मण शरीर

ये पाँच प्रकार के शरीर जिनागम में बताए गए हैं। शरीर का मतलब होता है कि जो '**शीर्यते इति शरीर:**' जो शीर्यते यानि शीर्ण होता रहता है, जीर्ण होता रहता है, उसको वस्तुत: शरीर कहा जाता है। शरीर के कई पर्यायवाची नाम हैं और अगर हम देखें तो उन पर्यायवाची-नामों की अपनी-अपनी समभिरूढ़-नय की अपेक्षा से भी एक सार्थकता बन जाती है। यहाँ शरीर से तात्पर्य है- जिसमें कर्म-परमाणु या नोकर्म परमाणु आते भी रहते हो और जाते भी रहते हो। जो उपचय और अपचय दोनों प्रकार की क्रियाएँ जिसमें होती रहती हैं। नए शरीरगत परमाणुओं का बंध भी होता है और पुराने परमाणुओं की निर्जरा भी होती है, इस तरह से जो ये शरीर बनते हैं, उन शरीरों में सबसे पहले जो यहाँ बताया जा रहा है, वह औदारिक-शरीर बताया जा रहा है। कौन-सा? औदारिक!

मूल शब्दों से संस्कृत के नियम अनुसार बने हुए शब्दों का महत्व



औदारिक य ह शब्द उदार शब्द से बनता है। जैसे आपके लिए **'औपशमिक'**, **'क्षायिक'** ऐसे शब्दों को बनाया था, जो एकन-प्रत्यय लगकर के शब्द संस्कृत के अनुसार बनते हैं, उनमें जो प्रारम्भ का शब्द होता है, वह कहीं पर दीर्घ भी होता है और कहीं पर वह अपनी 'उ' आदि जो शब्द होते हैं वे 'औ' आदि में भी परिवर्तित हो जाते हैं। ये संस्कृत के नियम के अनुसार 'उदार' शब्द से बनने वाला **'औदारिक'** कहलाता है। जैसे- क्षय से बनने वाला क्षायिक होता है, उपशम से औपशमिक होता है। उपशम में भी **'उ'** था तो 'उ' का क्या हो गया? **'औ'** और अन्त में **'इक'** लग जाता है, तो औपशमिक बन गया। उसी तरह से उदार शब्द से बनता है- औदारिक। अतः यह इसलिए जानना जरूरी है कि यह शब्द जो मूल में किस शब्द से बना है और इस शब्द को बनाने की या इस शब्द के प्रचलन में आने की क्या इसके पीछे महत्ता है? उदार शब्द का मतलब तो आप जानते ही हैं। उदार अर्थात् होता है...बड़ा हो, स्थूल हो, महान हो, उसको उदार कहा जाता है। भावों की अपेक्षा से देखें तो हम कहते हैं- यह बहुत उदार-भाव वाला है। **'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्'** ऐसा सुनते हैं। 'जो उदार चरित्र वाले होते हैं, उनके लिए पूरी वसुधा ही कुटुम्ब होती है' यह उदार का भाव मतलब सबको समाहित कर लेने का भाव है।

औदारिक शरीर का वर्णन

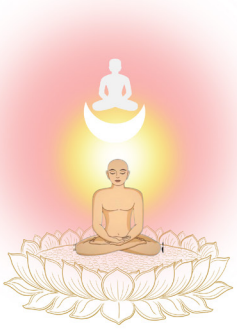
यहाँ पर यह शरीर है, तो शरीर में तो कोई अपना चरित्र होता नहीं तो शरीर का ही जो अपना गुणधर्म है, वह यहाँ पर ग्रहण किया जा सकता है कि उदार का मतलब है- बड़ा, स्थूल। अगर काया की अपेक्षा से देखे, स्थूलता की अपेक्षा से देखें तो सभी शरीरों में औदारिक-शरीर ही सबसे बड़ा होता है, स्थूलता इसी की पूरी बनती है। हजारों-योजनों में फैला हुआ महामत्स्य आदि के जो बड़े शरीर हैं, जो पहले बताया था, वे भी सब क्या हैं? औदारिक-शरीर हैं। इतनी बड़ी काया, इतना उदार-स्थूल शरीरपना और किसी गति में नहीं होता और यह उदारता जिसका प्रयोजन है, उस शरीर को कहते हैं- औदारिक शरीर। एक तो यह हो गया, स्थूल है। अब जब उदार है, तो उदार का मतलब स्थूल भी हो गया, बड़ा भी हो गया और जो बड़ा होता है, तो महान भी होता है। जहाँ पर बड़ा भाव आ जाएगा तो महानता का भाव भी आ ही जाता है। देखा जाए तो यह शरीर भी महान ही है, पाँचों शरीरों में से यह औदारिक-शरीर ही तो महान है। अगर पूछा जाए...पाँच शरीर में सबसे बड़ा काम करने वाला कौन-सा शरीर है? कौन-सा शरीर है? औदारिक शरीर है।

औदारिक-शरीर ही सबसे महान काम करता है

1. धर्म



4. मोक्ष



"शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम्"

औदारिक शरीर सबसे बड़े काम करने वाला है

2. अर्थ



3. काम



चार प्रका र के पुरुषार्थों में जो सबसे दुर्लभ कठिन पुरुषार्थ है- मोक्ष-पुरुषार्थ। वह मोक्ष-पुरुषार्थ किस शरीर से होता है? औदारिक-शरीर से। गुणस्थानों की वृद्धि भी देखी जाए तो पाँचों शरीर वालों में सबसे ज्यादा गुणस्थानों की वृद्धि कहाँ मिलेगी? औदारिक-शरीर में मिलेगी। औदारिक शरीर के साथ ही केवलज्ञान आदि की भी प्राप्ति होती है, तो जो महान काम कर रहा है, बड़ा काम कर रहा है, वह तो यह औदारिक-शरीर ही है। अब आप कहो कि हम तो शरीर को अशुचि भावना में और तरह-तरह से हम शरीर को जो है, हेय दृष्टि से देखते हैं तो आपको अनेकान्त-दृष्टि रखनी पड़ेगी। अशुचिता अलग चीज है, हेयता भी अलग चीज है और उसके साथ में उस शरीर का वास्तविक ज्ञान रखते हुए यह भी जानना कि 'शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम्' 'शरीर का ही काम है, जो आप धर्म साधन कर सकते हो। यह भी किसका काम है?

शरीर के प्रति भी अनेकान्तिक-दृष्टिकोण रखना चाहिए

शरीर का ही काम है। अतः आपकी साधना में आपके लिए काम आने वाला कौन है? उसी शरीर के लिए आप बुरा-भला कहते रहते हो। बुरा-भला इसलिए कहा जाता है कि उससे राग नहीं करना, उससे मोह नहीं करना या उसी को अपना स्वरूप नहीं समझना। 'वही मैं नहीं हूँ' इसलिए उस शरीर से विपरीत अपना जो आत्म-तत्त्व है, उसको बताने के लिए शरीर को शरीर

के स्वभाव से परिचित कराया जाता है और आत्मा को आत्मा के स्वभाव के माध्यम से परिचित कराया जाता है लेकिन अनेकान्तिक-दृष्टि से यह भी ध्यान रखना पड़ेगा कि औदारिक शरीर कहा जाता है- मतलब बड़ा काम तो यही कर सकेगा। बड़ा काम क्या? बड़ी दुकान खोलना! बड़ा काम का मतलब अब केवलज्ञान तो मान लो पंचम काल में नहीं होना तो भी बड़ा काम कुछ तो हो सकेगा। जो भी इस पंचम काल में अधिक से अधिक बड़ा काम हो सकता है, संयम आदि के साथ में, गुणस्थान के रूप में भावों की अभिवृद्धि, जो बड़े से बड़े रूप में हो सकती है, वह सब भी इसी औदारिक-शरीर से ही तो होती है। औदारिक-शरीर ही संयम धारण करने में आपके लिए सहायक है। सम्यग्दर्शन तो आप किसी भी शरीर से कहीं भी धारण कर लेना लेकिन संयम के लिए सहायक तो सब शरीर नहीं है, आगे बताया जाएगा। संयम के लिए सहायक तो आपका औदारिक शरीर है।

उदारता संयम और चारित्र धारण करने में हैं, प्रमादी होने में नहीं



उदारता का मतलब हो गया कि इसी से हम संयम जैसा बड़ा व्रत धारण कर सकते हैं, चारित्र धारण कर सकते हैं और इसी के माध्यम से हम जो कर्मों की निर्जरा कभी नहीं कर सकते, वह इस शरीर के माध्यम से कर सकते हैं। समझ में आ रहा है न? शरीर की महत्ता है कि नहीं? शरीर का काम भी है कि नहीं? काम है, तो काम ही लेना उससे। उसको जो है खिला-पिला कर double-Bed पर AC में मत डाले रखना। नहीं तो वह बड़ा दुष्ट है, जितना ज्यादा खा-पीकर AC में पड़ा रहेगा न, आप सोचोगे उतना सुरक्षित रहेगा। वह सुरक्षित नहीं रहेगा, उतने

ही ज्यादा उसमें कीड़े पड़ेंगे। कीड़े पड़ना समझते हो? मतलब जो जितना काम-चोर होगा वह उतना ही जल्दी रोगी भी होता है, वह उतना ही ज्यादा आपको आगे दुःख देने वाला भी होगा। इससे काम लेते रहो, काम करते रहो तब तो यह fit रहता है और आप सोचो कि बस! पसीना भी न आये, कुछ करना ही न पड़े, बिल्कुल सुख ही सुख मिले तो ऐसी अगर कल्पना करोगे तो द्वारे पर आपके virus कोरोना दस्तक दे रहा है। ऐसे लोगों को ही कोरोना पहले पकड़ता है, जो कुछ काम के नहीं होते हैं। बोले! ये सब क्या कर रहे हैं? चलो! पहले इनको ही निपटाओ। जो लोग मेहनत करेंगे, जो लोग पसीना निकालेंगे, जो लोग शरीर से काम लेंगे, शरीर को अच्छे ढंग से तपायेंगे, शरीर के माध्यम से साधना करेंगे, शरीर के माध्यम से जप-तप, ध्यान आदि करेंगे, उनके लिए शरीर बड़ा लाभकारी है, यह औदारिक-शरीर की ही देन है। इसलिए आचार्य महोदय ने बड़े ही सोच-समझ करके सब शरीरों में औदारिक-शरीर को पहले लिखा है।

कार्मण शरीर मूल है, तो उसे आखिर में लिखने का कारण



चाहते तो कार्मण शरीर पहले लिखना चाहिए था, कार्मण शरीर पहले लिखते। क्यों लिखते? क्योंकि यही कर्म के कारण से तो सब शरीर बन रहे हैं। मूल तो कार्मण-शरीर है, बीजभूत तो कार्मण-शरीर है, कर्म के कारण से ही सब शरीरों की उत्पत्ति हो रही है, तो पहले जिससे सब चीजें बन रही हैं, पहले कार्मण शरीर का उल्लेख करना चाहिये था। जैसे कि सात तत्त्वों का वर्णन करने में सबसे पहले जीव-तत्त्व का वर्णन किया क्योंकि जीव नहीं होगा तो कर्म नहीं होंगे। अजीव नहीं होगा, कर्म नहीं होंगे तो आस्रव नहीं होगा। आस्रव नहीं होगा तो बन्ध नहीं होगा तो सब का आधार क्या हो गया? जीव हो गया। ऐसे ही देखा जाए तो पाँचों-शरीर में से सब का आधार क्या है? कार्मण-शरीर। लिखना तो पहले कार्मण-शरीर चाहिए था तो कार्मण-शरीर का वर्णन तो उन्होंने बिलकुल last में किया और औदारिक-शरीर का वर्णन पहले किया तो यही इसका एक प्रयोजन है कि जो ज्यादा काम का होता है, वह हमारे लिए आदरणीय होता है, उसको पहले नाम दिया जाता है।

औदारिक शरीर का महत्व कार्मण शरीर को नष्ट करने में

कार्मण-शरीर को तो नष्ट करना है लेकिन औदारिक शरीर को तो नष्ट नहीं करना। बताओ? क्या औदारिक-शरीर भी नष्ट करना है? कौन सा शरीर नष्ट करना है? औदारिक-शरीर को नष्ट करने के लिए नहीं कहा गया। कार्मण-शरीर को नष्ट करने के लिए कहा गया है। कर्म का क्षय करो, औदारिक-शरीर का क्षय करो, इसके लिए नहीं कहा गया। क्या कहा गया? कर्म का क्षय करो, कर्म का नाश करो अर्थात् कार्मण-शरीर का नाश होना चाहिए। ऐसा नहीं है कि केवल आप यह सोच लो कि बस औदारिक-शरीर का नाश हो गया तो कर्म का नाश हो गया। ऐसे नहीं होता। ऐसे तो बहुत सारे लोग औदारिक शरीर का नाश करते रहते हैं। औदारिक-

शरीर के नाश से कर्म का नाश नहीं होता। इतना जरूर है कि औदारिक-शरीर के माध्यम से हम कर्म का नाश कर सकते हैं। कर्म का नाश करने के लिए यह माध्यम बन जाता है क्योंकि कर्म का नाश अकेले से नहीं हो सकता। बिना औदारिक शरीर के कर्म के नाश नहीं सम्भव है, तो मुख्य प्रयोजन तो है- कर्म का नाश करना, औदारिक-शरीर का नाश करना प्रयोजन नहीं है। यद्यपि संयम के साथ में, सल्लेखना आदि के समय पर उस औदारिक-शरीर को भी छोड़ा जाता है, तो भी उस औदारिक-शरीर का उस समय पर नाश नहीं किया जाता, वह तो छूटने ही वाला होता है, तो छोड़ दिया जाता है।



सल्लेखना में औदारिक-शरीर को छोड़ा जाता है, नष्ट नहीं किया जाता

जैसे platform पर गाड़ी रुकने ही वाली होती है, तो हम गाड़ी में थोड़ा-सा दो मिनट पहले ही खड़े हो जाते हैं, भाई! गाड़ी तो अब रुकने वाली है। अब ऐसा तो नहीं कि जब गाड़ी रुक जाए फिर तुम्हें कोई धक्का दे, भाई! निकल-निकल, आ गया station आ गया तब तुम उठो तो उसकी अपेक्षा से तो यह ठीक है। अगर station आने वाला है, तो दो मिनट पहले से ही हम तैयार हो जाएँ, gate पर खड़े हो जाएँ और जल्दी से उतर जाएँ। ऐसा नहीं होता? ऐसे ही होता है न! बस उतनी-सी बात है, सल्लेखना में भी इसी तरीके से किया जाता है। कहीं पर भी आपको औदारिक शरीर को नष्ट नहीं करना है, इसके माध्यम से कार्मण-शरीर को नष्ट करना है, यह पहले ध्यान में रखना। औदारिक-शरीर तो आपके लिए क्या है? सब तरह के बड़े-बड़े काम कराने वाला एक साधन है। अच्छी विशुद्धि किससे मिलेगी? औदारिक-शरीर से मिलेगी। संयम का पालन किससे होगा? औदारिक-शरीर से होगा। कर्म की निर्जरा किससे होगी? औदारिक शरीर से होगी, कम से कम पंचम-काल में इतना तो होगा। चौथा-काल होगा तो केवलज्ञान भी किससे होगा? वह भी औदारिक-शरीर से ही होता है। यह औदारिक-शरीर अपने आप में बड़ा महत्व का है और यह 'उदार' शब्द से बना है। यह भी हमें ध्यान में रखना कि यह महान कार्य करने के लिए यही सक्षम है इसलिए यह औदारिक-शरीर की उत्पत्ति उदार शब्द से हुई है, जो सार्थक है।

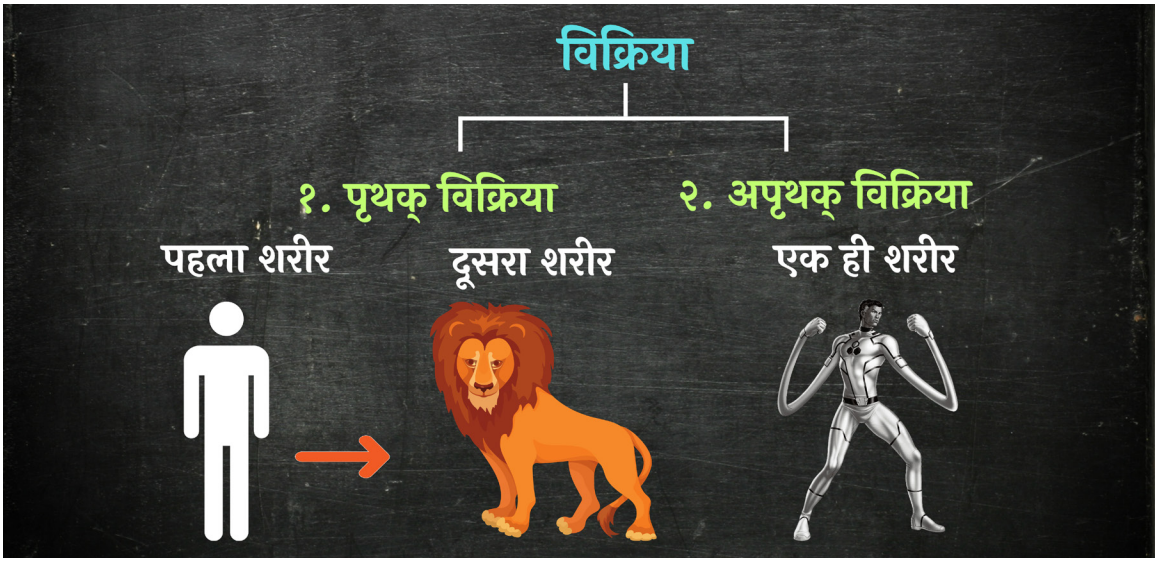
वैक्रियिक शरीर की महत्ता और प्रकार

दूसरे नम्बर का शरीर है- वैक्रियिक शरीर। क्या बोलते हैं? वैक्रियिक। इसमें भी एकन्-प्रत्यय लगा हुआ है। "विक्रिय" शब्द से वैक्रियिक बनेगा। 'इ' की मात्रा, 'इ' का 'ऐ' हो जाता है, 'उ' का 'औ' हो जाता है, यह व्याकरण के नियमों के अनुसार और पीछे के शब्द में 'इक' जुड़ जाता है, तो वह 'विक्रिय' शब्द से क्या हो जाएगा? 'वैक्रियिक'। यह विक्रिया करना जिसका स्वभाव हो, उसे कहेंगे- वैक्रियिक-शरीर, विशेष क्रियाएँ। अब विशेष क्रियाएँ क्या होती है? जो आपको पहले भी कई बार बता चुके हैं-

1.अणिमा 2.महिमा 3.लघिमा 4.गरिमा 5.प्राकाम्य 6.प्राप्ति 7. इशित्व 8.वशित्व

ये जो आठ ऋद्धियाँ हैं, आठ शक्तियाँ हैं, इन आठ शक्तियों को प्राप्त करने की जिसमें एक क्षमता आ गई और जो अपने शरीर को पृथक् या अपृथक् रूप से विक्रिया कर सकता है, उस शरीर को वैक्रियिक-शरीर कहते हैं। यह विक्रिया दो तरीके की होती हैं-

1. पृथक् विक्रिया और 2. अपृथक् विक्रिया



वैक्रियिक-शरीर की पृथक् विक्रिया

पृथक् का मतलब यह होता है कि जैसे कोई व्यक्ति है, अगर उसके पास में विक्रिया-शक्ति है, तो वह अपने शरीर को तो बनाए रखेगा, उससे पृथक् दूसरा शरीर बना करके शेर बन जाएगा, गाय बन जाएगा, हिरण बन जाएगा, कुछ भी बन जाएगा। उसका अपना शरीर अलग है और उससे उसने दूसरा शरीर अलग बना लिया। वह क्या कहलाएगा? पृथक् विक्रिया। आत्मा तो दोनों में ही होगी, नहीं तो वह शेर जिंदा कैसे कहलाएगा? बिना आत्मा के वह फिर एक के कई

भी शरीर बनते हैं तो एक चक्रवर्ती भी कई शरीर बना लेता है, तो यह सब क्या हो गया? यह सब पृथक्-विक्रिया कहलाती है, तो उसमें सब में आत्मा नहीं होगी तो शरीर क्या करेगा? यह सभी में आत्मा के प्रदेश फैलने की क्षमता होती है, सभी में फैल जाते हैं। सभी में अलग-अलग शरीर बनकर के अलग-अलग कार्यों में भी लग जाते हैं।

सौधर्म-इन्द्र का वैक्रियिक-शरीर कैसे काम करता है?





देवों में विक्रिया होती है, तो वह एक शरीर के साथ अनेक विक्रियाएँ करके और अनेक कार्यों को एक साथ भी करते रहते हैं। नहीं समझ आ रहा है? मान लो एक साथ 170 तीर्थंकर एक साथ हुए? मान लो! 170 कर्म-भूमियाँ हैं और 170 तीर्थंकर एक साथ भी हो सकते हैं। जैसे अजितनाथ भगवान के समय में हुए हैं, 170 कर्म-भूमियों में सभी तीर्थंकर एक साथ। अब क्या होगा? सौधर्म-इन्द्र को present रहना पड़ेगा। कहाँ पर? हर समवशरण में? हर तीर्थंकरों के पास में। अब सौधर्म-इन्द्र तो एक ही है, उसकी जिम्मेदारी है अगर एक साथ भी कई तीर्थंकरों के ज्ञान-कल्याणक होंगे तो वह सब में शामिल होगा कि नहीं होगा? वह क्या करेगा? अपने वैक्रियिक-शरीर से अलग-अलग तरह की विक्रियाएँ अलग-अलग जगहों पर जाकर के बनाएगा और सब भगवान के सामने बैठेगा और सब की आराधना करेगा, सबकी स्तुति करेगा। बिल्कुल एक जैसा, कभी ऐसा नहीं लगेगा कि यह कोई अलग है, वह कोई अलग है। यह काम किसका? कुछ तो अन्तर होगा? main सौधर्म तो अपनी bed पर ही रहता है, वह कहीं उठता नहीं है। समझ आ रहा है न? हाँ! वह अपने bed पर ही रहता है। bed मतलब जो उसकी उपपाद-शैय्या है, उसी को bed बोलते हैं, वह उसी पर लेटा रहता है, वह उसी पर बैठा रहता है और जो कोई भी सौधर्म काम कर रहे होते हैं, वे सब वैक्रियिक-शरीर से काम कर रहे होते हैं, यह तो उनका सिद्धान्त है। ये बड़े आदमी ऐसे ही होते हैं। वे तो अपनी एक जगह रहेंगे, बस अपना फोन चलाते रहेंगे, काम करते रहेंगे लेकिन खतरा यहाँ के बड़े आदमियों से यह है कि उनका शरीर तो bed पर पड़ा-पड़ा bend हो जायेगा लेकिन देवों का शरीर कभी bend नहीं होगा क्योंकि वह वैक्रियिक शरीर है। अतः वैक्रियिक-शरीर से वह कई तरह की विक्रियाएँ एक साथ भी कर सकता है और एक साथ कई काम भी कर सकता है। अपनी तमाम देवाँगनाएँ हैं, उनके साथ भी रह सकता है, घूम सकता है, सब कर सकता है और इधर भगवान के समवशरण में भी, कितने ही तीर्थंकरों की कल्याणक हो जाए, सामान्य

केवली आ जाए, सब की पूजा भी कर लेगा।

उपयोग के अनुसार ही कर्म बन्ध की प्रक्रिया चलती रहती है

लोगों को बड़ी हैरानी होती है यह सुन करके तो कई लोग पूछते हैं कि फिर उसका कर्म-बन्ध कैसे होगा? उसका उपयोग कहाँ लगा रहता है? वह किस तरह के कर्मों का आस्रव उसके लिए होगा? एक साथ धर्म भी कर रहा है और एक साथ कर्म भी कर रहा है, यह भी एक प्रश्न तो है। नहीं समझ आ रहा है? लोग पूछते हैं न कि जिस समय पर वह भगवान की पूजा भी कर रहा है, किसी दूसरे शरीर से वह अपने लिए कहीं और घूमने भी गया है? अब उसके लिए कौन से कर्म का बन्ध होगा धर्म का कि कर्म का? उसका एक ही समाधान मिलता है कि आत्मा का उपयोग बहुत जल्दी-जल्दी divert होता है। जैसे हम लोग बोलते हैं, देखते हैं, सुनते भी हैं लेकिन उपयोग जो होता है, वह बहुत जल्दी-जल्दी, अन्तर्मुहूर्त तो कहने के लिए है, वह सेकेंडों के भी हजारवें हिस्से में वह एकदम से बदलता रहता है और जिस समय पर उपयोग जिस तरीके का होगा, उस समय पर उसके लिए उसी तरह का कर्म बन्ध हो जाएगा। उपयोग एक जैसा लगता है, जैसे हम बोलते जा रहे हैं तो आपको क्या लग रहा है इनका उपयोग केवल बोलने में लगा है? बोलने में ही नहीं लगा, मैं देख भी रहा हूँ, सुन भी रहा हूँ। कोई बीच में कुछ बोल देता है, वह भी देख लेता हूँ, कोई बीच में कुछ आपस में action करता है, तो वह भी पकड़ लेता हूँ और फिर भी बोलता रहता हूँ, तो उपयोग जो है एक ही जगह नहीं रहता।

एक घण्टे तक उपयोग एक जगह लग ही नहीं सकता

उपयोग इतनी जल्दी-जल्दी divert होता है कि उसके अनुसार ही यह पता पड़ता है कि जैसा उपयोग होगा उस समय पर वह एक ही उपयोग होगा। आप समझते हो कि मैं पूजा कर रहा हूँ, तो बहुत देर तक पूजा ही करता रहता हूँ। हमारा उपयोग एक घण्टे तक पूजा में लगा। एक घण्टे तक तो किसी का उपयोग पूजा में नहीं लग सकता। अगर आपका एक घण्टे तक पूजा में उपयोग लग गया तो फिर एक घण्टे तक आपका ध्यान में भी उपयोग लग जाएगा और पूजा ही ध्यान बन जाएगी, अगर आपका एक घण्टे पूजा में उपयोग लग गया, उपयोग लग ही नहीं सकता। वह तो उपयोग कभी मतिज्ञान है, कभी श्रुतज्ञान है, यह तो ज्ञानोपयोग हो गया और फिर दर्शनोपयोग भी बदलता रहता है और उसके बीच में भी यह योग होते हैं, वे अलग बदलते रहते हैं- मनोयोग, वचनयोग और काय योग। इनमें से जो एक समय पर एक ही उपयोग होता है, एक ही योग होता है, तो वह इतने कम समय में होता है कि हम उसको पकड़ नहीं पाते और कर्म-बन्ध तो हर समय के लिए बताया गया। समय! आप समय समझ रहे हो न?

कर्म-बंध के 'समय' का हम अंदाज़ा भी नहीं लगा सकते



'समय' का मतलब तो आपकी बुद्धि से परे है। जैसे पहले एक उदाहरण देकर बताया था कि सौ पन्नों में एक साथ stapler लगाओ और फिर देखो कि वह एक-एक stapler उसके अन्दर जाने में कितना time लग गया? बस तो वह समय है। वह सैकेंडों का भी हजारवाँ हिस्सा है। अगर हम उस समय में, एक समय में एक उपयोग रहता है, तो कर्म-बंध भी उसी उपयोग के अनुसार होगा। वह उपयोग अगर एक से अधिक समय तक रह जाता है, संख्यात समय तक रह गया, अन्तर्मुहूर्त हो गया बस, उस अन्तर्मुहूर्त में एक आवली में कई असंख्यात समय हो जाते हैं तो उनमें जो उपयोग की प्रवृत्ति हो जाती है, उसी के अनुसार वह कर्म का बन्ध हो जाता है। आप इन बातों को अब अच्छे ढंग से जान ले, कई बार लोग इन बातों को बहुत-बार पूछते रहते हैं और हम बहुत-बार बताते भी रहते हैं लेकिन पता नहीं भीतर प्रविष्ट क्यों नहीं होता है? ये सब चीजें एक बार अच्छे ढंग से तब समझ में आती हैं, जब आप यह जान ले कि जैसा आप जान रहे हैं, वह तो बहुत स्थूल जान रहे हैं। अन्तरंग में उपयोग और योग की जो प्रवृत्ति है, वह बहुत fast होती है, वह हम पकड़ नहीं सकते हैं। कब हम बोल रहे हैं? कब हम हिल रहे हैं? कब हम देख रहे हैं? कब क्या सोच रहे हैं? यह अपने ही पकड़ में नहीं आता और यह सब automatically जैसे चलता रहता है, वैसे ही सब कुछ कर्म के बन्ध भी अपने उपयोग के अनुसार चलते रहते हैं। यह वैक्रियिक-शरीर का काम है। क्या? अनेक-तरह की क्रियाएँ करना, अनेक-तरह की विक्रियाएँ बना लेना। ठीक है!

आहारक शरीर का अर्थ

फिर आता है- तीसरे नंबर का आहारक-शरीर। आहारक-शरीर का मतलब आगे बताया जाएगा लेकिन यह वह शरीर है, जो केवल मुनि महाराज के लिए ही प्राप्त होता है और यह एक extra शरीर होता है...जिसके माध्यम से मुनि-महाराज अपनी कोई बहुत तत्त्व के प्रति कोई जिज्ञासा होती है, जिसका समाधान करने वाला कोई नहीं मिलता तो उसको दूर करने के लिए वह शरीर केवली भगवान के पास तक पहुँचता है। अपने अन्दर ज्ञान या शंका को दूर करने के लिए शरीर होता है या फिर इसके एक पीछे भाव छिपा रहता है कि इतनी दूर तो हमें जाने में बहुत सारा असंयम होगा। उस असंयम को दूर करने के लिए भी इस तरह से शरीर की उत्पत्ति होती है, तो यह शरीर आहारक-शरीर कहलाता है जो केवल मुनि महाराजों के लिए होता है, इसकी detail आगे खुद सूत्रों में आएगी।

तैजस शरीर का मतलब

फिर अन्त में चौथा शरीर और होता है- तैजस-शरीर। तेज मतलब जो आपके अन्दर glow है या illumination है, वह सब जो है, तेज कहलाता है। मतलब भीतर जो अपने अन्दर light है या अग्नि है, तो उसको तैजस-शरीर कहा जाता है। जो शरीर में original कान्ति है, वह भी तैजस-शरीर से ही होती है। इस तरह से यह तैजस-शरीर का हमें काम दिखाई देता है।



कर्मों का समूह ही कार्मण शरीर होता है

कार्मण-शरीर तो सभी कर्मों के लिए आधारभूत है या कर्मों के समूह का ही नाम कार्मण शरीर है। यह कार्मण-शरीर बीज रूप में सब शरीरों के लिए काम करता है, यह बीज है। यह बीज है, तो यह वृक्ष बाहर दिखाई दे रहा है। क्या समझ आ रहा है? यह जो इतना बड़ा औदारिक शरीर है, यह किस बीज का है? कर्म-बीज का यह वृक्ष बना हुआ है। उस वृक्ष की ये शाखाएँ हैं। ये हाथ, ये पैर, ये सब उस वृक्ष की शाखाएँ हैं तो यह वृक्ष का एक रूप लिया हुआ है लेकिन इसका बीज मतलब मूल कारण क्या है? कार्मण शरीर। इस कार्मण-शरीर को भी हम जो हैं या तो शास्त्रों से जानेंगे या फिर हम अपने ज्ञान से भी अनुमान लगाएँगे तो हमें इस कार्मण-शरीर का ज्ञान प्राप्त होगा। शास्त्रों में तो लिखा ही है, अब अनुमान से भी हम देखें तो कोई भी चीज बिना कारण के तो होती नहीं है। अगर शरीर बन रहा है, अपने आप कोई भी formation हो रही है, तो उसके पीछे कोई न कोई अन्तरंग में कोई अदृश्य-कारण तो छिपा हुआ है, तो वही अदृश्य-कारण यह कार्मण शरीर होता है।

हमारे ही राग-द्वेष परिणामों से कार्मण शरीर बनता है



लोग जब इस अदृश्य-कारण को नहीं जान पाते हैं तो वह तरह तरह की ईश्वरीय शक्तियाँ और ब्रह्माण्ड की शक्तियाँ और इस तरह से परमात्मा का काम, ब्रह्मा का काम, इस तरीके से अलग-अलग तरीके से उसको व्याख्यायित कर लेते हैं लेकिन वस्तुतः यह सब अपने ही कर्म-समूह का काम है। जो बहुत सूक्ष्म पुद्गल के particles होते हैं और वह आत्मा में ही आत्मा के राग-द्वेष परिणामों से बन्ध को प्राप्त होते रहते हैं। उन कर्मों को बांधने के लिए जो कहना चाहिए, गोंद या fevicol चाहिए, वह क्या है? वह आत्मा का रागादि कषाय परिणाम है, बस! वह जिसका जितना अच्छा होता है, उसके लिए उतनी अच्छे तरह वाले कर्म भी बन्ध जाते हैं और जिसका जितना ढीला होता है, उसके लिए ढीले-ढाले से कर्म बन्ध जाते हैं। ठीक है! कर्म को बांध करके उन कर्मों का जो फल देखने में आता है, इसी से अनुमान लगता है कि अन्तरंग में एक कार्मण शरीर रूप बीजभूत शरीर है। अब कोई कहे कि भाई! फिर कार्मण-शरीर का भी कोई और कारण होना चाहिए तो कार्मण-शरीर के कारण उस आत्मा के अपने भाव हैं, जो मिथ्यात्व आदि प्रत्यय हैं, वे भाव हैं, उनके कारण से वह कर्म का बन्ध होता है और उस कर्म के बंधनों से फिर वही भाव उत्पन्न होता है, यह अनादि व्यवस्था चली आ रही है। इस तरीके से यह पाँच शरीर हैं, जिनका यह सामान्य से परिचय दिया गया। आगे पढ़ते हैं कि इन शरीरों में क्या और विशेषता होती है?

पाँचों शरीरों का सूक्ष्मता के आधार पर वर्णन

परं परं सूक्ष्मम् ॥2.37॥

क्रम-क्रम से ये सूक्ष्म हैं, जानो पाँच शरीर।
चेतन के परिणाम से, पुद्गल की तस्वीर॥2.37॥

सूक्ष्मता (स्थूलता में भी कमी) का क्रम



औदारिक वैक्रियक आहारक तैजस कार्मण

यह शरीर 'परं परं' अर्थात् **'आगे-आगे के' ये शरीर हैं**, ये सभी सूक्ष्म-सूक्ष्म होते गए हैं मतलब औदारिक-शरीर से वैक्रियिक-शरीर सूक्ष्म होता है। वैक्रियिक-शरीर से आहारक-शरीर सूक्ष्म होता है। आहारक-शरीर से तैजस-शरीर सूक्ष्म होता है और तैजस-शरीर से कार्मण-शरीर सूक्ष्म होता है। सूक्ष्म का मतलब यहाँ पर क्या समझना? एक तो स्थूलता में भी कमी आना और दूसरा वह इतना सूक्ष्म परमाणुओं से बना होना कि वह हमारे लिए दृष्टिगोचर न होना। यह भी सूक्ष्मता में ही आता है, तो औदारिक-शरीर से वैक्रियिक-शरीर सूक्ष्म है। वैक्रियिक-शरीर से आहारक शरीर सूक्ष्म है। अब यह आहारक-शरीर अगर सूक्ष्म है, तो आहारक-शरीर से बड़ा तो हो गया वैक्रियिक-शरीर, अब अगर आहारक-शरीर दिखता है, तो वैक्रियिक-शरीर भी दिखता होगा और दिखेगा? समझ आ रहा है?

देव चाहे तो हम उन्हें देख सकते हैं

लेकिन यह उन विक्रिया करने वालों के ऊपर है कि वे अपना शरीर आपको दिखाएँ या न दिखाएँ। कई बार कोई भी देवता इत्यादि होते हैं, देवी-देवता होते हैं, वे अपना प्रत्यक्ष शरीर नहीं दिखाते हैं और अगर वे यहाँ पर घूम भी रहे होंगे तो वे आपको देखने में भी नहीं आएँगे, यह उनके शरीर की सूक्ष्मता है। वे अगर दिखाना चाहेंगे तो हम देख भी पाएँगे, इतना भी सूक्ष्म नहीं है कि हम देख न पाएँ। वे अगर दिखाना चाहेंगे तो देख पाएँगे। अगर हम यहाँ नहीं देख पाते तो हम यह भी देखे कि जब बड़े-बड़े तीर्थंकरों के कल्याणक होते हैं तो उनमें तो वे सब दिखाई देते हैं। मनुष्य के साथ सब व्यवहार भी करते हैं, मनुष्य के सामने भी आते हैं तो वह सब उनका शरीर ऐसा नहीं है कि वह सूक्ष्म है, तो दिखाई नहीं देता। इसलिए दिखाई नहीं देता; वह सूक्ष्म है, तो औदारिक-शरीर की अपेक्षा से सूक्ष्म है लेकिन दिखाई तो वह अपनी आँखों

से भी दे सकता है। यह उस शरीर की, उस व्यक्ति की या उस वैक्रियिक-शरीर वाले उस अपने उस आत्मा के ऊपर निर्भर करेगा कि वह उसको दिखाना चाहता है या नहीं।

तैजस शरीर का कार्य



इस तरह से इन शरीरों में आगे-आगे सूक्ष्मता बढ़ती चली जाती है और अन्त में जो सबसे ज्यादा सूक्ष्म है, वह है- कार्मण-शरीर, यह नहीं दिखेगा। तैजस-शरीर भी नहीं दिखेगा, उसका कार्य दिखेगा बस! कार्य से ही अनुमान लगाना। 'कार्य लिंगम हि कारणं' कार्य को जानकर के ही यह अनुमान लगाया जाता है कि इसका यह कारण है। शरीर में जो अनेक तरह की अग्नि होती है, अनेक तरह का तेज सम्बन्धी काम होता है, वह सारा का सारा इस तैजस-शरीर के द्वारा निष्पादित होता है, जो आगे बताया जाएगा। इस तरह से यह तैजस-शरीर भी सूक्ष्म है लेकिन यह इसका कार्य दिखाई देता है। कार्मण शरीर तो इतना सूक्ष्म है कि हमको दिखाई नहीं दे सकता। ये इन शरीरों की सूक्ष्मता को जानकर के आगे का सूत्र पढ़ते हैं-

शुरु के तीन शरीरों में प्रदेश व परमाणु की संख्या

प्रदेशतोऽसंख्येय गुणं प्राक् तैजसात् ॥ 2.38॥

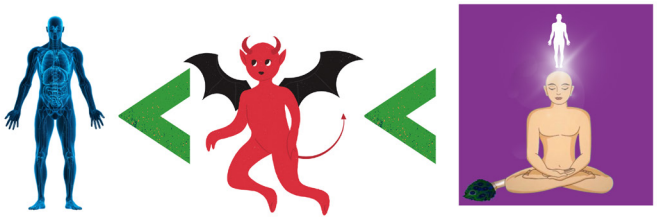
प्रदेशत: +असंख्येय गुणं प्राक् तैजसात्

असंख्यात परमाणु का, बढ़ता बढ़ता ढेर ।
तैजस के पहले सभी, तन में इस क्रम फेर॥2.38॥

देखो! क्या कहते हैं अब! आचार्य कहते हैं कि प्रदेश की अपेक्षा से **'प्रदेशतो'** अर्थात् जो एक शरीर में प्रदेश होते हैं, परमाणु होते हैं, उनसे, उनकी अपेक्षा से देखें तो **'असंख्येय गुणं'** ये सब असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा इनके परमाणु हैं। लेकिन कब तक? **'प्राक् तैजसात्'** तैजस-शरीर से पहले-पहले तक। तैजस-शरीर से पहले का मतलब आहारक-शरीर तक। औदारिक से शुरु करो, औदारिक-शरीर में जितने परमाणु होंगे, उससे भी असंख्यातगुणे परमाणु, वैक्रियिक-शरीर में होंगे। वैक्रियिक शरीर जितने परमाणुओं से बनता है, उससे भी असंख्यात गुणे परमाणु आहारक-शरीर में होंगे। अब आप यह देखो! औदारिक-शरीर कितना ही बड़ा हो, 1000 योजन की अवगाहना वाला भी औदारिक-शरीर ले लो और इधर सबसे छोटा देव जो होता है, सर्वार्थसिद्धि का एक हाथ का देव होता है, उसको ले लो...बस! एक हाथ का देव और वह 1000 योजन की अवगाहना वाला वह शरीर जो महामत्स्य का शरीर होता है, उसमें जितने प्रदेश होंगे उससे भी असंख्यातगुणे प्रदेश उस एक हाथ के सर्वार्थसिद्धि के देव में होंगे। मतलब क्या हुआ? फिर तो मोटा हो जाना चाहिए था, उसमें परमाणु ज्यादा हो गए? ऐसा नहीं है! परमाणुओं से मोटा नहीं हुआ जाता, परमाणु ज्यादा होने पर भी वह ठोस

हो सकता है।

असंख्यात गुणे अधिक परमाणु



औदारिक वैक्रियक आहारक

स्थूल और सूक्ष्म में अन्तर

जैसे कि यह रुई का गोला होता है। अब रुई है, आपने बहुत-सारी रुई इकट्ठी कर ली, रुई का गोला और बहुत सारा आपने उसको इकट्ठा करके देखा। अरे! इतनी सारी रुई है, तो वह स्थूल तो हो गया, बड़ा तो हो गया लेकिन उसमें जितने परमाणु हैं, एक छोटी-सी लोहे की इतनी बराबर भी अगर गोली होगी, लोहे का इतना बराबर भी अगर गोल कुछ भी चीज होगी तो उसमें उससे भी असंख्यात गुणे परमाणु होंगे क्योंकि वह ठोस है। परमाणु अधिक हो जाने का मतलब यह नहीं समझना कि वह शरीर जो है और ज्यादा बड़ा होगा, ठोसता आ जाती है। लड्डू होते हैं, काहे-काहे के होते हैं? एक राजगिरे का लड्डू होता है, राजगिरा जानते हो? लाई का तो जानते होंगे? अरे! खाते तो सब होंगे। जानते नहीं? राजगिरा होते हैं। क्या बोलते? चौलाई! भैया! और सुन लो सब लोग एक नया नाम, नये-नये नाम हैं। वे राजगिरे के लड्डू-चौलाई के लड्डू, वह तो खूब बड़ा दिख जाता है और खूब बड़ा हो जाता है और देखने में जो है बड़ा हल्का-सा होता है लेकिन अब एक ले लो, चलो! किसका? बेसन का। काहे का बता रहे हो आप? चने का, वही बेसन का तो बनेगा, चने का थोड़ी न होता, कैसी बातें करते हो? उसको बोलते हैं- बिसनारे का लड्डू। वह देखो, उसमें जो परमाणु होंगे, वे अपने आप में ठोस होगा। उसका वजन उससे ज्यादा होगा लेकिन देखने में छोटा लगेगा। बस! ऐसे ही समझ लो।

प्रदेश व परमाणु की अपेक्षा से पहले तीन शरीरों में अंतर

ऐसे ही यह औदारिक-शरीर से वैक्रियिक आदि शरीरों में असंख्यातगुणे परमाणु हैं। आचार्यों ने संख्या बतायी है- पल्य के असंख्यातवें भाग अर्थात् पल्य से असंख्यातवाँ भाग इतने उसमें multiply करो, उतने गुणे औदारिक से वैक्रियिक में और वैक्रियिक से आहारक में। कितने? असंख्यातगुणे। असंख्यातगुणे, उसका गुणकार दिया है। कितने से आपको multiply करना है? इतने गुणे उसके अन्दर ये परमाणु मतलब आहारक-शरीर में और ज्यादा ठोसता है लेकिन आहारक शरीर एक हाथ का ही होता है। वैक्रियिक-शरीर बड़ा भी हो सकता है। अब मान

लो, वैक्रियिक-शरीर से तुलना करनी हो तो नारकी का 500 धनुष का वैक्रियिक-शरीर होता है। उससे एक हाथ का जो आहारक शरीर होगा, जो मुनि महाराज के मस्तक से निकलता है, उसकी अगर तुलना करोगे तो उस 500 धनुष के नारकी में जितने परमाणु होंगे, उससे भी असंख्यातगुणे परमाणु एक आहारक-शरीर में होंगे, जो मुनि महाराज के शरीर से निकल रहा है। इस-तरह से यह शरीरों में असंख्यात गुणा अधिकपना कहाँ तक है? आहारक-शरीर तक है, तैजस से पहले-पहले। फिर तैजस और कार्मण में क्या होता है? उसके लिए आचार्य आगे का सूत्र देते हैं-

तैजस व कार्मण शरीर का गणित

अनन्तगुणे परे॥ 2.39॥

दोहा:- अन्तिम तन दो जो बचे, गुणे अनन्ते होत।
पुद्गल अणु का खेल यह, सबको दर्श न होत॥2.39॥

अनन्त गुणे अधिक परमाणु



आहारक तैजस कार्मण

हाँ! यह होता है कि आहारक-शरीर से अब तैजस-शरीर में अनन्त गुणे परमाणु होंगे। कितने? अनन्तगुणे और तैजस से भी कार्मण-शरीर में जो परमाणु होंगे वे उससे भी अनन्तगुणे होंगे। अब यहाँ पर जिससे हमें multiply करना है, वह असंख्यात संख्या नहीं रही, वह क्या हो गई? अनन्त से गुणित हो रही है, अब वह चीज अनन्त में चली गई। मतलब तैजस-शरीर के परमाणु अनन्तगुणे हो गए और उसके भी परमाणु उससे भी अनन्त गुणे हो गए। इस तरीके से इन शरीरों का हमें ज्ञान इन सूत्रों के माध्यम से हो जाता है। तैजस से कार्मण-शरीर अनन्तगुणा जो होता है, वह भी सिद्धों का अनन्तवाँ भाग और अभव्यों से अनन्तगुणे, इस तरीके का उसका गणित होता है। यह अनन्त का वह गणित होता है, तो इतने अनन्तगुणे परमाणुओं से वह आगे-आगे का तैजस और कार्मण-शरीर बन जाता है। मतलब कार्मण-शरीर इतना ठोस हो गया, उसके परमाणु सूक्ष्म है और वह इतने अधिक संख्या में है कि वह हमारे लिए न तो देखने में आ सकता, न वह हमारे लिए किसी भी तरीके से अनुभव में आ सकता। अनुमान से जाना जा सकता है या आगम ज्ञान से जाना जा सकता है। इस तरह से इन शरीरों का वर्णन आगे

बढ़ाते हुए आचार्य कहते हैं...

अप्रतीघाते ॥2.40॥

तीन लोक में रोक ना, चाहे वज्र कपाट।
तैजस कार्मण देह की, यही अनोखी बात ॥2.40॥

प्रतिघात का अर्थ

अब देखो! यह जो 'अप्रतिघाते' सूत्र है, यह किनके लिए है? इसमें **'अप्रतिघाते'** यह भी देखा जाए तो यह द्विवचन की विभक्ति के साथ में बना हुआ शब्द है। 'अप्रतिघाते' कौन-कौन-से दो शरीर अप्रतिघात हैं? आचार्य कहते हैं- यह जो कार्मण शरीर है और तैजस-शरीर है, जिसके लिए हम अभी पिछले सूत्र में चर्चा करके आए हैं... **'अनन्तगुणे परे'** वही दोनों शरीर अप्रतिघात हैं अर्थात् इनका प्रतिघात नहीं होता है। प्रतिघात का मतलब क्या होता है? कोई-भी मूर्तिमान-द्रव्य है या कोई भी matter है, वह दूसरे matter से घात को प्राप्त होता ही है। जैसे यह पुस्तक है, इस पुस्तक से हम इसको हिला सकते हैं। यह भी जो है, इस पुस्तक को हिला सकता है, तो एक-दूसरे से घात को प्राप्त होना, बाधा को प्राप्त होना। यहाँ से जैसे यह दीवार लगी हुई है, अगर दीवार है, तो इस दीवार के कारण से यहाँ पर आप यहाँ से जो है खुद निकल कर नहीं जा सकते हो तो यह आपका प्रतिघात हो गया। आपको अलग से दरवाजा बनाना पड़ता है, दीवार तोड़ कर आप खुद नहीं निकाल सकते हो तो दीवार से आपका क्या हो गया? यह प्रतिघात हो गया मतलब दीवाल आपके लिए व्यवधान पैदा कर रही है। आपके लिए कोई भी तरीके का कहीं पर आप गमन कर रहे हो, कुछ-भी तो जो प्रतिघात है, उसका मतलब है कि एक-दूसरे से उसका कुछ-भी व्यवधान होना।

तैजस और कार्मण शरीर प्रतिघात से रहित होते हैं



यह कार्मण और तैजस-शरीर! यह कहीं पर भी प्रतिघात को प्राप्त नहीं होते। इसका मतलब क्या है? कि पूरे लोक में यह कहीं पर भी दोनों शरीर बिल्कुल निर्विघ्न हो करके बिना बाधा के घूम सकते हैं। समझ आ रहा है? कोई-भी इनके लिए रुकावट नहीं है। आप कहो कि हम इन्हें दीवार रोक लेगी, दीवार को भी पार कर के निकल जाएँगे। दीवाल तो बहुत छोटी चीज होती है। अगर कहीं वज्र का पर्वत भी हो, वज्र बहुत ठोस धातु होती है- हीरा, उसका भी अगर पर्वत हो तो उसको भी cross करके निकल जाएगा। कौन? तैजस कार्मण-शरीर। वह कार्मण शरीर बिना आत्मा के थोड़ी न होगा। वह आत्मा तैजस-कार्मण शरीर के साथ में पूरे लोक में कहीं पर भी बिना बाधा के गमन कर लेता है। किस कारण से? उसका ऐसा स्वभाव है। औदारिक शरीर के कारण से नहीं कर सकता। वह तो आपने जहाँ दरवाजा लगा दिया,

वहीं बंद हो जाएगा फिर लेकिन तैजस-कार्मण-शरीर के साथ कहीं पर भी जन्म लेना हो, उसे कोई रोकने वाला नहीं है। इसलिए वह पर्वत की गुफाओं को कितने ही चीजों को पार करता हुआ, वह आत्मा कार्मण और तैजस-शरीर के साथ में कहीं का कहीं पहुँच जाता है...second में नहीं, समयों में। किस स्वभाव के कारण से? उसका स्वभाव क्या है? अप्रतिघाते! क्योंकि उसका प्रतिघात करने वाला कोई नहीं, उसका व्याघात करने वाला कोई नहीं, उसको बाधा देने वाला कोई नहीं।

ये दो शरीर पूरे लोक में कहीं भी बाधा रहित जा सकते हैं

पाँच शरीरों में केवल यही दो शरीर कैसे हैं? पूरे लोक में जिनके लिए कोई obstacles नहीं मिलेंगे। जहाँ इनको जाना है, वहाँ जायेंगे, कोई इनको रोक नहीं सकता। कितनी ही मोटी-मोटी पृथ्वियाँ हो! अब देखो! नारकी-जीव है, नीचे सातवीं पृथ्वी से निकलेगा। अगर उसको यहाँ मध्यलोक में आना है, तो कितनी पृथ्वियों को पार करके आता है? हर पृथ्वियाँ कितने योजनों-योजनों मोटी हैं! सभी छह पृथ्वियों को समयों में पार करके जो मनुष्य लोक में आकर जन्म ले लेता है, कोई उसको रोक नहीं सकता। इन सब पृथ्वियों को भेदने की क्षमता, पर्वतों को भेदने की क्षमता, सबसे व्याघात के बिना निकलने की क्षमता, यह आत्मा में तैजस और कार्मण-शरीर के कारण से होती है। इसलिए आत्मा का जन्म कहीं पर भी हो सकता है, होता है, उसमें कोई भी बीच में व्याघात करने वाला नहीं होता, वह अप्रतिघात है।

बाकी तीन शरीरों की घूमने की सीमा सीमित है

अन्य शरीर भी हैं- मान लो, वैक्रियिक हैं, आहारक हैं, ये भी घूमते हैं। ये भी बिना बाधा के घूमते हैं लेकिन ये पूरे लोक में नहीं घूम सकते हैं। इनकी अपनी जितनी range होती है, उतनी range में यह प्रतिघात से रहित होते हैं, जितनी इनकी range होगी। आहारक-शरीर की अपनी range होती है, वैक्रियिक-शरीर वालों की भी अपनी विक्रिया करने की एक range होती है। जितनी range होगी, उतनी ही range में यह व्याघात से रहित हैं लेकिन तैजस और कार्मण-शरीर तो everywhere, कहीं पर भी वह पूरे लोक में जा सकते हैं। इस तरह से इन शरीरों का स्वभाव समझ करके, हम अपने आपको और इन शरीर को भी अच्छे ढंग से समझ सकते हैं। आज के लिए इतना ही ठीक है

सारांश

1. जीव का जन्म होता है, तो वह शरीर को धारण करता है
   - विभिन्न **नाम-कर्मों** के उदय के कारण से ये शरीर अलग-अलग प्रकार के होते हैं
   - **'शीर्यते इति शरीर:'** अर्थात जो शीर्यते यानि शीर्ण होता है उसे शरीर कहते हैं
   - **समभिरूढ़-नय** की अपेक्षा से शरीर का तात्पर्य है -
     - जिसमें कर्म-परमाणु या नोकर्म परमाणु आते जाते रहते हों
     - जिसमें उपचय और अपचय दोनों क्रियाएँ जिसमें होती हों
     - नए शरीरगत परमाणुओं का बंध और पुराने परमाणुओं की निर्जरा होती हो
2. सूत्र छत्तीस में हमने जाना कि शरीर पाँच प्रकार के होते हैं
   - औदारिक
   - वैक्रियिक
   - आहारक
   - तैजस शरीर और
   - कार्मण
3. औदारिक शब्द **उदार शब्द** से बनता है
   - अर्थात् जो बड़ा हो, स्थूल हो, महान हो
   - उदार भाव सबको समाहित कर लेने का भाव है
4. औदारिक शरीर उदार, स्थूल, बड़ी काया वाला होता है
   - जैसे हजारों योजनों में फैला हुआ महामत्स्य
5. इतना उदार-स्थूल शरीरपना अन्य शरीरों का नहीं होता
6. यह पाँच शरीर में सबसे बड़ा काम करने वाला भी है
   - इससे चार प्रकार के पुरुषार्थों में दुर्लभतम मोक्ष-पुरुषार्थ करते हैं
   - यहाँ तक केवलज्ञान आदि की प्राप्ति भी इसी से होगी
7. हमने समझा कि हमें शरीर को अनेकांत दृष्टि से देखना चाहिए
   - **केवल अशुचि भावना** से हेय दृष्टि से नहीं मानना चाहिए
   - अशुचिता अलग चीज है और हेयता अलग
   - हमें जानना चाहिए कि हम **शरीर से ही धर्म साधन** कर सकते हैं
8. हम शरीर को ही अपना स्वरूप न समझें और राग, मोह से दूर रहें इस दृष्टि से
   - शरीर और आत्म-तत्त्व के विपरीत स्वभावों को समझाया जाता है
   - किन्तु इस पंचम काल में भी संयम ग्रहण करना, गुणस्थान वृद्धि करना, कर्म निर्जरा आदि बड़े काम भी इसी औदारिक शरीर से होंगे
9. हमने जाना कि उदारता संयम और चारित्र धारण करने में हैं, प्रमादी होने में नहीं

- जो जितना काम-चोर होगा वह उतनी ही जल्दी रोगी भी होता है

10. सम्यग्दर्शन तो किसी भी शरीर से हो सकता है किन्तु संयम सिर्फ औदारिक शरीर से होगा
11. इसलिए आचार्यों ने क्रम में औदारिक शरीर को सबसे पहले लिखा है
    - कार्मण शरीर के कारण से ही सब शरीरों की उत्पत्ति होती है
    - फिर भी आचार्यों ने इसे आगे नहीं रखा
    - क्योंकि आदरणीय औदारिक शरीर ही है
12. हमने जाना कि **मुख्य प्रयोजन** कर्म का नाश करना है अर्थात कार्मण शरीर का क्षय करना
    - औदारिक-शरीर का नाश करना प्रयोजन नहीं है
    - **इसके माध्यम** से हम कर्म का नाश कर सकते हैं
13. संयम के साथ में **सल्लेखना** के समय पर इस औदारिक-शरीर को भी छोड़ा जाता है
    - लेकिन वह नाश करने के समान नहीं है
    - क्योंकि वह तो छूटने ही वाला होता है
14. औदारिक शरीर के बाद दूसरा शरीर है - **वैक्रियिक शरीर**
15. अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राकाम्य, प्राप्ति, इशित्व और वशित्व जैसी आठ ऋद्धियों को प्राप्त करके जीव इस शरीर में **विक्रिया कर सकता है**
16. विक्रिया पृथक और अपृथक के भेद से दो प्रकार की होती है
17. **पृथक विक्रिया** में जीव अपने शरीर से अलग अलग दूसरे शरीर बना करके उन्हें शेर, गाय आदि बना सकता है
    - आत्मा के प्रदेश सभी शरीरों में फैल जाते हैं
    - सभी शरीर अलग-अलग कार्यों में भी लग जाते हैं
18. हमने जाना कि सौधर्म इन्द्र अपनी विक्रिया से **एक साथ** 170 तीर्थंकर भगवान के समवशरण में उपस्थित रह सकता है
    - ऐसा अजितनाथ भगवान के समय में हुआ था
    - सभी समवशरण में वो भगवान के सामने बैठकर उनकी स्तुति और आराधना करता है
19. सिद्धांततः **main सौधर्म इंद्र** तो अपनी शय्या पर ही रहता है, वह कहीं उठता नहीं है
20. चूँकि विक्रिया से जो अलग-अलग शरीर बने हैं वे अलग अलग क्रियाएं करते हैं तो वह एक शरीर से पूजा भक्ति और दूसरे से भोग भी कर सकता है
21. इस स्थिति में उसे कर्म का बन्ध होगा या धर्म का?
22. तो मुनिश्री समझाते हैं कि अन्तरंग में **उपयोग और योग** की प्रवृत्ति बहुत fast होती है
    - और उनके अनुसार ही कर्म बन्ध की प्रक्रिया चलती है
    - यह मतिज्ञान, श्रुतज्ञान या दर्शनोपयोग आदि में बदलता रहता है
23. हम कब हम बोल रहे हैं?
    - कब हिल रहे हैं, देख रहे हैं,
    - यह अपने को ही पकड़ में नहीं आता

24. यह सब automatically चलता रहता है
    - कर्म बंध प्रति समय बताया गया है
    - और एक समय में एक ही उपयोग रहता है
    - तो कर्म-बंध भी उसी उपयोग के अनुसार होता है
25. तीसरा शरीर **आहारक शरीर** है जो केवल मुनि महाराज के होता है
    - वे इसके माध्यम से तत्त्व के प्रति अपनी जिज्ञासा केवली भगवान के समक्ष समाधान हेतु रखते हैं
    - इससे वे दूर जाने में होने वाले असंयम को सीमित करते हैं
26. चौथा शरीर **तैजस शरीर** है यानि शरीर की कांति
    - उसका तेज या अंदरूनी glow, illumination या अग्नि
27. पांचवां शरीर **कार्मण-शरीर** है यानि कर्मों का समूह
    - यह सब शरीरों के लिए बीज रूप काम करता है
    - यह बीज है, तो इतना बड़ा औदारिक शरीर वृक्ष बना हुआ है
        - और हाथ, पैर सब उस वृक्ष की शाखाएँ हैं
28. शरीर बनने के पीछे **अन्तरंग में अदृश्य-कारण** कार्मण शरीर ही होता है
29. यह आत्मा में ही आत्मा के राग-द्वेष, कषाय परिणामों से बन्ध को प्राप्त होते रहते हैं
30. अज्ञानवश लोग इस अदृश्य-कारण को न जानकर; तरह-तरह की ईश्वरीय शक्तियाँ से इस प्रक्रिया को व्याख्यायित करते हैं
31. सूत्र सैंतीस **'परं परं सूक्ष्मं'** में हमने जाना कि शरीर क्रम से सूक्ष्म होते जाते हैं
    - अर्थात औदारिक से सूक्ष्म वैक्रियिक, उससे सूक्ष्म आहारक, उससे सूक्ष्म तैजस और सबसे सूक्ष्म कार्मण शरीर होता है
32. सूक्ष्म के दो पहलू हैं
    - एक तो स्थूलता में कमी आना और
    - दूसरा सूक्ष्म परमाणुओं से बना होना
33. देवी-देवता हमें कभी प्रत्यक्ष दिखते हैं और कभी नहीं दिखते हैं
    - जैसे तीर्थंकरों के कल्याणक में वे सब दिखाई देते हैं और मनुष्य के साथ व्यवहार भी करते हैं
    - यह उनके ऊपर निर्भर है कि वे हमको दिखना चाहते हैं या नहीं
34. तैजस और कार्मण शरीर इतने सूक्ष्म हैं कि वे दिखाई नहीं देते
35. सूत्र अड़तीस और उन्तालीस में हमने शरीरों में प्रदेश व परमाणु की संख्या को जाना
36. प्रदेश व परमाणुओं की अपेक्षा, **पहले तीन शरीरों के** परमाणु पिछले से असंख्यातगुणा होते हैं और अंतिम दो के अनंतगुणा होते हैं
    - औदारिक शरीर से असंख्यातगुणे परमाणु वैक्रियिक शरीर में होंगे
    - उससे असंख्यातगुणे आहारक शरीर में होंगे

- उससे अनंतगुणे तैजस शरीर में होंगे और
- उससे अनन्तगुणे कार्मण शरीर में होंगे
- उदाहरण के लिए 1000 योजन की अवगाहना वाले औदारिक शरीर में जितने प्रदेश होंगे, उससे असंख्यातगुणे प्रदेश सर्वार्थसिद्धि के सबसे छोटे एक हाथ के देव में होंगे

37. ज्यादा परमाणुओं से मोटा ही नहीं हुआ जाता, वह ठोस भी हो सकता है
- जैसे बहुत सारी रुई का गोला है, वह बड़ा है, स्थूल है
- लेकिन लोहे की छोटी सी चीज में भी उससे असंख्यात गुणे परमाणु हैं क्योंकि वह ठोस है
- जैसे चौलाई के लड्डु हलके हैं और बेसन के लड्डु ठोस, छोटे और अधिक परमाणु वाले हैं

38. तैजस से कार्मण शरीर का जो अनन्तगुणा होता है वह सिद्धों का अनन्तवाँ भाग और अभव्यों से अनन्तगुणे होता है
- कार्मण शरीर ठोस और अधिक संख्या में सूक्ष्म परमाणुओं से बनता है
- और वह हमें देखने में या अनुभव में नहीं आ सकता
- वह सिर्फ अनुमान ज्ञान या आगम ज्ञान से जाना जा सकता है

39. सूत्र चालीस अप्रतिघाते में हमने जाना कि तैजस और कार्मण शरीर प्रतिघात से रहित होते हैं
- प्रतिघात अर्थात बाधा या व्यवधान होना
- जैसे एक पुस्तक से दूसरी पुस्तक को हिलाना; उससे दोनों एक-दूसरे से घात को प्राप्त हुयी, बाधित हुई
- या दीवार से आर पार न जा पाना

40. मगर ये दो शरीर पूरे लोक में कहीं भी बाधा रहित जा सकते हैं
- किसी भी दीवार, वज्र के पर्वत आदि को cross कर जाते हैं
- आत्मा कार्मण और तैजस शरीर के साथ, समयों में, तीनों लोक में कहीं भी पहुँच जाती है

41. बाकी तीन शरीरों की अप्रतीघात घूमने की सीमा सीमित है

42. वैक्रियिक और आहारक शरीर अपनी range में बिना बाधा के घूमते हैं
- लेकिन ये पूरे लोक में नहीं घूम सकते हैं

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q 1. शरीर कितने प्रकार के होते हैं?
1. 3
2. 5
3. 7
4. 6

Q 2. उदार शब्द से औदारिक शब्द बना है। यह कथन कैसा है?
1. सही
2. गलत

Q 3. उदार का अर्थ होता है -
1. बड़ा
2. स्थूल
3. भोला
4. भारी
5. महान

Q 4 . सिर्फ औदारिक शरीर वाले जीव ही सम्यक्त्व को प्राप्त कर सकते हैं। यह कथन कैसा है-
1. सही
2. गलत

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड

Q5. विक्रिया द्वारा बने सभी शरीरो में आत्मा होती है । यह कथन कैसा है?
1. सही
2. गलत

Q6. एक साथ 170 तीर्थंकर कौनसे भगवान के काल में हुए थे ?
1. आदिनाथ
2. मुनिसुव्रतनाथ
3. अजितनाथ
4. धर्मनाथ

Q7. चौथे नम्बर का शरीर कौनसा है?
1. वैक्रेयिक
2. तैजस
3. कार्माण
4. आहारक

Q8. कौनसा कथन सत्य है ?
1. एक समय में असंख्यात आवली होती है ।
2. एक आवली में संख्यात समय होते हैं।
3. एक आवली में असंख्यात समय होते हैं।
4. एक आवली में अनन्त समय होते हैं।

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड

Q9. कौनसा शरीर सबसे अधिक सूक्ष्म है?
1. आहारक
2. तैजस
3. वैक्रियक
4. कार्मण

Q10. कौनसा शरीर तैजस शरीर से बड़ा है?
1. कार्मण
2. आहारक
3. वैक्रियक
4. औदारिक

Q11. कौनसा शरीर कार्मण शरीर से छोटा है?
1. वैक्रियक
2. आहारक
3. तैजस
4. कोई नहीं

Q12. किस शरीर का कार्य दिखता है लेकिन शरीर नहीं दिखता ?
1. वैक्रियक
2. आहारक
3. तैजस
4. कार्मण

Q13. किस शरीर के परमाणुओं से असंख्यात गुणे परमाणु आहारक शरीर में होंगे?
1. तैजस
2. कार्मण
3. वैक्रियक

Q14. निम्न में से किसमें परमाणुओं की संख्या अधिक होती है?
1. एक हज़ार योजन की अवगाहना वाला महामत्स्य का शरीर
2. सर्वार्थ सिद्धि का एक हाथ का देव

Q15. शरीर की बढती अवगाहना के अनुसार सही क्रम क्या है ?
1. औदारिक,वैक्रियिक,आहारक
2. वैक्रियिक,आहारक,औदारिक
3. आहारक,वैक्रियिक,औदारिक

Q16. मूर्तिमान द्रव्य जब अन्य मूर्तिमान द्रव्य से घात को प्राप्त हो उसे क्या कहते हैं?
1. प्रतिघात
2. अप्रतिघात

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड

अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1. शरीर कितने प्रकार के होते हैं ?
2. किस शरीर के माध्यम से चारित्र धारण कर सकते हैं?
3. औदारिक शरीर के माध्यम से - - - शरीर का नाश कर सकते हैं ।
4. आठ ऋद्धियों के नाम बताइये।
5. पृथक् विक्रिया अपृथक् विक्रिया से किस प्रकार भिन्न है ?
6. कार्मण शरीर सब शरीरों का बीज है, कैसे ?
7. कौनसे शरीर दिखाई दे सकते हैं ?
8. कौनसे शरीर में अधिक परमाणु है ? सातवें नरक के नारकी के शरीर में या आहारक शरीर में ।
9. आहारक शरीर से तैजस शरीर में - - - - गुणे परमाणु होते हैं ।
10. प्रतिघात से रहित कौनसे शरीर हैं ?

प्रवचन 18

पाँच शरीरों की चर्चा प्रारम्भ हुई थी, शरीरों में प्रदेशों की संख्या की वृद्धि, किसमें कितनी होती है, यह बताया गया था। दो शरीर जो आत्मा के साथ हमेशा रहते हैं, उन तैजस और कार्मण-शरीर के कारण से आत्मा का कहीं पर भी रुकना नहीं होता, प्रतिघात नहीं होता। आगे यह बताना चाहते हैं कि इन तैजस और कार्मण-शरीरों में इतनी ही विशेषता नहीं है कि इनका कोई प्रतिघात नहीं होता। जो उनकी और एक मुख्य विशेषता है, वह आगे के सूत्र से कही जाती है-

अनादि-सम्बन्धे च ॥ 2.41॥

दोहा:- तैजस कार्मण देह का, भव में संग अनादि।
चाहे भवि या अभवि हो, प्रतिपल निर्जर सादि॥2.41॥

तैजस और कार्मण शरीर का सम्बन्ध अनादि से भी है और सादि भी है

दोनों शरीर, तैजस-शरीर और कार्मण-शरीर अनादि से यह सम्बन्ध को प्राप्त हैं। यह सम्बन्ध इनका अनादिकाल से होते हुए भी 'अनादि' भी है और 'सादि' भी है। 'च' शब्द से सादि-सम्बन्ध भी लिया गया है, ऐसा जानना। यह जैन-दर्शन अनेकान्तिक दृष्टिकोण को रखता है और अनेकान्तिक दृष्टिकोण का मतलब ऐसा नहीं होता कि केवल बातें करने के लिए अनेकान्त की जरूरत पड़ती है। कुछ लोग इस तरीके की धारणा रखते हैं कि कहने के लिए अनेकान्त की जरूरत है, बाकी धर्म तो केवल निश्चय ही होता है। ऐसा कहकर के भी लोग सही नहीं कहते, अनेकान्त दर्शन को सही ढंग से समझ नहीं पाते। हम यहाँ देखें कि अगर आत्मा के अन्दर कर्मों का सम्बन्ध है और वह कार्मण-शरीर के रूप में, तैजस-शरीर के रूप में वह हमसे जुड़ा हुआ है, तो वह सम्बन्ध वास्तव में अनेकान्तिक दृष्टिकोण से है या अनेकान्त रूप से उसका वास्तव में सम्बन्ध है भी कि नहीं? अगर केवल दृष्टिकोण होगा तो दृष्टिकोण तो ऐसी चीज हो जाती है कि भाई! चीज तो वास्तव में वही है लेकिन एक दृष्टिकोण से देख लो तो आपको ऐसा भी दिख जाएगा।

अनादि और सादि दोनों ही सम्बन्ध यथार्थ है

आचार्य कहते हैं- ऐसा नहीं है, अनादि-सम्बन्ध भी है और सादि-सम्बन्ध भी है और ये दोनों ही सम्बन्ध यथार्थ है। एकान्त रूप से यदि हम अनादि-सम्बन्ध मानते हैं तो भी अनेक बाधाएँ आती हैं और एकान्त रूप से यदि हम केवल सादि-सम्बन्ध स्वीकार करते हैं तो भी अनेक बाधाएँ आती हैं।

अनादि में अनेकान्तिक दृष्टिकोण का अर्थ



अनादि का मतलब जिसका कोई प्रारम्भ नहीं है, कोई-भी उसका beginning point नहीं है, उसको बोलते हैं- अनादि। आत्मा और कर्म का जो सम्बन्ध है...वह अनादि है; आत्मा के साथ कर्म का जो जुड़ाव है...वह अनादि है और इस अनादिपने के कारण से ही आत्मा कर्मों को धारण करता हुआ, नए-नए कर्मों को भी जोड़ता रहता है। अगर नए कर्मों का बन्ध न हो तो फिर मुश्किल हो जाएगी। नए कर्मों का बन्ध होना भी जरूरी है क्योंकि नए कर्म बन्ध होने से ही उसमें कुछ सादिपना आएगा और अगर केवल अनादिपना माना जाएगा तब तो फिर जो जैसा है, वह वैसा ही बना रहेगा। अनादि से था तो अनन्तकाल तक बना रहेगा, आप उसको तोड़ नहीं पाओगे, नष्ट नहीं कर पाओगे! जैसे आकाश है, अनादि से है, अनन्त तक रहेगा। क्यों रहेगा? क्योंकि उसमें कोई भी नयापन नहीं आ रहा है, कुछ उसमें विशेष नहीं हो रहा है। आचार्य कहते हैं- कर्मों का सम्बन्ध जो आत्मा के साथ में हैं, वह अनादि भी है और सादि भी है। अनादि इसलिए है क्योंकि कर्म जो सामान्य रूप से आत्मा में बन्धे हुए हैं, वे कर्म वही हैं। जो ज्ञानावरण आदि 8 प्रकार के कर्म हैं, वही कर्म हैं और ये आठों प्रकार के कर्म अनादि-काल से बन्धे होकर के भी इन सभी कर्मों की अपनी-अपनी स्थिति है, जब यह स्थिति पूरी हो जाती है, तो नए कर्मों का बन्ध भी होता है।

अनादि के साथ सादि बन्ध होना भी जरूरी है



नए कर्मों का उदय भी होता रहता है, तो अनादि-बन्ध के साथ में सादि-बन्ध होना भी बहुत जरूरी है। अनादि तो हो गया सामान्य और सादि हो गया विशेष। समझ आ रहा है? कैसे आएगा बिना उदाहरण के आपको? आप वृक्षों को देखते हो और यह भी देखते हो कि वृक्षों से बीज उत्पन्न होते हैं। अगर हम यह कहे कि वह वृक्ष जो उत्पन्न हुआ है, वह किसी न किसी बीज से हुआ है। फिर तो वह बीज कहाँ से आया? वह किसी अन्य वृक्ष का बीज है। बीज जो है, वह किसी अन्य वृक्ष से है और अगर हम देखे कि वह बीज भी कहाँ से आया? वह बीज तो अन्य वृक्ष से है, अब यह जो वृक्ष बना, वह वृक्ष अन्य हो गया। इसके जो बीज बने, ये दूसरे हो गए और इन दूसरे बीजों से फिर दूसरे-दूसरे और वृक्ष बने। सामान्य से कहा जाता है...बीज से वृक्ष होता है, वृक्ष से बीज होता है। जब आपसे पूछने बैठेंगे कि बताओ! यह वृक्ष अगर यहाँ है, तो इस वृक्ष का बीज कहाँ से आया? आप कहोगे कि अन्य वृक्ष से आया। वह वृक्ष भी कहाँ से आया? वह किसी अन्य बीज के कारण से आया। वह बीज भी कहाँ से आया? अन्य किसी वृक्ष से आया, फिर वह वृक्ष भी कहाँ से आया? वह किसी अन्य बीज से आया। यह क्या हो गया? यह कहलाती है...बीज-वृक्ष की एक सामान्य-सन्तति, सामान्य-परम्परा।

सामान्य सन्तति से अनादि की व्यवस्था बैठ जाती है

बीज से वृक्ष होता है, वृक्ष से बीज होता है, बीज से वृक्ष होता है फिर वृक्ष से बीज होता है। अगर हम इस सामान्य-सन्तति को ध्यान में रखते हैं तब तो यह अनादि की व्यवस्था बैठ जाती है। यह नहीं कहा जा सकता कि बीज और वृक्ष में कौन पहले हैं? बीज और वृक्ष दोनों ही अनादि से हैं। आप जैसे ही कहीं उसकी शुरुआत करोगे तो आप फँस जाओगे। समझ आ रहा है? जैसे कई बार बच्चे मजाक में पूछते रहते हैं- बताओ! पहले मुर्गी हुई कि पहले अण्डे हुए? जैसे ही आपने उत्तर दिया कि नहीं पहले अण्डे हुए तो अण्डे कहाँ से आ गए? बिना मुर्गी के अण्डे कहाँ होते हैं? आपने कहा कि मुर्गी से हुए तो मुर्गी पहले थी बिना अण्डे के तो मुर्गी कहाँ से आ गयी? जिस तरह से इस चीज का कोई भी जवाब यदि आप अनेकान्तिक दृष्टिकोण से देंगे तो ही वह fit बैठेगा अन्यथा आप जो भी जवाब देंगे, उसमें आप फँस जाओगे, यह logic है। उसी तरीके से आत्मा का शरीर से सम्बन्ध है, कर्म से सम्बन्ध है, वह सम्बन्ध अनादि से है, तो इसी बीज-वृक्ष की सन्तति की अपेक्षा से वह अनादि है। मुर्गी या अण्डे की सन्तति की अपेक्षा से वह अनादि है।

सादि कैसे है?

सादि कैसे है? जो नया-नया कर्म का बन्ध हो रहा है, हम अपने भावों से उस कर्म के बन्ध में जो नया-नया अन्तर ला रहे हैं, यह सब जो हम नया कर रहे हैं, उसकी अपेक्षा से वह सादि है। जैसी मुर्गी से अण्डा हुआ, अब उस अण्डे से वैसी मुर्गी होगी? बिल्कुल वही size होगा, वह ही colour होगा क्या? अरे! उसमें भी अन्तर होता है, आपको देखने में नहीं आता है। फिर उससे भी जो अण्डे होंगे, वह भी अलग होंगे, उससे जो मुर्गी बनेगी, वह भी अलग होगी।

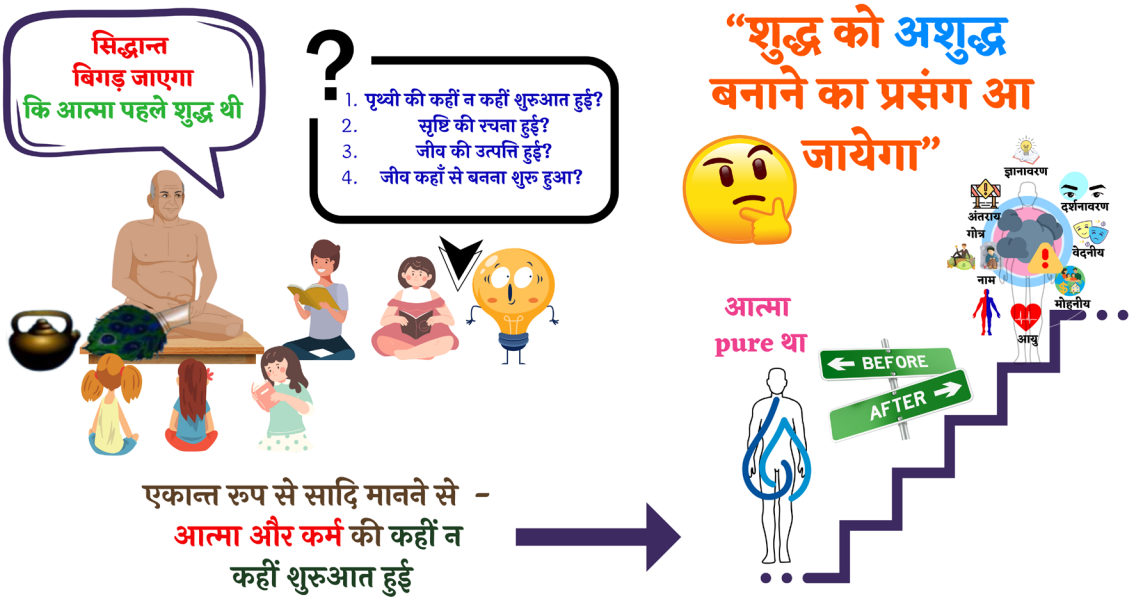
आत्मा और कर्म का सम्बन्ध एकान्त रूप से नहीं माना जा सकता

इसी तरीके से सामान्य के साथ में विशेष का होना और विशेष के साथ में सामान्य का होना तभी वस्तु-व्यवस्था बनती है। एकान्त रूप से यदि हम केवल सामान्य को मानेंगे तो व्यवस्था नहीं बनेगी और एकान्त रूप से विशेष को मानेंगे तो व्यवस्था नहीं बनेगी। अब देखो! एकान्त रूप से यदि हमने अनादि ही माना, आत्मा और कर्म का सम्बन्ध एकान्त रूप से कैसा है? अनादि है। इसका मतलब क्या हो जाएगा? अनादि से वही कर्म आत्मा के पास में हैं जो अनादिकाल पहले थे, अनन्तकाल पहले थे, यह हो जाएगा। मतलब कि आत्मा ने कोई नए कर्म अर्जित नहीं किये, अनादि से वही कर्म थे और वही कर्म आज भी हैं तो वह कर्म अनन्तकाल में भी नष्ट नहीं होंगे क्योंकि जो अनादि से है, उसमें कोई क्रिया नहीं हो रही है, तो फिर आगे भी कोई क्रिया की सम्भावना नहीं है। अनादि भी एक उसका स्वभाव है और साथ-साथ अगर हम उसको अनादि मानेंगे तो भी मोक्ष नहीं होगा और एकान्त रूप से सादि मतलब तो भी मोक्ष नहीं होगा। सादि माना मतलब कि कहीं न कहीं से उसकी शुरुआत हुई, आत्मा और कर्म की कहीं न कहीं शुरुआत हुई जैसा कि आज का विज्ञान क्या बोलता है?

आज का विज्ञान एकान्त रूप से दुनिया को सादि मानता है

एकान्त रूप से सादि मानते हैं, सब लोग जितने भी दुनिया में है। पृथ्वी की कहीं न कहीं शुरुआत हुई, सृष्टि की रचना हुई, जीव की उत्पत्ति हुई, जीव कहाँ से बनना शुरू हुआ? कहीं तो शुरुआत हुई होगी महाराज! ऐसा पढ़े-लिखे बच्चे पूछते हैं। इन बच्चों को, आजकल के इन नए पढ़े-लिखे बच्चों को यह जैन philosophy सिखानी चाहिए कि यह वस्तु व्यवस्था को जाने बिना आपका कोई भी उत्तर बिल्कुल logically fit नहीं बैठेगा। अगर आप व्यवस्था को सादि मानते हैं, कहीं न कहीं से शुरू हुआ होगा! अगर सादि हुआ तो इसका मतलब क्या हुआ? आत्मा में पहले से कर्म नहीं था, प्रारम्भ हुआ। सादि मानने का मतलब क्या? उसकी beginning हुई न! मतलब उसका कोई initial point हो गया। अब कहीं से कोई चीजें जब शुरू हो रही हैं तो उससे पहले तो वह चीज कर्म से अलग थी! कर्म से अलग थी तो इसका मतलब है कि आत्मा pure था, शुद्ध था। मतलब कि कर्मों ने उसको अशुद्ध बनाया तो इससे क्या सिद्धान्त बनेगा? शुद्ध आत्मा भी अशुद्ध बन जाती है। अर्थात् जिन आत्माओं को मोक्ष हो

गया है या शुद्ध भी हो गए हैं वे आत्मा कभी भी कर्म से घिर सकते हैं। फिर शुद्ध को जब अशुद्ध बनने का प्रसंग आ गया तो मोक्ष को संसारी होने का प्रसंग आ गया तो **फिर मोक्ष का कोई मतलब भी क्या रहा?** क्यों कर्मों को नष्ट किया जाए? क्यों इतना पुरुषार्थ किया जाए, जो मोक्ष जाया जाए? और फिर मोक्ष में भी अगर कर्म न छोड़ते हैं तो फिर, यहीं पर ठीक हैं! ये बहुत अच्छे logic हैं, जिन्हें आजकल के बच्चों को समझाना चाहिए, पढ़ाना चाहिए।



जैन दर्शन में हर चीज किस तरीके से सिद्ध की जा रही है

तर्क-बुद्धि यदि है, तो आप देखो कि जैन-दर्शन में हर चीज किस तरीके से तर्क से ही सिद्ध की जा रही है। अगर हमने उसका कोई भी beginning point माना तो इसका मतलब यह हो गया कि आत्मा और कर्म, पहले जुदे-जुदे थे, अलग-अलग थे और जब अलग-अलग हैं तो अपनी pure form में हैं। Impure तो तब हुए जब कोई दो द्रव्यों का सम्बन्ध हुआ और वही सम्बन्ध उसकी अशुद्धि का कारण बना। अगर वह सम्बन्ध पहले नहीं था तो कर्म भी पहले शुद्ध था, आत्मा भी पहले शुद्ध थी। मतलब क्या हो गया कि आत्मा जो शुद्ध थी, उसको कर्मों ने अशुद्ध बना दिया, तब जाकर के संसार बना तो सबसे बड़ा सिद्धान्त यहाँ यह बिगड़ जाएगा कि आत्मा पहले शुद्ध थी। यानि शुद्ध आत्मा को अशुद्ध बनाने का नाम संसार है। यह सबसे बड़े सिद्धान्त के विपरीत बात हो जाएगी। एकान्त रूप से आत्मा की शुरुआत मानना।

आत्मा या कर्म के सम्बन्ध की शुरुआत एकान्त रूप से मानना गलत है

आत्मा या कर्म के सम्बन्ध की शुरुआत एकान्त रूप से मानना, यह भी गलत सिद्ध होता है। अगर हम अनादि रूप से ही उसकी एकान्त रूप से परिणति मानते हैं तो वह भी गलत सिद्ध होता है। क्योंकि अगर उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता, नया सादि-बन्ध नहीं होता तो हम उसको कभी तोड़ भी नहीं सकते। अच्छा देखो आप! अगर कभी बीज और वृक्ष की सन्तति को अगर आप मिटाओगे तो कैसे मिटाओगे? बीज से वृक्ष बन रहा है, वृक्ष से बीज बन रहा है। क्या करना पड़ेगा? कभी आपको एक वृक्ष के जितने बीज होंगे या तो उन बीजों को नष्ट करना पड़ेगा या उस वृक्ष को नष्ट करना पड़ेगा। जब आपने किसी वृक्ष को या बीज को नष्ट किया तो एक के नष्ट होने पर दूसरी चीज अपने आप नष्ट हो गई। बीज नष्ट हुआ तो फिर वृक्ष की उत्पत्ति नष्ट हो जाएगी। अपने आप नहीं होगी और अगर वृक्ष नष्ट कर दिए तो अपने आप बीज नष्ट हो जाएगा। उससे बीज नहीं होंगे तो नये वृक्ष की उत्पत्ति नहीं होगी, कहीं न कहीं कुछ तो करना पड़ेगा।

विशेष को नष्ट करने से सामान्य अपने आप नष्ट हो जायेगा

SCAN TO WATCH

अब आप यह देखो कि एक तरफ तो हम क्या कह रहे थे, बीज से वृक्ष बनता है, वृक्ष से बीज बनते हैं, बीज से वृक्ष बनता है, वृक्ष से बीज बनते हैं। अब हमने इनमें से किसी एक की भी सन्तति को अगर नष्ट कर दिया या बीज की या वृक्ष की तो क्या होगा? वह जो आगे की परम्परा है, वह अपने आप नष्ट हो जाएगी। अब यह सोचो कि हमने नष्ट क्या किया? सामान्य को कि विशेष को? जो बीज और वृक्ष की सन्तति सामान्य रूप से चली आ रही थी उसको नष्ट किया या हमने किसी specific seed उसको नष्ट किया या कोई special tree था उसको नष्ट किया? हमारे सामने कोई भी वृक्ष है, तो वह specific है न! अतः हमने किसी एक विशेष को नष्ट किया। किसको नष्ट किया? विशेष को। हाँ! जब हम विशेष को नष्ट करेंगे तो सामान्य अपने आप नष्ट हो जाएगा। नष्ट क्या करना पड़ेगा? सामान्य नष्ट नहीं होता।

अनादि कभी नष्ट नहीं होता

अनादि कभी नष्ट नहीं होता, अनादि की परम्परा तो इसलिए है कि उसका कहीं पर कोई beginning point नहीं है इसलिए वह अनादि है लेकिन नष्ट जब भी करना पड़ेगा तो आपको विशेष जो चल रहा है, जो विशेष बन्ध हुआ है, वह नष्ट होगा।

विशेष बन्ध क्या है?

जो कर्म आपने विशेष बांधा है, पहले वही विशेष कर्म नष्ट होगा। उसका जो विशेष-भाव है, वह विशेष नष्ट होगा पहले। सामान्य तो अपने-आप बाद में नष्ट हो जाएगा, विशेष को पहले

नष्ट करना होता है। विशेष क्या? मान लो कोई भी आदमी आपके सामने तलवार लेकर के आ जाता है। आप उसको पहले से जानते थे, आदमी सामान्य है, आज उसने अपने हाथ में यह तलवार क्यों उठा लिया? आपको अपना बचाव करना है, आपको उसे रोकना है या उसे अब आपको नष्ट करना है, तो आपको पहले क्या नष्ट करना पड़ेगा? जो वह हाथ में तलवार लिए है, उससे वार करना चाह रहा है, पहले उस तलवार पर वार किया जाए, उसके हाथ पर वार किया जाए, जिससे वह तलवार चला न पाए। बस वह विशेष नष्ट हुआ तो सामान्य अपने आप ढेर हो जाएगा। कर्म के फल, कर्म के बन्ध जो विशेष-विशेष होते रहते हैं और वे सब अपनी-अपनी स्थिति को नया-नया बाँधते रहते हैं, उन्हीं को हमें नष्ट करना होता है। एक बार जब विशेष नष्ट हो जाता है, तो सामान्य भी अपने आप समाप्त हो जाता है। **आत्मा में तैजस और कार्मण-शरीर का जो सम्बन्ध है, वह अनादि भी है और सादि भी है।** आज तक आप लोगों ने अनादि तो सुना होगा, सादि की महिमा नहीं सुनी होगी! यह तत्त्वार्थ-सूत्र जो आप पढ़ रहे हो, इसमें आपको नयी-नयी चीजें भी मिलेंगी। यह जो सादि-बन्ध है, यह कहाँ से आया? आचार्य कहते हैं...'च' शब्द से इस सादि-सम्बन्ध को भी लगाना। 'अनादि संबंधे च।' अब देखो आगे क्या कहते हैं-

सर्वस्य ॥2.42॥

सब संसारी जीव के , दो तन प्रतिपल साथ।
तैजस कार्मण देह के, संग अन्य तन साथ॥2.42॥

क्या कहते है? सर्वस्व नहीं बोलना, यह सर्वस्व नहीं है। यह क्या है? 'सर्वस्य' मतलब कि सभी जीवों के लिए यह सामान्य रूप से इसी तरह से तैजस और कार्मण-शरीर का और आत्मा का बन्ध रहता हैं।

सभी संसारी जीवों के तैजस और कार्मण शरीर रहता है

सभी जीवों के लिए जितने भी संसारी-जीव हैं। कोई भी संसारी-जीव इन तैजस और कार्मण-शरीर से कभी भी रहित नहीं हुआ। कोई भी गति में नहीं हुआ, विग्रह गति में भी नहीं हुआ तो अब और अन्य गति में कहाँ होगा? सभी जीवों के लिए यह तैजस और कार्मण-शरीर का जो सम्बन्ध है...वह अनादि भी है, सादि भी है और जो पहले बताया गया अप्रतिघात से सहित है, वह भी है। यह सब जीवों में लगाना, सबको जानना। अब सब का मतलब कुछ बच जाता है क्या? नहीं बचता न! सब मतलब तो सभी होता है? देखो! मैं आपको एक बार की बात बताता हूँ...जब आचार्य महाराज तत्त्वार्थ-सूत्र पढ़ाते हैं, संघ में बहुत सारी चर्चाएँ करते हैं तो आचार्य महाराज कई बार बहुत सारा चिन्तन देते हैं। वह चिन्तन भी ऐसा होता है कि जो आपने सुन रखा है, पढ़ रखा है, उससे एकदम से उनका चिन्तन अलग होता है। जितने भी संघ में लोग रहते हैं, उन सबके लिए वह जब चिन्तन सुनाते हैं तो फिर वह देखते हैं कौन क्या प्रतिक्रिया

कर रहा है? हम जैसे लोग अगर वहाँ बैठे होंगे तो हमारी शक्ल देखेंगे। देखो! यह अभी कुछ बोलने वाला है! क्योंकि उन्हें पता है, यह बिना बोले रुकेगा नहीं। अब देखो! एक बार आचार्य महाराज ने क्या चिन्तन दिया? इस 'सर्व' शब्द से मुझे याद आया। पहले-अध्याय में एक 'सर्व' शब्द आया था 'सर्वद्रव्यपर्यायेषु-केवलस्य'।।29।। केवलज्ञान का विषय क्या है? सभी द्रव्यों की सभी पर्यायों में केवलज्ञान रहता है।

आचार्य महाराज का चिन्तन केवलज्ञान के विषय में



अब मैं आपको आचार्य महाराज का चिन्तन सुनाता हूँ। आचार्य महाराज कहते हैं...देखो! यहाँ क्या लिखा है? सर्वद्रव्य' लिखा है। क्या कहना चाह रहे हैं आप? यहाँ हम यह कहना चाह रहे हैं कि 'सर्वद्रव्य' का मतलब सर्वद्रव्य ही है... सब! सब का मतलब अनन्त नहीं है। क्या कह रहे हैं? सर्व का मतलब अनन्त नहीं है। अनन्त में तो क्या हो गया? जिसका अन्त ही न हो, उसको अनन्त कहते हैं और सब मतलब समस्त, जो कुछ भी है, वे सब द्रव्य को जान रहे हैं, सब पर्यायों को जान रहे हैं। लेकिन अनन्त द्रव्य को जान रहे हैं, जिसका कोई अन्त ही नहीं है, तो उसको वे कैसे जान लेंगे? अब यह चिन्तन? क्या उत्तर दोगे आप? इतनी जल्दी उत्तर दे ही नहीं सकते आप। जब आचार्य महाराज ने कोई चिन्तन दिया है, तो उसके लिए एकदम से कुछ भी बोलोगे तो आपके लिए उत्तर देने का एक तरीके से वह उत्तर आपका खारिज हो जाएगा। अब आप कहोगे- नहीं! सबका मतलब सब ही होता है। वह सब तो होता है, वह तो मैं भी कह रहा हूँ, सब का मतलब सब होता है। सब में अनन्त तो आ ही गया? नहीं! **सब में अनन्त नहीं आएगा। अनन्त अलग चीज है, सब अलग चीज है। कौन कह रहा है? यह गुरु महाराज का चिन्तन है।**

यहाँ अनन्त का मतलब यह है कि जिसका अन्त नहीं है

वे क्या कहना चाह रहे हैं? अब आपके लिए बताना चाह रहे हैं कि देखो! अनन्त का मतलब यह है कि जिसका अन्त नहीं है, तो ऐसा भी कुछ है जिसका अन्त नहीं है। अन्त नहीं है, वहाँ तक वे नहीं पार पा रहे हैं। सबका तो पार पा लेंगे, सब! सब तो जान लिया। समझ आ रहा है? लेकिन सबका मतलब अनन्त नहीं हो गया। अगर शब्दों को पकड़ोगे तो आपको कुछ गहराई समझ में आयेगी। सबका मतलब अनन्त नहीं हो गया। अगर अनन्त हो गया तो फिर वह अनन्त उन्होंने उसका अन्त पा लिया फिर तो यह हो जाएगा। अगर उन्होंने अनन्त को भी जान लिया मतलब उसका उन्होंने अन्त जान लिया, अगर उन्होंने पूरा अनन्त जान लिया। अब सिर्फ बातों का ही जमा खर्च खेल है सब। देखो! यह गुरु महाराज का चिन्तन है। अब वे कहते हैं कि अगर सर्व-द्रव्य-पर्यायों को जान लिया तो इसका मतलब है कि उन्होंने सब को ही जान लिया अर्थात् जितना है उतना जान लिया। जो जिस समय पर उपलब्ध है, जितना है, उतना जान लिया। अनन्त को जान लिया, ऐसा कैसे कह सकते हैं?

संघ में रहने पर ज्ञान प्राप्ति से मिला सुख

इस तरह के चिन्तनों से आचार्य महाराज हमेशा संघ में मुनि महाराजों की दिमाग में खुजली पैदा करते हैं। फिर हम जैसे लोग होते हैं तो फिर क्या करते हैं? ये ग्रन्थ उठाएँगे, वह ग्रन्थ उठाएँगे, इस में यह लिखा, उसमें यह लिखा है, फिर आचार्य महाराज को दिखाएँगे, इसी में आनन्द आता है। आप कहोगे ज्ञानियों को आनन्द किसमें आता है? इसमें आता है। यह आनन्द संघ में ही रह कर के मिलता है। जब हम फिर यह कहेंगे कि देखो! अब क्या कहेंगे? अगर सर्व शब्द का अर्थ वहाँ पर आपने अनन्त नहीं माना, अब मैं क्या तर्क करूँगा उनसे? अगर आपने सर्व शब्द का अर्थ वहाँ पर आप अनन्त नहीं ले रहे हो तो यह बताओ कि दूसरे-अध्याय में जो लिखा है- 'सर्वस्य' इसमें फिर ऐसा हो जाएगा कि कुछ जीव छूट जाएँगे, जिनमें कि तैजस और कार्मण-शरीर का सम्बन्ध नहीं होगा या उनके साथ उनका बन्ध नहीं होगा तो यह तर्क देंगे। फिर वे अपनी कहेंगे- नहीं! नहीं! वह वहाँ पर 'सर्व' शब्द का मतलब वहाँ के लिए 'सर्व' शब्द है। यहाँ जो हम कह रहे हैं **'सर्वद्रव्यपर्यायेषु'** तो इस तरीके के जो एक ज्ञान के, मैं आपको सिर्फ इतना बताना चाह रहा हूँ कि जब संघ में रहता था तो इस तरीके के ज्ञान के जो एक आनन्द आते हैं, वे एक अलग तरीके के आते हैं।

कहाँ-किस शब्द का क्या अर्थ आया, यह विचार रखना चाहिए

कई बार इन विषयों पर खूब अच्छी चर्चाएँ, लम्बी-लम्बी भी खिंचती हैं, घण्टों-घण्टों भी चलती हैं और पूरी-पूरी class भी इस तरह के उत्तर-प्रत्युत्तर में निकल जाती है। यह भी अपने आप में सुख होता है। जो सुख हमने संघ में रहकर के खूब भोगा है लेकिन यह सुख जो है, संघ के बाहर नहीं मिलता है क्योंकि ऐसे न कोई चिन्तन देने वाले मिलते हैं, न कोई चिन्तन को समझने वाले मिलते हैं। यह एक चीज मैं यहाँ बता रहा था कि अगर हम गुरु महाराज के पास अब होते तो हम उनसे यही कहते कि देखो! अगर 'सर्व' का मतलब वहाँ पर यह है, तो यहाँ पर 'सर्व' का मतलब आपको फिर यहाँ पर भी ऐसा ही लेना पड़ेगा। अब यहाँ क्या लिखा है? 'सर्वस्य' तो सभी का मतलब जितने भी द्रव्य हैं, जितने भी जीव हैं, अब चाहे अनतानन्त जीव हैं तो हैं तो सभी। अगर हम सर्व का मतलब अनन्त नहीं मानेंगे तब तो फिर कुछ जीव छूट जाएँगे। यह हम तर्क दे सकते हैं लेकिन उनका चिन्तन उनके लिए अपनी जगह पर उपस्थित रहता है और वह उसी चिन्तन को कई बार भी अपने संघ में लोगों को बताते रहते हैं। वह सब केवल ज्ञान की एक वृद्धि के लिए और ज्ञान के माध्यम से आनन्द लेने के लिए रहता है। यह भी जानना कि इस तरह से भी चिन्तन किए जाते हैं। पूर्वापर आप भी कुछ विचार रखा करो, कहाँ-किस शब्द का क्या अर्थ आया? सभी जीवों के लिए यह सिद्ध होता है कि उनकी आत्मा का और कर्मों का सम्बन्ध अनादि से है और सादि भी है। यह सम्बन्ध किसी भी तरह से कोई व्याघात को प्राप्त नहीं है। अगर जीव संसार में है तो वह अनादिकाल से इस तरह से कर्मों से जुड़ा हुआ है। अब देखो! आगे क्या कहते हैं-

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्या-चतुर्भ्यः ॥ 2.43॥

तदादीनि भाज्यानि युगपद् + एकस्य+आचतुर्भ्यः

दो शरीर को आदि ले, एक समय में चार ।
हो सकते हैं जीव के, तन भावा अनुसार॥2.43॥

'तदादीनिभाज्यानि' **'तत्'** यह सर्वनाम शब्द है। जब ये 'तत्', एतत्', इत्यादि आता है, तो इसका सम्बन्ध पूर्व सूत्र से लगाते हैं। 'तत्' का अर्थ 'वह', वह जिसकी आदि में हैं, आदि मतलब प्रारम्भ वहाँ से करना। अब यहाँ यह बताया जाने वाला है कि एक साथ कितने शरीर एक जीव के पास होते हैं?

एक साथ कितने शरीर एक जीव के पास होते हैं?

एक साथ मतलब एक समय में, एक काल में...जो 'युगपत्' शब्द है- 'युगपत्' का मतलब एक time पर। वैसे तो अलग-अलग time पर अलग-अलग हो सकते हैं लेकिन एक time पर कितने यह शरीर एक साथ हो सकते हैं? यह युगपत् अर्थात् एक साथ होता है। आचार्य कहते हैं- एक साथ यदि होंगे तो कितने होंगे? 'तत्-आदिनि' उसको आदि लो। 'तत्' मतलब जो हम पहले आपको बता करके आ रहे हैं, जिसकी चर्चा चल रही थी, जिसका प्रसंग चल रहा था। कौन से? तैजस और कार्मण-शरीर, उनसे प्रारम्भ करो। 2 शरीर पहले हैं मतलब कि शरीर एक तो कभी होना ही नहीं। रहेंगे तो कम से कम कितने? 2 रहेंगे 'तदादि'। फिर 'भाज्य' मतलब अब आप उसके विकल्प बनाते चले जाओ। 2 के साथ में 1.तैजस-कार्मण का एक 2 का जोड़ा हो गया। अगर आप इसमें औदारिक-शरीर और जोड़ दोगे तो कितने हो गए? 3 शरीर हो गये। एक साथ कितने शरीर होंगे? 3 शरीर होंगे। अगर वही जीव तैजस-कार्मण-शरीर के साथ में देव या नरक-गति को प्राप्त हो गया तो उसको वैक्रियिक-शरीर मिल गया। उसके कितने शरीर हो गए? फिर भी 3 शरीर हुए। 3 का जोड़ा दो तरीके से बना। तीन का भंग औदारिक-तैजस-कार्मण, वैक्रियक-तेजस-कार्मण। अब देखो! कोई परिस्थिति ऐसी प्रसंग ऐसा बनता है,

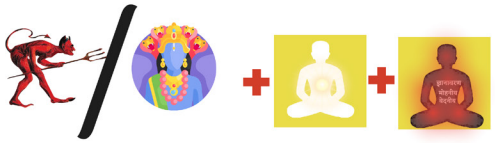
एक साथ चार से ज्यादा शरीर नहीं होते है

एक साथ min 2 or max 4 शरीर एक जीव के पास हो सकते हैं

1. तैजस + कार्मण = 2 शरीर



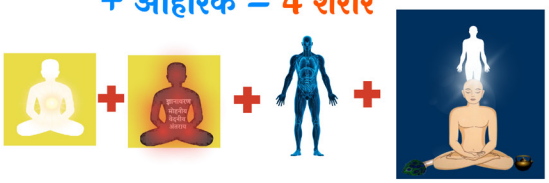
2. वैक्रियक + तेजस + कार्मण = 3 शरीर



3. औदारिक + तैजस + कार्मण = 3 शरीर



4. तैजस + कार्मण + औदारिक + आहारक = 4 शरीर



SCAN TO WATCH

आहारक-शरीर, जिसके बारे में पहले भी बताया था, आज भी आगे प्रसंग आ सकता है। आहारक-शरीर मुनि महाराज के मस्तक से निकलने वाला विशिष्ट एक शरीर होता है, शुभ होता है। अगर वह आहारक-शरीर भी निकलता है, तो क्या बनेगा? औदारिक-शरीर है ही, तैजस-कार्मण है ही और आहारक-शरीर और हो गया तो ये क्या हो गये? यह 4 शरीर हो गए। यह क्या लिखा है? 'आ चतुर्भ्यः।' **'युगपदेकस्मिन्ना' आ चतुर्भ्यः।'** एकस्मिन' मतलब एक आत्मा में 4 शरीर ही होंगे। 'आ चतुर्भ्यः' यह जो 'आं' शब्द होता है, 'आ' यह अभिविधि अर्थ में होता है। उपसर्गों के वैसे तो सभी के अनेक अर्थ होते हैं लेकिन particular किसी उपसर्ग को यहाँ पर अगर लिया गया है, तो उसके अर्थ जो है, उसी अर्थ में लिए गए हैं। जैसा कि आगे-पीछे बताए जा चुके हैं। ये सूत्र जो हैं, इसी तरीके का 'आ' का प्रयोग पहले-अध्याय में भी आया है, जब ज्ञान के साथ में किया गया, वहाँ पर भी 'आ' आया। एक 'प्राक्' शब्द आता है, जो आपने पहले पढ़ा 'प्राक् चतुर्भ्यः' 'चार समय से पहले-पहले' तो 'प्राक्' मतलब हो गया पहले-पहले। मतलब उसमें चार को ग्रहण नहीं करना है, चार को छोड़ कर के तीन को लेना है और जब 'आ' कहते हैं तो आचार्य यह कहना चाह रहे हैं कि 'आ' का मतलब यहाँ पर आपको चार को लेना है, छोड़ना नहीं है। चार के पहले-पहले नहीं करना है, तो इसको बोलते हैं- अभिविधि मतलब वहाँ तक यह विधि जाएगी, 4 शरीरों तक। एक साथ, एक आत्मा में कितने शरीर हो सकते हैं? 4 शरीर हो सकते हैं। कौन-कौन से? 4.तैजस-कार्मण-औदारिक-आहारक। ऐसा तो नहीं बनेगा कि

तैजस-कार्मण-वैक्रियिक-आहारक? नहीं बनेगा। क्यों नहीं बनेगा? क्योंकि वैक्रियिक-जीवों को, वैक्रियिक-शरीर वालों को आहारक-शरीर की प्राप्ति नहीं होती। यह जो है, एक साथ रहने वाले 4 शरीरों का यही भंग बनता है।

पाँच शरीर एक साथ नहीं होने के कारण

अब आप देखो, इसमें पाँच नहीं बनेंगे। कभी भी वैक्रियिक-शरीर और आहारक-शरीर साथ-साथ नहीं रह सकते। आपके अन्दर विक्रिया की शक्ति हो सकती है, मनुष्य भी विक्रिया करते हैं, तिर्यंच भी विक्रिया करते हैं लेकिन विक्रिया करने के साथ-साथ उनके अन्दर वह वैक्रियिक-शरीर नहीं आ जाता। विक्रिया करने की शक्ति होना अलग बात है और वैक्रियिक-शरीर होना, यह अलग बात है। वैक्रियिक-शरीर वही कहलाएगा जिसमें कि देव और नारकियों की तरह जो उपपाद के द्वारा प्राप्त हुआ हो, वही शरीर वैक्रियिक-शरीर कहलाएगा। इस तरह से एक साथ एक जीव में अधिक से अधिंक कितनी शरीर हो सकते हैं? चार शरीर हो सकते हैं। आगे कहते हैं-

शरीर की अपेक्षा से उपभोग अर्थ

निरुपभोगमन्त्यम् ॥ 2.44॥

निरुपभोगम्+अन्त्यम्

अन्तिम कार्मण देह की, रही अनोखी बात।
इन्द्रिय के उपभोग बिन विग्रह गति में जात॥2.44॥

क्या कहते हैं? अब यह जो 'अन्त्यम्' अर्थात् अन्त का शरीर है, यह 'निरुपभोग' है। 'निरुपभोगमन्त्यम्' 'उपभोग से रहित है।' उपभोग क्या कहलाता है? शब्द आदि के द्वारा इन्द्रियों के विषयों को ग्रहण करना मतलब शब्द आदि जो इन्द्रियों को ग्रहण करने के लिए, इन्द्रियों के विषयों को ग्रहण करने के लिए जो हम अपनी एक प्रणाली अपनाते हैं, यह उपभोग कहलाता है। मतलब क्या हुआ? इन्द्रियाँ होंगी तो इन्द्रियों के विषयों को आप ग्रहण कर पाओगे। इसको बोलते हैं- उपभोग। शब्द सुनना, आँखों से देखना, चखना, यह सब क्या हो गया? यह उपभोग कहलाता है।

कार्मण शरीर उपभोग से रहित है

आचार्य कहते हैं- यह जो अन्त का शरीर है- 'कार्मण-शरीर, यह उपभोग से रहित होता है। मतलब इस शरीर का कोई भी उपभोग रूप कार्य नहीं होता है। इन्द्रिय आदि के माध्यम से इसमें कोई भी उपभोग नहीं होता है। उपभोग कौन करेगा? एक तो औदारिक-शरीर करेगा, वैक्रियिक-शरीर करेगा, आहारक-शरीर करेगा, यह शरीर तो उपभोग करते हैं या इनका

उपभोग हो सकता है लेकिन कार्मण-शरीर का न उपभोग होता है, न उपभोग किया जा सकता है, न वह स्वयं करता है। क्या मतलब हुआ? कार्मण-शरीर में कभी भी इन्द्रिय आदि विषयों की उपलब्धि नहीं हो पाती। अब कार्मण-शरीर कार्मण-काययोग के साथ होगा। यह तो समझ लिया न? **'विग्रहगतौ कर्मयोगः'** अब इस कार्मण-शरीर के साथ में जब यह कार्मण-काययोग होगा तो यह विग्रहगति में होगा। विग्रहगति में शरीर तो होता नहीं, इन्द्रियाँ होती नहीं तो वहाँ पर वह किसी भी तरह से शब्द आदि का कोई उपभोग नहीं कर सकता मतलब वहाँ पर जीव शब्द आदि को सुन नहीं सकता है।



- **कार्मण-शरीर का न उपभोग होता है, न उपभोग किया जा सकता है, न वह स्वयं करता है।**

कार्मण शरीर के उपभोग न करने का कारण



शब्द आदि का उपभोग करने के लिए इन्द्रियाँ होना जरूरी है और इन्द्रियों में भी 2 प्रकार की इन्द्रियाँ बताई थी- 1. द्रव्य-इन्द्रिय और 2. भाव-इन्द्रिय। भाव-इन्द्रिय क्या होती? जो ज्ञानावरण आदि कर्मों की लब्धियाँ हैं, क्षयोपशम हैं और तदनुरूप जो उपयोग है, यह कहलाती हैं- भाव-इन्द्रिय। द्रव्य-इन्द्रियाँ जो निवृत्ति-रचना इत्यादि के माध्यम से होती हैं, ये कहलाती हैं- द्रव्य-इन्द्रियाँ। उस समय पर विग्रहगति में अगर देखा जाए तो वहाँ पर भाव-इन्द्रियाँ तो होती हैं लेकिन द्रव्य-इन्द्रियाँ नहीं होती। क्या होता है? भाव-इन्द्रिय का मतलब वहाँ क्षयोपशम तो है क्योंकि क्षयोपशम लेकर के जाएगा तभी जाकर के वह आगे उस तरीके की रचना करेगा। पंचेन्द्रिय बनना है, चार-इन्द्रिय बनना है, उस तरीके का क्षयोपशम उसके साथ में है, तो वहाँ पर भाव तो है। क्षयोपशम के साथ में क्षयोपशम-भाव है, भाव-इन्द्रियाँ हैं लेकिन अभी निवृत्ति नहीं हुई किसी चीज की। वह कहाँ होगी? जहाँ वह जन्म लेना होगा, वह वहाँ होगी। जब तक इस तरह की निवृत्ति नहीं होगी तब तक उसके लिए किसी भी इन्द्रियों के जो विषय हैं, उनका उपभोग नहीं हो सकता। इसलिए कहा कि अन्त का जो कार्मण-शरीर है, वह उपभोग से रहित है।

शरीर और उनके काययोग

अब यहाँ पर जो अन्त का शरीर कार्मण-शरीर ही लिया है। अब एक शरीर बचता है- तैजस-शरीर। यहाँ पर जो उपभोग हो रहा है, वह आचार्य कहते हैं- उपभोग तभी होता है जब उस इन्द्रिय के साथ में उस तरह का उसका योग भी जुड़ा हो। औदारिक-शरीर के साथ में काययोग होता है- औदारिक-काययोग होगा। औदारिक मिश्र काययोग के साथ मिश्र-काययोग होगा। वैक्रियक शरीर के साथ वैक्रियक काययोग, वैक्रियक-मिश्र-काययोग होगा। आहारक के साथ आहारक-काययोग, आहारक-मिश्र-काययोग होगा लेकिन तैजस-शरीर का कोई भी योग नहीं बनता है।

तैजस शरीर का कोई योग नहीं बनता है



आत्म प्रदेशों में परिस्पन्दन / योग इन 4 शरीर में ही होता हैं

तैजस-शरीर के निमित्त से, उन तैजस-शरीर की वर्गणाओं के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में कोई परिस्पन्दन नहीं होता इसलिए तैजस-शरीर का योग नहीं होने के कारण से उसका यहाँ पर किसी भी तरह का कोई व्याख्यान नहीं या उसका यहाँ प्रसंग नहीं है। प्रसंग किसका है? जो शरीर हमारे लिए योग बनाने वाले हैं, जिनसे योग होता है, आत्म प्रदेशों में परिस्पन्दन होता है, वे शरीर ये 4 ही हैं- औदारिक, वैक्रियिक, आहारक और कार्मण-शरीर। इस कार्मण-शरीर को यहाँ पर इसलिए 'अन्त्यम्' कहा, अन्त मतलब बिल्कुल अन्त का जो कार्मण-शरीर है, वही उपभोग से रहित होता है। बाकी के सब शरीरों का उपभोग होता है मतलब वे शब्द आदि को ग्रहण करते हैं और उनको भी कोई दूसरा शब्द आदि के माध्यम से उनके लिए जान भी सकता है और उनके रूप आदि को देख भी सकता है। औदारिक-शरीर को देखा जा सकता है, रूप आदि मतलब किसी दूसरे के द्वारा। यह इन्द्रिय का विषय बन गया, नेत्र-इन्द्रिय के द्वारा यह उपभोग कहलाया। यह क्या कहलाया? उपभोग।

उपभोग हर इन्द्रिय से होता है

उपभोग की आध्यात्मिक परिभाषा:- "प्रत्येक इन्द्रिय सम्बन्धी बार बार की गयी क्रिया उपभोग है"



एक इससे बहुत अच्छी आप आध्यात्मिक परिभाषा यह समझ सकते हो कि उपभोग का वास्तव में मतलब क्या होता है? एक तो आपने जो पढ़ रखा है कि किसी चीज को बार-बार भोगना, उसका नाम उपभोग है। यह भी उपभोग होता है। बार-बार शब्द आदि को सुनना भी उपभोग है, बार-बार अपनी आँख से किसी भी रूप आदि को देखना भी उपभोग है और स्पर्श और रस तो बार-बार होगा तभी होगा लेकिन यह भी उपभोग होता है, यह भी आप जाने। वैसे तो केवल इतना ही कहा-समझाया जाता है, जो चीज बार-बार खाने-पीने या बार-बार उपभोग में आए, उपयोग में आए, उसका नाम उपभोग है। आप यह तो कभी समझते ही नहीं कि हम बार-बार जो शब्द सुनते रहते है, यह भी हम उपभोग कर रहे हैं। mobile में आपने सब load कर लिया, catch कर लिया और mobile में आप बार-बार उसी चीज को, उसी प्रवचन को बार-बार सुने जा रहे हैं। यह भी क्या है? ये शब्दों का उपभोग कर रहे हैं, कम से कम इतना तो ध्यान रखा करो mobile पर online रहने वालों। यह क्या है? उपभोग है। यह भी कर्ण-इन्द्रिय के माध्यम से किया जाने वाला उपभोग है लेकिन इस पर किसी की दृष्टि नहीं जाती। समझो तो यह भी उपभोग है। केवल खाने-पीने की सम्बन्धी चीजों का या पहनने-ओढ़ने की सम्बन्धी चीजों का ही उपभोग नहीं होता, हर इन्द्रिय सम्बन्धी उपभोग होता है। इस तरह का यह उपभोग कार्मण-शरीर के बिना अन्य शरीरों का सम्भव है, इसलिए यह कहा। अब देखो! आगे कहते हैं-

औदारिक शरीर किसका होता है?

गर्भ-सम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥ 2.45॥

गर्भ-सम्मूर्च्छनजम् + आद्यम्

सम्मूर्छन या गर्भ से, जन्म लेय जो देह।
औदारिक कहते उसे, क्यों करता है नेह॥2.45॥

अब यह बताना चाह रहे हैं कि ये जो शरीर हैं, ये कौन-कौन से जन्म वाले जीवों के होते हैं? जैसे- 'आद्यम' का मतलब है- 'सबसे पहला शरीर'। कौन-सा शरीर है? औदारिक-शरीर। यह किसको मिलेगा? कौन से जन्म वालों को? आचार्य यहाँ सूत्र बना कर के बता रहे हैं- 'गर्भसम्मूर्छनज'। 'ज', 'ज' क्यों आया? 'उससे जो जन्म लेंगे, उससे जिनकी उत्पत्ति होगी।' गर्भ से जिनकी उत्पत्ति होगी, वे सभी जीव नियम से कैसे होंगे? औदारिक-शरीर वाले होंगे और सम्मूर्छन जिन जीवों के शरीर बनेंगे। सम्मूर्छन-जन्म से जो उनकी उत्पत्ति होगी, वह जीव भी नियम से कैसे होंगे? औदारिक-शरीर वाले होंगे मतलब औदारिक शरीर केवल इन्हीं दो जन्म वालों का होता है- गर्भ और सम्मूर्छन। फिर कहते हैं-

व्याकरण का ज्ञान भी करे

औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥ 2.46॥

देव नारकी जीव का, जन्म होय उपपाद ।
वैक्रिय तन संज्ञा उसे, देता जैनी वाद॥2.47॥

यह जो वैक्रियिक-शरीर है, वह किसका होता है? उपपाद जिनका जन्म हुआ हैं। उपपाद-जन्म से जो उत्पन्न हुए हैं, उनको बोलते हैं- औपपादिक। सब ये एकण्-प्रत्यय लगकर के बनने वाले शब्द बन रहे हैं- 'औपपादिकम् वैक्रियिकम्' जो स्वर होते हैं, वह 'उ' जो है, 'औ' में परिवर्तित हो जाता है। 'इ' प्रारम्भ में होता है, तो 'ऐ' में परिवर्तित हो जाता है और अगर व्यन्जन से वह शब्द शुरू होता है, तो वह उसमें दीर्घ आ जाता है। यह 'एकण्-प्रत्यय' जब लगता है व्याकरण शास्त्रों के अनुसार और अगर 'आ' आदि स्वर होते हैं तो 'आ' तो 'आ' ही बना रहता है। छोटा 'अ' होगा तो बड़ा 'आ' हो जाएगा तो दीर्घ स्वर होकर के पीछे जो शब्द है, उसमें 'इक्' लग जाएगा तो उसी शब्द से वह 'उसमें होने वाला' या "उससे उत्पन्न हुआ' इस अर्थ में उसका अर्थ बन जाता है। अर्थात् उपपाद से जो बना, उपपाद से जो हुआ, उपपाद में जिसका होना हुआ, उसका नाम कहलाएगा- 'औपपादिक'।

औपपादिक जन्म वालों का ही वैक्रियिक शरीर होता है

विक्रिया से जो सम्बन्ध रखता है या विक्रिया में जो उत्पन्न हुआ है, विक्रिया में जो कर रहा है, उसका नाम होगा- 'वैक्रियिक'। 'इ' का 'ऐ' हो गया, 'वि' की 'इ' आई, 'इ' का 'ऐ' हो

गया, वैक्रियिक। थोड़ी-थोड़ी व्याकरण भी सीखते जाओ। औपपादिक-जन्म वालों का ही वैक्रियिक-शरीर होता है। अब यह इतना नियम बन गया तो इससे आप अब आराम से समझ सकोगे कि एक साथ पाँच शरीर तब तक सम्भव नहीं जब तक कि वैक्रियिक-शरीर की यह परिभाषा बनी है। क्योंकि वैक्रियिक शरीर उपपाद-जन्म वालों का ही बताया गया। आप मनुष्य की कोई भी विक्रिया जो और देखेंगे वे सब चाहे वे चक्रवर्ती विक्रिया करते हैं, कोई करते हैं, वह सब वैक्रियिक-शरीर में नहीं आती, वह उनकी विक्रिया-शक्ति है, जिसके कारण से विक्रिया कर लेते हैं। यह है- उपपाद-जन्म, उसके बाद में आगे आता है-

लब्धि प्रत्ययं च ॥2.47॥

तप तपता तपसी जबै, पाता ऋद्धि विशेष।
लब्धि से भी मिलता है, तन वैक्रिय का भेष॥2.47॥

'लब्धि प्रत्यय', 'च', 'च' का मतलब है कि यह जो वैक्रियिक-शरीर है, जो इससे just पहले वाला सूत्र है, उसी से सम्बन्ध रखने के लिए 'च' शब्द आया। मतलब कि यह जो वैक्रियक-शरीर है, यह 'लब्धि प्रत्यय' वाला भी होता है।

लब्धि शब्द पहले भी उपयोग हुआ है

लब्धि क्या बोलते हैं? तप विशेष का नाम यहाँ पर लब्धि है। अब देखो! लब्धि की परिभाषा अलग-अलग ध्यान में रखना। कहाँ से शुरू करी थी मैंने? पहले-अध्याय से 5 लब्धियाँ, फिर दूसरे-अध्याय में क्षयोपशम लब्धियाँ, क्षायिक-दान आदि अन्तरायों की लब्धियाँ। अब यह लब्धि देखो, कितने सारे? इसको बोलते हैं- शब्दकोष। एक लब्धि शब्द का कितने अर्थों में उपयोग होता है? ऐसे आप शब्दकोष भी बनाना सीखो, notes बनाने वालों। लब्धि का मतलब यहाँ पर क्या आ रहा है? एक लब्धि वह भी बताई थी- **'लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥**

SCAN TO WATCH

यहाँ लब्धि का मतलब, तप विशेष जिसमें कारण हो

वहाँ पर लब्धि का मतलब था कर्म का क्षयोपशम, ज्ञानावरण आदि कर्म का क्षयोपशम, उस अर्थ में भी लब्धि थी। यहाँ पर लब्धि का मतलब है- 'तप विशेष' का नाम 'लब्धि' है। 'तप विशेष' 'प्रत्यय' का अर्थ होता है- 'कारण/हेतु'। तप विशेष जिसमें कारण हो, उससे भी यह वैक्रियिक-शरीर बनता है, यह जानना। अब देखो! कह तो रहे हैं- वैक्रियिक शरीर बनता है लेकिन यह वैक्रियिक शरीर, लब्धि प्रत्यय वाला कहलाएगा, यह 'औपपादिकम् वैक्रियिकम्।।46।।' नहीं कहलाएगा। यह किस के लिए बताया जा रहा है? जो तप करके ऋद्धियों से विक्रिया बनाने की शक्ति ले आए हैं, उनके लिए यही सूत्र आ रहा है। जो मनुष्यों में

भी होता है, किन्हीं तिर्यंचों में भी पूर्व जन्म के अपने उनके तप के प्रभाव से या पुण्य के प्रभाव से तिर्यंचों में भी विक्रिया करने की शक्ति आ जाती है, होती है। इसलिए यहाँ पर कहा गया है कि ऐसा कोई भी शरीर वैक्रियिक तो कहलाएगा लेकिन वह 'औपपादिक वैक्रियिकम्।।46।।' वाला नहीं जानना। यह क्या है? यह आपका विशिष्ट अपने तप के क्षयोपशम से, आपको प्राप्त हुआ, आपका शरीर है, जिससे कि आपने पृथक-विक्रिया कर ली या अपृथक-विक्रिया कर ली। 'लब्धि प्रत्ययम् च।।47।।' 'च' शब्द से पिछले वाला वैक्रियिक-शरीर। फिर कहते हैं-

तैजस-मपि ॥ 2.48॥

तैजसम्+अपि

तैजस तन भी प्राप्त हो, लब्धि कारण जान।
दो प्रकार के भेद से, मुनि विशेष में जान॥2.48॥

'अपि' का अर्थ 'भी' होता है। तैजस-शरीर भी ऐसा ही जानना मतलब लब्धि-प्रत्यय से तैजस-शरीर भी बनता है। मतलब तप करने से तैजस-ऋद्धि उत्पन्न होती है, तैजस-शरीर बनता है।

तैजस शरीर के प्रकार और कार्य



दो प्रकार के तैजस-शरीर बताए जाते हैं- 1. अनिस्सरणात्मक तैजस शरीर, 2. निस्सरणात्मक तैजस शरीर। निस्सरण का अर्थ निकलने वाला और अनिस्सरण का अर्थ बिना निकले हुए,

जो शरीर में निकलता नहीं है, शरीर में ही रहता है जो तैजस-शरीर। जो औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीन शरीरों को कान्ति देने वाला हो, उसको बोलते हैं- अनिस्सरणात्मक-तैजस-शरीर, जो भीतर ही रहेगा। यह भीतर आपके अन्दर एक तरीके की heat बनाए रखेगा। आचार्य महाराज कहते हैं- हमारे शरीर में भी जो temperature रहता है, यह भी इसी अनिस्सरणात्मक-तैजस शरीर की देन है।

श्री धवल ग्रन्थ में जो टीका है, आचार्य वीरसेन महाराज जी की, उसमें यह लिखा है कि जो हमारे अन्दर पेट में अग्नि इत्यादि होती है, जिसके कारण से हम भोजन को पचाते हैं, वह भी यह अनिस्सरणात्मक-तैजस-शरीर का ही काम होता है। इस तरह से हम समझ सकते हैं कि शरीर के अन्दर गर्मी, ऊष्मा या शरीर के अन्दर ताप, यह बनाए रखने का काम यह किसका है? यह तैजस-शरीर का है मतलब तैजस-शरीर आपको जिन्दा भी रखे हैं और तैजस-शरीर आपके अन्दर एक glow भी पैदा किए है।

तैजस शरीर का रंग शंख के समान धवल रंग का होता है



एक और बहुत अच्छी बात यह है, बता ही देता हूँ, कि इस तैजस-शरीर का एक रंग बताया है, शंख के समान धवल रंग का होता है। ऐसा नहीं समझना, आग के समान लाल रंग का होता है, यह आग अलग रंग की है। इस तैजस-शरीर का जो रंग है, कैसा बताया? शंख के समान बताया मतलब कि आपके अन्दर जो light आएगी, वह अलग, थोड़ी सफेद रंग की शंख के समान, ऐसी light पैदा करने वाला यह तैजस-शरीर होता है। सभी संसारी जीवों में सबके ही होता है। इस तैजस-शरीर के माध्यम से ही आपका भोजन पचना, धातु-उपधातुओं का परिवर्तन होना और जो हम कहते हैं- देखो! आदमी गर्म है तब तक तो जिन्दा है। क्या बोलते हैं? भाई! यह ठण्डा पड़ गया। ठण्डा पड़ गया मतलब मरते समय आदमी के पैर देखे जाते हैं और यही देखा जाता है कि इसके पैर ठण्डे पड़ गए, हाथ ठण्डे पड़ गए तो लोग समझ लेते हैं कि इसमें से जीव गया। यही देखा जाता है, नाड़ी तो बाद में तो ठण्डे पड़ने का मतलब यही है कि उसमें से वह जीव आत्मा जिसके साथ तैजस-शरीर था, वह निकल गया।

जब तक तैजस शरीर है तब तक यह जीवन है

जब तक वह है तब तक उसमें ऊष्मा रहेगी। इसलिए मरते समय अलग-अलग जगहों पर देखा जाता है, कहाँ पर थोड़ी गर्माहट है? कहाँ पर है? कहाँ पर स्पन्दन हो रहा है? यह सब देखा जाता है। जब भी आप देखोगे कि यह शरीर है तब तक यह जीवन है। यह ऊष्मा भीतर जो है,

यह इसी के कारण से temperature और वह भी अगर बराबर है, तो ही जिन्दा हो अच्छे ढंग से और थोड़ा-सा temperature बढ़ गया तो? वह असाता-वेदनीय के उदय से बढ़ गया। कार्मण-शरीर का जो असाता-वेदनीय का उदय है, उसके कारण से बढ़ गया। इस तरह से यह तैजस-शरीर क्या हो गया? जो बढ़ गया या कम हो गया, अगर वह अस्वस्थता के लिए है, तो वह आपकी असाता-वेदनीय कर्म का उदय है। जो बराबर आपके शरीर को तेजवान बनाए रखे वह तैजस-शरीर का काम है। यह अनिस्सरणात्मक का काम बताया

संक्लेश से अशुभ तैजस शरीर निकलता है



और निस्सरणात्मक जो आपने सुन रखा है- दो प्रकार की ऋद्धियाँ होती हैं- **1.शुभ तैजस और 2. अशुभ तैजस ऋद्धि।**

शुभ-तैजस में; ये भी दोनों मुनि महाराज के ही होते हैं। तप विशेष से प्राप्त होते हैं।

कभी मुनि महाराज के द्वारा इस तैजस शरीर के माध्यम से शुभ कार्य भी हो सकता है और कभी अशुभ कार्य भी हो सकता है। जो आपने सुना है- जैसे द्वीपायन मुनि का था तो वह अशुभ-तैजस था, जिसने सब पूरी द्वारका को भस्मसात कर दिया था, यह अशुभ-तैजस होता है। इसका परिणाम तो संक्लेश के कारण से होता है, दूसरों को दुःख पहुँचाना और फिर जो है, खुद को भी नष्ट कर देता है।

जीवों की रक्षा के लिए शुभ तैजस शरीर निकलता है

शुभ-तैजस जो होता है, वह कहीं पर, जहाँ पर कोई आंधियाँ हैं, व्याधियाँ हैं, दुर्भिक्ष हैं, अकाल हैं, सब तरीके की कोई भी परेशानियाँ हैं, उन सब को दूर करके सब जगह बिल्कुल अनुकूल वातावरण पैदा कर देता है। उसको बोलते हैं- शुभ-तैजस। यह तैजस-ऋद्धि अलग होती है और जो आहारक-ऋद्धि होती है, वह अलग होती है। उसका वर्णन आपको अब बाद में ही बता पाएँगे। इस तरह से यह जानना कि बहुत से लोग confuse होते हैं कि तैजस-शरीर और आहारक-शरीर में अन्तर नहीं समझ पाते हैं, इसको अन्तर बना कर के रखना। तैजस-शरीर दो प्रकार का है- शुभ और अशुभ और उसके लक्षण शास्त्रों में अनेक तरह से दिए हैं, वे आप पढ़ लेना। इस तरह से ये जो शरीर हैं, इन शरीरों में कौन-कौन से शरीर तप विशेष से होते हैं? यह भी आप ध्यान में रखना। एक वैक्रियिक-शरीर और एक तैजस-शरीर, ये जो ऋद्धि के रूप में है, यह जो है विक्रिया-ऋद्धि और तैजस-शरीर की भी तैजस-ऋद्धि कहलाती है। यह तप के माध्यम से भी प्राप्त होती है। इसलिए इनका वर्णन इनके साथ अलग से किया गया है।

सारांश

1. सूत्र इकतालीस **अनादि संबंधे च** में हमने जाना कि तैजस और कार्मण शरीर का आत्मा का **अनादि सम्बन्ध** है
   - और च शब्द के कारण सादि सम्बन्ध भी है
   - वह जैन-दर्शन का अनेकान्तिक दृष्टिकोण है
   - यूँ तो कर्म आत्मा में अनादि-काल से बन्धे हुए हैं
   - लेकिन पुराने कर्म भी हटते भी हैं और नए कर्मों का बन्ध भी होता है
   - नए कर्मों का बन्ध से सादिपना आता है
2. एकांत से अनादिपना मानने से जो अनादि से था वो अनन्तकाल तक बना रहेगा
   - जैसे आकाश अनादि से है और अनन्त तक रहेगा
   - उसमें कुछ विशेष नहीं हो रहा है
3.
4. बीज से वृक्ष होता है और वृक्ष से बीज - यह बीज-वृक्ष की सामान्य-सन्तति है
5. यह नहीं कहा जा सकता कि बीज और वृक्ष में कौन पहले हैं?
   - बीज और वृक्ष दोनों ही अनादि से हैं
   - इससे अनादि की व्यवस्था बैठ जाती है
6. इसी प्रकार आत्मा का शरीर से, कर्म से जो सम्बन्ध है, वह अनादि से है
   - और जो हम अपने भावों से नए कर्मों के बन्ध में अन्तर ला रहे हैं उस अपेक्षा से यह सादि है
7. अनादि तो हो गया **सामान्य** और सादि हो गया **विशेष**
8. सामान्य के साथ में विशेष का होना और विशेष के साथ में सामान्य का होना आवश्यक है
9. **एकान्त रूप से सामान्य** या अनादि मानने पर
   - अनादि से वही कर्म आत्मा के पास में हैं जो अनन्तकाल पहले थे
   - और वह कर्म अनन्तकाल में भी नष्ट नहीं होंगे
   - और न आत्मा ने कोई नए कर्म अर्जित किये होंगे
   - अतः अनादि भी एक स्वभाव है
   - और इसके साथ मोक्ष संभव नहीं होगा
10. **एकान्त रूप से विशेष** या सादि मानाने पर भी मोक्ष नहीं होगा
    - क्योंकि इसका अर्थ होगा कि आत्मा और कर्म के सम्बन्ध की कहीं न कहीं शुरुआत हुई है
    - मतलब उससे पहले वे अलग अलग थे
    - यानि आत्मा शुद्ध था
    - अतः सिद्धान्त बनेगा कि शुद्ध आत्मा को भी अशुद्ध बनाया जा सकता है

- फिर मोक्ष का अभिप्राय क्या?

11. हमने देखा कि जैन-दर्शन हर चीज को तर्क से सिद्ध करता है
    - हमने जाना कि बीज और वृक्ष की सामान्य सन्तति को मिटाने के लिए हमें
    - वृक्ष के जितने बीज हैं उनको नष्ट करना पड़ेगा ताकि नए वृक्ष न बनें
    - या उस वृक्ष को नष्ट करना पड़ेगा ताकि बीज न बनें
    - इससे आगे की परम्परा स्वतः नष्ट हो जाएगी
12. जब हम विशेष को नष्ट करेंगे तो सामान्य अपने आप नष्ट हो जाएगा
13. इसे कर्मों पर घटित करें तो
    - कर्म के फल, कर्म के बन्ध विशेष होते रहते हैं
    - और वे सब अपनी स्थिति को बाँधते रहते हैं
    - उन्हीं को हमें नष्ट करना होगा
14. सूत्र बयालीस सर्वस्य में हमने जाना कि सभी संसारी जीवों के लिए सामान्य रूप से तैजस और कार्मण शरीर का सम्बन्ध रहता है
    - यह सम्बन्ध अनादि भी है, सादि भी है और अप्रतिघात से सहित है
    - और यह हर गति में, विग्रहगति में भी रहते हैं
15. मुनि श्री ने आचार्य श्री के एक संस्मरण में बताया कि किस तरह आचार्य महाराज संघ में नए-नए चिंतन देकर मुनि महाराजों के दिमाग में खुजली पैदा करते हैं
16. आचार्य श्री ने अपने चिंतन में पहले-अध्याय के सूत्र **"सर्वद्रव्यपर्यायेषु-केवलस्य"** में सर्व शब्द का अर्थ 'सभी द्रव्यों की सभी पर्यायों' से लिया
    - सर्व का मतलब अनन्त नहीं लिया
    - यानि 'सर्वद्रव्य' का मतलब अनंत द्रव्य नहीं लिया
    - गहराई से समझ में आया कि सबका मतलब अनन्त नहीं है, अगर अनन्त हुआ तो फिर उन्होंने अनन्त को जान लिया मतलब उसका अन्त जान लिया
    - उनके अनुसार उन्होंने सब को ही जान लिया अर्थात् जितना है उतना जान लिया
        - जो जिस समय पर उपलब्ध है, जितना है, उतना जान लिया
17. अगर **सर्व** शब्द का अर्थ वहाँ अनन्त नहीं माना तो यह तर्क बनता है कि वर्तमान सूत्र सर्वस्य में कुछ जीव छूट जाएँगे, जिनमें तैजस और कार्मण-शरीर का सम्बन्ध नहीं होगा या उनके साथ उनका बन्ध नहीं होगा
18. सूत्र तेतालीस **तदादीनिभाज्यानियुगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः** में हमने यह जाना कि जीव के पास एक साथ कितने शरीर हो सकते हैं
    - अलग-अलग time पर यह संख्या अलग-अलग हो सकती है
19. जीव के कम से कम दो शरीर होंगे - तैजस और कार्मण
20. अगर तीन शरीर होंगे तो
    - औदारिक, तैजस और कार्मण,

- या वैक्रियक, तेजस और कार्मण होंगे

21. जब मुनि महाराज के मस्तक से आहारक शरीर निकलता है, उस समय उनके पास चार शरीर होते हैं
22. आहारक, औदारिक, तैजस और कार्मण,
23. एक आत्मा में 4 शरीर ही अधिकतम हो सकते हैं
24. **वैक्रियिक शरीर** के साथ औदारिक और आहारक शरीर नहीं हो सकते
25. हमने जाना कि मनुष्य और त्रियंच भी विक्रिया शक्ति से विक्रिया करते हैं
    - लेकिन उनका शरीर वैक्रियिक नहीं हो जाता
    - वैक्रियिक शरीर सिर्फ उपपाद शय्या पर उत्पन देव और नारकियों के ही होता है
26. सूत्र 44 **निरुपभोगमन्त्यम्** में आचार्य कहते हैं कि अन्त का शरीर - कार्मण शरीर निरुपभोग है अर्थात उपभोग से रहित है
27. उपभोग का अर्थ है इन्द्रियों द्वारा इन्द्रियों के विषयों को ग्रहण करना
    - जैसे- शब्द सुनना, आँखों से देखना, चखना आदि
28. उपभोग औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर करते हैं
    - कार्मण शरीर में इन्द्रिय आदि के माध्यम से कोई भी उपभोग नहीं होता है
    - कार्मण-काययोग जो विग्रहगति में होता है वहाँ द्रव्य इन्द्रियों की निवृत्ति नहीं होती
    - अतः शब्द आदि विषयों का उपभोग नहीं हो सकता
29. सूत्र चवालीस निरुपभोगमन्त्यम् में हमने जाना कि उपभोग तभी होता है जब इन्द्रिय के साथ में उसका योग भी जुड़ा हो
30. औदारिक, वैक्रियिक, आहारक और कार्मण शरीर में योग होता है
31. तैजस में नहीं
    - तैजस-शरीर की वर्गणाओं से आत्मा के प्रदेशों में कोई परिस्पन्दन नहीं होता
    - औदारिक शरीर में औदारिक, औदारिक मिश्र काययोग होगा
    - वैक्रियक में वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र
    - आहारक में आहारक, आहारक मिश्र काययोग और
    - कार्मण शरीर में कार्मण काय योग होता है
32. कार्मण शरीर उपभोग से रहित होता है
33. अन्य शरीरों का उपभोग होता है क्योंकि वे शब्द आदि को ग्रहण करते हैं और कोई दूसरा भी शब्द आदि के माध्यम से उनको जान सकता है
34. हमने जाना कि उपभोग का अर्थ है इन्द्रियों द्वारा इन्द्रियों के विषयों को ग्रहण करना
    - जैसे- शब्द सुनना, आँखों से देखना, चखना आदि
    - mobile आदि से प्रवचन को बार-बार सुनना भी शब्दों का उपभोग है
35. सूत्र पैंतालीस और छियालीस में हमने जाना कि
    - औदारिक शरीर केवल गर्भ और सम्मूर्छन जन्म वालों का होता है

- और वैक्रियिक शरीर औपपादिक जन्म वालों को मिलता है

36. सूत्र सैंतालीस में हमने समझा कि वैक्रियिक शरीर **'लब्धि प्रत्यय'** वाला होता है
    - लब्धि शब्द कई अर्थों में प्रयोग होता है जैसे पहले अध्याय में पञ्च लब्धियाँ, फिर दूसरे अध्याय में क्षयोपशम लब्धियाँ और क्षायिक लब्धियाँ
    - यहाँ लब्धि का मतलब है जो तप विशेष के कारण से हो
37. अर्थात तप करके ऋद्धियों से मनुष्य और त्रियंच भी विक्रिया कर सकते हैं
    - क्षयोपशम से प्राप्त शरीर से वे पृथक या अपृथक विक्रिया करते हैं
38. सूत्र अड़तालीस **तैजसमपि** से हमने जाना तैजस शरीर भी 'लब्धि प्रत्यय' वाला होता है अर्थात तप करने से तैजस-ऋद्धि उत्पन्न होती है
39. तैजस शरीर दो प्रकार का होता है अनिस्सरणात्मक और निस्सरणात्मक
    - जो शरीर में निकलता नहीं है और
    - जो औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीरों को कान्ति देता है उसको अनिस्सरणात्मक तैजस शरीर कहते है
    - श्री धवल ग्रन्थ की टीका में आचार्य वीरसेन महाराज के अनुसार पेट की अग्नि जो पाचन में काम आती है, वह अनिस्सरणात्मक होती है
40. **तैजस शरीर** शरीर के अन्दर गर्मी बनाए रखता है
    - इसका रंग शंख के समान धवल होता है
    - इसी के माध्यम से हम पता करते हैं कि आदमी गर्म है और जिन्दा है
    - असाता-वेदनीय के उदय से यह ऊष्मा बढ़ जाती है तो temperature आ जाता **है**
41. **शुभ और अशुभ** तैजस के भेद से निस्सरणात्मक ऋद्धि दो प्रकार की होती है
42. ये मुनि महाराज के ही होती हैं
43. और तप विशेष से प्राप्त होती हैं
44. **संक्लेश** से अशुभ तैजस शरीर निकलता है
45. जैसे द्वीपायन मुनि से निकले अशुभ तैजस शरीर ने पूरी द्वारका को भस्मसात कर, उनको भी नष्ट कर दिया
46. **जीवों की रक्षा** के लिए शुभ तैजस शरीर निकलता है
    - और ये जहाँ आधियाँ, व्याधियाँ, दुर्भिक्ष आदि हैं वहाँ अनुकूल वातावरण पैदा करता है
47. तैजस ऋद्धि और आहारक ऋद्धि अलग-अलग होती है

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1. संसारी जीवों के कौन सा शरीर रहता है
1. तैजस
2. कार्मण
3. दोनों
4. इनमे से कोई नही

Q 2. अनादि शब्द का क्या अर्थ है ?
1. जिसका कोई अंत ना हो
2. जिसको कोई शुरुआत ना हो
3. जिसकी ना तो शुरुआत हो और ना कोई अंत हो ।
4. जिसकी कोई शुरुआत हो ।

Q 3. संसारी जीव के तैजस और कार्माण शरीर का संबंध -
1. अनादि है
2. सादि है
3. सादि , अनादि दोनों है
4. दोनों ही नहीं

Q 4 . आत्मा से कर्मों का बंध अनादि से है । यह _____कथन है ।
1. सामान्य
2. विशेष

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE



उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड

Q5. जीव के एक साथ यदि तीन शरीर हो तो कौनसे होंगे?
1. औदारिक आहारक कार्माण
2. औदारिक तैजस कार्माण
3. औदारिक वैक्रियिक कार्माण
4. वैक्रियिक तैजस कार्माण

Q6 . एक जीव के एकसाथ 4 शरीर हो तो कौनसे होंगे ?
1. औदारिक वैक्रियिक आहारक कार्माण
2. औदारिक आहारक तैजस कार्माण
3. वैक्रियिक औदारिक तैजस कार्माण
4. वैक्रियिक आहारक तैजस कार्माण

Q7 .किसी जीव के एक साथ वैक्रियिक और आहारक शरीर नहीं होते ।
1. सही है ।
2. गलत है ।

Q8 . अरिहंत भगवान के कौन-कौनसे शरीर होते हैं?
1. परम औदारिक
2. वैक्रियिक
3. तेजस
4. कार्माण
5. आहारक



TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड

Q9. - - - - वैक्रियिकम् । सूत्र पूरा कीजिए
1. उपपादिकम्
2. अपपादिकम्
3. औपपादिक
4. औपपादिकम्

Q10. देव और नारकियों का शरीर होगा -
1. औदारिक
2. वैक्रियिक
3. दोनों

Q11. लब्धि प्रत्ययम् च । इसमें च अक्षर किसे बताता है?
1. औदारिक शरीर को
2. वैक्रियिक शरीर को
3. लब्धि को
4. आहारक शरीर को

Q12. लब्धि प्रत्ययम् च । इस सूत्र में लब्धि
1. क्षयोपशम
2. तप विशेष
3. दोनों

Q13. प्रत्यय शब्द का क्या अर्थ है?
1. कारण
2. हेतु
3. निमित्त
4. पिछला

Q14. लब्धि प्रत्ययम् च । सूत्र किस वैक्रियिक शरीर से संबंधित है?
1. देवों के वैक्रियिक शरीर से
2. नारकियों के वैक्रियिक शरीर से
3. विक्रिया ऋद्धि से प्राप्त वैक्रियिक शरीर से
4. सभी से

Q15. अनिस्सरणात्मक तैजस शरीर का रंग कैसा होता है ?
1. चंद्रकांत मणि के समान
2. शंख के समान सफेद
3. आग के समान लाल रंग
4. कोयले के समान काला रंग

Q16. अपि शब्द का अर्थ क्या है?
1. ही
2. सभी
3. भी
4. यद्यपि

Q17. तप की विशेषता से निस्सरणात्मक तैजस शरीर की प्राप्ति होती है।
1. हाँ
2. नहीं

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड

अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1. ‘ अनादि सम्बन्धे च’ यह सूत्र किसके लिए आया है?
2. तैजस और कार्मण शरीर का सम्बन्ध जीव के साथ कैसा है ? अनेकान्त दृष्टिकोण से समझाइये ।
3. अरिहंत भगवान के कौन -कौन से शरीर होते हैं?
4. आहारक पुतला निकलते समय मुनिराज के कितने शरीर होते हैं ?
5. आहारक शरीर के साथ वैक्रियिक शरीर होगा या औदारिक ?
6. विक्रिया शक्ति कौन -कौनसी गति के जीवों में होती है ?
7. भाव इंद्रिय किसे कहते हैं?
8. कार्मण शरीर के उपभोग से रहित होने के कारण को समझाइए ।
9. विग्रह गति में कार्मण शरीर को ही उपभोग से रहित बताया गया है , तैजस शरीर को नहीं। क्यों?
10. वैक्रियिक शरीर कौन से जन्म वालों का होता है?
11. लब्धि के कारण कौन-कौन से शरीर बनते हैं?
12. अनिस्सरणात्मक तैजस शरीर का क्या कार्य है?
13. शुभ तैजस और अशुभ तैजस शरीर के बारे में बताइए ।

प्रवचन 19

द्वितीय अध्याय - जैन जीव विज्ञान

द्वितीय अध्याय में जीवों का पूरा विज्ञान बताया गया है। अन्तरंग में कर्मों के उदय, क्षयोपशम आदि से होने वाले भाव, जीवों के प्रकार, जीवों के जन्म, जीवों की उत्पत्ति, स्थान, योनि आदि और जीवों को प्राप्त होने वाले शरीर आदि की विशेषताओं को अवगत कराने के बाद में अभी भी उन जीवों की कुछ और विशेषताएँ, जो शरीर के रूप में बताना बाकी हैं, वह यहाँ पर आगे के सूत्र से बताया जा रहा है-

आहारक शरीर शुभ योग वाला व शुभ कार्य करने वाला है

शुभं विशुद्ध-मव्याघाति चाहारकं प्रमत्त-संयतस्यैव ॥ 2.49॥

शुभं विशुद्धम्+अव्याघाति च+आहारकं प्रमत्त-संयतस्य + एव

शुभ विशुद्ध व्याघात बिन, शुभ लक्षण शुभ जात।
गुणस्थान छठवें मुनि, आहारक उपजात॥2.49॥

पाँच शरीर बताए थे उनमें एक आहारक शरीर के विषय में यहाँ पर चर्चा है। आहारक शरीर जो कि आप सुनते आये हो, मुनि महाराज के मस्तिष्क से निकलने वाला एक विशेष पुतला होता है जो ऋद्धि के माध्यम से प्राप्त होता है। उसी की कुछ विशेषताओं को इस सूत्र में निबद्ध किया गया है। वह आहारक शरीर कैसा होता है? यह विशेषताएँ यहाँ बताई जा रही हैं। **'शुभं'**, शुभं का मतलब यहाँ पर है कि शुभ कर्म करने वाला होने से, शुभ काय योग का कारण होने से या शुभ अर्थात् पुण्य का कारण होने से इसको शुभ कहा जाता है। जो इसका कार्य है वह शुभ रूप है। इस आहारक शरीर से जो योग होगा वह शुभ होगा, जो आस्रव होगा वह शुभ होगा, जो बन्ध होगा वह पुण्य बन्ध होगा इसलिए यह शुभ कहा गया। साथ में एक विशुद्ध शब्द भी दिया है **'विशुद्धम्'** यह आहारक शरीर शुभ भी है और विशुद्ध भी है। विशुद्ध का मतलब यहाँ पर कि वह विशुद्ध कारणों से उत्पन्न होता है। उसके जो कारण हैं, वह कारण संक्लेश नहीं है। उसका कारण क्या है? विशुद्धि भाव है। जिस कारण से उत्पन्न हो रहा है वह कारण उसका शुभ है, विशुद्ध है इसलिए इसको विशुद्ध के रूप में कहा गया।

यह जो विशेषता यहाँ बताई जा रही है, यह आहारक शरीर के अन्दर ही घटित होने वाली विशेषताएँ हैं क्योंकि सूत्र में जब कुछ कहा जाता है, तो वह बहुत ही अकाट्य होता है और सूत्र जिन विशेषताओं को बताता है वह विशेषताएँ दूसरी जगहों पर उपलब्ध नहीं होती,

वही विशेषताएँ सूत्र के माध्यम से बताई जाती हैं। आहारक शरीर की ही यह विशेषता है कि वह शुभ योग वाला है, शुभ कार्य करने वाला है और वह शुभ ही रूप है, विशुद्ध भी है। विशुद्ध कारण से उत्पन्न होता है। एक शब्द कार्य की अपेक्षा से है, एक शब्द कारण की अपेक्षा से है, ऐसा भी जान सकते हो।

आहारक शरीर अन्य चार शरीरों की अपेक्षा एकान्त रूप से शुभ ही है

SCAN TO WATCH

अब हम अगर यहाँ देखें तो और कोई भी शरीर हमें शुभ और विशुद्ध एकान्त रूप से नहीं मिलेगा और कौन-कौन से शरीर हैं? औदारिक हैं, वैक्रियिक हैं, तैजस हैं, कार्मण हैं। यह सभी शरीर शुभ और विशुद्ध हो जरूरी नहीं क्योंकि औदारिक शरीर का तो प्रकट रूप से अशुभ काय के योग के साथ होना देखा ही जाता है। औदारिक शरीर के साथ में अशुभ क्रियाएँ होती हैं, अशुभ काय योग होता है, अशुभ भावों का भी बन्ध होता है। उसके कार्य तो अशुभ रूप में देखे ही जाते हैं। वैक्रियिक शरीर के कार्य भी अशुभ रूप में देखे जाते हैं, जैसे नारकियों का वैक्रियिक शरीर है, हमेशा अशुभ क्रियाएँ करते रहते हैं। तैजस शरीर भी देखें तो उसमें भी शुभ-अशुभ पना दोनों घटित होता है। एकान्त रूप से तैजस शरीर शुभ नहीं है क्योंकि उसके आपको दो भेद बताये थे कि वह शुभ भी होता है और अशुभ भी होता है। शुभ होगा तो अच्छा करेगा, अशुभ होगा तो सबका विनाश करेगा। तैजस शरीर में भी शुभता एकान्त रूप से घटित नहीं होती और कार्मण शरीर तो दोनों प्रकार का है ही। दो प्रकार के कर्म हैं तो उनमें भी पाप और पुण्य घटित हो जाता है। कुल मिलाकर के जो बात आहारक शरीर में है वह अन्य शरीरों में नहीं है, यह समझने की चेष्टा करनी है।



आहारक शरीर कहाँ तक जा सकता है?

आहारक शरीर ही एकान्त रूप से शुभ है। वह जिस समय पर उत्पन्न होगा, शुभ कार्य करेगा। अन्तर्मुहूर्त के लिए भी यदि वह उत्पन्न हुआ है, जिन स्थानों पर जाएगा, वहाँ पर भी जाने

का प्रयोजन उसका शुभ ही होगा। जहाँ पर केवली भगवान नहीं है उन स्थानों पर रहने वाले किसी मुनिराज के अन्दर अगर कोई ऐसी जिज्ञासा, तत्त्व में संदेह उत्पन्न हो जाता है, तो उस संदेह का निवारण करने के लिए यह आहारक पुतला निकलता है। वह उस स्थान तक जाता है, जहाँ पर केवलियों का सद्भाव होता है। जिन विदेह आदि क्षेत्रों में केवली भगवन्त विद्यमान रहते हैं तो वह, वहाँ तक पहुँचेगा। भरत क्षेत्र से कहाँ तक जाएगा? विदेह क्षेत्र तक, रास्ते में जो भी उसके लिए नदी, पर्वत आदि कुछ भी पड़ेंगे उन सबको वह भेदता हुआ भी चला जाएगा, कोई उसके लिए रुकावट नहीं बनेंगे।



आहारक शरीर की उत्पत्ति के हेतु

इस तरह के शुभ कार्य के लिए वह आहारक पुतला निकलता है और उसके पीछे उद्देश्य भी शुभ ही रहता है। जिसे हम विशुद्ध शब्द के माध्यम से व्यक्त कर सकते हैं कि उसके पीछे कारण भी शुभ है। एक तो हमें अपने संदेह का निवारण करना है, दूसरा अगर हम किसी भी तरह से औदारिक शरीर से जाने की कोशिश करेंगे तो इतना दूर जाने में, चाहे भले ही ऋद्धियाँ हो तो भी जाने में असंयम होगा। उसको भी बचाने के लिए, उस असंयम को दूर करने के लिए यह आहारक पुतला काम में लाया जाता है। अन्यथा देव वन्दना आदि के निमित्त से भी जाया जा सकता है। कहीं ऐसे स्थानों पर, कोई मान लो क्षेत्र बने हुए हैं, तीर्थ बने हुए हैं, जहाँ पर पहुँचने में रास्ता प्रासुक न हो, साफ सुथरा न हो, ऐसे भी कोई स्थान हो सकते हैं कि बहुत सारी जंगल है, झाड़ी झंकार है और उसके बाद में मान लो कोई गुफा है और उस गुफा में कोई बहुत अकृत्रिम या कृत्रिम भी सही बहुत अच्छी कोई मूर्ति है, हमने किसी से बार-बार सुना है।

मान लो श्रावक आ कर सुना जाते हैं क्योंकि श्रावक तो सब रास्ते cross करके चले जायेंगे। अब सुना गए तो मुनि महाराज के मन में भी इच्छा हो जाए लेकिन उनसे वह हजार किलोमीटर दूर है, जाना सम्भव नहीं है, तो इस तरह के विकल्प होने पर भी यह आहारक पुतला साथ देता है लेकिन साथ तभी देगा जब इसका पहले बन्ध हुआ हो। कर्म का बन्ध होता है, तो कर्म का उदय होता है।

आहारक शरीर के लिए गुणस्थान व उत्पत्ति की व्यवस्था

कर्म का बन्ध तो होता है- अप्रमत्त दशा के साथ में और उदय होता है- प्रमत्त दशा के साथ में।

कर्म का बन्ध होगा सातवें गुणस्थान में, उदय होगा छठवें गुणस्थान में। इसलिए यहाँ पर एक शब्द आगे आ रहा है- **"प्रमत्त-संयतस्यैव"** जो आहारक शरीर निकलता है, यह प्रमत्त संयत को ही निकलेगा, अप्रमत्त को नहीं निकलेगा। मतलब यह है कि जिस समय पर आहारक शरीर की रचना होगी, आहारक शरीर की उत्पत्ति होगी, उस समय पर जब इस आहारक शरीर उदय का होगा तो उस समय पर गुणस्थान नियम से छठवाँ ही होगा। प्रमत संयत जीव के लिए ही यह निकलेगा। इसलिए यह शर्त है- प्रमत्त संयत, अप्रमत्त संयत नहीं। अप्रमत्त दशा में तो इसका बन्ध किया जा सकता है और अप्रमत्त दशा में ही इसका बन्ध होता है।

यह एक कर्मजन्य एक अलग व्यवस्था है, जिसके माध्यम से आहारक शरीर की उत्पत्ति होती है और आहारक शरीर की उत्पत्ति के साथ में कई प्रकार के नियम और भी जुड़े हुए हैं। जैसे कि-

1. प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन होता है, तो उसके साथ में कभी भी यह आहारक शरीर का निर्माण, उदय नहीं हो सकता।
2. मनःपर्यय ज्ञान होता है, उस मनःपर्यय ज्ञान के साथ में आहारक ऋद्धि नहीं होती, ऐसा दूसरा नियम है।
3. जो नपुंसक वेद वाले जीव होंगे, उनके लिए भी यह आहारक शरीर का बन्ध भी नहीं होगा, उदय भी नहीं होगा क्योंकि वेद भीतर से भावों की अपेक्षा से तीनों रह सकते हैं।

मुनि महाराज तो हैं लेकिन वेद तीन में से कोई भी हो सकते हैं, जिसका वर्णन आगे आने वाला है। अगर कोई स्त्री वेदी है या नपुंसक वेदी है, तो उनके लिए भी यह आहारक ऋद्धि नहीं प्रकट होगी। ऐसी इसके साथ में conditions है।

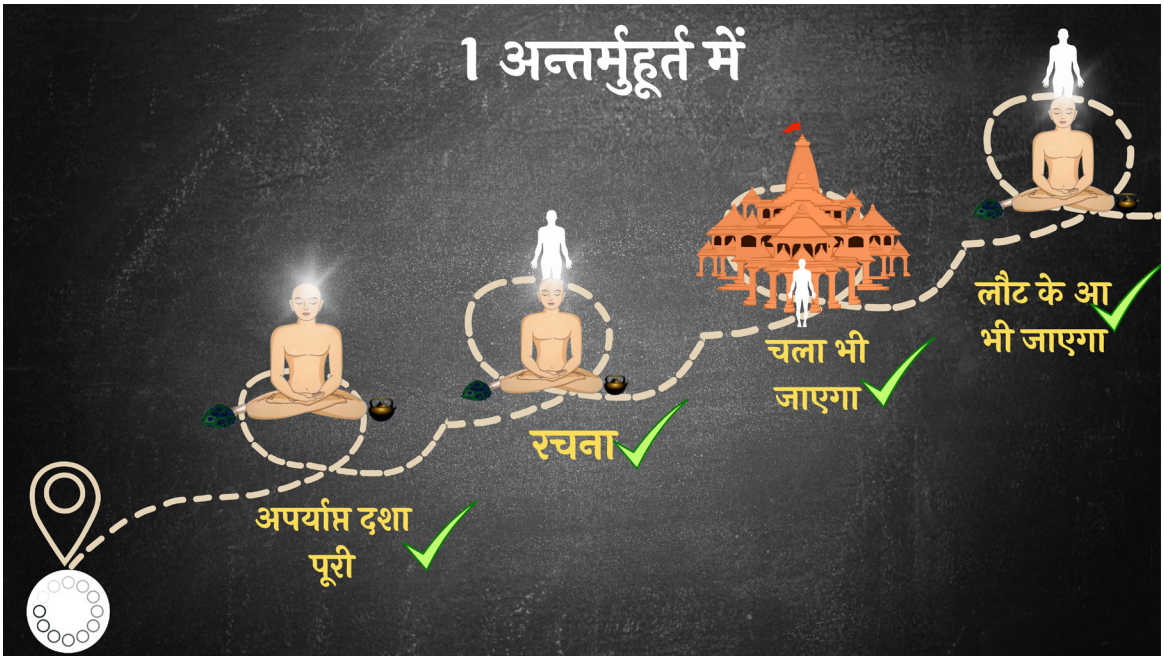
आहारक शरीर की विशेषताएँ



आहारक शरीर जिसका होता है, वह आहारक शरीर जिस रूप के साथ होता है, एवं उसका जो रूप है जिसे हम संस्थान कहते हैं, वह भी बहुत सुन्दर होता है। देवों की तरह समचतुरस्र संस्थान कहा गया है। रूप उसका अच्छा होता है,

शुभ आकृति होती है, शुभ धवल वर्ण का मतलब सफेद होता है। शरीर है, पुतला है, शरीर है पर उस शरीर में कहीं पर भी कोई धातुएँ, उप धातुओं का काम नहीं होता। आप उसको एक शरीर के रूप में देखें और वह शरीर वैसा ही जैसा देवों का शरीर होता है। देवों के शरीर में जैसे संहनन नहीं होता, ऐसे ही इस शरीर में भी संहनन नहीं होगा लेकिन रूप, आकृति, संस्थान होगा। जैसे देवों के शरीर में रोग आदि नहीं होते हैं वैसे इस आहारक शरीर में भी रोग आदि नहीं होंगे क्योंकि इसमें धातु-उपधातुओं का परिवर्तन नहीं होता। रस, मांस, रक्त, मज्जा आदि का कोई यहाँ पर काम नहीं होता। इतना मतलब अच्छा शुद्ध शरीर कहलाता है। इस तरह से यह आहारक शरीर की विशेषताएँ हैं और ये विशेषताएँ हमें और दूसरे शरीर में उपलब्ध नहीं होती है।

आहारक ऋद्धि से ही आहारक शरीर की उत्पत्ति होती है



यह अपने आप में आहारक ऋद्धि के रूप में भी स्वीकार की गई है। आहारक ऋद्धि जिसके माध्यम से, मुनि महाराज ही इस ऋद्धि का प्रयोग करके केवल इसी प्रकार के उद्देश्यों से आहारक शरीर की उत्पत्ति कर सकते हैं और इसकी उत्पत्ति, रचना औदारिक शरीर की रचना जैसे होती है।

आपको बताया कि पहले एक अन्तर्मुहूर्त तक अपर्याप्त दशा होती है। जैसे अपर्याप्त दशा होगी तो उस अपर्याप्त दशा में जो योग होता है, उसको बोलते हैं- मिश्रकाय योग। अगर औदारिक शरीर बन रहा है, तो उसकी अपर्याप्त दशा में जो योग होगा वह कहलाएगा- औदारिक मिश्र

काय योग। कहीं देव या नारकियों का शरीर बन रहा है, वैक्रियिक शरीर बन रहा है, तो शरीर बनने से पहले एक अन्तर्मुहूर्त तक क्या होगी? अपर्याप्त दशा। उस अपर्याप्त दशा में जो योग होगा उसको कहेंगे मिश्र काय योग। वैक्रियिक शरीर वाले जब उस शरीर को बनाएँगे तो उनके भी अन्तर्मुहूर्त में पहले क्या होगा? वैक्रियिक मिश्र काय योग। इसी तरीके से आहारक के साथ भी होता है। जब यह आहारक शरीर बनेगा इसकी निष्पत्ति होगी तो उससे अन्तर्मुहूर्त पहले औदारिक मिश्र काय योग होगा तब इसकी रचना अन्तर्मुहूर्त में होगी । अब एक अन्तर्मुहूर्त देखो कितना बड़ा होता है, अन्तर्मुहूर्त में ही अपर्याप्त दशा पूरी हो जाएगी। अन्तर्मुहूर्त में ही उसकी रचना भी हो जाएगी, अन्तर्मुहूर्त में ही वह चला भी जाएगा, अन्तर्मुहूर्त में ही वह लौट कर आ भी जाएगा, सब अन्तर्मुहूर्त में ही हो रहा है और सब अलग-अलग अन्तर्मुहूर्त हैं। औदारिक शरीर की तरह इस आहारक शरीर के साथ भी उत्पत्ति के समय पर आहारक मिश्र काय योग होता है, ऐसा जानना। अन्तर्मुहूर्त तक मिश्र काय योग रहेगा, यह अपर्याप्त दशा में होगा, फिर आहारक काय योग शुरू हो जाएगा।

एक समय पर एक ही योग होता है

अब आप यह भी जान कर रखे कि आत्मा में इन काय योगों के माध्यम से, इन वर्गणाओं का वह आत्मा आलम्बन लेकर के, उसके माध्यम से आत्मा के प्रदेशों में परिस्पन्दन होता है, उसको योग कहते हैं। जिस समय पर एक योग होता है, उस समय पर दूसरा योग नहीं होता मतलब अभी हम लोगों के लिए जैसे मनुष्य हैं तो औदारिक काय योग का नम्बर आता रहता है। औदारिक काय योग चलेगा लेकिन जब यह आहारक काय योग बनेगा तो उस समय पर औदारिक काय योग का काम रुक जाएगा। औदारिक काय योग सम्बन्धी वर्गणाएँ नहीं आएँगी। इससे connection cut off हो जायेगा और उससे connection जुड़ जाएगा। एक अन्तर्मुहूर्त के लिए आहारक शरीर की वर्गणाएँ चलेंगी, आहारक मिश्र काय योग होगा, आहारक काय योग होगा, वह आहारक शरीर सम्बन्धी वर्गणाएँ ही होंगी।

शुभ और विशुद्ध केवल आहारक शरीर होते हैं अन्य नहीं

यह सारी प्रक्रिया ध्यान में रखते हुए इस आहारक शरीर की विशेषताओं को आप अच्छे ढंग से जान ले। तैजस शरीर के साथ इसको मिलाने की कोशिश न करे और तैजस शरीर जिस तरह से दो रूपों में होता है, वैसे आहारक शरीर शुभ और अशुभ दो रूपों में नहीं होता। यह शुभ ही होता है इसलिए इस ग्रन्थ में अलग से आहारक शरीर के लिए इतना बड़ा सूत्र बनाया, नहीं तो तैजस शरीर के लिए तो **"तैजसमपि"** इतना ही कह कर छोड़ दिया। शुभ-अशुभ कैसे पता पड़ेगा? सब इसी से पता पड़ जाएगा। समझदार लोग ही सूत्र पढ़ेंगे और समझदार लोग ही इन सूत्रों को समझ पाएँगे। जितने भी लोग सीख रहे हैं, सुन रहे हैं, सभी समझदार हैं क्योंकि इन सभी सूत्रों को समझ कर अपने अन्दर बिठाना और समझ में आ पाना, यह अपने आप में दुर्लभ चीजें तो हैं।

सूत्रों की रचना बहुत सोच समझ कर की जाती है



इन सूत्रों के माध्यम से ही आप यह समझ सकोगे कि इन सूत्रों की रचना का ढंग भी कितना अच्छा होता है, कितना व्यवस्थित होता है, आचार्य किसी भी बात को दोबारा नहीं कहते हैं। एक बात को कहने के बाद में अगर उसी से related कोई दूसरी बात होगी तो वह **'च'** से काम में आयेगी। 'च' लगा कर काम चला लेंगे, बार बार नहीं कहेंगे। जैसे ऊपर के सूत्र आए थे, कार्मण तैजस शरीर के बारे में **'अप्रतीघाते', 'अनादि संबंधे च', 'सर्वस्य',** तो उन्हें बार-बार बताने की जरूरत नहीं है कि किसके लिए कह रहे हैं। हाँ! यह तैजस, कार्मण शरीर के साथ ही कहा जा रहा है। यह आपकी understanding में होना चाहिए। इसी तरह से **'शुभम् विशुद्धम'** यह शब्द अगर आहारक शरीर के साथ जोड़े हैं तो आप समझ लो, अन्य जो शरीर हैं, चाहे वह तैजस हो, चाहे वह औदारिक हो, चाहे वह वैक्रियिक हो, उनमें यह condition नहीं है कि वह शुभ ही होंगे इसलिए यहाँ पर हमने इनके लिए शुभ नहीं लिखा है। उनमें condition नहीं है कि इनके सब विशुद्ध ही कारण होंगे क्योंकि वह संक्लेश से भी पैदा होते हैं।

आहारक शरीर के विशेषण

औदारिक शरीर हो, चाहे वैक्रियिक शरीर हो, संक्लेश से भी उत्पन्न होते हैं। नारकियों में संक्लेश होते हैं, देवों में भी संक्लेश होते हैं, मनुष्य और तिर्यंचों में संक्लेश होते ही हैं तो उससे भी ये शरीर उत्पन्न होते हैं। इन तीनो शरीर की उत्पत्ति का एक कारण इनका संक्लेश भी हो सकता है। लेकिन आहारक शरीर का कारण विशुद्ध ही है, इस तरीके से यह

1. **शुभं, 2. विशुद्धम्** और तीसरा विशेषण है - **'अव्याघातम्'** व्याघात से रहित।

व्याघात का मतलब तो आप समझ ही गए न! किसी भी तरीके की कोई बाधा न यह दूसरे को देगा, न कोई दूसरा इस शरीर को बाधा देगा, इसका नाम है- बाधा से रहित। कहाँ तक? जितना इसका अपना क्षेत्र है, वहाँ तक। अब तैजस और कार्मण के लिए यह जो 'अप्रतीघाते' सूत्र में आया था वैसा यहाँ पर अप्रतिघात का area इसका इतना बड़ा नहीं है क्योंकि तैजस, कार्मण शरीर के साथ तो लोक में कहीं भी घूमा जा सकता है, कहीं भी गमनागमन किया जा सकता है।

आहारक शरीर ढाई द्वीप(मनुष्य लोक) के अन्दर ही गमनागमन कर सकता है

लेकिन आहारक शरीर के साथ तो निश्चित एरिया है, ढाई द्वीप के अन्दर ही जो भी जिनालय हो या मुनि महाराज हो या श्रुतकेवली हो या केवली हो, किन्हीं के पास में जाने के लिए कोई भी निमित्त तैयार किया जा सकता है क्योंकि ढाई द्वीप के बाहर मनुष्य का आवागमन नहीं होता है। ढाई द्वीप के बाहर कोई भी ऋद्धिधारी मनुष्य भी नहीं पहुँचते हैं। ढाई द्वीप के बाहर ऋद्धि धारी मनुष्यों का भी प्रवेश निषेध है। यह भी मनुष्य नाम कर्म के उदय से मनुष्य का

पुतला है। यह ढाई द्वीप से बाहर नहीं जा सकता। इसलिए ढाई द्वीप के अन्दर के जो भी जिनालय होंगे, जो भी केवली श्रुतकेवली होंगे उनके दर्शन के लिए यह पुतला जाता है।



आगे का सूत्र पढ़ते हैं-

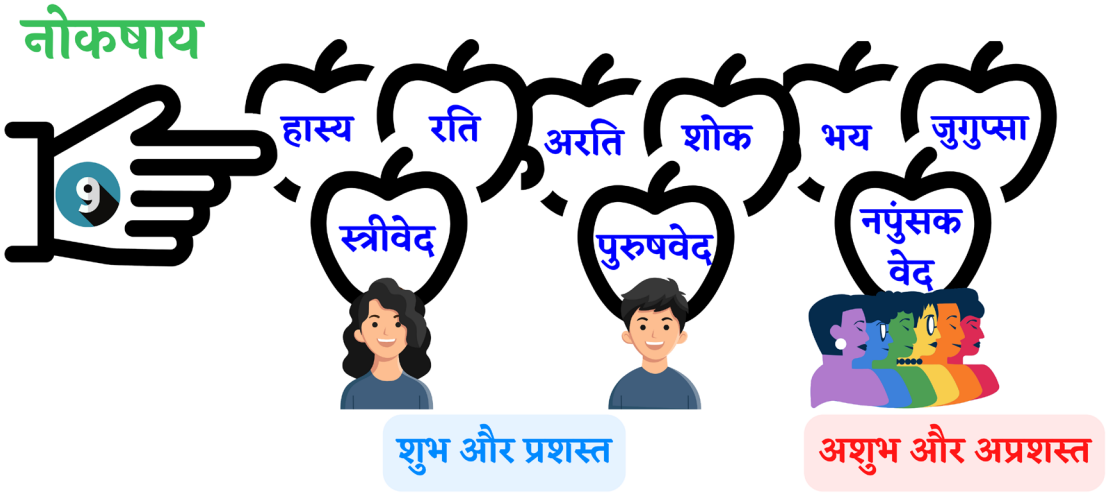
वेदों का वर्णन

नारक-सम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥ 2.50॥

नारक - सम्मूर्च्छिन: नपुंसक + आनि

नर-नारी से भी अधिक, कलुष नपुंसक भाव।
सम्मूर्च्छन औ नारकी, में इक पल न अभाव॥2.50॥

अब यहाँ पर शरीरों का वर्णन होने के बाद में वेदों का वर्णन शुरू होता है। वेद जानते हैं न? तीन प्रकार के वेद होते हैं- पुरुष वेद, स्त्री वेद और नपुंसक वेद। यह तीनों वेद हमारी नोकषाय के भेद होते हैं। जो नोकषाय नौ होती हैं, यह उन्हीं के उदय से आत्मा में उत्पन्न होने वाले भाव होते हैं। वेद का मतलब एक तरीके से जिसे बोलते हैं- gender. male, female, neutral इस तरीके की यह gender को ही
यहाँ पर वेद कहा जा रहा है।



नारकी और सम्मूर्च्छन जीव नपुंसक वेद वाले होते हैं

नारकी और सम्मूर्च्छन जन्म वाले जीव नपुंसक वेद वाले होते हैं



अब यहाँ पर उसकी भी एक शर्त बताई जा रही है कि नपुंसक वेद वाले जीव नियम से कौन से होते हैं? यह सूत्र किस लिए है? नारक और सम्मूर्च्छन मतलब नारकी जीव और जितने भी सम्मूर्च्छन जन्म वाले जीव हैं, वे सभी कैसे होंगे? सब नपुंसक वेद वाले होंगे। यह नपुंसक वेद अशुभ और अप्रशस्त वेद के रूप में माना जाता है क्योंकि इस वेद के उदय में जीव को अत्यन्त दुःख होता है, उसकी तृष्णा कभी पूरी नहीं होती। इसलिए वह बहुत ही भीतर से दुःखी होता है इसलिए इसको अशुभ माना जाता है। इस तरीके का यह अशुभ भाव नारकियों में नियम से होता है मतलब सभी नारकी नपुंसक होंगे, द्रव्य से और भाव से।

भाव वेद और द्रव्य वेद में अन्तर



दो तरह से वेद बताया जाता है- भाव तो हो गया जो हमारे अन्दर नोकषाय का उदय हुआ और वह उदय जीवन पर्यन्त भी एक जैसा बना रहता है। शरीर में वैसी नोकषाय के उदय से भाव वेद होता है और द्रव्य वेद के कारण से शरीर में वैसी ही रचना भी होती है स्त्रियों के शरीर की रचना स्त्रियों जैसी होती है, पुरुष के शरीर की रचना पुरुष के जैसी होती है, यह किस लिए हो रही है? यह है- द्रव्य वेद के कारण से और द्रव्य वेद जो बनता है, यह नाम कर्म के उदय से होता है। शरीर नाम कर्म, अंगोपांग नाम कर्म, इस तरीके के इनके फल से द्रव्य वेद की रचना होती है और भाव वेद की रचना हुई वह हमारी जो नोकषाय है, उसके जो भेद हैं उसके उदय से हुई। तो दोनों की रचना में अलग-अलग हेतु हैं, अलग-अलग कारण बताये गए हैं। भाव वेद की रचना में कारण क्या है? हमारा नोकषाय भाव और द्रव्य वेद की रचना में कारण है- हमारा शरीर, अंगोपांग नामकर्म आदि का उदय। जो शरीर में रचना हो रही वह है- द्रव्य वेद।

अब इन दोनों में विषमता भी होती है। कैसी विषमता? यह जरूरी नहीं है कि जो व्यक्ति द्रव्य से पुरुष हो, भाव से पुरुष वेद वाला ही हो। भाव से उसके तीनों वेद हो सकते हैं। यह वैषम्य होता है- वेद वैषम्य इसको कहते हैं। जो व्यक्ति द्रव्य से तो पुरुष है मतलब शरीर की रचना तो उसकी पुरुष की हुई है लेकिन भावों में पुरुष वेद भी हो सकता है, स्त्री वेद भी हो सकता है और नपुंसक वेद भी हो सकता है, तो उससे क्या होगा? भावों में जिस तरीके का वेद होगा उसी की अभिलाषा उसकी उसी रूप में होगी। यानि पुरुष वेद के उदय में स्त्री की अभिलाषा होती है, स्त्री वेद के उदय में पुरुष की अभिलाषा होती है और नपुंसक वेद के उदय में दोनों की अभिलाषा होती है। अभिलाषा का अर्थ desire तो यह वेद वैषम्य कहलाता है और इसको हम तीनों चीजों के साथ घटित कर सकते हैं।

कुछ जीवों में द्रव्य से कोई वेद और भाव से कोई और वेद हो सकता है

मान लो शरीर जैसे पुरुष के साथ बताया, ऐसे ही कोई द्रव्य से स्त्री है लेकिन उसके वेद वैषम्य होने के कारण से उसके भाव में स्त्री वेद भी हो सकता है, पुरुष वेद भी हो सकता है और नपुंसक वेद भी हो सकता है। आजकल आप लोग कभी-कभी सुनते होंगे, एक same sex के बीच में भी घटनाएँ चलती हैं और वह भी कई बार सरकार के बीच में मुद्दा बन चुके हैं कि इस तरीके के सम्बन्धों के बारे में यह legal करना चाहिए कि नहीं करना चाहिए। ये सब वही चीजें हैं। स्त्रियों में भी ऐसी स्त्रियाँ होती हैं, जो स्त्रियों के साथ ही रमण करने में अच्छा समझती हैं, यह उनके किस वेद के कारण से? अब मान लो जिनके भीतर तो पुरुष वेद का उदय चल रहा है, बाहर से द्रव्य स्त्री है, तो ऐसे अगर लोग इकट्ठे हो जाएँगे तो उन्हें उसी में अच्छा लगेगा।

जैन शास्त्रों में समलैंगिकता का भी वर्णन मिलता है

कोई चीज jain science से अलग नहीं है, इसलिए बता रहा हूँ, जो हमें आजकल देखने को मिलता है। या समलैंगिक जिसको बोलते हैं, यह जो एक चीज चल रही है, यह इसी तरीके की व्यवस्था के कारण से है क्योंकि ऐसे लोग पहले तो मिलते नहीं थे। आज कल तो facebook internet है। सबको सब कुछ पता रहता है। मान लो हजारों लाखों में कोई एक वेद वैषम्य मिलता है। अब वह हमें internet के through आराम से मिल जाएगा। वैसे किसको क्या पता? किसका क्या वेद? क्या उदय चल रहा है? लेकिन एक जैसी इच्छा वाले, एक जैसे मतलब बाहर की जैसी उनकी personality है, वह और भीतर की दोनों match कर गए और ऐसे दो चार लोग दस लोग मिल गए तो उन्होंने अपना group बना लिया। उन्होंने अपने विचार रख लिए, वह उनका एक अलग संविधान बनने लग जाता है। ये चीजें हमें शास्त्रों में बताई गई हैं, कुछ नया नहीं है। इसे वेद वैषम्य कहा गया और यह वेद वैषम्य किन्हीं गतियों में तो होता है और किन्ही में नहीं होता।

नपुंसक वेद वाले जो ये नारक और सम्मूर्च्छन जीव हैं, ये नियम से द्रव्य से भी नपुंसक हैं और भाव से भी नपुंसक हैं। यह जानना। यह वेद वैषम्य के साथ नपुंसक नहीं है कि बाहर से नपुंसक हो और भीतर से इनमें पुरुष वेद का उदय हो जाए ऐसा नहीं होगा। यह वेद वैषम्य तो मनुष्य और तिर्यंचों के लिए है। नारकी और देवों में fix gender रहता है, तो नारकियों में हमेशा neutral gender ही रहेगा और आगे कहते हैं-

देव नपुंसक नहीं होते हैं

न देवाः ॥ 2.51॥

दोहा:- दिव्य शरीरी दिव्य सुख, ऐसे देवी देव।
वेद नपुंसक बिन बने, द्वय वेदों में सेव॥2.51॥



क्या सूत्र है? "न देवाः" इसका मतलब क्या है? व्याकरण के अनुसार लगाओगे तो देव नहीं है, देवः न मतलब के देवों का कोई अस्तित्व नहीं है लेकिन अगर आप इसको पिछले वाले सूत्र के साथ जोड़ोगे तो इसका अर्थ निकलेगा देव नपुंसक नहीं होते हैं। देवों में नपुंसक वेद का उदय नहीं होता है। देव न तो द्रव्य से, न भाव से दोनों तरह से नपुंसक नहीं होते हैं। अब यह फलित तो अपने आप निकल आएगा, नपुंसक नहीं होते तो क्या होते हैं? बस तीन ही तो वेद हैं। एक ही तो मना कर रहे हैं तो जब जिसका निषेध हो गया अगले की विधि तो अपने आप हो गई। इसका मतलब है देव या तो पुरुष वेद वाले होंगे या स्त्री वेद

वाले होंगे। अब देवों में भी वेद वैषम्य नहीं मिलेगा यह ध्यान रखना है। जो स्त्री है, तो वह द्रव्य से भी स्त्री होगी, भाव से भी स्त्री होगी, भाव में भी उसकी स्त्री वेद का ही उदय होगा। पुरुष है, तो जो द्रव्य से पुरुष है, देव है वह भाव से भी पुरुष वेद का ही उदय होगा। इस तरीके के यह जो नियम है, इन नियमों को जान कर के ही आप यह जान सकते हैं कि कहाँ पर वेद वैषम्य होता है और कहाँ पर नहीं होता है। अब आगे कह देते हैं-

शेषास्त्रिवेदाः ॥ 2.52॥

शेषाः+त्रिवेदाः

जन्म गर्भजों की बची, शेष जीव जो राशि।
उनमें तीनों वेद हैं, द्रव्य भाव सह-वासि॥2.52॥

अब जो शेष बचे, जिनके लिए rules थे वह तो बता दिए। अब जो इस rules में नहीं आ रहे हैं, वह सब क्या हो गये? वहाँ अब आप, तीनों वेदों में लगा लेना। जो बता दिया, नारकियों को, सम्मूर्च्छन जन्म वालों को और देवों को, छोड़ कर अब आप देख लो जो भी बचा सो क्या है? तीनों वेद वाले, कौन कौन बचा? मनुष्य भी बचे, तिर्यन्च भी बचे।

आर्यखण्ड और म्लेच्छ खण्ड में वेदों की व्यवस्था

मनुष्यों में भी सभी तरह के मनुष्य होते हैं, कर्म भूमि के भी मनुष्य होते हैं, भोगभूमि के भी मनुष्य होते है। अब इसमें condition अपनी अलग-अलग बनती चली जाएगी। यह detail आगे की है। आर्य खण्ड के मनुष्य होते हैं, म्लेच्छ खण्ड के मनुष्य होते हैं। सिद्धान्त ग्रन्थों में और भी चीजें बताई गई हैं। बहुत अच्छी बात है, जानने के लिए।

1. आर्य खण्ड के मनुष्यों में तो तीनों प्रकार के वेद वाले जीव मिल जाएँगे।
2. जो म्लेच्छ खण्ड के मनुष्य होते हैं वहाँ पर नपुंसक वेद वाले नहीं होते हैं।
3. भोग भूमि के भी जो मनुष्य और तिर्यन्च होंगे, वहाँ पर भी नपुंसक वेद नहीं होता है क्योंकि भोग भूमि में भी सुख है। यह सुख के भेद हैं। ये भोग भूमि में भी इसी तरीके से और जो भोग भूमियाँ ढाई द्वीप के बाद पड़ती हैं उनमें भी इस तरह से रहता है। वहाँ पर भी नपुंसक वेद वाले जीव नहीं होते हैं।
4. सम्मूर्च्छन जन्म वाले जो जीव होंगे वह नियम से नपुंसक ही होंगे, चाहे वह कर्म भूमि के हो या कहीं के भी हो। इस तरीके से आप इनके और भी भेद उपभेदों को जान सकते हैं।

वेद और लिंग पर आचार्य श्री जी का चिन्तन

यहाँ पर लिंग और वेद के बीच में एक चिन्तन है, वह एक बार गुरु महाराज ने बताया था। वैसे तो यहाँ पर इन सूत्रों को देखोगे तो आपको लिंग और वेद में कोई अन्तर नहीं बताया मतलब



वेद भी दो प्रकार के हैं- **द्रव्य वेद-भाव वेद** और उनकी भी वही व्यवस्था है, जो लिंगो की व्यवस्था है- द्रव्य लिंग, भाव लिंग। लेकिन इन्हीं तीन सूत्रों के आधार पर एक बार गुरु महाराज ने चिन्तन दिया था, वह चिन्तन बहुत अच्छा है, सबको सुनने योग्य है और सबके लिए समझने योग्य है। वह चिन्तन और कहीं नहीं मिला, जो गुरु महाराज ने दिया था। आप व्याकरण पढ़े नहीं है इसलिए थोड़ा सा आपको यह लगेगा कि यहाँ पर 'लिंग' तो शब्द ही नहीं आया कहीं। आप क्या कहोगे? यहाँ पर लिंग तो है ही नहीं, यहाँ तो वेद शब्द आया। नारक सम्मूर्च्छनों नपुंसकानि अब यह जो नपुंसकानि है, यह जो विभक्ति लगी हुई है यह विभक्ति, विशेषण और विशेष्य से सम्बन्ध रखने वाली विभक्तियाँ होती हैं। अगर यहाँ पर वेद शब्द विवक्षित होता कि नपुंसक वेद वाले हैं तो वेद शब्द तो पुल्लिंग का है और लिंग शब्द नपुंसकलिंग का है, तो यहाँ पर "नारक सम्मूर्च्छनों नपुंसकानि लिंगानि' ऐसा ध्वनित होता है।

यह 'ध्वनि' जो व्याकरण पढ़े होते उन्हीं को आती है। ध्वनि समझ रहे हो मतलब जो नहीं कहा गया है वह भी जानने में आता है क्योंकि यह लिंग का विशेषण बनाया जा रहा है। नपुंसकलिंग वाले जीव हैं तभी यहाँ पर इसमें नपुंसकलिंग में विभक्ति नपुंसकलिंग की डाल कर के बहुवचन बनाया गया। इसका मतलब यह हुआ कि यहाँ पर तो लिंग की बात कही और आगे **"शेषास त्रिवेदाः"** यहाँ पर वेद की बात कही। आचार्य महाराज ने इस लिंग और वेद को लेकर के एक चिन्तन यह दिया था कि देखो! जहाँ पर लिंग की condition बताई गई है, वहाँ पर यह जानना कि लिंग में तो द्रव्य और भाव दोनों एक जैसे ही होंगे और वह बात fit भी बैठती है, नारकियों में द्रव्य और भाव से लिंग दोनों एक ही हैं। सम्मूर्च्छनों में भी द्रव्य और भाव से लिंग एक ही है लेकिन जहाँ पर वैषम्य आ जाता है वहाँ पर वेद शब्द का प्रयोग किया जाता है, वेद वैषम्य तो तीन वेदों में वैषम्य है। इसलिए **त्रिवेदाः** ये वेद वैषम्य के साथ में बताया गया है।

अनपवर्त और अपवर्त आयु वाले जीव

औपपादिक-चरमोत्तमदेहा-संख्येय-वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ 2.53॥

औपपादिक-चरमोत्तम-देहा+असंख्येय-वर्ष+आयुषः+अनपवर्त्य+आयुषः

चरमोत्तम तन देव औ, भोगभूमिया जीव।
तथा नारकी भोगते, पूरी आयु सदीव॥2.53॥

अन्त में कहते हैं कि इतने सारे जीवों का हमने विज्ञान बताया, उसका वर्णन किया अब अन्त मे एक सूत्र इस बात के लिए है कि अनपवर्त आयु या अपवर्त आयु वाले जीव कौन से होते हैं? अनपवर्त आयु का अर्थ होता है- जिस आयु का घात न हो और अपवर्त आयु होती जिसका आयु का घात हो जाए अर्थात् जिनकी अकाल मृत्यु होती है उन्हें अपवर्त आयु वाले कहते हैं। जिनकी अकाल मृत्यु नहीं होती है, उन्हें अनपवर्त आयु वाले कहते हैं। यह सूत्र किसके लिए

है? जिनकी अकाल मृत्यु नहीं होती है, उनकी condition यहाँ बताई जा रही है। देख लेना आप लोगों की अकाल मृत्यु सम्भव है कि नहीं। अकाल मृत्यु तो जानते हो न, समय से पहले मर जाना। इसको शास्त्रों में कदलीघात मरण भी बोलते हैं। समय से पहले कोई दुर्घटना हो जाना, रोग हो जाना, कोई भी कहीं पर डूब जाना, गिर जाना, heart attack हो जाना, कोई भी बीमारियाँ हो जाना, कोई विष भक्षण कर लेना, suicide कर लेना, ये जितने भी कारण हैं, ये सब किसके लिए होते हैं? ये सब अकाल मरण के लिए होते हैं।



महामारी की चपेट में आने के कारण



महामारी में जो मर रहे हैं, वह भी अगर वह उस महामारी की चपेट में आने के कारण से मर रहे हैं तो **अकाल मरण** कह सकते हैं क्योंकि वह महामारी उनकी मृत्यु के लिए कारण बन रही है, तो वह इसी कारण से बन रही है क्योंकि अपने अन्दर की क्षमताएँ उन्होंने या तो पहले से अपनी किसी अज्ञानता से, प्रमाद से अपनी कम कर रखी है। इधर महामारी का प्रकोप हो गया तो उन्हें अपनी आयु से पहले भी मरना पड़ रहा है। अब diabetes है या कोई भी तरीके की आपके heart में cholesterol इत्यादि की बीमारियाँ हैं, यह सब किसकी देन है? यह आपकी गलत life style के नतीजे हैं। यह आपकी गलत खान-पान, आपकी अज्ञानता, आपके प्रमाद के नतीजे हैं। आयु कर्म क्या करे आपने पहले से ही अपना शरीर खराब कर रखा है। इधर से कोई महामारी आई तो उन्हीं के ऊपर और attack हो गया। sugar और बढ़ गई, इधर पहले से ही cholesterol था, तो heart attack की और सम्भावना बढ़ गई। lungs में infection आ गया, अब उससे उबरने का हमारे पास में अपने अन्दर कोई energy बची नहीं तो अकाल मरण तो कहा ही जाएगा। ये सब चीजें अकाल मरण के लिए होती हैं।

आचार्यों ने अकाल मरण स्वीकार किया है

कुछ थोड़ा सा ज्यादा पढ़े-लिखे लोग ऐसा भी बोलते हैं कि अकाल मरण नहीं होता है। ज्यादा पढ़े-लिखे का मतलब समझ रहे हो न? थोड़ा सा अपने मन से ज्यादा पढ़ लेते हैं या पण्डितों के ज्ञान से ज्यादा जो पढ़ जाते हैं, ऐसे लोग क्या बोलते हैं? अकाल मरण नहीं होता है लेकिन

आप इन सूत्रों को ध्यान में रखेंगे तो आपके अन्दर यह विश्वास आना चाहिए कि अकाल मरण होता है। यह अकाल मरण सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है।

अकाल मरण किस स्थिति में नहीं होता

अकाल मरण किसका नहीं होता है? इनके लिए यहाँ पर इस सूत्र में condition दी गई है। आप इस condition में fit हो जाओ तो अच्छी बात है, देखते रहो और नहीं हो जाओ तो फिर बचने के लिए भी तैयार रहो कि अकाल मरण न हो जाए। सबसे पहले क्या बोलते हैं? औपपादिक अर्थात् उपपाद से जिनका जन्म होता है। किसका जन्म होता है? हाँ! अभी सूत्र हैं, सूत्र में सूत्र fit करते चले जाओ, जैसे mathematics में कभी आप formula लगाते चले जाते हो न। औपपादिक जन्म वाले कौन? इसमें **"देवनारकाणाम् औपपादिकम"** वह सूत्र नम्बर इसमें fit करो मतलब देव और नारकी क्या हैं? उनका उपपाद जन्म है। अनपवर्त आयु वाले होते हैं, उनका अकाल मरण नहीं होता है।

उपपाद जन्म वाले जीवों का अकाल मरण नहीं होता





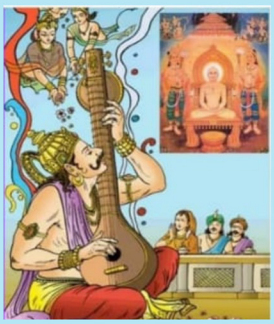
चरम देह और उत्तम देह का अर्थ

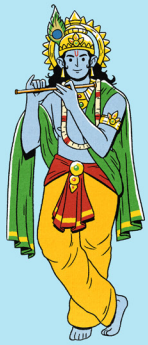
63 शलाका पुरुष में उत्तम देह वाले तो सभी होते हैं पर चरम शरीर सभी का नहीं था इसलिए अकाल मरण संभव है



कुछ चक्रवर्ती स्वर्ग/नरक भी गये हैं







कुछ बलराम स्वर्ग गये, और नारायण-प्रतिनारायण नरक ही जाते है

अब दूसरी शर्त क्या बताई जा रही है? **'औपपादिक चरमोत्तम देहा'** चरमोत्तम देहा अर्थ यह होता है कि आपकी देह चरम भी होनी चाहिए और उत्तम भी होनी चाहिए। चरम का मतलब होता है-जिनका जन्म इस संसार में last हो, चरम देह उसको बोलते हैं- जिस देह से उन्हें नियम से मुक्ति ही मिले। उन्हें बोलते हैं- चरम देह वाले। चरम शरीरी सुनते रहते हो न। चरम मतलब last. जिनके लिए अन्तिम शरीर मिलता है, वह चरम लेकिन उसमें एक और विशेषण जोड़ना चाहिए। केवल चरम से काम नहीं चलेगा, उत्तम भी होना चाहिये। उत्तम का मतलब होता है- वह त्रेसठ शलाका पुरुषों में आने वाला व्यक्ति होना चाहिए। जब ये दोनों condition जुड़ेंगी तब जाकर के वह चरमोत्तम देह वाला बनेगा और तभी वह अकाल मरण से रहित कहलाएगा। अब देखो ऐसे जीव जो केवल चरम देह वाले हैं, उत्तम देह वाले नहीं हैं वह अकाल मरण से सहित कहलाएँगे।

चरमोत्तम देह नियम से तीर्थंकर की होती है



केवल जिनकी चरम देह है, उनको मोक्ष तो हुआ चरम शरीर होने के कारण से लेकिन त्रेसठ शलाका पुरुषों में उनका नाम नहीं आता जैसे- पाण्डव , गज कुमार मुनि आदि। ये सभी चरम शरीरी तो हैं लेकिन उत्तम देह वाले नहीं थे। त्रेसठ शलाका पुरुषों में न बलदेव थे, न नारायण थे, न कोई तीर्थंकर थे, न कोई चक्रवर्ती थे इसलिए इनके अकाल मरण सम्भव है, दूसरा जो उत्तम देह वाले हो लेकिन चरम देह न हो, ऐसे भी लोग हुए। कोई जरूरी तो नहीं त्रेसठ शलाका पुरुष सभी मोक्ष जाते हैं। त्रेसठ शलाका पुरुषों में जन्म तो हुआ, ऐसे चक्रवर्ती भी होते हैं, स्वर्ग गए, नरक में भी जाने वाले चक्रवर्ती हैं तो उनका अकाल मरण भी सम्भव है। जिनमें चरम plus उत्तम ये दोनों condition fit होंगी वहीं अनपवर्त आयु वाले होंगे और वह नियम से तीर्थंकर ही होते हैं ।



चरमोत्तम देह सिर्फ तीर्थंकरों की होती है इसलिए उनका अकाल मरण नहीं होता



भोग भूमि के मनुष्य और तिर्यन्च की आयु असंख्यात वर्ष की होती है

"असंख्येयवर्षायुषः" तीसरी condition क्या है? वह कोई भी जीव हो जो असंख्यात वर्ष की आयु वाला होगा, आपकी आयु असंख्यात वर्ष में आती है, कितनी आयु है? जो भी होगी पचास, सौ, एक सौ बीस, एक सौ पच्चीस इतनी enough है इससे ज्यादा तो नहीं होगी न। यह तो सब संख्यात में ही है। असंख्यात वर्ष की आयु वाले जो भी जीव होंगे, वो भोग भूमि के जीव होते हैं- एक पल्य, दो पल्य, तीन पल्य की जिनकी आयु होती है ऐसे मनुष्य अनपवर्त आयु वाले होते हैं। बाकी सब! क्या हो गए? अपवर्त आयु वाले हो गए।



सामान्य मनुष्य और तिर्यन्च का अकाल मरण हो सकता है

ये सामान्य मनुष्य, तिर्यन्च उस condition में कहीं पर भी fit नहीं होते। इसलिए आपको नियम से यह जानना है कि वर्तमान में भी और हमेशा भी सामान्य मनुष्य और तिर्यन्चों के लिए यही नियम रहेगा कि उनकी अकाल मृत्यु होती है, हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती है, आप उसका निषेध नहीं कर सकते हैं। किसी दुर्घटना के कारण से, कोई आपको किसी भी तरीके का poison दे दे, आपका murder कर दे, आपको किसी भी तरीके से कहीं भी पानी आदि में डुबो दे, कुछ भी आपके साथ में, एक slow poison भी दिया जाता है, आदमी को पता ही नहीं पड़ता है। इस तरीके से कुछ भी ये सब चीजें जो होती हैं, ये सब बताती हैं कि इसका अकाल में मरण हुआ। अब कोई भी आपको इसके अलावा कोई ज्ञान दे, तो आपको वह ज्ञान इन सूत्रों के विरुद्ध होने के कारण से उसे स्वीकारना नहीं है।

क्रमबद्ध पर्याय को सिद्ध करने वाले सूत्रों के विरुद्ध चले जाते हैं

कुछ लोग क्रमबद्ध पर्याय की चर्चा करते हुए इस तरह के अकाल मरण को निषेध करने में लगे रहते हैं। उन्होंने जैसे मान लो एक mission ही बना लिया हो कि हमें सूत्र तो गलत हो जाए कोई बात नहीं लेकिन अपने क्रमबद्ध पर्याय जो हमने अपना मुद्दा बना लिया है, इसे कभी

गलत नहीं करेंगे, इसे गलत नहीं होने देंगे। ऐसे लोग सूत्र के विरुद्ध चलने वाले लोग होते हैं, जो अपने आपको बहुत ज्ञानी समझते हैं और वह कभी-कभी हमें भी समझाने की कोशिश करते हैं। हमने इतने भी ज्ञानी देखे कि वह तरह-तरह के कर्म सिद्धान्त बता कर हमको भी समझाने की कोशिश करते हैं लेकिन उनकी कोई भी बात तब तक लागू नहीं होती जब तक कि आचार्य उस तरह का कोई कथन न करे तो अपना ज्ञान उतना ही रखे जितना हमें सूत्रों में दिया जा रहा है।

अकाल मरण के बारे में न्याय के विद्वान अकाट्य उदाहरण देते हैं

आचार्य अकलंकदेव की आप टीका पढ़ेंगे तो उसमें भी उन्होंने अकाल मरण शब्द को ज्यों का त्यों रखा है और उन्होंने कहा है कि अकाल मरण भी होता है। अगर अकाल मरण नहीं होगा तो आयुर्वेद आपके लिए क्या काम करेगा? आप चिकित्सा कराते हो, किस लिए कराते हो? जब अकाल मरण होना ही नहीं है, तो फिर चिकित्सा कराने की जरूरत ही क्या है? जो न्याय के विद्वान हुए हैं वो ऐसे अकाट्य उदाहरण देते हैं। इस तरीके से आचार्यों ने जिस तरीके के सूत्र हैं, उसी के अनुसार उन्होंने व्याख्या की और जो चीजें उन्होंने स्वीकार की हैं, वही हमें स्वीकारना चाहिए। अपनी बुद्धि उतनी ही चलानी चाहिए, जितना आचार्यों ने हमें सूत्रों के माध्यम से या व्याख्यानों के माध्यम से बताया है। जो भी लोग क्रमबद्ध पर्याय को सिद्ध करने के लिए अकाल मरण का निषेध करना चाहते हैं, वह बहुत बड़ी गलती कर रहे हैं। इस तरह से दूसरे अध्याय के इन सब सूत्रों में एक तरह से पूरा **जीव का विज्ञान** बताया गया है जो यहाँ पर पूर्ण होता है।



→ क्रमबद्ध पर्याय ✗

"आचार्य अकलंकदेव ने अपनी टीका में अकाल मरण शब्द को ज्यों का त्यों रखा है"



विद्वान →

क्रमबद्ध पर्याय ✓



→ अकाल मरण को निषेध करने में लगे रहते हैं

सारांश

1. हम द्वितीय अध्याय में **जैन जीव विज्ञान** को समझ रहे हैं
2. सूत्र उननचास **शुभं विशुद्ध-मव्याघाति चाहारकं प्रमत्त-संयतस्यैव** में हमने आहारक शरीर की विशेषताओं को जाना
   - यह **शुभ योग** वाला व **शुभ कार्य** करने वाला है
     - इससे जो शुभ योग होगा और पुण्य आस्रव, पुण्य बन्ध होगा
   - यह मुनि महाराज के मस्तिष्क से निकलने वाला एक विशेष पुतला होता है
3. जो ऋद्धि के माध्यम से प्राप्त होता है
     - जो उनके अन्दर उत्पन्न तत्त्व में संदेह के निवारण हेतु निकलता है
     - और जहाँ भी केवली भगवन्त विद्यमान रहते हैं वहाँ बिना रुकावट जाता है
   - यह विशुद्ध है अर्थात यह विशुद्ध कारणों से उत्पन्न होता है
   - यह अन्य चार शरीरों की अपेक्षा एकान्त रुप से शुभ ही है
     - औदारिक, वैक्रियिक, तैजस और कार्मण शरीरों के कार्य अशुभ रूप में भी देखें जाते हैं
   - और यह जहाँ भी जाएगा इसका प्रयोजन शुभ ही होगा
4. यदि मुनि महाराज औदारिक शरीर से केवली भगवान् के पास जाने की कोशिश करेंगे,
5. चाहे ऋद्धियाँ से भी हो
6. तो भी जाने में असंयम होगा
7. आहारक पुतले से उस असंयम को दूर होता है
8. यह **देव वन्दना** के निमित्त से भी जा सकता है
   - उदाहरण के लिए ऐसे तीर्थ जहाँ पहुँचने में रास्ता प्रासुक, साफ-सुथरा न हो
9. हमने जाना कि आहारक शरीर का बंध सातवें गुणस्थान में अप्रमत्त दशा में ही होता है
   - और इसका उदय छटवें गुणस्थान में प्रमत्त दशा में होता है
   - यह अप्रमत्त संयत के नहीं निकलेगा
10. हमने **आहारक शरीर** के बन्ध व उत्पत्ति के नियम को जाना
11. इसका उदय **प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन** के साथ में नहीं होता
12. **मनःपर्यय ज्ञान** के साथ में आहारक ऋद्धि नहीं होती
13. नपुंसक वाले जीव के लिए इसका बन्ध और उदय नहीं होगा
   - क्योंकि वेद भीतर से भावों की अपेक्षा होता है तो मुनि महाराज के तीनों वेद रह सकते हैं
14. आहारक शरीर की विशेषताएं जो अन्य शरीर में नहीं होती
   - बहुत सुन्दर देवों की तरह समचतुरस्र संस्थान का होता है

- इसकी शुभ आकृति होती है, शुभ धवल वर्ण होता है
- इसमें धातुएँ, उप धातुओं नहीं होती
- देवों के शरीर के सामान
    - इसमें संहनन नहीं होता
    - इसमें रोग आदि नहीं होते हैं क्योंकि इसमें धातु उपधातुओं का परिवर्तन नहीं होता

15. रस, माँस, रक्त, मज्जा आदि के आभाव में यह **शुद्ध शरीर** कहलाता है
16. मुनि महाराज आहारक ऋद्धि से ही आहारक शरीर की उत्पत्ति कर सकते हैं
    - शरीर निष्पत्ति के अन्तर्मुहूर्त तक यह अपर्याप्त अवस्था में होता हैं
    - और इसमें आहारक मिश्रकाय योग होता है
    - इसके पश्चात पर्याप्त दशा में आहारक काय योग होता है
    - यह अन्तर्मुहूर्त में केवली भगवान् के पास चला जाएगा
    - और अन्तर्मुहूर्त में ही वह लौट के आ जाएगा
17. हमने जाना कि एक समय में एक ही योग होता है
18. आचार्य **सूत्रों की रचना** बहुत ही व्यवस्थित करते हैं
    - और किसी भी बात को दोबारा नहीं कहते
    - अगर पहले कही बात से related, कोई दूसरी बात होगी तो वह 'च' से भी काम चला लेंगे
    - जैसे कार्मण तैजस शरीर के बारे में **अनादि संबंधे च या अप्रतीघाते**
19. हमने जाना कि आहारक शरीर एकांत से शुभ और विशुद्ध होता है, अन्य शरीर नहीं
    - तैजस शरीर शुभ और अशुभ दोनों रूप में होता है
    - औदारिक और वैक्रियिक शरीर संक्लेश से भी उत्पन्न होते हैं
20. आहारक शरीर **अव्याघात** अर्थात बाधा से रहित होता है
    - जहाँ तैजस और कार्मण शरीर तीन लोक में कहीं भी जा सकते हैं
    - आहारक शरीर सिर्फ ढाई द्वीप यानि मनुष्य लोक में ही गमनागमन कर सकता है
    - ढाई द्वीप के बाहर ऋद्धि धारी मनुष्यों का भी प्रवेश निषेध है
21. सूत्र पचास **नारक समूर्च्छिनो नपुंसकानि** में हमने तीन वेद - पुरुष वेद, स्त्री वेद और नपुंसक वेद के बारे में जाना
    - ये नोकषाय के भेद होते हैं
    - नोकषाय के उदय से यह आत्मा में उत्पन्न होने वाले भाव होते हैं
    - इन्हें हम सरल भाषा में gender कह सकते हैं
22. हमने **भाव वेद** और **द्रव्य वेद** के अन्तर को भी समझा
    - भाव वेद यानि नोकषाय के उदय से उत्पन्न आत्मा में भाव
    - द्रव्य वेद यानि शरीर नामकर्म, अंगोपांग नामकर्म के उदय से शरीर की रचना

- जैसे द्रव्य वेद के कारण के स्त्रियों के शरीर की रचना स्त्रियों जैसी और पुरुषों की पुरुषों जैसी होती है

23. **द्रव्य से** पुरुष यानि जिसके शरीर की रचना पुरुष की हो, वह जीव भी **भावों में पुरुष,** स्त्री या नपुंसक वेद का हो सकता है
    - भावों में पुरुष वेद से उसे स्त्री की अभिलाषा
    - स्त्री वेद से पुरुष की अभिलाषा
    - और नपुंसक वेद से दोनों की अभिलाषा अर्थात desire होगा
24. कुछ जीवों में द्रव्य वेद और भाव वेद में अंतर हो सकता है
    - इसी वेद वैषम्य कहते हैं
    - यह मनुष्य और तिर्यंचों में होता है
    - इसे सरल भाषा में हम समलैंगिकता कहते हैं
    - जैसे शरीर से स्त्री है मगर भाव से पुरुष या नपुंसक है तो उसे स्त्री की अभिलाषा होगी
25. नपुंसक वेद अशुभ और अप्रशस्त होता है क्योंकि इसके उदय में जीव दुःखी होता है और उसकी तृष्णा पूरी नहीं होती
26. हमने जाना कि नारकी और सम्मूर्च्छन जन्म वाले जीव द्रव्य और भाव से नपुंसक वेद वाले ही होंगे
27. सूत्र इक्यावन न देवाः और बावन्न शेषास्त्रिवेदाः में हमने जाना कि
    - देव नपुंसक नहीं होते, न द्रव्य से और न भाव से
    - और शेष सभी जीव तीनों वेद वाले होते हैं
28. हमने सूत्र बावन **शेषास्त्रिवेदाः** में विस्तार से क्षेत्रों में वेद व्यवस्था को भी जाना
29. आर्यखण्ड के मनुष्यों में तो तीनों वेद के जीव मिलेंगे
    - म्लेच्छ खण्ड के मनुष्यों में नपुंसक वेद नहीं होगा
30. भोग भूमि के मनुष्यों और तिर्यन्चों में भी नपुंसक वेद नहीं होगा
31. सम्मूर्च्छन जन्म वाले जीव नपुंसक ही होंगे चाहे वह कर्म भूमि के हो या भोगभूमि के
32. आचार्य श्री चिंतन अनुसार
    - नारक सम्मूर्छनों नपुंसकानि सूत्र में लिङ्गानि ध्वनित होता है
    - अर्थात नारकी और सम्मूर्च्छनों में जहाँ द्रव्य और भाव लिंग एक ही होंगे, नपुंसक शब्द लिङ्ग का प्रयोग किया है
    - लिंग में तो द्रव्य और भाव दोनों एक जैसे ही होंगे
    - और सूत्र शेषास त्रिवेदाः में जहाँ वेद वैषम्य आ जाता है वेद शब्द का प्रयोग किया है
33. सूत्र त्रेपन में हमने **अनपवर्त आयु** यानि जिसका घात न हो
    - और अपवर्त आयु यानि जिसकी अकाल मृत्यु हो सकती है
34. अकाल मृत्यु को शास्त्रों में कदलीघात मरण भी बोलते हैं
35. समय से पहले कोई दुर्घटना हो जाना, रोग हो जाना, महामारी की चपेट में आना, गिर

जाना, heart attack हो जाना आदि सब अकाल मरण हैं

36. गलत life style, गलत खान-पान, प्रमाद आदि के कारण शरीर खराब कर रखे हैं और यही अकाल मृत्यु के कारण हैं

37. कुछ लोग अकाल मरण नहीं मानते

38. मगर आचार्यों ने इसे स्वीकारा है

39.

40. तीन स्तिथियों में अकाल मरण नहीं होता
    - पहली स्थिति है देव और नारकी की
    - दूसरी स्थिति है चरमोत्तम देह धारियों की
        - चरम देह उसी भव में मोक्षगामी जीव के होगी
        - और उत्तम देह त्रेसठ शलाका पुरुषों के होगी
        - अतः चरमोत्तम देह नियम से तीर्थंकर की होगी
    - पाण्डव, गज कुमार मुनि आदि चरम शरीरी थे लेकिन उत्तम देह वाले नहीं थे
        - इसलिए इनके अकाल मरण सम्भव है
    - ऐसे उत्तम देह धारी भी होते हैं जो चरम शरीरी नहीं है जैसे नरक या स्वर्ग जाने वाले चक्रवर्ती
        - इनका भी अकाल मरण सम्भव है

41. **तीसरी** स्थिति है असंख्यात वर्ष की आयु वाले जीव की
    - ये जीव भोग भूमि में एक, दो और तीन पल्य की आयु के साथ होते हैं

42. इन तीन के अलवा सभी अपवर्त आयु वाले होते हैं

43. सामान्य मनुष्य और तिर्यन्च का अकाल मरण हो सकता है

44. हमने जाना कि **क्रमबद्ध पर्याय** को सिद्ध करने वाले सूत्रों के विरुद्ध जाकर तरह तरह की के कर्म सिद्धान्त बता कर समझाने की कोशिश करते हैं
    - लेकिन आचार्य के कथन के बिना उनकी कोई भी बात मान्य नहीं है

45. अकाल मरण के बारे में न्याय के विद्वान अकाट्य उदाहरण देते हैं
    - जैसे- **आचार्य अकलंकदेव** ने टीका में कहा है कि अकाल मरण भी होता है

अभ्यास प्रश्न पत्र

Q1. ___ विशुद् ध-मव्याघाति चाहारकं ___-संयतस्यैव। पूर्ण करो
1. शुभं, अप्रमत्त
2. अशुभं, अप्रमत्त
3. अप्रमत्त, अशुभं
4. शुभं, प्रमत्त

Q2. आहारक शरीर के विषय मे गलत चुने
मुनि महाराज के मस्तिष्क से निकलता है
1. शुभ होता है
2. विशुद्ध है
3. अशुभ योग के साथ होता है
4. अशुभ कार्य करता है

Q3. कौन सा शरीर एकांत रूप से शुभ ही है ?
1. आहारक
2. तैजस
3. कार्मण
4. औदारिक

Q4. कौन सा शरीर अशुभ भी होता है?
1. आहारक
2. वैक्रियिक
3. कार्मण
4. औदारिक

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड

Q5. ___ समूर्च्छिनो नंपुसकानि। सूत्र पूरा कीजिये
1. देव
2. मनुष्य
3. नरक
4. नारक

Q6. तीन वेद किसमे गर्भित है?
नोकषाय
1. सोलहकषाय
2. चारकषाय
3. तीनों

Q7. वेद कौन कौन से होते है ?
1. स्त्री
2. पुरुष
3. नपुंसक
4. देव

Q8. भाव वेद की रचना मे क्या कारण है ?
1. अगोपांग नामकर्म
2. शरीर नामकर्म
3. नोकषाय भाव
4. नाम कर्म का उदय

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड

Q9. चरम देह के विषय मे सही चुने
1. जिनका जन्म इस संसार में लास्ट हो
2. जिस देह से नियम से मुक्ति मिले
3. जिस देह से मुक्ति न मिले
4. अंतिम शरीर हो

Q10. उत्तम देह वाले जीव कौन से है ?
त्रेसठ शलाका पुरुष
1. पाण्डव
2. गज कुमार मुनि
3. चक्रवर्ती

Q11. अकाल मरण किस देह के साथ सम्भव है
1. सिर्फ उत्तम देह हो जीव की
2. सिर्फ चरम देह हो जीव की
3. उत्तम और चरम देह दोनो हो जीव की
4. तीनों

Q12. चरमोत्तम देह नियम से किनकी होती है ?
1. नारायण
2. तीर्थंकर
3. पांडव
4. सभी

Q13. भोग भूमि के मनुष्य की आयु कितने वर्ष की होती है ?
1. संख्यात
2. अनंत
3. एक हजार
4. असंख्यात

Q14. भोग भूमि के जो जीव होते हैं उनकी कितनी आयु हो सकती है
1. एक पल्य
2. दो पल्य
3. तीन पल्य
4. तीनों

Q15. अनपवर्त आयु वाले जीव चुने
तीर्थंकर
1. देव
2. नारकी
3. भोगभूमि के मनुष्य
4. कर्म भूमि के मनुष्य

16. अपवर्त आयु वाले जीव कौन से हो सकते है ?
1. कर्म भूमि के मनुष्य
2. देव
3. नारकी
4. चरम शरीर वाले
5. उत्तम शरीर वाले

SCAN TO WATCH

TO GET ANSWERS SOLVE ONLINE

उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रश्न - QR कोड

अभ्यास प्रश्न पत्र विषयक

1. आहारक शरीर की विशेषताएं बताइए।
2. एकांत रूप से शुभ और विशुद्ध कौन सा शरीर है?
3. आहारक शरीर के बंध और उदय से संबंधित नियम समझाइए।
4. क्या औदारिक काय योग के साथ आहारक काय योग होता है?
5. आहारक शरीर का गमन कहां तक हो सकता है?
6. क्या नर मक्खी और मादा मक्खी होती है?
7. कौन सी इंद्रिय वाले जीव नियम से सम्मूर्च्छन ही होते हैं?
8. भाव वेद और द्रव्य वेद के कारणभूत कर्मों के नाम बताइए।
9. देव गति में कौनसा भाव वेद और द्रव्य वेद होता है?
10. आर्य खंड , म्लेच्छ खंड और भोग भूमि के जीव कौन से वेद वाले होते हैं?
11. अनपवर्त आयु का क्या अर्थ है ?
12. किनका काल मरण हो सकता है?
    क .इसी भव से मोक्ष जाने वाले का
    ख .उत्तम देह वाले का
    ग .कर्मभूमि के मनुष्य का
    घ.नारकी का

जिणवाणी थुदि

सिरि जिणवाणी जग कल्लाणी
जगजणमदतममोहहरी ,
जणमणहारी गणहरहारी
जम्मजराभवरोगहरी ।
तित्थयराणं दिव्वझुणिं जो
पढइ सुणइ मईए धारइ ,
णाणं सोक्खमणंतं धरिय
सासद-मोक्खपदं पावइ ॥

– मुनि श्री १०८ प्रणम्य सागर जी

प्रणम्यवाणी देवदूत

**"गुरु प्रणम्य वाणी पहुँचे घर घर,
सम्यक् ज्ञान प्रभावना हर घर..."**

'प्रणम्यवाणी देवदूत' गुरु भक्तों का एक ऐसा परिवार है जो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी एवं अर्हं योगी **मुनि श्री 108 प्रणम्यसागर जी महाराज** की वाणी को घर-घर तक पहुँचाने के लिए संकल्पित है। इस हेतु वे विभिन्न उपक्रम चला रहे हैं, जैसे :-

- जिनवाणी, पारस जैसे channels पर गुरु प्रवचनों की telecasting करवाना
- YouTube, Facebook, Instagram जैसे social media platforms पर गुरु वाणी का प्रचार-प्रसार करवाना
- book publishing के माध्यम से मुनि श्री द्वारा रचित साहित्य को जन-जन तक पहुँचाना

यदि आप भी मागध जाति के देवों की तरह गुरु वाणी की प्रभावना करना चाहते हैं, तो **QR code को scan करें** अथवा **+91-8920491008** इस number पर call या Whatsapp के माध्यम से हमसे सम्पर्क करें।

Team Members Involved

Editing Team

1. Deepti Jain, Delhi
2. Divya Jain, Jabalpur
3. Jolly Jain, Shamli
4. Anupama Jain, Maharashtra
5. Br.Rani didi, Jabalpur
6. Arpana Jain, Bhopal
7. Supriya Jain, Indore
8. Rita Jain, Delhi
9. Garima Jain, Merrut

Conceptualization team

1. Bhawana Jain,Delhi
2. Kamalnaini Jain Noida
3. Sheetal Jain, Indore
4. Priyanka Jain, Meerut
5. Ankur Jain, Roorkee

Visualisation Team

1. Nayan Jain, Delhi
2. Soumya Jain, Delhi
3. Ankita Jain, Jabalpur
4. Aditi Jain, Delhi
5. Shradul Jain, Delhi
6. Shrashti Jain, Muzaffarnagar
7. Aarchi Shah, Gujrat
8. Nikita Jain, Muzaffarnagar
9. Anjali Jain,Delhi
10. Rekha Jain, Delhi

Summary

1. Nayan Jain, Delhi
2. Bhawna Jain, Delhi

Quetions Bank Team

1. Smita Jain, Pune
2. Priyanka Jain, Bhopal
3. Renu Jain, Jaipur
4. Sayam Jain, Delhi
5. Sheetal Jain, Indore
6. Kamal naini Jain, Delhi
7. Anjali Jain, Kota

Direction Team

1. Ankita Jain, Jabalpur
2. Kanvi Parekh, Mumbai